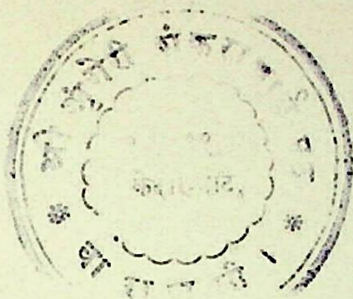
काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद



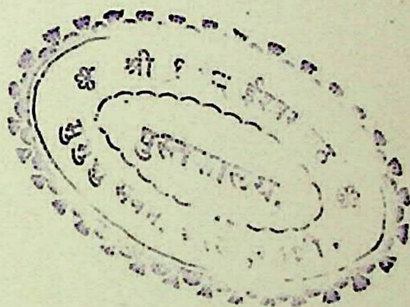
संपादक, प्रकाशक तथा विक्रेता

जयपुर विश्वनाथ राजगोपाल शर्म्मा

51, हनुमान घाट, वाराणसी—1 (उत्तर प्रदेश)



श्री ईश्वरमठ (मुमुक्षुभवन)
पुस्तकालयके लिये समर्पित
वाराणसी
18-3-66
श्रीधरभट्ट.



॥ ॐ ॥

॥ श्री काशी विश्वेश्वरः प्रसन्नोस्तु ॥
॥ श्री शङ्कराचार्यो विजयतेतराम् ॥

काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद

संपादक, प्रकाशक तथा विक्रेता

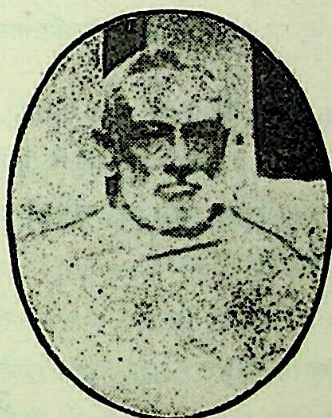
जयपुर विश्वनाथ राजगोपाल शर्म्मा

51, हनुमान घाट, वाराणसी—1 (उत्तर प्रदेश)



मुद्रक
श्री रामा प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
धर्मपुरी—1 (शेलम जिला)
मदरास राज्य

सं. 2019/20] 1963 [मूल्य रू. 7-50



समर्पण

श्री काशी निवासी स्वर्गीय जयपुर त्रियम्बकेश्वर गणपति शास्त्री के पुत्र,
पन्डित प्रवर स्वर्गीय जयपुर गणपति विश्वनाथ शर्म्मा जी,
मेरे परम पूज्य पिता, के चरण कमलों में,
सादर सविनय प्रणामपूर्वक
समर्पित ॥

प्रथम संस्करण—1963

सूचना

इस पुस्तक का अनुवाद किसी भी भाषा में किया जा सकता है। प्रार्थना है कि शुभाकांक्षी उदारशील पुरुष सार्वजनिक जानकारी के लिये इसे आङ्गल, तमिल, तेलगू, कन्नडा भाषाओं में अनुवाद कर प्रकाश करने का कार्य हाथ में लें और इस शुभ कार्य में यथाशक्ति अपनी अपनी सहायता प्रदान करें।

ज. वि. राजगोपाल शर्मा

(संपादक)

फ
२८८

ॐ

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद

विषय सूची

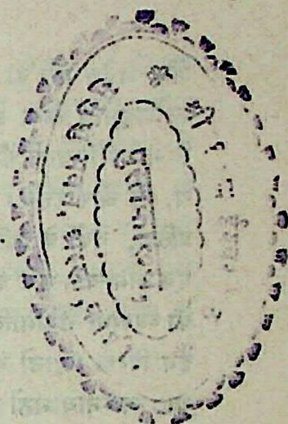
101. भारत रत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद–पटना (भू तपूर्व राष्ट्रपति–भारत सरकार)।
102. भारत रत्न डा० एस. राधाकृष्णन् (राष्ट्रपति–भारत सरकार)।
103. भारत रत्न डा० श्रीभगवानदास-वाराणसी।
104. भारत रत्न म० म० डा० पि. वि. कणे।
105. प्रधान न्यायाधीश श्री बि. पि. सिन्हा (सुप्रीम कोर्ट)।
106. प्रधान न्यायाधीश श्री एम्. पतञ्जली शास्त्री (सुप्रीम कोर्ट)।
107. श्री एस. सुब्रह्मणिय अय्यर, प्रधान न्यायाधीश, मदरास।
108. न्यायाधीश श्री एन्. चन्द्रशेखर अय्यर।
109. पटना हाई कोर्ट प्रधान न्यायाधीश का अदालती निर्णय
110. भारत सरकार, पब्लिकेशन विभाग, का प्रकाशित पुस्तक
111. 'दि हिमालयन् डिस्ट्रिक्टस आफ दि नार्थ वेस्ट प्राविन्सस् आफ
(क) इन्डिया'-II–IX आफ दि गजटियर आफ दि नार्थ वेस्ट प्राविन्सस्-1884
(ख) श्री एडविन्. टि. अटकिन्सन् (उपर्युक्त गजटियर के संपादक)।
112. इम्पिरियल गजटियर—I
113. श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी।
114. श्री प. प. श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज, हरिद्वार।
115. श्री प. प. श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद पवाहारी श्री स्वामी बालकृष्ण यति जी, महाराज, वेदान्ताचार्य, महामण्डलेश्वर (जूना)।
116. प. प. श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद श्री स्वामी रामचन्द्रगिरि जी महाराज महामण्डलेश्वर (निरञ्जनी)।
117. श्री प. प. श्री म० स्वामी हरिनारायणानन्द जी महाराज, कार्यदर्शी, भारत साधू समाज।
118. श्री स्वामी तपोवन जी।
119. श्री स्वामी रङ्गनाथानन्द जी।
120. श्री स्वामी राजेश्वरानन्द जी।
121. श्री स्वामी अतुलानन्द जी।
122. श्री स्वामी निखिलानन्द जी।
123. श्री शैलकुमार मुकर्जी (स्पीकर–पश्चिम बङ्गाल लेजिस्लेटिव असम्बली)
124. डा० सम्पूर्णानन्द जी (भू तपूर्व मुख्यमंत्री उत्तरप्रदेश, राजस्थान के वर्तमान राज्यपाल)
125. श्री बिष्णुराम मेधि (राज्यपाल -मदरास)
126. श्रीमति विजय लक्ष्मी पन्डित (राज्यपालिनी-महराष्ट्र)
127. डा० आर. सि. मजुमदार, डा० एच. सि. रायचौधरी, डा० कालीकृष्ण दत्त।
128. श्री सि. एस. श्रीनिवासाचारी, एम्. ए., श्री एम्. एस. रामस्वामी अय्यङ्गार, एम्. ए.।
129. डा० आर. एन्. डन्डेकर, एम्. ए., पि. एच. डि।
130. डा० कालिदास नाग।

131. श्री एच. चाटर्जी।
132. श्री एम्. के. नटराजन, एम्. ए., एल. टि., मयूरम्।
133. श्री वडक्कानकूर राज राज वर्मा।
134. श्री वि. नागमिय
135. श्री सीतानाथ दत्ता।
136. Sri J. N.Farquhar.
137. श्री आर. आर. दिवाकर।
138. श्री सेन्टनिहाल सिंह।
139. श्री दिलीप कुमार राय और श्रीमति इन्दिरा देवी।
140. डा० पि. एस. लोकनाथन्।
141. 'शंकरविजयम्' (1879 ई०) श्रीतोलुवूर वेलायुध मुदलियार (ज्योति श्रीरामलिङ्ग स्वामी जी के शिष्य)
142. श्री वि. सुब्रह्मणिय अय्यर।
143. श्री टि. ए. स्वामिनाथ अय्यर।
144. श्री जे. एच. दवे।
145. श्री कल्याणराय एन्. जोशी।
146. डा०. सि. पि. रामस्वामी अय्यर, श्री एन्. चन्द्रशेखर अय्यर (न्यायाधीश), राजमंत्रप्रवीण श्री ए. वि. रामनाथन्, डा० एम्. एस अणे, श्री एम्. एस. एम्. शर्मा (संपादक), श्री ए.चिदम्बरम् मुदलियार, श्री एम्. वि. नल्लमुत्तु पिल्लै, रावबहादुर पि. रङ्गस्वामी नायडू (न्यायाधीश), राव साहब राजगोपाल पिल्लै, श्री बिनोदानन्द झा (मंत्री, बिहार)।
147. 'लिङ्क' समाचार पत्र 6—8—1961.
148. संपादक, 'वेदान्तकेसरी' जून, 1957.
149. 'वेदान्त केसरी' अप्रैल, 1956
150. 'अभिधान चिन्तामणी' तामिल एन्सैकलोपिडिया।
151. 'कलैक्कलञ्जियम्', तामिल एन्सैकलोपिडिया।
152. Chambers' Encyclopaedia Vol. IX-1904
153. Cyclopaedia of India—Mr. E. Balfour—Vol. V-1873
154. Encyclopaedia Brittanica Vol. XII 14th Edition.
155. Illustrated Guide to the South Indian Railway By Mr. B. C. Scoot (1915)
156. Sir Monier Williams.
157. Mr. Horace L. Friers & Mr. Herbert W. Shneide (Dept. of Philosophy, Columbia.)
158. Mr. J. Estlin Carpenter.
159. Sir Charles Eliot.
160. Rev. A. R. Slater.

॥ ॐ ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद



विषय–प्रवेश

दृढ़ प्रामाणिक प्राचीन ग्रंथों व आधुनिक काल में प्रकाशित ग्राह्य पुस्तकों के आधार पर एवं प्राचीन रूढ़ी व परम्परा से तथा व्यवहार रूप कथा द्वारा आचार्य श्री शङ्कर की जीवन कथा विवरण सब सिद्ध विषय हैं। इस कर्मज्ञानमयी भारतदेश के दूर दक्षिण केरल (तिरवांकूर-कोचिन) प्रान्त में कालटी नामक गांव में 'कैप्पिल्लि' वंशज, अत्रि गोत्र, यजुर्वेदी नम्बूदरी ब्राह्मण दम्पती श्री शिवगुरु–श्रीसति आर्याम्बा के घर में श्री शङ्कराचार्य अवतार लिये थे। अनुसन्धान विद्वानों द्वारा शोधित प्रमाण सामग्री के आधार पर निश्चय किया जाता है कि श्री शङ्कराचार्य जी का जन्म सातवीं शताब्दी अन्त/आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आपका जन्म हुआ था। यह समय था जब भारतवर्ष में बौद्ध, जैन, शाक्त (वामाचार), गाणपत्य, पाञ्चरात्र, पाशुपत, कापालिक, आदि वेद विरुद्ध सम्प्रदायों से पूर्ण अधिकृत था। वेद और धर्म अवैदिकता के पंक में धंसा जा रहा था। अनाचार व अकर्मंण्यता अधिक मात्रा में फैल गया था। सातवीं शताब्दी में श्री कुमारिल भट्ट ने अपनी विद्वत्ता एवं कर्मकान्ड आदर्श जीवन से पूर्वमीमांसा के सिद्धान्तों की स्थापना की और वेद के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा का भाव मानव गोष्ठि में पुनः उत्पन्न किया तथा उत्तरी भारत के बौद्धों के प्रचारों का खन्डन करके वैदिक धर्म की नींव पुनः डालते हुए श्री शङ्कर के कार्य की पृष्ठभूमि तैय्यार की थी। यह समय था जब लेखनी की लडाई श्री-वात्स्यायन और वसुबन्धु के सिद्धान्तों ने दिङ्नाग के न्यायमतों का खन्डन किया था, उद्योतकर और दिङ्नाग के बीच में अपने अपने सिद्धान्तों की लेखनी लडाई जारी थी, उद्योतकर तथा कुमारिल भट्ट का खन्डन धर्मकीर्ति के सिद्धान्तों पर थी, ऐसे समय में श्री शङ्कर ने अपने आक्षेपों से प्रहार किया। दूर दक्षिण भारत में श्री नायनमारों का प्रचार व शैवसिद्धान्त मत का प्रचार ने यहां के बौद्ध धर्म को बलहीन बना दिया था। श्रीबुद्धदेव के पश्चात् काल से छठवीं/सातवीं शताब्दी क्रिस्त पश्चात् काल बीच में बौद्ध सिद्धान्तों में अनेक परिवर्तन देखा जाता है। बौद्ध सिद्धान्त हीनयान व महायान में विभाजित होकर प्रचार होने लगा। एक समय तान्त्रिकों का प्रभाव अधिक था। पुनः वज्रायन, तंत्रायन व मंत्रायन में परिवर्तित हुआ। उस समय भारतवर्ष का अन्य मतों के सिद्धान्तों को भी मूल बौद्ध सिद्धान्त अपनाया था। कालान्तर में इन परिवर्तनों द्वारा एवं जैन धर्म, शैवमत, तांत्रिक और अन्यान्य मतों ने मूल बौद्ध मत के प्रभाव को घटाने में सहयोग भी दिया था। ऐसे समय में श्री शङ्कर ने अपने ज्ञानकाण्ड की महत्ता बढ़ाई और इसे बौद्ध धर्म सह न सका और धीरे धीरे बौद्ध धर्म भारतवर्ष छोड अन्य देशों में फैलने लगा। अधर्म, अवैदिक, पाखंड प्रधान अनाचार पूर्ण मतों का नाश करने, जीर्ण हुए वैदिक मत को उत्थान करने, वैदिक धर्म की विजय वैजयन्ती फहराने, षण्मत स्थापित करने, सन्यास धर्म एवं उस धर्म के अनुष्ठानों की विधि (श्रवण, मनन, निधिध्यासन आदि) और उनसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञान आत्मनिष्ठा इत्यादियों को साधारण लोगों को समझाने व स्वयं अनुष्ठान करके कार्यकला को दिखाने, अविद्या को नाश करके सत्स्वरूपी ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करने

और अद्वैत मत का पुनः प्रचार करने के लिये आचार्य शङ्कर ने जन्म लिया था। धर्म के इतिहास में एक नया युग का प्रादूर्भाव किया और वेद, उपनिषद, गीता आदि का शंखनाद सर्वत्र होने लगा। आचार्य शङ्कर ने अपने विचारों से मानव विचारों की धारा पलट दी थी और आपकी गणना संसार के दार्शनिकों में किया जाता है। आप लोकगुरु थे, हैं और रहेंगे। यद्यपि आचार्य शङ्कर ने बौद्धमतसिद्धान्तों का खण्डन किया था और उस जगह वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा, वेदों के प्रति श्रद्धा, ज्ञान के प्रति आदर, आध्यात्मिक सूत्र से भारतियों को संघटित करके एकता का रूप एवं एक समन्वयात्मक दर्शन की प्रतिष्ठा, आदि स्थापित किया था तथापि आप बौद्ध संघ, विहार, भिक्षु, आदि संस्थाओं की व्यवस्था से प्रभावित होकर आपने धर्मप्रचार निमित्त संस्था की व्यवस्था की थी, सन्यासियों को संघ बद्ध करके इन विरक्त महानों को एकत्र करके एक संघ रूप में बांधकर वैदिक धर्म के भविष्य कल्याण के लिये महान् कार्य किया था, आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा कार्य में और उसे मठाम्नाय एवं महानुशासन द्वारा बद्ध किया था, एवं सन्यासि संघ में कुछ नवीन प्रणाली प्रारम्भ की थी।

तीसरे वर्ष में शङ्कराचार्य का चूडाकरण संस्कार हुआ। पांचवें वर्ष में उपनयन हुआ और आपने कालटी में वेद व वेदाङ्गों का अध्ययन भी किया। आठवें वर्ष में कालटी के पूर्णा नदी तट पर मानसिक आतुर सन्यास लेकर तदनन्तर नर्मदा नदी तट पर ओंकारेश्वर क्षेत्र में वास करने वाले गुरु श्री गोविन्दभगवत्पाद से शास्त्रोक्त सन्यास दीक्षा व ब्रह्म विद्या शिक्षा प्राप्त की। प्रस्थानत्रय भाष्य की रचना हिमालय की बदरी सीमा में एवं काशी में समाप्त किया। काशी में श्रीव्यास रूप में आये एक वृद्ध कृष्णकाय ब्राह्मण से विवाद कर अपने द्वारा रचित भाष्य की प्रतिष्ठा स्थापित की। काशी में श्री विश्वेश्वर का सान्निध्य भी हुआ। आचार्य शङ्कर ने काशी से प्रयागराज पहुंच कर श्री कुमारिल भट्ट से भेंट की। श्री कुमारिल भट्ट के आदेश पर आचार्य शङ्कर नर्मदा नदी तट माहिष्मती को चल पडे। रास्ते में एक कर्मकान्डी गृहस्थ मन्डन मिश्र ('ब्रह्मसिद्धि' के रचयिता) से भेंट कर विवाद किया। यह मण्डन मिश्र गृहस्थ ही रह गये। यहां से आचार्य शङ्कर माहिष्मती पहुंचकर कर्मकान्डी मन्डन श्री विश्वरूप मिश्र से विवाद किया। आपको पराजित कर सन्यासाश्रम भी दिया। आप ही वार्तिककार श्री सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध भये। व्यवहार रूढ़ी में आपका अन्य एक नाम श्रीविश्वरूपाचार्य भी था।

आचार्य शङ्कर अपने शिष्यों सहित भ्रमण करते हुए माहिष्मती से श्री शृङ्गगिरि पहुंचे। यहां कुछ काल वास करते हुए भाष्य प्रवचन भी किया एवं अन्य प्रकरण ग्रन्थ व स्तोत्रों की रचना भी की। शृंगेरी में माता शारदा की प्रतिष्ठा करके अपने स्वाश्रम शृंगेरी में निजमठ व व्याख्यान सिंहासन पीठ की स्थापना कर श्री सुरेश्वराचार्य को मठ निर्वाह भार छोडकर कालटी पहुंचे। पूर्व में अपने माता को दिये हुए प्रतिज्ञा के अनुसार कालटी में आपने अपने माता की दाह संस्कार की पूर्ति की। पश्चात् दिग्विजय यात्रा में चल पडे। अवैदिक पाखन्ड मतों का खन्डन करते हुए अद्वैतवाद का जीर्णोद्धार किया और अनेक मन्दिरों का निर्माण, जीर्णोद्धार, देवदेवी मूर्तियों की उग्रता शान्त व अशुद्धता निवारण करते हुए अनेक पीठों में चक्र प्रतिष्ठा भी किया। आपके अनेक शिष्य—गृहस्थ व सन्यासी—भी थे। इन में से चार मुख्य (श्रीपद्मपादाचार्य—काशी में दीक्षा, श्रीसुरेश्वराचार्य—माहिष्मती में दीक्षा, श्रीहस्तामलकाचार्य—श्रीवलिग्राम में दीक्षा, श्रीगिरि यां तोटकाचार्य—शृङ्गगिरि में दीक्षा) शिष्यों को दीक्षा देकर अपना प्रधान शिष्यटोली बनाया। अवतार का उद्देश्य अक्षुण्ण रखने एवं अद्वैतवाद का प्रचार करने के हेतु से श्रुति स्मृति व पुराणों के आधार पर इस कर्मज्ञान यज्ञमयी पुण्य भारतवर्ष भूमि को यज्ञ का वेदी मानकर, आम्नायानुसार चार वेदों व चार महावाक्यों के लिये चार दृष्टिगोचर दिशाओं में चतुर्धाम व उसके समीप (पूर्व—जगन्नाथ पुरी और पश्चिम—द्वारका धामों में व समुद्र समीप तथा उत्तर—बदरी धाम समीप और दक्षिण—रामेश्वर धाम समीप व पर्वत पर) चार धर्मराज्यकेन्द्र प्रतिष्ठा करके व आम्नाय मठों की व्यवस्था एवं पद्धति (मठाम्नाय व महानुशासन) बनाकर, अपने चार शिष्यों को वहां, वहां बैठाया।

अपने दिग्विजय यात्रा के अन्त में काश्मीर पहुंचकर वहां के प्राचीन सर्वज्ञपीठ पर आरोहण भी किया। दिग्गज विद्वानों ने आपको 'सर्वज्ञ' होने का विषय स्वीकार किया। यहां से आचार्य शङ्कर हिमालय केदारनाथ सीमा पहुंचकर अपने बत्तीसवें वर्ष में हिमालय का केदारनाथ मन्दिर समीप स्थल से (कैवल्यधाम) अपने धाम शिवलोक को जा पहुंचे। उक्त कथा विवरण के विरुद्ध जो कुछ कथा प्रचार किया जाय सो सब स्वेच्छावाद प्रमाण रहित कथा ही होगी। आचार्य शङ्कर ऐतिहासिक महान व्यक्ति हैं और आपकी जीवनलीला, अद्वैतवाद एवं प्रस्थानत्रय भाष्य आदि से सिद्ध होता है कि आप अवतारी पुरुष थे। इस अद्वितीय महान् देवपुरुष के जीवन चरित्र में पुराणिक कथाओं को मिलाकर एवं नयी नयी वृत्तान्तों का विवरण द्वारा समस्यायें खड़ा कर तथा नवीन चरित्र कथा की परिचय देना उचित व न्याय नहीं है।

लगभग अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध/उन्नीसवीं शताब्दी प्रारम्भ से 'शिक्ष उडयार स्वामी' नामधारी कुम्भकोणम् शाखामठ के मठाधीश प्रचार करने लगे कि 476 क्रिस्त पूर्व आचार्य शङ्कर ने कांची में एक निजावास योग्य निजमठ आम्नायानुसार प्रतिष्ठित करके वहीं आप अधिष्ठित भये और आपका साक्षात् महागुरु परम्परा आज तक चली आ रही है जो वही मठ अब कुम्भकोणम् में है। कुम्भकोणम् मठ का प्रचार विवरण संक्षेप में नीचे दिया जाता है। आचार्य शङ्कर के गुरु श्री गोविन्दभगवत्पाद अपने पूर्वाश्रम में चार वर्ण के चार स्त्रियों से विवाह कर चार पुत्रों का जन्म दिया। आपके गुरु श्री गौडपादाचार्य एक ब्रह्मराक्षस थे और उनका शाप विमोचन श्री गोविन्दभगवत्पाद ने अपने पूर्वाश्रम किया था। आचार्य शङ्कर ने पांच बार अवतार लिया था और आपका प्रथम अवतार काल 508 क्रिस्त पूर्व का है जिन्होंने भाष्य रचना समाप्त कर, कांची में वास करते हुए आम्नायानुसार वहां मठ स्थापना कर, आपका निर्याण कांची में हुआ। अन्तिम पांचवां अवतारी शङ्कराचार्य आपके कांची मठ के 38 वां मठाधीश थे (788–840 ई०) और आपका गोळक जन्म कथा का प्रचार भी होता है। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि यह गोळक जन्म व्यक्ति श्री आद्यशङ्कराचार्य (508 क्रिस्त पूर्व) से भिन्न थे तथा पुराकाल के ग्रन्थ रचयिताओं ने भूल से आपके चरित्र को मूल पुरुष का चरित्र मानकर दिग्विजय कथा लिख गये। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित कामकोटिपीठ है और यही पीठ मठ भी कहलाता है जिसके मालिक कुम्भकोण मठाधीश हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं जो आपके गुरुमठ के संचालन व अधीन में हैं। कांची मठाधीश 'जगद्गुरु' पदवी के अर्ह हैं और अन्य चार मठाधीश केवल 'श्रीगुरु' पदवी के अर्ह हैं। कांची मठ 'सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सर्वभौमो जगद्गुरुः' मठ है और अन्य चार मठ 'ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथाविधि' 'तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः।' 'तैरन्यतो न गम्येत मन्मठ्याः सर्वतश्चराः।' 'अन्ये मठास्तु चत्वारः आचार्य मत्पदेस्थितम्।' आदि का भी उल्लेख है। श्री सुरेश्वराचार्य एवं श्री विद्यारण्य परमहंस सन्यास के अर्ह न थे अतः आपको कांची मठाधीश बनाया नहीं गया। आचार्य शङ्कर ने कांची में सर्वज्ञपीठारोहण किया और कश्मीर का सर्वज्ञपीठ नवीन एवं आधुनिक है और आचार्य ने कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण नहीं किया था। कांची कश्मीर मन्डलान्तर्गत है और कांची ही कश्मीर है। श्री शङ्कर एवं सुरेश्वराचार्य दोनों ने सशरीर कैलास जाकर पांच लिङ्गों (योग, भोग, वर, मुक्ति, मोक्ष) को श्री परमेश्वर से प्राप्त कर सौन्दर्यलहरी ग्रन्थ एवं शिवरहस्य भी प्राप्त किया। पश्चात् दोनों ने भूलोक भारतवर्ष लौट कर कांची में वास करते हुए वहीं दोनों ने शरीर त्याग किया था जिसके प्रमाण में आज भी समाधि स्थल पर शङ्कर मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में है। श्री सुरेश्वराचार्य का समाधि कांची मठ के आंगन में होने का प्रचार करते हुए कहते हैं कि आपका देह त्याग कांची समीप 'पुण्यरस' गांव में हुआ और कांची भी तनुत्याग स्थल है जिनकी स्मृति में आज भी 'मन्डनमिश्र अग्रहार' के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य शङ्कर के साक्षात् शिष्य सर्वज्ञात्मा श्रीचरणेन्द्र सरस्वती थे जो व्यक्ति उनके कांची मठ में थे। आचार्य शङ्कर ने पांच मठों का संप्रदाय 'मठाम्नायसेतु' नामक ग्रन्थ भी लिखा जिसे आचार्य शङ्कर के अनुक्षण सदा साथी शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य ने अपने रचित बृहच्छंङ्करविजय में विवरण दिया है। दसनामी योगपट्टों में 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट केवल कांची मठाधीश का योगपट्ट है और यह अन्य अङ्कित नामों से

श्रेष्ठत्य की सूचना करता है। आचार्य ने कांची मूलाम्नाय (ऊर्ध्वाम्नाय, मौलाम्नाय, मध्यमाम्नाय, मुख्याम्नाय आदि आम्नाय नामों का भी प्रचार होता है) के लिये पांचवां वेद, पांचवां महावाक्य, पांचवां संप्रदाय, ग्यारहवां योगपट्ट, आदि की विधि सब बनाकर मठाम्नाय ग्रन्थ की रचना की थी। दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ की परम्परा बहुकाल विच्छिन्न होने से कांची मठाधीश श्री विद्यातीर्थ ने श्री विद्यारण्य को शृंगेरी भेजकर मठ का पुनः उद्धार कर वहां की वंशावली पुनः चलायी। श्री विद्यारण्य द्वारा स्थापित आठ मठों में चार मठ—विरुपाक्षी, पुष्पगिरि, शृंगेरी, करवीर—अब भी हैं। आचार्य शङ्कर ने दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ में प्रथमाचार्य पदवी पर यमदेवता के अवतार श्री विश्वरूपाचार्य को नियोजित किया था। कुछ प्रचार पुस्तकों में पृथ्वीधवाचार्य, पृथ्वीधराचार्य, पद्मपादाचार्य नामों का भी उल्लेख है। यह भी प्रचार है कि कांची मठाधीश श्री कृपाशङ्कर (नौवां आचार्य) ने 28-69 ई० में एक 'सुभट्ट विश्वरूप' को शृंगेरी मठ में मठाधीश पदवी पर नियोजित किया था। दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठाधीश श्रीअभिनवोद्दन्ड विद्यारण्य भारती ने अठारहवीं शताब्दी में अपने किये अपराधों को स्वीकार कर एक क्षमा पत्र कुम्भकोण मठ को दिया है। माधवीय शङ्करविजय अर्वाचीन काल में रचित ग्रन्थ है और शृंगेरी मठवालों ने अपने श्रेष्ठत्व प्रमाण करने के लिये माधवाचार्य के नाम पर प्रकाशित किया है और यह ग्रन्थ प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। कांची कुम्भकोण मठ का उपर्युक्त प्रचार के आधार पर श्री शङ्कराचार्य का नवीन चरित्र लिख कर विविध भाषा में प्रचार होने लगा। कृपाभाजन विद्वानों ने कल्पनात्मक ग्रन्थों की रचना करने लगे और अपनी सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये पुरातन प्रामाणिक पुस्तकों में श्लोकों व पंक्तियों व शब्दों को अदल बदल, जोडनिकाल, नवीन क्षिप्त आदि क्रिया कलाप से नवीन पुस्तकें परिष्कृत्य रूप में एवं पुरातन लेबल के साथ लिखकर प्रचार होने लगा।

कुम्भकोण मठ के प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरिं कृत शङ्करविजय के अनुसार श्री शङ्कराचार्य जी का जन्म चिदम्बर क्षेत्र में विश्वजित विशिष्ठा ब्राह्मण दम्पती के कुल में हुआ। विश्वजित अपनी पत्नी विशिष्ठा को छोडकर चले जाने के बाद, तीन वर्ष उपरान्त, विशिष्ठा ने शङ्कर का जन्म दिया। आचार्य शङ्कर ने व्याघ्रपुर (चिदम्बर समीप) में श्री गुरुगोविन्द भगवत्पाद से सन्यासाश्रम लिया था। मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय का परिष्कृत्य आधुनिक आनन्दगिरि शङ्करविजय पुस्तकों में चिदम्बर बदलकर कालटी का उल्लेख है पर उसी परिष्कृत्य पुस्तक में आचार्य शङ्कर का कालटी से व्याघ्रपुर आने का भी उल्लेख है जहां आपने सन्यास दीक्षा ली थी। पिता-माता का नाम शिवगुरु आर्याम्बा का नाम भी उल्लेख है। पर इसके साथ ही कुम्भकोण मठ एवं अनुयायी विद्वान यह प्रचार करते हैं कि आनन्दगिरि के कहे चिदम्बर स्थल कालटी का नामान्तर है, विश्वजित का नामान्तर शिवगुरु है एवं विशिष्ठा का नामान्तर सती आर्याम्बा है। आचार्य शङ्कर के दादा दादी का नाम सर्वज्ञ व कामाक्षी का उल्लेख है और एक आनन्दगिरि शंकरविजय प्रति में विद्याधिराज को ही शिवगुरु कहा है। आनन्दगिरि शङ्करविजय में उल्लेख है कि आचार्य को श्री वेदव्यास से काशी में एक सौ वर्ष की आयू ('शारदां शतं') का आशीष मिला और कुम्भकोण मठ की व्याख्या 'शरदां शतं' का है कि यह 100 मास का ही बतलाता है चूंकि शरद शब्द का अर्थ माह होता है। आनन्दगिरि शंकरविजय मूल व परिष्कृत्य में उल्लेख है कि श्रीव्यास जो वृद्धब्राह्मण रूप में आकर आचार्य शंकर से शास्त्रार्थ किया था, आपको आचार्य शङ्कर ने गालों पर चपत मारकर और अपने शिष्य श्री पद्मपाद द्वारा उन्हें अधोमुख कर अपने पादों से मारकर बाहर दूर ढकेल देने की आज्ञा दी। यह भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्यों परमतकालानल, लक्ष्मण व हस्तामलक को वैष्णव एवं अन्य मतों का प्रचार करने की आज्ञा दी थी और ये विशिष्टाद्वैत व द्वैत मत का प्रचार किये। उपलब्ध मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय के साथ परिष्कृत्य प्रति की तुलना की गयी और ये दोनों प्रतियां (74 प्रकरण का) समान ही पाये गये। केवल कुछ जगहों में अपनी सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये परिष्कृत्य प्रति में जोडनिकाल, क्षिप्त एवं नवीन पंक्तियां व श्लोक जोडे गये हैं। अब कुम्भकोण मठ का प्रचार होता है कि परिष्कृत्य प्रति जो 1845 ई० के पूर्व तैय्यार किया गया था और इसका एक प्रति 1867 ई० में छपकर प्रकाशित हुआ था सो प्रति ही मूल है और जो प्रति 16 वीं/17 वीं शताब्दी में उपलब्ध थे और

जिसका समान प्रति 1881 ई० में छपकर प्रकाशित हुआ था सो परिष्कृत्य प्रति है। अनुसन्धान विद्वानों ने इस आनन्दगिरि शङ्करविजय को अग्राह्य व अप्रमाणिक ठहराया है। पाठकगण मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्कर मठ विमर्श' के पृष्ठ 147 से 184 तक कृपया पढें तो आनन्दगिरि शङ्करविजय का पूर्ण विवरण मालूम होगा।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित प्रमाणाभास पुस्तकों के आधार पर यह नहीं सिद्ध होता कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नायानुसार आम्नाय मठ की स्थापना की थी। कुम्भकोण मठ का कल्पित मठाम्नाय पद्धति आर्ष ग्रंथों व धर्मशास्त्र ग्रंथों के विरुद्ध हैं और आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय में कांचीमठ का नामो निशान नहीं है। कांची का 'कामकोटि पीठ' उपासना पीठ है न कि आम्नाय मठ। ऐसे उपासना पीठ भागवत सम्प्रदायानुसार 50 हैं तो क्या यह कहा जाय कि भारतवर्ष में पचास आम्नाय मठ भी हैं? कांची मठ की कल्पित वंशावली सूची में दिये हुए नामों का शोध किया गया और उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री द्वारा सिद्ध होता है कि सतरहवीं शताब्दी अन्त तक का सूची नाम केवल कल्पित हैं और उन व्यक्तियों का सम्बन्ध कांची मठ से न था। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित ताम्र शासनों पर भी शोध किया गया और इन आधारों पर भी यह सिद्ध नहीं कर सकते कि 'सर्वोत्तर सर्वसेव्य सार्वभौम जगद्गुरु कांची मठ' 17 वीं शताब्दी में या इसके पूर्व कांची में मठ था। कुम्भकोण मठ के पास ऐसा कोई दृढ़ प्रमाण (अन्तह, बाह्य, पुष्टि) उपलब्ध नहीं होता जिससे यह कहा जाय कि आपका कांची मठ सत्तरहवीं शताब्दी या इसके पूर्व कांची में था। ईस्ट–इन्डिया–कम्पनी रिकार्डों द्वारा यह सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का सम्बन्ध कांची नगर से या कांची कामाक्षी मन्दिर से 19 वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ था और इसके पूर्व काल में आपका सम्बन्ध कांची नगर से कुछ भी न था। इन सब विषयों का विवरण मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तक में पाठकगण पायेंगे। अब देखा जाय कि कुम्भकोण मठ अपने क्रिया कलापों द्वारा कब और कैसे अपने प्रचार सामग्री तैय्यार कर प्रचार करने लगे।

कुम्भकोण मठ ने द्वेषात्मक, निन्दनीय एवं अग्राह्य मूल आनन्दगिरि शङ्करविजय का एक परिष्कृत्य प्रति 1845 ई० के पूर्व तैय्यार करके इसमें कुम्भकोण मठ की पंचलिङ्ग कल्पित कथा एवं कांची में मठ होने का विषय जोडकर; उक्त क्षिप्त श्लोकों व पंक्तियों के प्रमाण में शिवरहस्य नवमांश षोडषाध्याय 60 श्लोक युक्त को 44 या 45 श्लोकों में घटाकर एवं अनुपलब्ध व शङ्कास्पद मार्कन्डेय संहिता में पांचलिङ्ग की कथा एवं कांची में मठ प्रतिष्ठा की कथा को जोडकर; 'शङ्कराभ्युदय' पुस्तक के रचयिता श्रीराजचूडामणि दीक्षित का नाम देकर; पतञ्जली चरित्र में असम्बन्ध कुछ श्लोकों को क्षिप्तकरके 'स्थितिमवाप', 'कामेश्वरी अर्चयन् ब्रह्मानन्दमविन्दत' 'कांच्यामथसिद्धिमाप' आदि पदों का अर्थ तत्तुत्याग व्याख्या करते हुए; आपसे स्वरचित एकत्रि (18 वीं शताब्दी अन्त एवं 19 वीं शताब्दी में) पुण्यश्लोक मञ्जरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा, जगद्गुरुपरम्परा स्तुति, वेदान्तचूर्णिका, वासनादेहस्तुति, आदि पुस्तकों को प्राचीनता का लेबल चिपका करके प्रचार कर; शिवरहस्य नवमांश षोडषाध्याय के श्लोकों को अदलबदल कर, जोडनिकाल एवं क्षिप्त कर एक नवीन प्रति, तैय्यार कर; श्रीहर्षरचित नैषध काव्य के एक श्लोक का पद 'यागेश्वर' को 'योगेश्वर' में बदल करके यह पद 'योगेश्वर' कांची मठ का योग लिङ्ग का द्योतक होने का प्रचार कर; स्वरचित 'सुषमा' (गुरुरत्नमाला की व्याख्या) में कहेजानेवाले काव्य, नाटक, चम्पू, चरित्र, कथा, पुराण, आदि पुस्तकों से उद्धृत भागों की एक सूची बनाकर; माधवीय संक्षेप शङ्करविजय से अनेक श्लोकों को लेकर पतञ्जली चरित एवं शङ्कराभ्युदय में जोडकर तथा एक नवीन व्यासाचलीय पुस्तक तैय्यार करके इस पुस्तक को माधवीय शङ्करविजय का मूल होने का प्रचार कर; श्रीमुखविरुदावली तैय्यार कर और उसकी व्याख्या में 'श्रीमुखदर्पण' एवं 'श्रीमुखव्याख्या' भी अर्वाचीन काल में तैय्यार कर; मुद्रा, झन्डा, एवं बाह्य आडम्बर के अन्य चिन्हों को तैय्यार कर; उक्त स्वकल्पित आधारों पर एक नवीन मठाम्नायसेतु तैय्यार कर और उसे आचार्य शङ्कर के अनुक्षण साथ रहनेवाले परम शिष्य

श्रीचित्सुखाचार्य कृत कहकर तथा इस मठाम्नायसेतु में चतुर्दिक आम्नाय मठों का सम्राट मठ कांची मठ होने का उल्लेख कर; 'ॐतत्सत्' को उपदेष्टव्य महावाक्य, धर्मशास्त्रों में कहे सात आम्नायों (चार दृष्टिगोचर एवं तीन ज्ञान गोचर) के बीच में मूलाम्नाय, मध्याम्नाय, मौलाम्नाय, मुख्याम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय आदि आम्नाय होने का विषय सृष्टि कर, अभिमान व स्वशीलाचार से अर्वाचीन काल में परिकल्पित 'इन्द्रसरस्वती' योगपट्ट को सर्वोच्च योगपट्ट होने का प्रचार कर, इसके प्रमाण में एक कल्पित कथा की सृष्टिकर 'वासनादेहस्तुति' नामक एक प्रमाण पुस्तक भी तैय्यार कर, चार वेद की जगह पांचवेद होने का प्रचार कर, चार संप्रदाय की जगह पांचवां 'मिथ्यावार' संप्रदाय का कल्पना कर; 18 वीं शताब्दी में तंजौर राज्य के महाराष्ट्र महाराजा की सहायता व प्रभाव प्राप्तकर तथा तंजौर जिले के कुछ मठाभिमानियों व कृपाभाजन विद्वानों की भी सहायता व प्रभाव प्राप्तकर; प्रचार प्रारम्भ हुआ कि आपका कांचीमठ आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित और अधिष्ठित जगद्गुरु मुखिया मठ है।

कांचीमठ आचार्य वंशावली की सूची भी तैय्यार कर प्रचार हुआ। इस सूची में दिये हुए नाम सब अन्यत्र उपलब्ध काव्य, नाटक, चम्पू, कथा, चरित्र, इतिहास, आदि पुस्तकों से लेकर इसमें अपनी कल्पित कथाओं को जोडकर तथा उक्त पुस्तकों को प्रमाण में प्रचार कर एक सूची बनायी गयी थी जो सब जब शोध किया गया तो सिद्ध हुआ कि 17 वीं शताब्दी अन्त तक की सूची कल्पित है। आज पर्य्यन्त 68 आचार्य होने का विषय कहा जाता है पर अर्वाचीन काल उन्नीसवीं/वीसवीं शताब्दी के चार या पांच आचार्यों की समाधि छोड कर और अन्यों का समाधि कहीं भी उपलब्ध नहीं होतां। इसी प्रकार कुछ शासनपत्र व ताम्रशासन प्रमाण रूप में प्रचार कर कहते हैं कि आपका आम्नाय मठ कांची में 12 वीं शताब्दी से था। वास्तव विषय तो यह है कि ये सब ताम्र शासन कांची मठ के मठाधीश को नहीं दिया गया था। पुरातत्त्वविभाग के राज्यकर्मचारियों ने इन ताम्रशासनों को अविश्वसनीय व शङ्कास्पद कहा है एवं कांची मठ का न होने का सिद्ध किया है। इनमें कुछ ताम्र शासनों में शारदा मठ का नाम उल्लेख है और यह दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदा मठ की कांची शारदा मठ को ही बोध कराता है। कांची मठ का नाम कामकोटि है। कुम्भकोण मठ के पास कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है या कोई बाह्य या पुष्टि प्रमाण भी नहीं है जिससे यह कहा जाय कि आपका मठ 16 वीं या 17 वीं शताब्दी में या इसके पूर्व काल में था। कुम्भकोण मठ का एकङ्गि प्रमाणों की पुष्टि में बाह्य प्रमाण या पुष्टि प्रमाण कहीं भी प्राप्त नहीं होता। पन्डित प्रवर श्री बलदेव उपाध्याय जी, एम्. ए., साहित्याचार्य, काशीधाम के प्रकान्ड विद्वानों में एक गिने जाते हैं और आपके रचित ग्रन्थ अनेक हैं। आप कुम्भकोण मठ के प्रचारों का विवरण देते हुए अन्त में लिखते हैं—'इस विषय की विशेष छानबीन नितान्त आवश्यक है' और अन्यत्र एक जगह लिखते हैं—'यद्यपि कांची पीठवाले अपने मत के समर्थन में अनेक प्रमाण देते हैं परन्तु इन प्रमाणों के विषय में इतना ही कहना पडता है कि वे सब एकङ्गि हैं तथा उनका समर्थन किसी अन्य प्रमाण से नहीं होता।'

तञ्जौर राज्य मंत्री श्री गोविन्द दीक्षित के वंशज एक श्री वेंकटसुब्रह्मणिय दीक्षित थे और आपने 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में सन्यास लेकर श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती का नाम (64) धारण किया। आपके गुरु श्री महादेवेन्द्र सरस्वती (63) थे जिनका काल 18 वीं शताब्दी अन्त होने का विश्वास किया जाता है। श्री महादेवेन्द्र सरस्वती ने और एक श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती (62) (18 वीं शताब्दी मध्य काल) से सन्यास आश्रम की दीक्षा ली थी। आप लोग तञ्जौर एवं कुम्भकोणम् में वास करते थे। श्री गोविन्द दीक्षित के वंशज सब कर्नाटकी ब्राह्मण वर्ग एक समय मैसूर प्रान्त होयसाला मण्डल से तञ्जौर आये हुए थे और वहीं वास करते थे। इस वंशज के श्री गोविन्द दीक्षित एक समय तंजौर राज्य का मंत्री थे और आपका प्रभुत्व, प्रभाव व पान्डित्य अपार था। इसीलिये इस वंशज के व्यक्तियों ने सन्यासाश्रम लेकर भी तञ्जौर राजा का आश्रय पाकर के उनके प्रभाव व प्रभुत्व की सहायता द्वारा इष्ट काम्य प्राप्त किये थे। कांची मठकी कल्पित सूची में दिये 64 वां आचार्य से लेकर आज पर्य्यन्त आचार्य इसी वंशज के हैं। आप लोगों

को कर्नाटकी भाषा पद 'शिक्क उडयार' (छोटे स्वामी) की पदवी थी। उन दिनों में आप लोगों की मठ मुद्रा कर्नाटक लिपि व भाषा में थी और आपका मठ नाम 'शारदा मठ' था। इन प्रमाणों द्वारा प्रतीत होता है कि एक समय कुम्भकोणम् मठ भी दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ की शाखा मठ था।

सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक कुम्भकोण मठ कांची नगर में न होने का प्रमाण ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार रिकार्डों द्वारा एवं अब उपलब्ध होनेवाले शिलाशासन व ताम्रशासन तथा कांची इतिहास द्वारा स्पष्ट विदित होता है। विष्णु कांची में जहां अब मठ स्थित है वह जमीन एक समय राज्य की जमीन थी और पाइमायिश रिकार्ड इसका पुष्टि करता है। शिव कांची का मठ प्राचीन काल में वह जमीन 'इनाम सूखा जमीन' था और केवल एक सेन्ट जमीन (100 सेन्ट=4840 वर्ग गज) आर्वाचीन काल में कांची मठ के नाम से रिकार्ड प्राप्त होता है। 1876 ई॰ में प्रकाशित पुस्तक 'शांकरमठतत्त्वप्रकाशिका' में लिखा है कि यह मकान प्राचीन काल में (18 वीं शताब्दी में) एक अब्राह्मण का मकान था और इसे मठवालों ने 18 वीं शताब्दी अन्त में या 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में खरीदा था। कुम्भकोणम् में कुम्भकोण मठ जहां है वह मठ तंजौर राजा श्री शरभोजी ने 1821 ई॰ में बनवा दिया था। इसी प्रकार तिरुचिनापल्ली जिला का तिरुवानकावल मठ जो श्री अखिलान्डेश्वरी मन्दिर समीप है सो वहां उपलब्ध हुए शिलाशासन द्वारा स्पष्ट विदित होता है कि यह मठ पाशुपत शिवाचार्यों की परम्परा की थी। शासन पत्रों व शिलाशासनों द्वारा इस पाशुपत शिवाचार्यों का परम्परा नाम 1714 ई॰ तक का पाया जाता है। अर्थात् कुम्भकोण मठ 1714 ई॰ के बाद ही इस मठ को खरीदा होगा या अन्य रीति से प्राप्त किया होगा।

तंजौर में महराष्ट्र राजा राज्य करते थे और करीब 1790 ई॰ में एक महराठा ने दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ को लूटा और हानि पहुंचाया था। इस घटना के पश्चात् मैसूर व तंजौर राज्य के बीच में अप्रियता एवं द्वेषभाव उत्पन्न हो गया था। इसी समय में दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ का तंजौर धर्माधिकारी श्री अनन्तावधानी को तंजौर राज्य से चले जाने को कहा गया था। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर इसी समय में 18 वीं शताब्दी अन्त एवं 19 वीं शताब्दी प्रारम्भ में कुम्भकोण मठाधीश ने तंजौर राजा का प्रभाव, प्रभुत्व व सहायता प्राप्तकर अपनी मिथ्या कल्पित प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया था। दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के प्रति कीचड फेंकना प्रारम्भ भी हुआ।

18 वीं/19 वीं शताब्दी में प्रथमबार कुम्भकोणम्, कांची, तिरुवानकावल, आदि नगरों में मठों का निर्माण करके, प्रचारार्थ प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार करके, अपने शिष्य टोली एवं कृपाभाजन व्यक्तियों के प्रोत्साहन व सहायता से तथा तंजौर राज्य का प्रभाव द्वारा लगभग 1837 ई॰ में कुम्भकोण मठाधीश ने कांची की कामाक्षी देवी की कुम्भाभिषेक करने के निमित्त अपना प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। उन दिनों में कांची कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह संचालन कार्य ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार के हाथ में था। कम्पनी सरकार के पास अर्जी पेशकर कुम्भाभिषेक करने की अनुमति प्राप्तकर एवं मन्दिर निधि से कुछ रकम भी प्राप्त कर के आप 1839 ई॰ में कांची आकर प्रथम बार कामाक्षी देवी की कुम्भाभिषेक पूर्ण करके एक शिलाशासन खोदवाकर मन्दिर में बैठा भी दिया था। इसके पश्चात् तंजौर राजा का सहायता प्राप्त कर और उनके प्रभाव द्वारा तथा कम्पनी सरकार कर्मचारियों की सहायता प्राप्त कर (इनमें से कुछ ब्राह्मण कर्मचारी आपके शिष्य टोली के सदस्य थे) कुम्भकोण मठाधीश ने कांची कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी प्राप्त करने की इच्छा से अपनी अर्जी कम्पनी सरकार को पेश किया था। चेङ्गलपेट कलक्टर ने कुम्भकोण मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर 5—11—1842 के दिन नियोजित किया था। रेवन्यू बोर्ड के प्रश्न पर चेङ्गलपेट कलक्टर लिखते हैं कि कुम्भकोण मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त करने का कारण आपकी सम्पत्ति पर ख्याल रखते हुए किया गया था अन्यथा आपका कोई हक मन्दिर पर न था। सार्वभौम मठ बनने की योजना में और अपने से कल्पित मठाम्नाय में दिये देव देवी पीठों के अधिकारी निरीक्षक बनने की

आवश्यकता पडने पर कुम्भकोणम् से आप कांची पहुंचे और कामाक्षी देवी (कामकोटिपीट) मन्दिर का परिचालक बन गये। 1842 ई० तक के 'शिष्क उडयार' एवं 'कुम्भकोणम् शङ्कराचारियार' (प्राचीन रिकार्डों में येही नाम उल्लेख हैं) अब 1843 ई० से 'श्री कांची कामकोटि जगद्गुरु शंकराचार्य' बनकर अपनी महत्ता का प्रचार प्रारम्भ कर दिये। प्राचीन रिकार्डों द्वारा सिद्ध होता है कि 18 वीं शताब्दी अन्त तक दक्षिणाम्नाय शृंगेरी शारदा मठ का धर्मशासन प्रभाव कांची में भी था। दक्षिणाम्नाय मूल प्रधान शृंगेरी मठ का एक शाखा मठ कांची में भी था। यह कुम्भकोण शाखा मठ पश्चात् अपनी नाता शृंगेरी मूलमठ से तोड कर न केवल स्वतंत्रमठ बन बैठे पर सर्वोत्तर सर्वसेव्य सार्वभौम जगद्गुरु मठ बनने की चेष्ठा में प्रवृत्त हुए। इस विषय की पुष्टि तंजौर न्यायाधीश एवं अनुसन्धान विद्वान डा० वर्नेल ने स्वयं किया है।

कुम्भकोण मठ ने कांची में कुम्भाभिषेक एवं कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी पदवी प्राप्त करने के पश्चात् अखिलान्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा कर अपनी विजय पताका तिरुचि जिला के कुछ तहसीलों में फहराते हुए आप पुनः 1846 ई० में तंजौर पहुंचे। तंजौर राजा ने आपको रू० 7000 की भेंट चढाई थी। इसी धन से करुप्पूर ग्राम में 40 वेली जमीन भी खरीदी गयी। अब प्रचार पुस्तकें तामिल, तेलगू, कर्नाटकी, मलयालम, संस्कृत, आदि भाषाओं में छपकर प्रचार होने लगा। जहां कहीं प्रमाणों की आवश्यकता पडी और जब जब विपक्षी दल ने असौकर्य प्रश्न पूछे थे उन सब आक्षेपों के उत्तर में प्रमाण भी तैय्यार किये गये। 1867 ई० में आनन्दगिरि शङ्करविजय की परिष्कृत प्रति मुद्रित हो कर प्रचार होने लगा। 1872 ई० में 'सिद्धान्त पत्रिका' तैय्यार हुई और इसी समय मदरास तंजौर, कुम्भकोणम्, तिरुचि, तिरुवल्लूर, कांची, आदि नगरों में कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों द्वारा प्रचार सभायें हुई जहां आपके कहेजानेवाले प्रमाण पुस्तकों का प्रचार किया गया था। पुलिस की सहायता प्राप्त कर उनके निगरानी में कांची में एक प्रचार सभा की आयोजन भी हुई। आन्ध्र देश के एक विद्वान श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री को कुम्भकोण मठ ने 'चतुषष्टिकलात्माकालङ्कार सार्वभौम' की उपादि देकर इनसे 'श्रीमुखव्याख्या' पुस्तक लिखवा कर प्रचार हुआ। 'श्रीमुख व्याख्या' को आन्ध्र भाषा में अनुवाद करके इसे 'सिद्धान्त षत्रिका' का नाम देकर श्रीवेदान्त रामानुज अय्यङ्गार के नाम से एवं सभा द्वारा मिर्णय की हुई पत्रिका होने की कल्पित कथा कहकर प्रकाशित करायी गयी यह सब क्रियाकलाप श्री गुर्रम वेंकण्ण शास्त्री का ही था। इन भ्रामक मिथ्या प्रचारों का खन्डन में 1876 ई० में म० म० पं० कोकन्ड वेंकटरत्नम पन्तुलु ने 'शाङ्करमठतत्त्वप्रकाशिका' नामक पुस्तक प्रकाशित किया। मदरास व कांची में कतिपय प्रकान्ड विद्वानों ने इस मिथ्या प्रचार का खन्डन भी किया था पर कुम्भकोण मठ के तीव्र प्रचार और आपके बाह्य आडम्बरों ने इस सत्य प्रकटन पर पर्दा डाला। इसी समय माधवीय शङ्करदिग्विजय पर एवं दक्षिणाम्नाय मूल शृंगेरी मठ पर कीचड फेंकने का कार्य प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्र विचार रखनेवाले विद्वानों व पामरजनों की उदासीनता, एक यति के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धाभक्ति, शृंगेरी मठ व मठाभिमानियों का मौनव्रत व उदासीनता, कुम्भकोण मठ की मायाजाल प्रवृत्तियां, कृपाभाजन विद्वानों का तीव्र प्रचार, आदि कारणों ने कुम्भकोण मठ को प्रोत्साहन दिया। बेरुकावट मिथ्या भ्रामक प्रचार तीव्र रूप धारण कर लिया था।

कुम्भकोण मठाधीश श्री सुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती (65) ने (1851–1891 ई०) अपने कांची मठ के नाम को विख्यात बनाने, मठ की महत्ता बढाने, मठ प्रचार सामग्रियों का प्रचार कर प्रमाणाभास को प्रमाण होने का विषय सिद्ध करने एवं अपने मठ को सर्वोत्तम, सर्वोच्च, सार्वभौम मठ बनाने के लिये आप दिग्विजय यात्रा में चल पडे। आपके तीनों पूर्वाचार्यों ने इस कार्य की पृष्ठभूमि तैय्यार कर रक्खी थी और आपको अब उसका प्रचार मात्र करना था। उन्नीसवीं शताब्दी प्रारम्भ में आपका नाम तंजौर जिले में ही प्रसिद्ध था और पश्चात् आपके पूर्वाचार्यों ने तिरुचि जिला के कुछ तहसीलों में भी अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इसीप्रकार चेङ्गलपेट के कुछ तहसीलों में भी इसी समय में आपका नाम

प्रख्यात हुआ। कुम्भकोण मठाधीश श्री सुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती का भ्रमण कार्यक्रम काशी तक पहुंचने का था पर आप पूरी जगन्नाथ से लौटकर दक्षिण लौटे। इसी समय काशी के दिग्गज विद्वानों ने 1886 ई० में एक व्यवस्था दी थी कि आद्यशङ्कराचार्य ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि 'कुछ रुकावट तथा वाधाओं के कारण' आप पूरी से दक्षिण भारत लौट आये। पर वाधाओं का विवरण दिया नहीं गया है। वास्तव विषय यह था कि कुंभकोण मठ ने जो मिथ्या भ्रामक प्रचारार्थ नयी नयी पुस्तकों का प्रकाशन किया था सो सब प्रचारों द्वारा देश के कुछ विज्ञ सज्जनों के हृदय में दुःख हुआ और वे अन्य स्वतंत्र मत रखनेवाले विद्वानों के साथ मिलकर इन प्रचारों का खूब खन्डन किया। जगह जगह सभायें हुई और इन प्रचारों का खन्डन हुआ। उन दिनों में आन्ध्र देश में जो सनसनी फैली थी और आपके प्रचारों का खन्डन किया गया था, उन सब को आप रोक न सके और खन्डनकारों से सामना न कर सके। अतएव आपको लौट आना पडा। आपके पश्चात् श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती (66) (1891-1907) कुम्भकोण मठाधीश भये। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रसारित भ्रामक प्रचारों को आपने जारी रक्खा। आपके पश्चात् 18 वर्ष का वालक श्री महादेवेन्द्र सरस्वती (67) के नाम से कुम्भकोण मठाधीश भये। आप सात दिन के लिये मठाधीश थे और बाद इस लोक से चलते भये। आपके पश्चात् वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश (68) मठ में नियोजित किये गये।

वर्तमान मठाधीश श्री प० प० श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी महाराज ने सन्यासाश्रम 1907 में लिया था और आपने 1914 ई० में कुम्भकोण मठ निर्वाह व अधिकार अपने हाथों में ले लिया था। आप स्वार्थ तथा परमार्थ के मर्मज्ञ माने जाते हैं। आपके पूर्वाचार्य श्री सुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती से अधूरा छोडा कार्य को आपने अपने भारत भ्रमण में पूर्ण किया था। आपका भारत भ्रमण कार्यक्रम हिमालय सीमा एवं नैपाल राज्य तक भ्रमण करने का था पर आप काशी से ही दक्षिण लौट आये। आप काशी 6-10-1934 को पहुंचे और 20-3-1935 के दिन काशी छोड चले। आपने नवीन प्रचार मार्ग के अनुसार बडे आडम्बर व कोलाहल के साथ अपने प्रचारों का खूब प्रकाश कराया। जगह जगह मठ पुस्तकों में हजारों हस्ताक्षर लिये गये और अभिनन्दन, स्वागत, प्रणति, प्रार्थना, व्यवस्था आदि पत्रों का संग्रह भी किया गया। विद्वानों व धनाढ्यों व राजाओं से व्यवस्था पत्र भी प्राप्त किये गये। ये सब अपने मठ प्रचारों की पुष्टि में लिखे गये थे। आप बेरुकावट काशी तक अपनी विजय पताका फहराते हुए सार्वभौम मठ का प्रचार करते हुए काशी आ पहुंचे। पर यहां आप पर जो घटी और आपके मिथ्या भ्रामक प्रचारों की पोल खुली सो सब विषय सबको मालूम ही है। यद्यपि आप इन भ्रामक प्रचारों के प्रधान कार्यकर्त्ता नहीं हैं या प्रचारित ग्रन्थ सब आप द्वारा रचित नहीं हैं तथापि आप इन भ्रामक प्रचारों के प्रणेता हैं। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश का धर्मोपदेश एवं स्वयं धर्मानुष्ठान की शैली वर्तमान काल में प्रशंसनीय है और हम सब इसके लिये कृतज्ञता प्रकट करते हैं। पर इसके साथ यह भी कहना पडता है कि ऐसे धर्मप्रचार कार्यों के साथ अपना मठ का भ्रमात्मक मिथ्या प्रचार कदापि न करने की कृपा करें।

उक्त सब विषयों द्वारा यही सिद्ध होता है कि कांची कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर द्वारा न प्रतिष्ठित था और न अधिष्ठित था और आपका मठ इतिहास आज से लवभग 200 वर्षों का ही विश्वसनीय है। इन सब विषयों पर पूर्ण शोध कर सत्यान्वेषण रूप में मैं ने 'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श' नामक पुस्तक प्रकाशित किया है। लगभग 734 पृष्ठों का यह ग्रन्थ है और इसका चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में श्री मदाद्यशङ्कराचार्य का दिव्य चरित्र वर्णित है। द्वितीय खण्ड में कांची कुम्भकोण मठ द्वारा एवं अन्य कुछ लोगों द्वारा श्री आचार्य के विषय में जो भ्रमात्मक मिथ्या प्रचार किया गया है उनका उचित दृढ़ प्रमाणों द्वारा निराकरण किया गया है और यथार्थ बात का समर्थन है। श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी के जीवन चरित्र सम्बन्धी जितने प्राचीन व अर्वाचीन पुस्तक और अन्य सामग्री अब तक उपलब्ध

होते हैं उन सबों पर भी आलोचना की गयी है। तीसरे खण्ड में तीन आम्नाय जगद्गुरु शङ्कराचार्य मठाधीशों का एवं आसेतु हिमाचल के प्रकान्ड विद्वानों व पाश्चात्य विद्वानों की मठविषयक सम्मतियां भी प्रकाशित हैं। चौथे खण्ड में अप्रकाशित एवं प्राचीन ग्रंथ प्रतियों में से कुछ प्रकाशित हैं। इसमें सन्देह नहीं कि श्री शङ्कराचार्य के समय में कांची पवित्र तीर्थ स्थल था और अन्य मतों का केन्द्र स्थान भी था। कांची के कामकोटिपीठ आचार्य शंकर काल के पूर्व से ही था और आचार्य ने वहां के गुहावासिनी उग्र कामाक्षी की उग्रता शान्त कर एवं अशुद्धता का निवारण किया था। कांची में श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कराकरके वैदिकमार्ग की पूजाविधि प्रारम्भ कराया था। इस कार्य में ब्राह्मणों को नियोजन कर मन्दिरों का पुनः निर्माण कराकर, कांची नगरी को सुशोभित किया था। आचार्य शंकर ने न वहां आम्नायानुसार धर्मराज्यकेन्द्र (मठ) की स्थापना की थी और न वहां आप बहुत दिन वास किये तथा न वहां आपने सर्वज्ञपीठारोहण किया था या न वहां आपकी विदेहमुक्ति हुई।

पीठ व मठ दोनों शब्दों का अर्थ व तात्पर्य भिन्न हैं और अनभिज्ञ इन दोनों को एक ही होने का मान लेते हैं चूं कि कुम्भकोण मठ अपने भ्रामक मिथ्या प्रचारों से इस भ्रम की पुष्टि करते हैं। सूक्ष्म देवयोनियों का वास स्थल पीठ कहलाता है और कामकोटि पीठ की अधीशी कामाक्षी हैं न कि प्रारब्ध का मारा साधारण मनुष्य। मनुष्य के लिये वास स्थल मठ है। लोक व्यवहार में साधारण तौर पर पीठ शब्द का अर्थ आसन भी होता है पर आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय में आम्नाय मठों का पीठ व मठ नाम भिन्न भिन्न देने से ही दोनों भिन्न होने का सिद्ध होता है। आचार्य शङ्कर ने आम्नाय मठ की स्थापना कर उसे आम्नाय पद्धति, नियम, संप्रदाय व महानुशासन द्वारा बद्ध किया है। इन नियमों का परिपालन करनेवाले आचार्य ही मठाधीश बनकर पीठ के देव देवी की आराधना करते हुए, आचार्य शङ्करमत को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रचार करते हुए, धर्म प्रचार करते हुए एवं स्वयं परम्परा उपदेश प्राप्त करते हुए आते हैं। इन चार आम्नाय मठों के अतिरिक्त सब मठ या तो शाखा मठ हैं या केवल यति ब्रह्मचारी का निवास स्थल होता है। जहां जहां पीठ हैं वहां आम्नाय मठ होने की आवश्यकता नहीं है। कामकोटिपीठ एक उपासना पीठ है जैसे भागवतसंप्रदायानुसार अन्य 50 देवी पीठ हैं। यदि पीठ के साथ मठ होना आवश्यक हो जैसा कि कांचीमठ का प्रचार है तो क्यों 50 मठ भी नहीं हैं? अतएव उपासना पीठ (देवयोनि निवासस्थल), निवास मठ (यति, ब्रह्मचारी, विद्यार्थी का वास स्थल और जहां ब्रह्मघोष हो), और आम्नाय मठ (मठाम्नायानुसार अधिकार संपन्न मठ जहां से परिव्राजक मठाधीश धर्मराज्य सीमा का धर्मशासन निर्वाह करते हैं) भिन्न भिन्न हैं।

वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के काशी आगमन (1934 ई०) के पूर्व ही से इनके मठ के कर्मचारी, प्रचारक, अनुयायी भक्तों से (सब दाक्षिणात्य) काशी में प्रचार करने का काम आरम्भ कर दिये थे। आपके काशी आने के पूर्व यहां के केवल दाक्षिणात्य ब्राह्मणों को छोड कर और कोई इनका मठ नहीं जानता था। आपका प्रचार नवीन प्रचार मार्गानुसार धूमधाम से हुआ। पत्रों में लेख प्रकाशित हुए एवं प्रचार पुस्तक सैकडों की संख्या में बांटी गयी। नोटिस व ट्रक्ट हजारों में बटे। सिनिमा पोस्टर की तरह बडे बडे नोटिस हजारों में चिपकाये गये। मोहल्ले मोहल्ले में प्रचारों की धूमधाम थी। स्वागतकारीणी कमिटि का भी आयोजन हुआ। कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों से कुछ साधारण सज्जन, ब्राह्मण, विद्वान एवं परिव्राजकों में शङ्का पैदा हुई। इस शंका के निवारणार्थ प्रथम यह प्रयत्न किया गया कि श्री कुम्भकोण मठाधीश इन भ्रामक प्रचारों को बन्द करा दें पर ऐसा न हुआ। काशी के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों ने, मण्डलेश्वरों ने, महन्त परिव्राजकों ने, विज्ञ सज्जनों ने, कुम्भकोण मठाधीश को पत्र लिखकर इन भ्रामक प्रचारों को बन्द करने को कहा था। पर कुम्भकोण मठाधीश मौनधारण कर लिये थे। वाद विवाद खडा हुआ। इसके फलाभूत काशी के प्रसिद्ध विद्वानों व परिव्राजकों का एक सार्वजनिक सभा 30—9—1934 के दिन काशी के विहारीपुरीमठ में पन्डितप्रवर श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य के सभापतित्व में हुई। इन शिखामणियों ने काशी

दिग्गज प्रकान्ड विद्वानों व माननीय परिव्राजकों से पूर्व में दिये हुए (1886 ई० में) व्यवस्था का समर्थन करते हुए निश्चय किया था कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। इस सभा ने मेरे पूज्य पिता पं ज. ग. विश्वनाथ शर्मा जी से अनुरोध किया कि आप इस विषय का प्रकाश कर दें। इस सभा ने कांचीमठ के प्रचारों का घोर विरोध किया। कुम्भकोण मठाधीश काशी में लगभग साढे पांच माह वास किये और इस समय केवल पत्रों, पर्चों, व्याख्यानों, पुस्तिकावों द्वारा वाद विवाद ही होता रहा। काशी में कितने ही आचार्य आये और गये पर उन लोगों के सम्बन्ध में कभी ऐसा विवाद उपस्थित नहीं हुआ। कुम्भकोण मठ के बारे में ही इतना विवाद क्यों खडा हुआ? इसका मूल कारण कुम्भकोण मठ ही है। जब कुछ विद्वानों व परिव्राजकों ने आपसे प्रार्थना की कि आप भ्रामक प्रचार बन्द कर दें तब आपने काशी पहुंचते ही कहा कि "मैं इसका निर्णायक नहीं हूं और शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है, वे जिस ढंङ्ग से रक्खेगें मैं रहूंगा"। इस भाषण द्वारा आपने अपने मठ प्रचारों की पुष्टि की थी। इस विवाद को अङ्कुर ही में नाश न कर विषैली वृक्ष को उगने दिया। तब काशी के कुछ स्वतंत्र मत रखनेवाले विद्वान, महन्त, परिव्राजक, विज्ञ सज्जन जो सब कुम्भकोण मठ की मायाजाल से दूर थे उन्होंने इस विषैली वृक्ष को काटने चले। इन सब विषयों का विवरण पाठकगण इस पुस्तक में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ के शिष्यों, भक्तों एवं अनुयायियों द्वारा 'गंगादीतीर्थ विजय यात्रा' एवं 'श्री शांकरपीठ-तत्वदर्शन' नामक पुस्तकें छापकर प्रकाशित हुई थी। 1957 ई० में 'विजय यात्रा' पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। इन पुस्तकों में अनेक मिथ्या, कल्पित व भ्रामक विषय दिये गये हैं। ये पुस्तकें कुम्भकोण मठ के स्वप्रख्याति व प्रचार की दृष्टि से लिखी गयी है। कुछ लोग जो उस समय काशी में उपस्थित थे, जिन्हे काशी की घटना से पूर्ण जानकारी थी, जो इस वाद-विवाद में भाग भी लिया था, वे इन पुस्तकों को पढकर मुझसे अनुरोध किया कि काशीधाम की घटनाओं का सत्य रूप में लिखकर प्रकाश करें। मेरे पूज्य पिता पं० ज. ग. विश्वनाथ शर्मा जी का काशीवास 20—11—1959 को श्री काशीधाम में स्वगृह 51, हनुमानघाट, में हुआ। आप स्वयं इस कार्य को कुछ कारणों से कर न सके पर आपने अपने मित्रों को लिखकर अपनी इच्छा प्रगट की थी कि काशी में घटित यथार्थ घटनाओं का विवरण पुस्तक रूप में छापकर सार्वजनिक जानकारी के लिये प्रकाशित किया जाय। मेरे पूज्य पिता की इच्छा पूर्ति एवं आपके वृद्ध मित्रों के आदेश पर अब मैं यह पुस्तक लिखकर प्रकाश करता हूं।

मेरे पूज्य पिता द्वारा संग्रहित कागजों में एक डायरी के रूप में काशी में घटित मुख्य घटनाओं की सूची लिखी हुई पायी जो सब विषय इस पुस्तक में दिया गया है। केवल घटनाओं का विवरण दिया गया है जो सब प्रकाशित नोटिसों, ट्रक्टों, पुस्तिकाओं व लेखों से लिया गया है। पत्र व्यवहार द्वारा प्राप्त उत्तर पत्रों को भी प्रकाशित किया गया है। पाठकगण इसे पढकर समझ जांय कि इस वाद-विवाद का मूल पुरुष कौन था और वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश का कहां तक इन कर्तूतों पर दायित्व हैं। जो कुछ काशी में छः माह घटी उन हर एक घटनाओं का उल्लेख करने से यह पुस्तक बृहत् बन जाती है इसलिये मैं ने केवल उन घटनाओं का उल्लेख किया है जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से इस वाद-विवाद से है। घटना और व्यक्तियों को पृथक किया नहीं जा सकता है। घटना और भागलेनेवाले व्यक्तियों को पृथक करने का कोई साधन मेरे पास होता तो अवश्य व्यक्तियों का नाम छोड कर घटनाओं का केवल उल्लेख करता।

मुझे दुःख है कि इन घटनाओं का विवरण देते समय कुछ व्यक्तियों का नाम भी देना ही पडेगा क्यों कि उन्होंने इन विषयों में बडी श्रद्धा प्रेम रखकर काम किया था। इनमें से एक हैं—पन्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्रविड जी—जो मेरे बन्धु भी हैं और जिनके प्रति मेरी बडी हार्दिक प्रेम एवं श्रद्धा है और जिनके विद्वत्ता में आजकाल भी काशीधाम में आपके बराबर का कोई बिरला ही होगा। ऐसे विद्वान के प्रति लिखना मेरे लिये खेद का विषय है। सत्य कटु होता है और सत्य कहने पर लोग विरोधी भी बन जाते हैं। क्या किसी को दुःख न पहुंचाने के भाव

से सत्य का गला घोटा जाय? इस पुस्तक को पढने से किसी के मन में चोट हो या दुख हो तो उनसे मैं केवल इतना ही कहूंगा कि वे मुझे क्षमा करें क्यों कि इस विवरण से मुझे किसी व्यक्ति की निन्दा अथवा निरादर करने की बिलकुल हार्दिक इच्छा नहीं हैं। काशी में घटित यथार्थ विषयों को प्रकाश न कर और उसके बदले जब भ्रामक प्रचार किया जाता है तब यथार्थ विषयों का प्रकाशन करने की आवश्यकता आ पडी। जब वादविवाद खडा हुआ और जब कुम्भकोण मठाधीश अङ्कुर ही में उसे नाश न कर विषैली वृक्ष उगने का समय दिया और अपने काशी के भाषण द्वारा अपने शिष्यों के प्रचारों का समर्थन भी किया तो कुछ स्वतंत्र विचार रखनेवाले विद्वानों व विज्ञ सज्जनों ने आपके क्रिया कलापों पर टीका टिप्पणी भी की थी। विवाद के बीच उद्वेग में रागद्वेषादि भाव मनुष्य को पकड लेता है और वे बाध्य होकर उचित व अनुचित कार्य भी कर बैठते हैं। इस पुस्तक में कुछ ऐसे विषयों व घटनाओं का उल्लेख भी है जिसे पाठकगण पढ़कर दुखित भी हो सकते हैं। जितने नोटिस छपकर काशी में प्रकाशित हुए थे और जितने लेख व पत्र समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए थे उनमें से कुछ नोटिसों व लेखों व पत्रों को ही मैं यहां प्रकाश करता हूं ताकि पाठगकण यथार्थ विषय को जान जायें। इन प्रकाशनों से मेरा उद्देश्य नहीं है कि मैं किसी को मानसिक या अन्य चोट पहुंचाऊं या किसी की निन्दा या निरादर करूं। जब प्रचार होता है कि काशीधाम में कुम्भकोण मठ प्रचार के विरुद्ध कुछ भी न घटा और काशी के निवासी सब आपके मठ को जगद्गुरु मुखिया मठ होने का स्वीकार किया है तब इस भ्रामक प्रचार के खण्डन में यथार्थ विषयों का प्रकाशन करता हूं चाहे प्रकाशित विषयों पर मेरा समर्थन हो या नहीं।

जिन प्रमाणाभास आधारों द्वारा कुम्भकोण मठ व आपके मठावलम्बी भ्रामक प्रचार कर रहे हैं उन को जानेवाले आधारों पर शोध करना, उसपर विवेचना करना, अन्वेषण करना और कहां तक उनका प्रचार सत्य है, इन प्रश्नों का अन्वेषण करना तो हर एक हिन्दुओं का धर्म है। व्यक्तिगत कोई चाहे कितना महान् अद्वितीय पुरुष हो पर यह व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है कि वह परम्परा प्राप्त ऐतिहासिक व्यक्ति की कथा जो अनेक प्रमाण ग्रंथों से पुष्टि होती है एवं जो कथा श्रेष्ठों को ग्राह्य है, उस कथा को अपने भ्रामक मिथ्या प्रचारों से बदल दें या उसे प्रमाणाभास आधार पर अप्रामाणिक ठहरांय। यह कार्य न्याय व उचित नहीं है। इतिहास व्यक्ति का चरित्र लीला चाहे वह भला हो या बुरा हो उस चरित्र कथा को बदलने का प्रयत्न करना अन्याय है एवं यह अधिकार किसी को भी नहीं है। भारतवर्ष के इतिहास में आचार्य शंकर का जन्म और आपका इहलीला एक महत्वपूर्ण घटना है जो भारतवर्ष के इतिहास धारा को बिलकुल बदल दिया था। ऐसे अद्वितीय महान् व्यक्ति के चरित्र घटनाओं को बदल देना इतिहास को ही बदलना होगा। यह कहां तक न्याय है? कुम्भकोण मठ के मठविषयक भ्रामक मिथ्या प्रचारों ने ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र को बदल कर एक नवीन कल्पित चरित्र का परिचय प्रारम्भ कराता है और यह कार्य अन्याय है। यदि इन भ्रामक प्रचारों का खन्डन न किया जाय तो अपने आर्ष ग्रन्थों, पुराणों, मान्य ग्रंथो का जो जोड बदल, निकाल और क्षिप्त किये गये पुस्तकों के आधार पर जो कुम्भकोण मठानुयायी प्रचार कर रहे हैं, वे सब पुस्तकों को उनके पूर्व स्थित पुस्तकों की अपेक्षा, प्रामाणिक ठहराने का पाप के दायी हम सब आप ही होंगे। इन प्रमाणाभास कल्पित पुस्तकों को प्रामाणिक ठहरा कर अपने भावी सन्तानों को भी धोखा देने का एवं इस कल्पित पथ पर जाने का पाप के भागी भी होंगे। अतएव मैं ने इन भ्रामक प्रचारों पर शोध कर यथार्थ विषयों का प्रकाशन 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तक में किया है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
संतः परीक्ष्यान्यतरत्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ (महाकवि कालिदास)

केवल प्राचीन होने के कारण कोई (काव्य) साधु नहीं कहलाता और अर्वाचीन होने के कारण कोई (काव्य) उसे दोषयुक्त नहीं माना जाता है। विज्ञ सज्जन लोग परीक्षा करके एक को ग्रहण करते हैं और अनभिज्ञ लोग ही प्रचार प्रभाव से प्रभावित होकर अन्यों के मार्गानुयायी होते हैं। ये सब व्यक्ति स्व विचार हीन भी होते हैं। महाकवि कालिदास के इस उक्ति से यही कहा जा सकता है कि किसी संस्था को सर्वोच्च बनाने के प्रयत्न में प्राचीनता को उतना महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं है जिसके लिये महान् ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन चरित्र तक बदलने की भूल करनी पडे। संस्था स्थापन का मूल उद्देश्य अद्वैतवाद एवं धर्मप्रचार करना है। यह कार्य अर्वाचीन काल में स्थापित मठ भी कर सकता है और इसके लिये अपने मठ को प्राचीन व सार्वभौम मठ होने की कल्पित कथा प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है। अपने को यथार्थ सत्यरूप से जो प्राप्त अधिकार व सुख है उससे सन्तुष्ट न होकर दूसरों के अधिकार व सुख को छीनने का जो अनुचित प्रयत्न किया जाता है, वही व्यक्ति इस झगडे का प्रवर्तक और मूल कारण है। अनधिकारी व्यक्ति यदि अपने को सुधार लें और ऐसे अवांछनीय दुष्कर्मों से दूर रहें तो झगडा ही मिट जाता है।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित, कुम्भकोण मठाधीश को समर्पित, मठाधीश की आज्ञा से रचित व प्रकाशित, भक्त प्रचारकों द्वारा प्रकाशित, मठविषयक प्रचार पुस्तकों में न केवल मिथ्या भ्रामक प्रचारों द्वारा भ्रम फैलाया गया है परन्तु श्री आद्य शंकराचार्य जी की जीवन कथा जो प्राचीन ग्रंथों और आधुनिक काल में प्रकाशित ग्राह्य पुस्तकों के आधार पर एवं प्राचीन रूढो व परम्परा से तथा व्यवहार रूप कथा द्वारा सब सिद्ध विषय हैं उसे बदलकर एक नवीन कल्पित चरित्र का परिचय दिया जा रहा है। कुछ प्रचार पुस्तकों व प्रकाशित लेखों में अवांछनीय भाषा में अन्य मठाधीश व आम्नाय मठों के प्रति टीकाटिप्पणी भी की गयी है। मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'श्री मज्जगद्गुरु शांकरमठविमर्श' एवं 'काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद' में पाठकगण इन प्रचारों का पूर्ण विस्तार, प्रणेता पुरुष, प्रचार विधि व सामग्री आदियों का विवरण पायेंगे। जब इन भ्रामक मिथ्या प्रचारों का खण्डन किया जाता है तो कुछ लोग कहते हैं कि 'धर्म खतरे में है' और 'आपस का झगडा ठीक नहीं'। पर यह उपदेश तो विवाद के प्रवर्तक, सहयोग देने वाले व्यक्ति व मूल पुरुष को जानना चाहिये। जो लोग उपदेश दे रहे हैं, स्वयं वे यह चाहते हैं कि हमलोग इन कल्पित, भ्रमात्मक, अप्रामाणिक ग्रंथों; निन्दनीय द्वेषयुक्त प्रचार पुस्तकों; एवं प्रचारों को भूल जायें ताकि जितने पुस्तकें अभी तक प्रचार हुए हैं वे सब बिना खन्डन के रह जायें ताकि कुछ काल के बाद यही पुस्तकें प्रमाण रूप में प्रचारित किये जायें। यहां मैं दो ज्वलंत दृष्टान्त देता हूं जिससे यह सिद्ध होता है कि अर्वाचीन काल में भी कुम्भकोण मठानुयायी व भक्त प्रचारक किस प्रकार द्वेषयुक्त, निन्दनीय एवं अवांछनीय भाषा में मिथ्या प्रचार करते हुए अन्य महानों पर कीचड फेंकते हैं। आङ्गल भाषा साप्ताहिक पत्र 'इलस्ट्रेटड वीक्लि आफ इन्डिया' ता: अगस्त 11, 1963 एवं अगस्त 18, 1963 में उक्त साप्ताहिक के संपादक श्री ए. एस. रामन् ने लेख प्रकाशित किया है जो दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठाधीश एवं अन्य तीन आम्नाय मठाधीशों के बारे में व्यक्तिगत एवं आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित आम्नाय मठों के प्रति तुच्छ गन्दी शब्दों में टीकाटीप्पणी करते हुए कीचड फेंका गया है और कुम्भकोण मठ मिथ्या प्रचारों का समर्थन करके कुम्भकोण मठ और मठाधीश को 'सर्वोत्तर, सर्वसेव्य, सार्वभौम एकमात्र जगद्गुरु' बनाने का प्रयत्न किया गया है। उक्त लेख में प्रकाशित उन निन्दनीय गन्दे शब्दों को यहां दोहराने में रुकावट दा करती है और मैं पाठकों से प्रार्थना करूंगा कि वे प्रकाशित लेख को पढकर यथार्थ जान लें। विचारवान सज्जन धर्मनिष्ठों के हृदय में इसे पढकर दुःख हुआ। आसेतु हिमाचल से धर्मनिष्ठों ने कई सैकडों पत्र व तार द्वारा अपनी अपनी विरोध व खण्डनात्मक अभिप्राय लिख भेजा था। सुना जाता है कि मठप्रचारकों ने तीन लेख प्रकाशन के लिये भेजा था जिस में दो लेख (अगस्त 11, 1963 अगस्त 18, 1963) ही प्रकाशित किये गये और तीसरी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। सैकडों पत्र व तार द्वारा जब इन लेखों का विरोध व खण्डन किया गया था सम्भवतः तीसरा लेख रोक लिया गया हो। अगस्त 11 एवं 18 ता: अङ्कों में प्रकाशित प्रचार चित्रों को देखा

जाय तो यही प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठाधीश का समर्थन भी इन लेखों ने प्राप्त किया है। लेखक महोदय श्री ए. एस. रामन् कुम्भकोण मठाधीश से पांच बार मुलाकात करते हैं और फलतः लेख प्रकाशित किया गया है। अगस्त 11 ता: प्रकाशित लेख में जो कुछ व्यक्तिगत कुम्भकोण मठाधीश एवं मठ के बारे में कहा गया है उसके उत्तर में प्रमाण सहित यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये सब कथन मिथ्या हैं। पर ऐसा करने से व्यक्तिगत 'मैं मैं तू तू' हो जाने के भय से यहां उस विषय की चर्चा नहीं की जाती है पर अवश्य इतना कहूंगा कि जो कुछ वहां कहा गया है अधिकांश विषय सब मिथ्या प्रचार ही हैं। श्री ए. एस. रामन्, संपादक, ने अनेक धर्मनिष्ठों से जिन्होंने प्रकाशित लेख का खण्डन किया था उनसे पत्र द्वारा क्षमा मांगी थी। आप लिखते हैं —"… … …. It pains me to note that my recent articles on the revered chief of the Kamakoti Math have proved controversial in the context of the deeply loved Sarada Peetham at Sringeri, of which I am myself an ardent devotee. I wish to assure you that I meant no offence at all to the great institution at Sringeri established by Bhagwan Sankara himself, and I apologise for having wounded your susceptibilities inadvertently …. … …" (पत्र दिनांक अगस्त 31, 1963)। संपादक जी का कहना है कि लापरवाही से आपने अन्यों को जो मनक्लेश दिया था उसके लिये माफी मांगते हैं। अन्य मठाधीशों व महानों पर अवांछनीय भाषा में कीचड फेंकना, यह कार्य लापरवाही का हो नहीं सकता है और खासकर एक पत्र संपादक द्वारा। यह जानबूझ कर ही किया है। जो सब सज्जन इन विषयों में जानकारी रखते हैं उनसे मैं ने बहुत कुछ बातें सुनी है और प्रमाण भी उपलब्ध होता है। चाहे जो हो, विज्ञ साधु सज्जन के मुख से या कलम द्वारा ऐसी गन्दी शब्द कहना या लिखना न्याय व उचित नहीं है। आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठ स्वयं सिद्ध हैं और सूर्य समान स्वप्रकाशमान भी हैं। इन सिद्ध विषयों के लिये प्रचार की आवश्यकता नहीं है। जो एक नयी कल्पित समस्या खडी करते हैं उनके लिये प्रचार आवश्यक है। क्या कागज के फूलों से सुगन्ध प्राप्त हो सकता है? चाहे वह फूल देखने में कितनी भी मनोरम्य हो। संपादक श्री रामन् लिखते हैं कि आप दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के बारे में एक लेख प्रकाश करने वाले हैं। स्वप्रकाशमान दक्षिणाम्नाय व्याख्यानसिंहासनपीठ श्री शृंगेरी के लिये आपका प्रचार कोई आवश्यक नहीं है और न पूज्यपाद शृंगेरी मठाधीश इन प्रचारों से स्नेह रखते हैं। संपादक महोदय अपने द्वारा किये गलती को स्वीकार न कर, यथोचित प्रायश्चित न कर और भ्रामक मिथ्या प्रचारों एवं अवांछनीय गन्दी भाषा में टीकाटिप्पणी की जगह सत्य विषय का प्रकटन न कर, अब अपनी चातुर्यता से अन्यों के आंखों में धूल फेंक रहे हैं। शृंगेरी मठ के बारे में लेख प्रकाश करने मात्र से संपादक महोदय द्वारा पूर्व में किया गलती अब सुधर नहीं सकता।

सुना जाता है कि कुम्भकोण मठाधीश को भी कुछ खण्डनात्मक पत्र पहुंचा और आपके आंखें खुली। इस दुष्कर्म से अपने नाम को बचाने के लिये एवं सार्वजनिकों में यह जानकारी कराने के लिये कि आपका हाथ इस दुष्कर्म में न था, आपने एक वक्तव्य में कहा कि आपके प्रचारक भक्त व शिष्य आपके बारे में इतनी स्तुती न करें क्योंकि अन्य महान् भी अनेक हैं जो धर्म प्रचार कार्य में प्रवृत्त हैं एवं इन प्रचारों ने आपको न केवल संकट स्थिति में पहुंचाया है पर मानसिक कष्ट भी दिया है। प्रेसवालों पर आपने यह गलती आरोप कर दिया। आपने कहा 'His Holiness Sri Sankaracharya of Kamakoti Peetam made a moving appeal to the public and Press not to praise him and his services. Addressing the concluding session of the Agama, Silpa Sadas, His Holiness made a digression in order to refer to the hindrance and

unhappiness that resulted from the public and the Press praising him too much in their enthusiasm. His Holiness said he felt the praise-might be due to devotion or attachment to him by devotees-was overdone causing him embarrassment and uneasiness. He felt sad that in praising him, sometime aspersions were cast upon others who were also doing great service to Hindu Dharma. If this were to continue, their work in the cause of Hindu Dharma might get hindered. There were many great people—'Mahans'—doing a lot for the propagation of Hindu Dharma. ... ... The greatest help the people and the Press could do for him would be to avoid praising him. said His Holiness." (Indian Express, Madurai—August 22, 1963) मेरे पास आज से करीब 40 वर्षों का कुम्भकोण मठ प्रचारकों की प्रचार सामग्री हैं और यह कहना भूल है कि कुम्भकोण मठाधीश इन सब प्रचारों को जानते नहीं। काशी में 1934/35 ई० में जब इन प्रचारों का विवरण देकर कुम्भकोण मठाधीश से पूछा गया था तो आपने कह दिया कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है।' अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिससे सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठाधीश इन सब प्रचारों से पूर्ण जानकारी रखते हैं। संपादक श्री ए. एस. रामन् कुम्भकोण मठाधीश से पांच बार मुलाकात करते हैं और फलतः दो लेख भी प्रकाशित किया गया है। एक तरफ दुष्प्रचारों का खण्डन होता है, दूसरी तरफ प्रचारक प्रचार कार्य में तुले हुए हैं। मैं पाठकगणों से प्रार्थना करूंगा कि वे कृपया 'इलस्ट्रेटड वीक्ली आफ इन्डिया', ता: 22—9—63 का अङ्क में एक चित्र प्रकाशित हुआ है उसे गौर से देखें। इस चित्र में कुम्भकोण मठाधीश 'इलस्ट्रेटड वीक्ली आफ इन्डिया' ता: अगस्त 18, 1963, का अङ्क में संपादक श्री ए. एस्. रामन् द्वारा प्रकाशित लेख को पढ रहे हैं। कुम्भकोण मठाधीश का तृप्त हुआ मुख संतोष एवं हंसता हुआ दीखता है मानो प्रकाशित लेख पढ कर आपको परमानन्द का अनुभव हो रहा हो। कहावत है 'Face is the index of mind' और आपका तृप्त प्रसन्न हंसमुख आपके मनोभाव की आर्सी है। अब इस चित्र के साथ पाठकगण यदि कुम्भकोण मठाधीश के बयान जो 22—8—1963 के 'इन्डियन एक्स्प्रेस' में प्रकाशित है और जहां आप कहते हैं कि यह सब प्रचार संकटदायक एवं मानसिक क्लेश देता है, तुलना करें तो यह दोनो जमता नहीं है। उक्त दोनों भावों में आकाश पाताल का भेद दीखता है। सम्भवतः आपका प्रकाशित बयान ता: 22—8—1963 केवल प्रचार मात्र के लिये ही था। मैं प्रार्थना करूंगा कि कुम्भकोण मठाधीश व आपके भक्त प्रचारक धर्मप्रचार कार्यों के साथ अपना मठ की मिथ्या व भ्रमात्मक प्रचार कदापि न-करने की कृपा करें। धर्मप्रचार के लिये मठस्थापना प्रचार की आवश्यकता नहीं है।

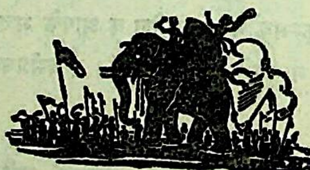
'Kahaniya' नामक एक आङ्गल मासिक पत्रिका, जुलै, अङ्क में, एक लेख प्रकाशित है—"The Seer of Kamakoti speaks (69)—The Sankara Idol at Rameswaram" by Velandai. यहां लेखक ने लिखा है कि श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "Discovery of India" में कहा है कि आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित पांच मठ हैं। '—Jawaharlal Nehru in his Discovery of India paying a tribute to Sri Sankara says ... . by establishing five mutts ....' पांच मठ की यह कथन बिलकुल मिथ्या है। 'Discovery of India' प्रथम संस्करण में केवल चार ही मठ का उल्लेख है। पश्चात् प्रकाशित अन्य संस्करणों व पुनर्मुद्रण पुस्तकों में भी चार ही मठ का उल्लेख है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने पत्र संख्या 1731—PMH/60, दिनांक

अगस्त 13, 1960, में पुनः इसी विषय की पुष्टि की है। न मालूम उक्त लेखक को चार की जगह पांच किस प्रकार दिखाई दिया ? ऐसे प्रचारों को ही भ्रामक व मिथ्या प्रचार कहते हैं। कांची कुम्भकोण मठ को मठ सिद्ध करने के इस नाटक में यह सब षडयंत्र सा दीखता है। परमात्मा जाने कब इन मिथ्या प्रचारों का होगा।

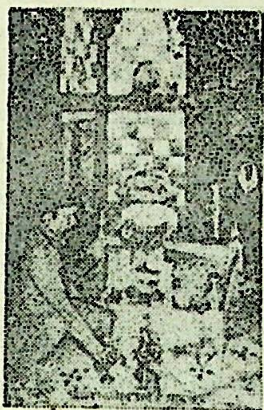
जिन समाचार पत्रों से विषय को उदुधृत कर प्रकाश किया हूं उन संपादकों को, जिन नोटिसों व पत्र ट्रक्टों से विषय को उदुधृत किया हूं उन सब व्यक्ति व संस्था प्रकाशकों को, जिन मूल पुस्तकों से या प्रकाशित लेखों उदुधरण किया हूं उन सब रचयिताओं को, जिन शिखामणियों व आदरणीय परिव्राजकों ने पत्र व्यवहार द्वारा या विषयों का प्रकाशन किया है उन सबों को, अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। श्री रामा प्रिन्टिङ्ग वर्क्स श्री एस. लक्ष्मण राव जी को मेरा हार्दिक धन्यवाद चूं कि दूर दक्षिण भारत में भी आपने इस कार्य को संपूर्ण दिखाया कि हिन्दी भाषा पुस्तकों का प्रकाशन करने के लिये न केवल आप तैय्यार हैं पर योग्यता भी रखते हैं। सब शुभाकांक्षियों के अभारी हूं जिन्होंने अपनी सहायता व सलाहों द्वारा पुस्तक को उपयोगी व प्रकाशन में सहा दिया है।

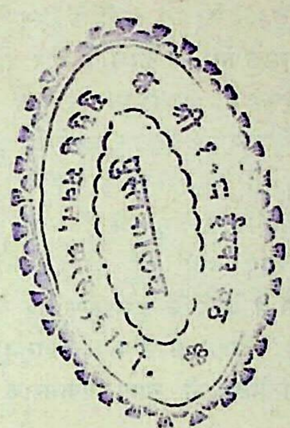
51, हनुमान घाट,
वाराणसी-1 (उत्तर प्रदेश)
28—9—1963

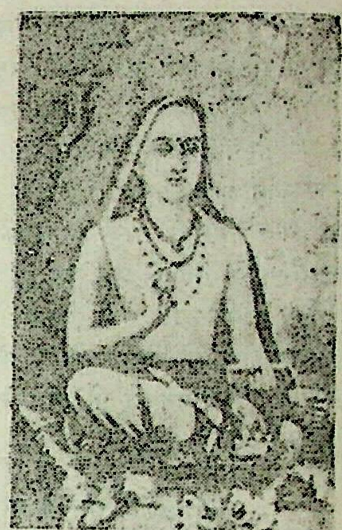
ज. वि. राजगोपाल
(संपादक)



ॐ







॥ श्री काशी विश्वेश्वरः प्रसन्नोस्तु ॥

॥ श्री शङ्कराचार्यो विजयतेतराम् ॥

काशी में कुम्भकोणमठविषयक विवाद

1. काशी में कुम्भकोणमठविषयक प्रचार एवं भ्रम निराकरण कराने का प्रयत्न

कुम्भकोण मठाधीश श्री चिक्कुडयार स्वामीजी काशी धाम पहुंचने के एक वर्ष पूर्व ही (1933 ई॰ में) ुम्भकोण मठ के कुछ कर्मचारी एवं शिष्य वर्ग अपने द्वारा एक रजिस्टर पुस्तक में कुछ सज्जनों का हस्ताक्षर लेने के लिये ाशी धाम पहुंचे। मैं उन दिनों काशी में न था। सुनने पर पता चलता है कि आमलोगों को और ही कुछ कथा ःह करके उनका हस्ताक्षर लिया गया है। इसका कारण मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों इस प्रकार सबों से स्ताक्षर उस समय लिया गया। मैं ने मठवालों से सुना है इस प्रकार का हस्ताक्षर सैकड़ों रजिस्टर पुस्तकों में हैं और सी रीति बहुत वर्षों से चली आ रही है। मालूम नहीं कि किस उद्देश्य से ऐसा सब षढयंत्र रचा जा रहा है। म्भवतः बहुकाल पश्चात् इन हस्ताक्षरों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जायगा कि सेतु हिमाचल पर्य्यन्त सब नातनधर्मावलम्वी 'मेरे ही शिष्य हैं, मुझको ही जगद्गुरु मानते हैं, कांची कुम्भकोण मठ आद्यशङ्कराचार्य द्वारा तिष्ठित व अधिष्ठित है, मैं ही आद्यशङ्कर के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परागत हूं और अन्य चार आम्नाय मठ शिष्यमठ ' और मेरे धर्मराज्य की सीमा सम्पूर्ण भारतवर्ष ही है।" इस भारत भूमि में सौ या दो सौ साल के उपरान्त आने ली सन्तती क्या जाने कि क्या क्या कथायें सुनाकर किस तरह से यह सब हस्ताक्षर जुटाये गये हैं। वे तो ऐसे ाखों हस्ताक्षरों को देखकर यही कहेंगे कि जो कुछ कुम्भकोणमठवाले कहते हैं वह सब सत्य है। इसके पूर्व कृत ामक कल्पित प्रचार (19 वीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं 20 वीं शताब्दी प्रारम्भ में) जो अब भी प्रचलित है एवं कुम्भकोण ठ की 1915 ई॰ से 1962 ई॰ तक के प्रचारों को देखकर यही भावना एवं विश्वास होता है कि अवश्य इन स्ताक्षरों द्वारा कुछ न कुछ सिद्ध ही करना चाहते होंगे। जो विषय आर्ष ग्रंथों एवं प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर द्ध हैं तथा जो वृद्ध विज्ञों को परम्परागत स्वीकार है, उसके लिये हस्ताक्षरों की रजिस्टर, व्यवस्था, प्रचारात्मक

पुस्तकें एवं प्रचारों की आवश्यकता नहीं है। यह तो उन्हीं के लिये है जो एक नई समस्या खडी करना चाहते हैं उनकी पुष्टि के लिये ये सब प्रचार (भ्रमात्मक मिथ्या) करते हैं और पण्डितों से व्यवस्था मांगते हैं। प्राचीन पर से एवं व्यवहार रूप से जो विषय स्वयं सिद्ध हैं, उसकी पुष्टि के लिये इन प्रचारों की जरूरत नहीं है। इनसे मालूम होता है कि इन प्रचारों का उद्देश्य केवल कल्पित कथा की पुष्टि करना चाहते हैं। पामर व साधारण क्या जानें शास्त्र की बातें। उनके मन में सन्यासियों के प्रति आदर के कारण जो कुछ वे देखते, सुनते व पढते उसे सत्य समझते हैं क्यों कि वे स्वयं सत्यपथ के अनुयायी हैं। इसी भ्रामक प्रचारों से उन लोगों का समर्थन भी स्वार्थी अपने ध्येय को प्राप्त करते हैं। सत्य बडा कटु होता है और इस आधुनिक काल में तो सत्य कहने से अ विरोधी बन जाते हैं। काशी में मैं ने देखा कि कुम्भकोण मठ के एक पन्डित श्रीकाशीधाम पहुंचकर धनाढ्यों प्रभावशाली लोगों को मठ का "श्रीमुख" देकर अपने ऊपर सहानुभूति आकर्षित करने के लिये अपना कार्य प्रा किया। ऐसे समय पर श्री कुम्भकोण मठाधीश की यात्रा प्रयागराज आयी। उन दिनों मैं हिन्दू विश्व विद्यालय एक छात्र था।

कुम्भकोण मठ के परम भक्त म० म० पं. चिन्नस्वामी शास्त्री जी उन दिनों में काशी हिन्दू विश्वविद्या प्राच्य विभाग के अध्यापक थे। उक्त शास्त्री जी के यहां मेरा आना जाना बराबर रहता था। उन दिनों में पं. चि स्वामी शास्त्री जी ने मुझको कुछ ट्राक्टों, नोटिसों एवं एक छोटी पुस्तक देकर हिन्दी में अनुवाद करने के लिये कहा। यह सब कुम्भकोण मठ का मठविषयक प्रचार सामग्री था। उनके यहां लोगों का आना जाना बराबर रहता था। मैं ने भी बहुत सी उचित व अनुचित बातें व कार्य मठविषय में देखी व सुनी और पढी। मैं ने जो कुछ वहां पर व देखा उससे मुझे बहुत आश्चर्य हुआ पर उस समय मैं उनके आयोजन का तात्पर्य समझ न सका। पर कुछ मा उपरान्त जो कुछ घटनायें घटी उसके द्वारा उनकी बातों की यथार्थता भी मालूम पडी। मेरे भाग्यवश मैं ने उ काम पूर्ण नहीं किया और उन्हीं दिनों से मेरे मन में कुछ शङ्कायें पैदा हुईं। मैं ने भी सोचा था कि यह सब नाटक कारण से रचा जा रहा है? पं. चिन्नस्वामी शास्त्री जी से बातें करने का मुझे बहुत अवसर मिला और हम दोनों विवाद से अन्त में निर्णय यहां तक हो गया कि मैं ने उनके घर जाना भी छोड दिया।

"शुकदेव मठ" के नामसे कुम्भकोण मठ की काशी शाखा मठ अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित एक मठ काशी "शुकदेवमठ" के मनेजर द्वारा मैं ने कुम्भकोण मठ विषय की कुछ पुस्तकें प्राप्त की। इन पुस्तकों को पढ मुझको जो शङ्का भ्रम पहिले उत्पन्न हुआ था अब वह मन में घर कर गई। पुस्तकालयों से शङ्कराचार्य चरित्र सम्ब अन्य कुछ पुस्तकें लाकर स्वयं पढने लगा। मैं ने अपने पूज्य पिताजी को सम्पूर्ण विवरण सुनाई थी। आपने मु संक्षेप रूप में माधवीय शङ्करदिग्विजय, चिद्विलासीय शङ्करविजय, सदानन्द शङ्कर दिग्विजयसार की कथा सुना प्रथम बार उनके द्वारा मैं ने श्रीशङ्कराचार्य चरित्र सुना जो वे इस विषय को अच्छी तरह से जानते थे। पं. चिन्न शास्त्री जी तथा शुकदेव मठ के मैनेजर से प्राप्त की हुई पुस्तकों की सूची नीचे दी जाती है, जिन पुस्तकों में कुम्भकोण की भ्रामक, विवादास्पद, शङ्कास्पद एवं कल्पित विषय भरे हुए थे।

1. श्रीमुख दर्पणम् (1888 ई०)
2. शिवरहस्य नवमांश षोडशोऽध्याय (1888 ई०)
3. श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य चरित्र (हिन्दी 1915 ई०)
4. शङ्कर विजयम् (तमिल 1920 ई०)
5. Sankaracharya the Great and His Successors in Kanc
(English 1923 ई

6. ताटङ्क प्रतिष्ठा महोत्सव चूपू (संस्कृत 1923 ई०)
7. श्री शङ्कराचार्यार (तमिल 1925 ई०)
8. सिद्धान्त पत्रिका (तेलगू 1925 ई०)
9. शङ्कराचार्य चरित्रम् (संस्कृत 1926 ई०)
10. काञ्ची महिमै (तमिल 1927 ई०)
11. जगद्गुरु श्री शङ्करगुरु परम्परै (तमिल 1930 ई०)
12. Sri Sankaracharya and His Kamakoti Peetha (English 1915 & 1931)
13. गुरुरत्नमाला व सुषमा टीका (संस्कृत)
14. पुण्यश्लोक मञ्जरी (संस्कृत)
15. मठाम्नायसेतु (ग्रंथाक्षर लिपि)
16. श्री शङ्करविजयम् (दो भाग) कुम्भकोण मठाधीश जी का मदरास में भाषण (तमिल 1933 ई०)
17. ताटङ्क प्रतिष्ठा मुकद्दमे का फैसला (तमिल)

उपर्युक्त सब पुस्तकों को भी पढा लेकिन इन सब पुस्तकों में आचार्य शङ्कर चरित्र सम्बन्धी कुछ घटनायें व कथायें माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्द कृत शङ्करविजयों में दिये हुए चरित्र घटनाओं के विरुद्ध विषय थे जिससे मेरा भ्रम और भी अधिक बढ गया। पं. चित्रस्वामी शास्त्रीजी को जब मैं इस विषय कह सुनाया तो आपने आनन्दगिरि कृत शङ्करविजय पढने को कहा। मेरे पिताजी ने मुझको आनन्दगिरि शङ्करविजय पढकर सुनाया तथा इस पुस्तक की एक परिष्कृत्य प्रति के बारे में भी कथा सुनायी। इस आनन्दगिरि शङ्करविजय को पढकर मुझे बडी घृणा भाव उत्पन्न हुई क्यों कि इसमें श्री शङ्कराचार्य के बारे में अनेक अनर्गल एवं अवांछनीय विषय उल्लेख थे। मेरे परदादा के छोटे भाई स्वर्गीय श्री जयपुर कृष्ण शास्त्रीजी ने 1867 ई० में अपने काशी स्वगृह में एक पुस्तकालय खोला और आपने अनेक मुद्रित और अमुद्रित पुस्तकों का संग्रह भी किया था। इन संग्रहों में एक ताळपत्र पर लिखा "शिवरहस्य" नवमांश भी था। इस नवमांश के षोडशोऽध्याय में 60 श्लोक था। एक पत्रात्मक 'शंकराचार्य चरित्र' नामक संस्कृत भाषा में पुस्तक भी थी। "शिवरहस्य" नवमांश षोडशोऽध्याय में काञ्ची का उल्लेख न था और न वहां मठ स्थापना का विषय लिखा पाया। पत्रात्मक "शङ्कराचार्य चरित्र" नामक पुस्तक में भी काञ्ची में मठ स्थापना की विषय उल्लेख न था। हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफसर एवं प्राचीन इतिहास के एक प्रकान्ड विद्वान डा० अल्टेकर से भेंट कर मैं ने इस विषय के बारे में पूछा। आपने कहा कि श्री शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित केवल चार ही मठ है और आचार्य शङ्कर ने कांची में मठ की स्थापना की न थी। आपने मुझे तीन पुस्तक पढने को दिया था। इसे पढने पर मुझे स्पष्ट मालूम हुआ कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार मठ ही स्थापना की थी और आपका निर्याण स्थल हिमालय का केदार सीमा ही थी। पश्चात् मैं ने "यतिधर्मनिर्णय" पढा और काञ्ची कुम्भकोण मठ की योगपट्ट 'इन्द्रसरस्वती' के बारे में यथार्थता मालूम हुई। जब मैं "शुकरहस्योपनिषद्" को पढा तब मुझे मालूम हुआ कि कुम्भकोण मठ की महावाक्य "ॐ तत् सत्" महावाक्यों में गिना नहीं गया है और मेरे पिताजी ने कह सुनाया कि "ॐ तत् सत्" में महावाक्य के लक्षण भी घटित नहीं होते। माननीय डा० एस. राधाकृष्णन् (वर्तमान् राष्ट्रपति, भारत सरकार) द्वारा रचित पुस्तक को पढा उसमें भी चार मठ स्थापना का उल्लेख देखा। काशी "कामरूप मठ" में एक प्राचीन "मठाम्नायसेतु" पुस्तक प्राप्त हुआ और इसे पढने पर ज्ञात हुआ कि कहेजानेवाले काञ्ची कुम्भकोण मठ की मठाम्नाय पद्धति अर्वाचीन काल का एक कल्पित पद्धति है। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित तथा मठ से प्राप्त पुस्तकों को पुन: पढने पर यह सिद्ध हुआ कि कुम्भकोण मठ अवश्य ही अपने द्वारा प्रचारित नयी समस्या को इन प्रचार पुस्तकों द्वारा सिद्ध करना चाहते हैं और यथार्थ में कुम्भकोण मठ एक नवीन स्थापित मठ है जो श्री आद्यशङ्कर के बहुकाल पश्चात् स्थापित हुआ था।

उनदिनों में मैं हिन्दू विश्व विद्यालय का एक विद्यार्थी था और मुझे आचार्य श्री शंकर की जीवन गाथा विषय में उतनी जानकारी न थी कि मैं कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित नवीन कल्पित जीवनगाथा की यथार्थता जान सकूं। जो कुछ जानकारी मुझे प्राप्त हुई सो सब मेरे पूज्य पिता द्वारा एवं डा० अल्टेकर द्वारा ही प्राप्त हुए थे। आप दोनों ने मुझे बतलाया था कि कोई भी ऐसा प्रामाणिक ग्रंथ नहीं है जो कुम्भकोणमठ प्रचारों की पुष्टि करे और जब तक प्रामाणिक रूप से यह सिद्ध न हो जाय तब तक कुम्भकोण मठ प्रचारों को स्वीकार करना भूल होगी। जो विषय आर्ष ग्रन्थों द्वारा व प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों द्वारा सिद्ध हैं एवं वृद्ध परम्परागत रूढ़ों में चली आयी है तथा जो गाथा विवरण सबों को मान्य हैं, उस मार्ग को छोड कर नवीन समस्यायें खडी कर व नवीन गाथा विवरण प्रचार कर जो सब विषय क्षिप्त व परिष्कृत्य आधुनिक काल के रचित पुस्तकों में ही पाये जाते हैं तथा उन विषयों को अनुमानवाद द्वारा पुष्टिकर सिद्ध करना शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध होगा। जो विषय शास्त्रानुकूल सिद्ध नहीं होते तब हेतु या अनुमान वाद प्रयोग कर विषयों का समन्वय करना चाहिये। कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों ने मुझे इन कल्पित विषयों पर शोध करने का अवसर दिया।

इलाहाबाद के "लीडर" दैनिक पत्रिका में 19 जूलै, 1934 ई०, के अङ्क में "Vyasa Puja at Allahabad" शीर्षक एक लेख जो पं० चित्रस्वामी शास्त्री जी द्वारा प्रकाशित देखा, उसमें आक्षेपार्थ कई विषय थे।

The Kamakoti Peetha mutt was first established by Sri Adi Shankaracharya at Sri Kanchi (now known as Conjeevaram, Chingleput district, Madras Presidency) about the year 490 B. C. i. e. some 2424 years ago after his conquest throughout India over the then existing religions,—Jains, Budhist, ect., and after establishing four mutts for the propagation of advaita doctrine at Sringeri, Badrinath, Dwaraka, Puri. When he had thus established the mutt at Conjeevaram which even today ranks as one of the Saptapuris and one of the seven Sakti pitas–the other six being Sringeri, Badrinath, Dwaraka, Puri, Jalandra and Odhyanna pitas—he made it the center of his advaitic foundation. As the founder and first occupant of the Gaddi of Kamakoti pita he made Conjeevaram his central seat for the rest of his life on earth in human form and placing in his puja the first and foremost of the five Lingas he had brought from Kailasa, viz., the Yogalinga, and also Sri in the form of Meru, the central seat of Mahatripurasundari, he made his puja everyday and thus resolved to spend the last year of his human life. .... He appointed his disciple Sarvagnatma Sri Charana to perform his puja after himself, as he was a sanyasin of the type he had in view ....

Sri Adi Shankaracharya left the human body at Conjeevaram in his thirty second year i. e. 477 B. C. An image of Sri Shankaracharya stand close to that of Sri Kamakshi and is worshipped to this day at Conjeevaram. This is the only image of a very ancient date while all other images of Sri Shankaracharya are of recent date, not more than fifty or sixty year's old.

"पन्डित पत्र" के 10—9—1934 अङ्क में प्रचार हुआ कि कामकोटि पीठ मठ ही प्रथम पीठ है— "भगवान श्री आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा संस्थापित प्रथम पीठ कांची कामकोटि के वर्तमान अधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज .. .."।

कुम्भकोण मठ कर्मचारी द्वारा रचित हिन्दी भाषा एक पुस्तक "श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य चरित्र" नामक का वंटवारा काशी में खूब हुआ। इसमें अनेक आक्षेप, विवादास्पद, कल्पित व अप्रामाणिक विषय थे जिसका कुछ विवरण नीचे दिया जाता है।

"इस कामकोटि पीठस्थ को ही श्रीमज्जगद्गुरु ऐसा नाम रहे, दीगर पीठस्थों को श्रीगुरु शंकराचार्य ऐसा रहे।"

"अपने मुख्य शिष्य श्री सुरेश्वराचार्य जी से कहा कि तुम शृङ्गगिरि को जा कर वहां व्याख्यान सिंहासन पीठ निर्माण करो। मेरे वनाये भाष्यों को याने सूत्र भाष्यों को व्याख्या रूप में वर्णन करो; शिष्य मन्डली को अद्वैतोपदेश किया करो, इस आज्ञा पर सुरेश्वराचार्य शृङ्गगिरि पहुंचकर अठारह वर्ष तक गुरु आज्ञानुसार वहां सकल कार्यों को करके वापिस गुरु के पास कामकोटि पीठ को आये॥"

"आत्मपूजार्थ जो योग नामक चन्द्रमौलीश्वर लिंग रखे थे, वह भी सुरेश्वराचार्य के ही हाथ से सर्वज्ञात्मा श्रीचरणेन्द्र सरस्वती को देते भये।"

"इस रीति से पांच मठों का संप्रदाय .... इस हेतु से मठाम्नायसेतु नामक एक ग्रन्थ भी बनाया।"

"आत्मोद्देश्य प्रगट कर सरस्वती-संप्रदाय के महावाक्यों को उनसे उपदेश लेकर श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्य इस नाम को धारण करते भये"'

उक्त पुस्तक में उल्लेख है कि कांची में ही आचार्य शङ्कर सर्वज्ञपीठारोहण की थी, आपका निर्याण स्थल कांची ही था तथा इन्द्रसरस्वती योगपट्ट अन्य योगपट्ट से श्रेष्ठत्व की सूचना करती है, इत्यादि। कांची मठ की मठाम्नाय पद्धति विवरण देते हुए इस पुस्तक में उल्लेख है कि कांची मठ का वेद—ऋगवेद, मठनाम—शारदा मठ, महावाक्य—ॐ तत्सत्, संप्रदाय—मिथ्यावार, ब्रह्मचारी—सत्यब्रह्मचारी, इत्यादि।

कुम्भकोण मठ के मठाम्नायसेतु में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित अन्य चार आम्नाय मठ कांची के प्रधान सर्वोच्च मठ के संचालन में है, उन चार आचार्य इनकी आज्ञा से ही भ्रमण कर सकते हैं, इनके सर्वोच्च प्रधान मठाधीश कहीं भी सर्व जगह भ्रमण कर सकते हैं, इनके मठाधीश ही जगद्गुरु हैं और अन्य चार मठाधीश केवल श्रीगुरु पदवी के अर्ह हैं; इत्यादि।

*उक्ताश्चत्वार आम्नाया यतीनां हि पृथक् पृथक्।
ते सर्वे मत्पदाचार्य नियोगेन यथा विधि।
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीया स्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्त एव सततं अटनं धरणी तले।
विरुद्धाचार संप्राप्तौ मत्पदस्य समाज्ञया।
लोकान् संशलियन्त्वेते स्वधर्मा प्रतिरोधतः॥
... ...
तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्यः मत्पदे स्थिताः॥
स्वस्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
तैरन्यतो न गम्येत मन्मत्याः सर्वतश्चराः।
कामकोटि मठे त्वस्मिन् गुरुरिन्द्र सरस्वती।
सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः।
अन्य गुरुवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।
... ...
अन्ये मठास्तु चत्वारः आचार्य मत्पदेस्थितम्।
संप्रदायैश्चतुर्भिः स्वैः समर्चन्तु यथाविधि॥"—(कुम्भकोण मठ मठाम्नायसेतु*)

काशी में इन प्रचारों को पढने के उपरान्त हमारें हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि कौन सत्य विष है। क्या श्री माधवाचार्य, चिद्विलास एवं सदानन्द सब झूठे थे? या क्या इस मठ के द्वेषी थे कि उन्होंने कांची मठ स्थापना का उल्लेख भी नहीं किया? वृद्ध परम्परा से यही सुना तथा पढा कि श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केव चार ही आम्नाय मठ अधिकार संपन्न मठ है और आपने कोई पांचवां मठ अपने द्वारा कहीं भी स्थापित नहीं किया औ आचार्य शङ्कर हिमालय के केदार सीमा से ही शिवलोक पहुंच गये। मैं ने उपर्युक्त 17 पुस्तकों जो पं० चिन्नस्वामी शास्त्री ज एवं काशी शाखा मठ के मनैजर द्वारा प्राप्त हुए थे उसे पुनः पढा। इन पुस्तकों की भाषा द्वेषात्मक व भ्रमात्मक भाव से भरी हुई थी। मुझसे प्रकाशित पुस्तक "श्री मजगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" के पृष्ठ "ख से छ" तक में इ प्रचार पुस्तकों में दिये गये विवादास्पद, शंकास्पद, भ्रमात्मक, अप्रामाणिक एवं कल्पित विषयों का विवरण दिया गय है। जो पाठकगण इन प्रचारों का विवरण जानने के उत्सुक हैं वे कृपया "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" पुस्त पढें। अनेक प्रचारित विषय प्रमाण्य ग्रन्थों के विरुद्ध होने के कारण मेरे मन में शंका और अधिक पैदा हो गयी।

यह समय था जब कुम्भकोण मठाधीश अपनी यात्रा में इलाहाबाद आ पहुंचे। मैं 25-7-193 को एक पत्र श्रीमठाधीशजी को लिख भेजा था। इस पत्र में सविनयपूर्वक सरल हिन्दी भाषा में कुछ शंका समाधा के लिए प्रश्न पूछे गये थे। इस पत्र का उत्तर न आने पर पुनः एक स्मरण पत्र 3—8—1934 को तमिल भाष में भी लिखा था। इन दोनों पत्रों का उत्तर न मिला। मैं ने मेरे पूज्य पिता की सम्मति से प्रयागराज जाने के लि निश्चय किया। तदनुसार मैंने एक पत्र श्रीमठाधीश को भेजा और प्रार्थना की कि आप कृपा करके मुझको कुछ सम दें और मेरी शंकाओं को श्रीमुख द्वारा निवारण कर दें। पिताजी ने मेरे साथ एक अन्य सज्जन श्री टि. एस. सीतारा अय्यर को भी भेजा क्योंकि उनको शंका थी कि कुछ मठानुयायी बालक पर चोट न पहुंचा दें। पूछने पर पता चल कि पिताजी कुम्भकोण मठ प्रचारों से पूर्ण अवगत थे और अन्यत्र कुछ घटनायें घटी थी जिसके कारण आप सावधा मार्ग अवलम्बन किये। मैं इलाहाबाद पहुंचा और वहां तीन दिन ठहरा। मैं तीनों दिन श्रीमठाधीशजी से भें

करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करता रहा। पर प्रयत्नों में असफल रहे। प्रातः काल गये तो कह दिया कि दोपहर को आना, दोपहर को गये तो कह दिया शाम को आना। पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी वहां पर उस समय उपस्थित भी थे। हर एक समय कुछ न कुछ कारण कह कर टाल देते थे। दूसरे दिन एकादशी थी। पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी ने कहा कि आज के दिन श्रीमठाधीश मौन हैं और आप संध्या के समय ही संस्कृत भाषा में बातें करेंगे। पन्डितजी को मालूम था कि मुझे संस्कृत भाषा में बोलना नहीं आता है। मैं ने प्रार्थना की कि द्वादशी के दिन भेंट का समय निश्चय कर दें। आपने 'हां' कहा। मैं मठाधीश के निवासस्थल समीप उस एकादशी के दिन बैठा था। उसी दिन श्रीसत्यमूर्ति (लेजिस्लेटिव असम्वली के सदस्य एवं मदरास के नामी कांग्रेस लीडर) वहां पर श्रीमठाधीशजी से भेंट के लिए आये थे। आपने मठाधीशजी से भेंट किया और तमिल भाषा में कुछ बातें भी हुई। मैं ने उस समय मठाधीशजी को बाहर दर्वाजे तक उनसे बात करते हुए आते देखा। मेरे मन में शङ्का पैदा हुई कि पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी ने जो कुछ कहा था क्या वह सब सत्य है या क्या मठाधीशजी अपने संकल्प आचरण (एकादशी के दिन मौनव्रत एवं संध्या समय ही संस्कृत भाषा में बातें करना) को त्याग कर श्रीसत्यमूर्ति से बातें भी कर सकते हैं या क्या ये सब ढोंग था? तीसरे दिन प्रातःकाल जब मैं मठाधीशजी के निवासस्थल पर पहुंचा तब पं० चिन्नस्वामी शास्त्री वहां न थे। मठ के भीतर से एक हृष्टपुष्ट ब्राह्मण आया और मुझको गालियां देते हुए धक्का देकर मठ से बाहर निकाल दिया। इस ब्राह्मण ने कहा "यदि तुम यहां पर फिर पांव रक्खोगे तो तुम्हारा पांव तोड दिया जायगा" ("நீ இங்கு மறுபடியும் காலை வைத்தால் உன் காலை உடைக்கப்படும்") मेरे साथ जो व्यक्ति बनारस से आये हुए थे वे घबरा गये और वहां से घर लौट चलने का बार बार उपदेश दिया क्योंकि उन्हें मालूम था कि कुछ दुष्ट लोग मुझे कष्ट देंगे। अकेला मैं बालक वहां कुछ कह या कर न सका और लज्जित होकर घर लौट आया। मेरे पिताजी भी दुखित हुए पर आपने कुछ कहा भी नहीं। "करुणामयी मठाधीश", "श्रीशङ्कर के अवतार," "मनुष्य रूप परमेश्वर," "परमशिवावतार" इत्यादि विरुदावली धारण करनेवाले मठाधीश के मठ में यह सब घटना घटी पर किसी ने भी कुछ नहीं कहा। मुझे कुछ सन्देह भी हुआ कि इस विषय को स्वयं मठाधीश नहीं जानते होंगे। पर मेरे तीन पत्रों का उत्तर क्यों न मिला? क्या मठाधीशजी को पत्र भी न मिला? क्यों पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी बनारस से प्रयाग पहूंचे जब मैं वहां था? क्या पन्डितजी ने मठाधीशजी को कहा नहीं कि मैं प्रयाग में हूं और आपसे भेंट करने निमित्त वहां आया हूं? मठ में जो कुछ घटना घटित होती है सो सब क्या मठाधीशजी नहीं जानते?

2. स्वागत कार्यकारिणी समिति निर्माण एवं पं. ज. ग. वि शर्मा का समिति से इस्तिफा पत्र तथा कुम्भकोण मठ भ्रामक प्रचारों का खण्डन पत्र

16—8—1934 प्रातः काल मेरे पिताजी को एक आह्वान पत्र मिला। यह पत्र ताः 16—8—1934 को सात बजे रात को होनेवाली परामर्श सभा के बारे में थी। म० म० पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री, पं राजेश्वर शास्त्री द्रविड एवं राय माधोराम संड, दर्शनाभिलाषि के नाम से पत्र निकला था। मेरे पिताजी अस्वस्थ होने के कारण सभा में जा न सके। 21—8—1934 प्रातः काल मेरे पिता जी को एक पत्र नं० 52 श्री राय माधोराम संड के हस्ताक्षर सहित प्राप्त हुआ। इसमें उल्लेख था कि मेरे पिता जी कार्यकारिणी समिति के सदस्य सर्व सम्मति से 16—8—1934 तारीख की सभा में चुने गये। 22—8—1934 सायङ्काल समय दूसरा पत्र नं० 85 मिला। मेरे पिताजी ने 23—8—1934 को एक पत्र श्री राय माधोराम संड के पास लिख भेजा था, जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

प्रिय महाशय

आपके पत्र नं० 52 एवं 85 ताः 22—8—1934 का प्राप्त हुआ। विषय मालूम हुआ। मैं सदा श्री स्वामी जी को व्यक्तिगत रूप से स्वागत करने में तैय्यार हूं। इनके मठ के विषय में अनेकानेक आक्षेप हैं और प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों से यही स्पष्ट मालूम होता है कि श्री आद्यशङ्कराचार्य जी ने केवल चार ही अधिकार संपन्न आम्नाय मठ स्थापन किये। अपने लिये कहीं अलग अथवा कोई पांचवां मठ की स्थापना नहीं की। इसके अतिरिक्त अनेक द्वेष भरे एवं असत्य विषयों की पुस्तकें इनके द्वारा प्रकाशित हुई है।

जो कोई नाम आपने अपने पत्र के मार्जिन में दिया है उसमें अनेकों की सम्मति भी नहीं है। सम्भवतः वे भी अपने अपने अस्वीकृत पत्र भेजे होंगे।

ऐसी स्थिति में विषय जानते हुए मैं कदापि उन्हें श्री आद्यशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा एवं उनके (श्री शङ्कराचार्य) मठ के मठाधीश रूप में स्वागत करने के लिये तैय्यार न हूं। इसलिये मैं कार्यकारिणी समीति के सदस्य होने में अपनी अस्वीकृति भेज रहा हूं। आपके इस रचना में मैं कोई भी स्थान नहीं चाहता।

आपका हितैषी
ज. ग. विश्वनाथ शर्मा

मेरे पिता जी के द्वारा 23—8—34 का अस्वीकृति पत्र प्राप्त करते हुए भी और एक पत्र नं० 5 ताः 29—8—34 को प्राप्त हुआ जिसमें मेरे पिता जी को 1—9—34 के होने वाली बैठक में बुलाया गया था कार्यकारिणी समीति की बैठक "कर्त्तव्य स्थिर करने के लिये" अह्वान किया गया था। मुझे निश्चय मालूम है कि व्यक्तियों द्वारा कार्यकारिणी समीति का सदस्य बनने में अस्वीकृति पत्र भेजा गया था पर खेद का विषय है कि अब त एक का भी उत्तर न मिला। शंकाओं का समाधान उत्तर भी प्राप्त न हुआ। सुनने में आया है कि और भी गण्यमान सज्जन श्री राय माधोराम संड को व्यक्तिगत पत्र लिख कर अपनी अस्वीकृति प्रगट की थी। इसके अतिरिक्त विद्वान, गण्यमान सज्जन एवं माननीय विज्ञ परिव्राजक कार्यकारिणी समीति को भी पत्र लिखकर पूछा था किन प्रामा ग्रन्थों के आधारों पर कुम्भकोण मठाधीश जी को श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित आम्नाय मठ अधीश कहे जाते हैं और क्यों वे पंचम मठ बनाने का षडयन्त्र रचा रहे हैं। मेरे पास कुछ व्यक्तियों के पत्रों नकल भी है। जहां तक मुझे मालूम है कि किसी को भी कुछ उत्तर न मिला। मार्के का विषय है कि जो स्वा समीति बनी थी उसमें प० प० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 श्री स्वामी जयेन्द्र पुरी जी महाराज, प० प० श्रोत्रिय ब्रह्म श्री 108 श्री स्वामी भागवतानन्द जी महाराज, प० प० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महारा आदि मण्डलेश्वरों का नाम भी उल्लेख था पर वे तीनों महात्मा काशीपुरी में उस समय उपस्थित नहीं थे। पाठक इस पुस्तक में उक्त मण्डलेश्वरों के पत्र व मठ विषयक अभिप्राय प्रकाशित पायेंगे और पाठकों को स्पष्ट मालूम होगा किस प्रकार यह नाटक रचा गया है और क्या क्या मिथ्या प्रचार किया गया है। इन महात्माओं का नाम दे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये यह सब रचा गया था। पं० सीताराम शास्त्री जी, न्यायाचार्य, उक्त कहे सभा में हुए थे। न वहां कोई बैठक हुई और न वहां लोग एकत्रित थे। मालूम नहीं कि किस प्रकार स्वागत कारिणी समी

का नाम रख कर ऐसा नाटक रचा गया था। मेरे पिता जी के पास एक पत्र नं० 52 ता: 20—9—34 के दिन पहुंचा जिससे उन्हें कार्यकारिणी समीति के बैठक में जो 23—9—34 को होने वाली थी उसमें बुलाया गया था। इस पत्र का उत्तर मेरे पिताजी ने 25—9—34 को श्री राय माधोराम संड को लिखकर भेजा था जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

प्रिय महाशय,

यद्यपि आप से अभी तक मुलाकात आमने सामने नहीं हुई है तो भी मुझे विश्वास है कि आप मेरे नाम से आजकल परिचित होंगे। यह मेरा सौभाग्य है कि आप से कम से कम इस अवसर पर पत्र द्वारा पहिचान हो। मैं ने कई लोगों के मुंह से यह बात सुना कि आप परसों की सभा में कुछ ऐसी हल्की बात मेरे ऊपर कही जिसे सुनकर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मान एक ऐंसी चीज है जो इस संसार में सब वस्तुओं से बहुमूल्य है। धन और टाईटल से मान खरीदा नहीं जा सकता है। सत्कर्म, शुद्ध आचार विचार से ही मान की प्राप्ति होती है। गया हुआ मान लौटना बहुत ही कष्ट है। मैं ने उन लोगों के बातों पर अभी तक विश्वास नहीं किया और मेरे दिल में यही बात उठी कि आपको लिख कर इस विषय को जान लें। जिन गण्यमान विद्वानों ने कहा वे सब सत्यवादी शीलाचार पुरुष हैं। वे कहते हैं कि आपके शब्द यों थे "हां, उस बाप लौन्डे की कर्तून है जो हमारे छेत्र के सामने रहते हैं। बाप एक मूर्ख ब्राह्मण पुरोहित है जिसे कुछ हैसियत नहीं है। मैं तो एक चुटकी में उस गदहे को सबक सिखा दूं। बालक लौंडा भी संबक सीखेगा। जहां दो चार मार पडी सब ठन्डे हो जायेंगे।" मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप ऐसे प्रतिष्ठित सज्जन, गण्यमान रईस, राय साहब! के मुंह से ऐसी हल्की बात कभी भी नहीं निकली होगी, तिप पर भी मन की शान्ति के लिये मैंने निश्चय किया कि आप से सामने मिलकर पूछ लूं। मुझे पता नहीं कि वह सौभाग्य दिन कब आयेंगे जब मेरे ऐसे एक "मूर्ख ब्राह्मण पुरोहित जिसे कुछ हैसियत नहीं है" की मुलाकात आप ऐसे "विद्वान, गण्यमान, रईस, राय साहब, हैसियत दार" से होगी।

जो नोटिस निकली थी उसको शायद आपने अच्छी तरह नहीं पढा। उसमें यह नहीं लिखा था कि उन्हे (श्री कांचीकामकोटि मठ के अधिपति को) किसी प्रकार की निन्दा की जाय अथवा सन्मान में किसी प्रकार की कमी हो पर यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि यदि वह स्वागत एक योग्य, विद्वान महात्मा, संन्यासी होने के नाते से किया जाने वाला हो तो किसीको आपत्ति नहीं। यति निन्दा करना महापाप है सो हम सब जानते हैं। "काषाय दन्ड मात्रेण यतिः पूज्यो न संशयः" इसके अनुसार उनका सन्मान करना परमावश्यक कर्तव्य है। तिस पर भी आप श्रीं शङ्कर मतानुयायी एक मठ के अधिपतिजी करीब 12 साल से धर्म प्रचार कर रहे हैं, ऐसे समय पर जब कि हमारे धर्म पर आघातें पहुंच रहे हैं। श्री स्वामीजी एक महात्मा परम त्यागी और हमारे धर्म के स्तम्भ हैं। आप स्वप्न में भी यह न सोचें कि हम लोग उनके शुभागमन के विरुद्ध कारवाईयां कर रहे हैं। हमलोग चाहते हैं और आपको अपने कर्मों से दिखाना चाहते हैं कि आपने जो सोच रक्खा है कि यह लोग ऊधम मचाना चाहते हैं और श्री स्वामीजी के शुभागमन के साथ विरुद्ध खडे होकर गडबडी मचाना चाहते हैं सो बिलकुल नहीं। अब मैं आशा करता हूं कि आप हम सबों की स्थिति को समझ गये होंगे।

श्रीस्वामीजी के मठ के कर्मचारी, पन्डित और मठ के प्रथम शिष्य, अनेक पुस्तकें, रिसालायें और पत्रिकाओं में ऐसे विषय लिखे हैं जो द्वेष राग इत्यादि उत्पन्न करनेवाले हैं, केवल दृष्टि मात्र से। अपने को अद्वैती कह कर न जाने क्यों इस प्रकार की न्यूनातिरिक्त भाव हृदय मे लाकर पुस्तकों में प्रकट करते हैं। इसका कारण केवल भगवान श्रीशङ्कर ही जानते हैं। मेरे पास ऐसी 15 पुस्तकें हैं जिसमें ऐसे विषय सब उल्लेख किये गये हैं, उदाहरणार्थ चार मठ जो आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित हैं (प्रमाण-मठाम्नाय; श्रीमाधवाचार्य, चिद्विलासीय, सदानन्द कृत शंकर विजय; यतिधर्म निर्णय; श्रीद्वारका जगन्नाथ मठों के प्रमाणिक ग्रन्थों एवं शिला ताम्र शासन; गुरु परम्परा चरित्र; इत्यादि अनेक प्रमाणिक ग्रन्थों में केवल चार आम्नाय मठों का उल्लेख हैं) वे सब शिष्यकोटियों में और अपना काञ्ची मठ प्रधान, प्रथम, आदि, मूल और श्रेष्ठ है; अन्य मठ के स्वामीजी केवल श्रीगुरु हैं और काञ्ची मठ के गुरु जगद्गुरु हैं; शृङ्गेरी को हमारे पूर्वजों ने उद्धार कर पुनः निर्माण किया और अपने शिष्य वहां बैठाये; शृंगेरी के पीठाधिपति जिन्होंने इनको (काञ्ची) क्षमा पत्र लिख दिये हैं कि वे अब पादपूजा नहीं करायेंगे, दिग्विजय यात्रा के लिये नहीं जायेंगे और केवल साधारण यति ही रहेंगे; श्रीविद्यारण्य या श्रीमाधवाचार्य कृत शङ्कर दिग्विजय "drawn from imagination and unauthentic"; श्रीसुरेश्वराचार्य परमहंस संन्यासी न थे; श्रीगौडपादाचार्य एक ब्रह्मराक्षस थे; श्रीगोविन्दपादाचार्य अपने पूर्वाश्रम में चार वर्णों के चार स्त्रियों से विवाह कर भोग विलास किये; "ॐ तत्सत्" महावाक्य; इत्यादि अन्य अनेक विवादास्पद, भ्रामक, कल्पित, द्वेषयुक्त विषयों कुम्भकोण मठाधीश द्वारा प्रचारित एवं उनसे बंटवारा की हुई पुस्तकों में पाये जाते हैं। शिवरहस्य जो मठ की तरफ से छपा है उसमें उन्होंने कई श्लोक और पदों का जोड, निकाल, अदल बदल, नूतन सब परिवर्तन कर अपने प्रचारों के पुष्टी के हेतु नूतन निर्माण कर प्रचार कर रहे हैं। मैं ने तो केवल दो चार बात लिखा हूं पर विषय बडा है। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि श्रीकुम्भकोण मठाधीश या तो इन सब अप्रामाणिक, कल्पित, भ्रामक प्रचारों को बन्द कर दें या तो निराकरण कर दें, या तो शास्त्रयुक्त आर्ष ग्रन्थों के आधार पर अपने प्रचारों को सिद्ध कर पामर लोगों के भ्रम को दूर कर दें। चाहे कोई भी जितना बडा विद्वान तपस्वी महान हो पर जब उनसे उनके भ्रामक प्रचारों का प्रामाणिकता पूछा जाता है तो क्यों क्रुध होते हैं? उनका कर्त्तव्य है कि लोगों के भ्रम को दूर करें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप यदि मेरी स्थिति और अवस्था में होते तो आप अवश्य मानभङ्ग का दावा जारी करते। कृपया आप यह न सोचें कि अपने रईसीपन एवं "राय साहब" के ओहदे से सब कुछ कर सकते हैं और किसी का मान भी ले सकते हैं। सबों को आत्मवत् देखने वाले ही गण्यमान, विद्वान, महान कहलाते हैं। अंहकार पतन का एक रास्ता है। मैं तो केवल प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रामाणिकता का प्यासा हूं। जो जो विवादास्पद कल्पित भ्रामक विषय मठ वाले लिखते आये हैं उसे प्रामाणिक रूप से एक बार किसी पत्र द्वारा छपवा दें तो भ्रम और सन्देह दूर हो जाय। पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर न देकर अपना "दन्डा" दिखाना उचित नहीं है। कुम्भकोण मठ के महावाक्य, आम्नाय और वेद का जो बडा झगडा है वह तो कई बार खडा हुआ पर एक बार भी उन्होंने उसका उत्तर अभी तक करीब 60 सालों से नहीं दिया। इसका कारण केवल शङ्कर ही जानते हैं।

मैं आप से मिलना चाहता हूं और मेरे आशय को आपके सामने प्रकट करना चाहता हूं। विषय बडा लम्बा है। आपको एवं मुझे इसी काशी धाम में रहना होगा और श्री स्वामी जी एवं उनके

दाक्षिणात्य टोली सब पुनः दक्षिण लौट चले जायेंगे और मैं यह नहीं चाहता कि आपसे और मुझ में किसी प्रकार का झगडा हो। मैं आशा करता हूं कि आप से भेंट करने का समय आप इत्तिला कर देंगे।

आपका शुभचिन्तक,
ज. ग. विश्वनाथ शर्मा.

नोट:—आपका पत्र न॰ 52 ता॰ 20-9-34 को प्राप्त हुआ और कृपया मेरा पत्र ताः 23—9—34 का देखीयेगा। आपकी इस रचना में मैं कोई भी स्थान नहीं चाहता। मैं अपनी अस्वीकृति पत्र पूर्व ही भेज चुका हूं।

ज. ग. वि. शर्मा

3. कुम्भकोणमठ के मनैजर श्री चिन्तामणि विश्वनाथय्या और म॰ म॰ पं॰ अनन्तकृष्ण शास्त्री से वार्तालाप।

सितम्बर (1934) महिने में एक दिन मध्यान्ह के समय म॰ म॰ पं. अनन्तकृष्ण शास्त्रीजी एवं श्री विश्वनाथय्या (मनैजर, कांची कुम्भकोण मठ), दोनों व्यक्ति मेरे यहां आये और मेरे पिताजी के पास श्री मठाधीशजी के काशीधाम आने का समाचार सुनाया। म॰ म॰ पं. अनन्तकृष्ण शास्त्रीजी से मेरे पिताजी का पूर्व ही परिचय होने के कारण एक मित्र भाव सदृष से वार्तालाप होने लगी। श्री विश्वनाथय्या ने मेरे पिताजी से पूछा कि आवश्यकता पडने पर क्या अपना घर खाली करके श्री मठाधीशजी के लिये दे सकते हैं? पं. अनन्तकृष्ण शास्त्रीजी भी मेरे पिताजी से प्रार्थना की कि वे घर के प्रथम तल्ला पूरा भाग खाली करके श्री मठाधीशजी को दे देवें। मेरे पिताजी ने कहा—

"यति मेरे लिये सदा पूज्य हैं और मैं यथा शक्ति व्यक्तिगत से श्री मठाधीशजी का आगमन व सत्कार करूंगा।" (मेरे पिता ने मठ के भ्रामक प्रचारों की चर्चा छेड दी और तुरन्त ही पं. अनन्तकृष्ण शास्त्रीजी कहने लगे)—"पन्डितजी! अपने को इस विवाद से क्या प्रयोजन है। चाहे कांची मठ आद्य शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित हो या न हो, हम सब दाक्षिणात्य हैं और कुम्भकोण मठाधीश भी दाक्षिणात्य होने के कारण हम सबों का कर्त्तव्य होगा कि उनका स्वागत करें। स्वयं मैं श्रृङ्गेरी मठ का शिष्य हूं पर कुम्भकोण मठ भी मेरे लिये गुरु मठ है चूं कि सब यति गुरु ही माने जाते हैं।" (इतने में मैं वहां पहुंचा। पिताजी से आज्ञा लेकर मैं भी इस विवाद में शामिल हो गया। मैं ने पन्डित जी से कहा) "पन्डितजी। कुम्भकोण मठाधीश हम सब के पूज्य हैं और उनका स्वागत करना तो हम सब गृहस्थों का कर्त्तव्य है और इसमें कोई आपत्ति नहीं है–केवल आपत्ति तो इस विषय का है कि यह नाटक काशीधाम में रच कर उनके मठ को श्री आद्यशङ्कराचार्य प्रतिष्ठित पंचश मठ सिद्ध करने की योजना जो की जा रही है। आधुनिक काल में भी समी मानव अभी इतना पतित नहीं हुए कि वे अपने ईश्वर, धर्म, मातृभूमि, मातापिता और गुरु को बाजारों में बेचने के लिये निकलें, आज इनके लिये एक गुरु और दूसरे दिन अन्य ही गुरु बदलते ही जांय"। (पन्डितजी क्रुध हो कर मुझे डांटा। तव मैं ने उनको पूर्व कथा सब सुनायी। मैं ने पिताजी से सविनय प्रार्थना की कि वे इस नाटक में भाग न लें।)

पं०. अ० शास्त्री—तुम बालक हो, तुम्हें जानना चाहिये कि सब मठ बराबर समान हैं। सब आचार्य पूज्य हैं। मिश्री के टुकडे में सर्वत्र जगह मीठा पाया जाता है चाहे तुम जो भी भाग लेना चाहो। सब मठाधिपति हमारे पूज्य हैं। व्यर्थ क्यों अपने को इस झंझट और विवाद में डालें कि कौन बडा है और कौन छोटा है, कौन उत्तम है, कौन अधम है, इत्यादि। आद्यशंकर के चरित्र के बारे मे चर्चा करना व्यर्थ है।

पं०. ज० ग० वि०—पर मठ का प्रचार दूसरा ही कथा सुनाती है। वे तो सर्वोत्तम, सर्वोच्च मठ कांची मठ ही है ऐसा कहते हैं। और इस प्रचार का स्वामी जी निराकरण करते नहीं।

पं०. अ० शास्त्री—इन पुस्तकों और प्रचारों का सम्बन्ध श्रीस्वामी जी से नहीं है और आप इनके दायित्व नहीं हैं।

रा० शर्मा—पुस्तकें जो श्री चरणों में अर्पित हैं, पुस्तकें जो उनकी अनुमति से प्रकाशित हैं, पुस्तकें जो उनकी आज्ञा से प्रकाशित हैं, किस तरह आप कहते हैं कि श्री स्वामी जी इन सबों के दायित्व नहीं हैं।

पं०. अ० शास्त्री—पुस्तकों मे कहीं भी ऊंच नीच का भाव नहीं लिखा है। मठों के तारतम्य भी उल्लेख नहीं है।

रा० शर्मा—पन्डित जी! इन तीनों पुस्तकों को देखिये व पढिये और तब मालूम होगा कि द्वेष भाव किसके पास है। ये सब पुस्तकें श्री स्वामी जी को अर्पित एवं अनुमति से प्रकाशित है (कुछ भाग रा० शर्मा ने पढकर सुनाया) अब आप क्या उत्तर देते हैं? मिश्री के टुकडे का उदाहरण क्या मुझे या स्वामी जी या उनके अनुयायियों को भाता है। शायद उन्हें कोई भाग कडुवा मालूम होता होगा?

पं०. अ० शास्त्री—मेरा कहा दृष्टान्त सारी दुनिया के लिये भाता है। अच्छा! जो कुछ हुआ सो हुआ। चलो हम तुम्हें श्री स्वामी जी के पास ले जाते हैं और शंका वहीं निवारण कर लेंगे।

रा० शर्मा—मैं ने तो उनको तीन पत्र लिखा था और एक का भी उत्तर न मिला।

पं०. अ० शास्त्री—ऊंचे उत्तम पदवी के महान् तुम्हारे ऐसा छोटे बालकों से भेजा हुआ विज्ञापन पत्र का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

रा० शर्मा—आचार्य तो वे हैं जो आचरण कर दिखाते हैं और जिनकी ममता, ऊंच, नीच, रागद्वेष सब मन से हट गई हो और जो सबों में समत्व भाव रखते हों। श्री काशी पुरी में चांडाल और श्री मदाद्यशङ्कराचार्य के विवाद को क्या आपने नहीं पढा? मन के चांडाल रागद्वेषादि को ही प्रथम बाहर निकालना आपके गुरु आचार्य का कर्त्तव्य है। भले मैं छोटा बालक हूं पर मेरा दिल साफ है और मैं सत्य पथ में हूं।

पं०. अ० शास्त्री—तुम एक वितन्डावादी मूर्ख हो।

पं० ज० ग० वि०—पंडित जी ! शान्ति से बात कीजिये-राजू यद्यपि बालक है, उसके प्रश्न न्याय युक्त हैं और आप इन प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

रा० शर्मा—यदि मेरे पास 400 रुपये होते और मैं उसे पाद में अर्पित करता तो अवश्य ही मैं एक गण्यमान कहलाता और मुझे श्रीमुखद्वारा उत्तर भी मिलता। आजकल तो धर्म बाजारों में बिकते हैं जो ज्यादा रकम दे वह धर्म खरीद सकता है। शास्त्र विषयों और उसके तात्पर्यों पर विचार कर सत्य पथ से न्याय किसको मिलता है ? इससे साफ मालूम होता है कि आप लोग नीति या धर्म पथ पर जाते नहीं। आप लोगों के वचन और कर्मों से साफ मालूम होता है।

पं० ज० ग० वि०—राजू चुप हो जाओ। क्रोध से बात करना पाप है। द्वेषभाव रखना भी पाप है। सत्यान्वेषण करना अपना धर्म है।

पं० अ० शास्त्री—ठीक है। ऐसा ही है, इस विषय में तुम क्या कर सकते हो ? तुमसे क्या किया जा सकता है ? एक बित्ते के लवन्डे ! बातें बडे करते हो ? जगद्गुरु के सोचने मात्र से ही तुरन्त तुम्हारी बुराई हो जायेगी। (पं० ज० ग० वि० से) पन्डितजी अपने लडके से कहिये कि वह मेरे साथ मुंह न लगे।

रा० शर्मा—यह सच है कि मैं एक छोटा बालक हूं पर मूर्ख हूं या बुद्धिमान वह आप जाने, जैसा अन्धे को सारा संसार अन्धकारमय दीखता है वह भी आप जाने, मेरे अकेले प्रयत्न से इन तत्वों का अर्थ या तात्पर्य समझ न सकूं पर इन तत्वों को जानने के लिए जो मनोवृत्ति उद्वेग करता है वह जहां तक ले जाय वहां तक मैंने भी जाने का निश्चय किया है।

पं० अ० शास्त्री—बन्धे बोरे से निकले हुए आंवलों की तरह कूद रहे हो, शायद तुम्हारा विनाशकाल आ रहा हो !

श्रीयुत विश्वनाथय्या—पन्डित जी देरी हो रही है और अपने को बहुत काम करना है-अब हम लोग चलें।

रा० शर्मा—नमस्कार—अब आप जा सकते हैं।

पं० ज० ग० वि०—पन्डितजी ! प्रश्नों के उत्तर दिये बिना आप जा रहे हैं। शायद फिर कभी आकर उत्तर दे जाइयेगा। श्री स्वामीजी को मेरा वन्दन कहियेगा और यदि श्री स्वामी जीयहां आकर मेरे घर में ठहरना चाहते हैं तो आकर रह सकते हैं।… मैं मकान खाली कर दूंगा।

पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री और श्रीविश्वनाथय्या दोनों चले गये। उपर्युक्त वार्तालाप संक्षेप रुपमें दक्षिण भारत के तमिल भाषा पत्र 'वित्तकम्' में सन् 35/36 ई० में प्रकाशित हुआ है। मेरे पिता द्वारा लिखित नोट में से यह वार्तालाप लिया गया है।

4. "धर्म प्रेमियों से निवेदन" शीर्षक नोटिस एवं श्री राय माधोराम संड से वार्तालाप।

"पन्डित पत्र" 10—9—1934 के अङ्क में पं. श्रीव्यंकटेश शास्त्रीजी द्रविड का लेख "जगद्गु से मेरी मुलाकात के संस्मरण" शीर्षक प्रकाशित देखा। उसमें भ्रमात्मक एवं आक्षेपार्थ विषय थे। इसके पूर्व "लीड पत्रिका का प्रकाशन, काशी में मठविषयक प्रचार पुस्तकों का बंटवारा, कुछ दाक्षिणात्य काशी निवासी विद्वानों मठविषयक प्रचार तथा अब "पन्डितपत्र" का प्रकाशन, आदियों से काशीधाम के कुछ स्वतंत्र विचार के विद्वानों शङ्का उत्पन्न हुई। कुछ परिव्राजक, दण्डी मठों के महन्त, अखाडों के महन्त एवं पन्डित वर्ग, मेरे पिता के प आकर कांची मठ के विषय में पूछने लगे। कांची मठ का नाम किसी को यहां पता न था केवल कुछ दाक्षि निवासियों को छोड कर और चूं कि मेरे पिताजी को कांची मठ प्रचारों का पूर्ण जानकारी थी, आपके मित्र सब विषय की चर्चा आपसे करने लगे। जूना, निरञ्जनी, निर्वाणी अखाडों के महन्तों ने भी मेरे पिता के पास आकर मठ बारे में प्रश्न करने लगे। रामतारकमठ, जानी मठ, गौमठ, विद्यारण्य मठ, दत्तात्रेय मठ, गणेश मन्दिर मठ, काम मठ, मुमुक्षु भवन, आदि मठों के महन्त भी मेरे पिताजी से मिलकर कांची मठ प्रचारों पर चर्चा करने लगे। सबों ने राय दी कि मेरे पिता एक नोटिस छपवाकर यथार्थ विषयों का प्रकाशन कर सारे शहर में नोटिस बंटवा इस राय के अनुसार मैं ने एक नोटिस "धर्म प्रेमियों से निवेदन" शीर्षक छपवा कर सारे शहर में बांट दिया। नोटिस का नकल नीचे दिया जाता है।

धर्म प्रेमियों से निवेदन

गत 10 सितम्बर, 1934 ई॰ के स्थानीय "पण्डित पत्र" के पृष्ठ 3 पर श्री वेङ्कटेश शास्त्री जी का "जगद्गुरु जी से मेरी मुलाकात के संस्मरण" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें कांची कामकोटिमठ को श्रीमत् आद्यशङ्कराचार्य जी महाराज द्वारा संस्थापित प्रथम पीठ और उसके अधिपति जी को "श्री जगद्गुरु शंकराचार्य" लिखा गया है। यह शब्द पढकर हमलोगों को महान् आश्चर्य हो रहा है और पवित्र काशीपुरी में इस बात को लेकर नाना प्रकार की बातें चल रही है। हम लोगों को प्रामाणिक ग्रन्थों से श्रीमत् आद्यशंकराचार्यजी के द्वारा स्थापित चार ही मठों का ज्ञान है जो (1) श्रीशृङ्गेरी मठ (2) गोवर्धन मठ (3) शारदा और (4) ज्योतिर्मठ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं और केवल इन्हीं चार मठों के अधिपतियों को "श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य" की पदवी है। यह पांचवां कामकोटि मठ श्रीमत् आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित किया गया कहीं भी प्रामाणिक ग्रन्थों में नहीं मिलता और न तो उक्त चार मठों के अतिरिक्त न किसी मठ अधिपति जी के प्रति श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य की पदवी ही लगाई जा सकती है। हम लोगों ने यह भी सुना है कि कामकोटि मठ के अधिपति जी श्री काशीपुरी में आने वाले हैं और उनके स्वागत की चर्चा भी चल रही है। यदि यह स्वागत एक योग्य विद्वान महात्मा संन्यासी होने के नाते से किया जाने वाला हो तो किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती परन्तु यदि वह स्वागत श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी, कहकर और इसी नाते से एवं कामकोटि मठ को श्रीमत् आद्यशंकराचार्य द्वारा स्थापित कह कर किया जाने वाला हो और इस स्वागत के बहाने से काशीपुरी की मर्य्यादा का कुछ भी ध्यान न रखते हुए उक्त मठ के अधिपति को जगद्गुरु शङ्कराचार्य प्रमाणित करने की लालसा कुछ लोग कर रहे हों तो अनेक प्रकार की शंकायें हम लोगों के हृदय में सिद्धान्त की दृष्टी से चक्कर

लगा रही है। प्रत्येक सनातनधर्मी सज्जन के हृदय में यह बात उठना स्वाभाविक ही है। काशी नगरी में अभी धर्म की भावना भगवान् श्री शङ्कर की कृपा से किसी न किसी रूप में विद्यमान् है। अभी सभी विद्वान स्वार्थरत भी नहीं हैं। सिद्धान्त के विरुद्ध कोई भी सज्जन चाहे वह कैसे भी विद्वान् तपस्वी, योगी या सम्पत्तिशाली क्यों न हों, श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य नहीं कहला सकते। यदि कुछ व्यक्तियों के बलपर इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा करने का उद्योग किया गया तो श्रीमत् आदि शङ्कराचार्य जी के द्वारा स्थापित, प्रमाणिक ग्रन्थों मे कथित पूर्वोक्त चारों मठों की मर्य्यादा एवं धार्मिक ग्रन्थों के वचनों की सत्यता और सिद्धान्त रक्षार्थ काशी के विद्वानों तथा वर्णाश्रमी जनता का कर्त्तव्य होगा कि ऐसी अनधिकार चेष्टा को विफल बनाने का यत्न करें। हम लोग श्री वेंकटेश शास्त्री जी से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने इसप्रकार जो आपत्ति जनक शब्द लिखे हैं वह किस आधार पर लिखे हैं। साथ ही हम लोग इस ओर महाराजा श्री काशीनरेश, और काशी के विद्वानों, रईसों एवं समस्त धर्म प्रेमियों का ध्यान आकर्षित करते हुये जताना चाहते हैं कि इस प्राचीन पवित्र काशीपुरी की मर्य्यादा में किसी प्रकार का धब्बा न लगने पावे।

निवेदक
परमहंस दक्षिणामूर्ति आश्रम स्वामी
पं० ज. ग. विश्वनाथ शर्म्मा
श्रीमान् देवी नारायण, (अड्वोकेट)
राजगोपाल शर्म्मा

उपर्युक्त नोटिस की 10,000 प्रतियां सारे शहर में बांटी गयी। दूसरे दिन सुबह से रात तक विद्वानों, गण्यमान धनाढ्यों, महन्तों, राजकर्मचारियों के यहां कुम्भकोण मठ के कुछ कर्मचारी, भक्तों, पन्डितों का (सब दाक्षिणात्य) मोटर में बराबर आना जाना हुआ। मेरे पिताजी के कुछ मित्रों से मालूम हुआ कि कुम्भकोण मठ के कुछ लोग सिटि मजिस्ट्रेट, कोतवाल एवं कलक्टर के पास भी गये थे और इस विषय पर परामर्श भी किये। इस नोटिस ने शहर में सनसनी पैदा कर दी और अफवाह हुआ कि मेरे पिताजी व मेरे ऊपर 144 धारा लागू की जायेगी।

इस घटना के एक सप्ताह बाद (सितम्बर 1934 महिने के अन्त में) एक दिन सुबह श्री राय माधोराम संड, पं. चिन्नस्वामी शास्त्री, अन्य पांच व्यक्ति सब हनुमानघाट में मैसूर क्षेत्र (जो मेरे घर के सामने हैं) में आकर मुझे बुला भेजा। मैं अपने साथ पं० टि० एस. सीताराम शास्त्री को ले गया था। श्री माधोराम संड के साथ जो वार्तालाप हुई थी उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

श्री मा० सं०—श्रीस्वामीजी के विरुद्ध तुम लोग जो प्रयत्न कर रहे हो वह अनावश्यक है। जो मठ बडा हो या जो मठ छोटा हो, तुमसे क्या मतलब। तुम एक विद्यार्थी हो। इस विषय में तुम हस्तक्षेप न करना।

रा० शर्मा—मत विषय में, श्री आचार्य के चरित्र एवं उनके उपदेशों को जानने में उत्सुक होने के कारण, इसविषय में आपका बाधा देना उचित नहीं है। पूछे प्रश्नों का उत्तर देना न्याय है। क्यों नही आप शङ्का निवारण कर देते तब यह विवाद भी बन्द हो जाता।

मा० सं०—यदि तुम इस विवाद को खडा करोगे तो पुलिस के हवाले भेजवाकर जेल करा दूंगा। ज्यादा बदमाशी करोगे तो भी पीटे जाओगे॥

रा० शर्मा—आप एक रईस "राय साहब" हैं, आप जो चाहे सो कर सकते हैं, "रायसाहब" होने से गवरमेन्ट आपके हाथ में है, पुलिस एवं कानून तो आपका नौकर है, यह सब मुझे मालूम है।

मा० सं०—तुम बदमाश लड़के मालूम पड़ते हो। तुम्हारी खबर लूंगा। तुम्हें सबक पढ़ाने की जरूरत है।

रा० शर्मा—आप जो चाहे सो कीजियेगा। सबके शिक्षक भगवान हैं और वे आपकी खबर लेंगे। देश, धर्म, गुरु को मैं नही बेचता—"राय साहब" पदवी पाने के लिये अंग्रेजों के पास देश बेचा, स्वयं प्रख्याती एवं अहंकार के लिये धर्म गुरु अब बाजारों में बेचे जा रहे हैं।

इसे सुनकर रायसाहब ने अपनी छडी मारने के निमित्त उठाई पर मैं वहां से चल पड़ा। क्रोध में रायसाह ने धमकी देकर आप वहां से चलते भये। फिर मालूम हुआ कि आप भेलूपुरा थानेदार के साथ इस विषय पर च की और थानेदार ने मुझको बुलवा भेजा।

5. धर्मवीर श्री स्वामी लालनाथ जी एवं पं० धूमावती पान्डेय जी से वार्तालाप।

सितम्बर 1934 में धर्मवीर श्री स्वामी लालनाथजी एवं पं. धूमावती पान्डेयजी दोनों मेरे यहां. आये अै कांची मठ के विषय में पूछने लगे। मेरे पिता ने उनको प्रामाण्य ग्रन्थ सब दिखाकर यह सिद्ध किया कि श्रीमद् शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित केवल चार ही आम्नाय मठ हैं और काञ्ची मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य के बहुकाल के बाद प्रतिष्ठित मठ है। मैं ने आप दोनों को राय दी कि वे पूरी गोवर्धन मठाधीश, शृङ्गेरी मठाधीश एवं द्वारका मठाधी को लिखकर उनका भी अभिप्राय प्राप्त कर सकते हैं। कुछ दिन बाद सितम्बर महिने में धर्मवीर श्री स्वामी लालना जी एवं पं. धूमावती पान्डेयजी दो तार लेकर मेरे यहां आये। गोवर्धन मठाधीशजी का तार विवरण—

"Yours received. Adi Shankaracharya's all biographies mention only Govardhan mutt, Shringeri mutt, Dwaraka mutt and Jyotir mutt as established by himself. If Kumbakonam claims otherwise ask for original authorities."

शृङ्गेरी मठाधीशजी का तार विवरण—

"Your wire. In our sincere opinion the only basis clearing doubts regarding Acharya's Gaddis found in the famous work Mathammnayastotra. If you want you may ascertain also from Dwaraka, Jagannatha Mutts.

SWAMIJI—SRINGERI GADI"

धर्मवीर श्रीस्वामी लालनाथजी ने उपर्युक्त दोनों तारों को मेरे पूज्य पिताजी को देते हुए कहा—

"पन्डितजी ! अब आगे क्या करने का इरादा है ? बेरुकावट यह जो मठविषयक भ्रामक प्रचार यहां हो रहा है सो अन्याय दीखता है। ऐसे भ्रामक प्रचारों का खण्डन करना ही सत्य मार्ग का अवलम्बन करना है" मेरे पिताजी ने कहा—"जो कुछ अभी तक हुआ है वह सब व्यक्तिगत रूप में मेरे पुत्र राजगोपाल और मैं ने किया है। कुम्भकोण मठाधीश या तो इन प्रचारों को बन्द कर दें या निराकरण कर दें या प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर अपने कृत प्रचारों को सिद्ध कर दें। कुम्भकोण मठाधीश जो व्यवस्था काशीधाम में लेनेवाले हैं कि श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य द्वारा उनका मठ प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित था, आपकी परम्परा साक्षात् आदि शङ्कराचार्य का अविच्छिन्न परम्परा है, शांकर मठों में काञ्ची मठ ही सर्वोच्च शिरोमणि मुखिया मठ है, और जो नाटक रच रहे हैं, उसमें मैं कुछ कर नहीं सकता चूंकि अभाग्यवश काशी के कुछ प्रभावशाली पन्डित कुम्भकोण मठ के द्रविण मायालोभ में (दुशाले, दुपट्टे, पदवी, गहरे रकम, आदियों के प्रलोभन से) पडकर मठ के व्यवस्था में हस्ताक्षर कर देंगे और मैं किसी को भी कुछ नहीं दूंगा। जो सत्य पथ के गामी हैं, स्वतंत्र विचार रखते हैं, वे ही केवल मेरे साथ काम कर सकते हैं। माननीय पं० राजेश्वर शास्त्रीजी कुम्भकोण मठाधीश के शिष्य हैं और इनकी टोली भी श्रीस्वामीजी के कार्य में सहयोग देंगे। कुम्भकोण मठाधीश के परम शिष्य पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी, हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक होने से, आप भी अपनी टोली इकट्ठा कर श्रीस्वामीजी के कार्य में सहयोग देंगे। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'मठाम्नाय' को जब कुछ विद्वान स्वीकार नहीं करते चूंकि यह प्रमाण कुम्भकोण मठ प्रचारों के विरुद्ध है और जब कुछ विद्वान कांची मठ का पांचवां वेद, पांचवां उपदेष्टव्य महावाक्य, ग्यारहवां योगपट्ट, आदियों का होना स्वीकार करते हैं और माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय शङ्कर दिग्विजयों में दी हुई कथा को स्वीकार नहीं करते, तो इन विद्वानों के साथ किस तरह बरताव किया जाय। बाबा विश्वनाथ इन सबों को सद् बुद्धि दें। (श्रीस्वामी लालानाथजी दुखित होकर चले गये।)

कुम्भकोण मठवालों का प्रचार है कि उनका मठ श्रीमदाद्यशंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित था उनका मठ परम्परा ही साक्षात् अविच्छिन्न गुरु परम्परा है और अन्य चार [आम्नाय मठ शिष्य मठ हैं और काञ्ची मठाधीश ही केवल 'जगद्गुरु' पदवी के अर्ह हैं और अन्य 'श्रीगुरु' पदवी के अर्ह हैं। मेरे मन में शङ्का हुई कि क्या चारों दृग् गोचर आम्नायों के चार वेदों व चार महावाक्यों के चार आम्नाय मठाधीश इनको अपना गुरु मठ मानते हैं ? यदि चारों मठाधीश काञ्ची मठ के प्रचारों को स्वीकार कर लें तो फिर विवाद का मूल ही नहीं रह जाता। मैं ने पुरी गोवर्धन मठाधीशजी, शृंगेरी मठाधीशजी, द्वारका शारदा मठाधीशजी को लिखकर प्रार्थना की थी कि वे अपने अभिप्राय लिख भेजें। इसी प्रकार मैं ने पूर्व व पाश्चात्य विद्वानों को पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि वे अपनी अभिप्राय लिख भेजें। मुझे पत्र, तार, श्रीमुख द्वारा उनके राय सब प्राप्त हुए। इन सबों का अभिप्राय है कि आचार्य शंकर ने केवल चार ही आम्नाय मठों की स्थापना की थी। मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक में इन पत्रों, तारों, एवं श्रीमुखों को प्रकाशित पायेंगे।

6. कुम्भकोण मठाधीश से कुछ खुले प्रश्न एवं पं० राम अभिलाष पान्डेय जी का लेख।

"सूर्य" पत्र 21—9—1934 के अङ्क में एवं "आज" पत्र के 27-9-1934 अङ्क में मैं ने कुछ खुले प्रश्न जो कुम्भकोण मठाधीशजी से पूछा था सो प्रकाशित कराया। ऐसे प्रश्नों को प्रकाशित करने के लिये अन्यों को भी भेजा गया था।

कामकोटि के पीठाधिपति से कुछ प्रश्न

(1) श्री "विश्वेश्वर स्मृति" और अन्य पुस्तकें जो यतिधर्म के विषयों को बताती हैं उसमें केवल दस योगपट्टों (संप्रदायों) के नाम दिये गये हैं—तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, पुरि। कब ये संप्रदायें उत्पन्न हुई?

(2) श्री आदि शङ्कर, गुरु गोविन्द भगवत्पादाचार्य और उनके गुरु श्री गौडपादाचार्य किस सम्प्रदाय के थे?

(3) श्री शङ्कर और उनके चार शिष्यों सुरेश्वर, पद्मपाद, हस्तामलक और तोटकाचार्य किस सम्प्रदाय के थे?

(4) क्यों चार सम्प्रदाय के तीर्थ, आश्रम, भारती, सरस्वती, केवल पीठाधिपति के स्थान पर हैं और अन्य नहीं?

(5) कब "इन्द्रसरस्वती" सम्प्रदाय (योगपट्ट) जो ऊपर कहे हुए दस सम्प्रदायों में नहीं है, प्रारम्भ हुआ? किनसे यह आगे चलाया गया और किन आधारों से?

(6) सुनता हूं कि आदि श्री शङ्कराचार्य चार महावाक्य चार वेदों का अपने चार शिष्यों को चारों संप्र आम्नाय मठों श्री शृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्धन और ज्योतिर्मठ के लिये उपदेश किया। मैं जानने के लिये उत्सुक हूं कि कामकोटि पीठ के पीठाधिपति को कौनसा महावाक्य किससे उपदेश किया गया? किन आधारों से किया गया?

पं. राम अभिलाष पान्डेयजी का एक लेख "क्या कामकोटि मठ प्रथम मठ है" शीर्षक "सूर्य" पत्र 21—9—34 के अङ्क में देखा।

क्या कामकोटि मठ प्रथम पीठ है।

काशी हिन्दू धर्म का प्रधान गढ है। अतः यहां के धार्मिक व्यवस्था का मान भारत वर्ष में होना स्वाभाविक है। प्रायः सभी लोग यहां से मान प्राप्त कर अपने गौरव को बढाने के लिये लालायित रहते हैं। पर उनके व्यक्तिगत गौरव की अपेक्षा काशी की गौरव महान है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

कुछ लोग कांची कामकोटि मठ को जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित प्रथम पीठ बतलाकर उस मठ के अधिपति स्वामी जी महाराज को जगद्गुरु शङ्कराचार्य महराज की पदवी से विभूषित करना चाहते हैं। इस कार्य के लिये एक स्वागत समीति भी बना डाली गई है जिसके सदस्य काशी के अनेक धर्मप्राण सज्जन और स्वागताध्यक्ष काशीराज बनाये गये हैं। काशी के कतिपय गण्यमान धर्मप्राण पुरुषों के हस्ताक्षर से अब इसके विरुद्ध एक निवेदन पत्र प्रकाशित होकर सर्व साधारण में वितरित हुआ है जिसको उपेक्षा करना विचारशील पुरुषों के लिये अन्याय है। अब तक आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित श्री शृङ्गेरी मठ, शारदा मठ, गोवर्द्धन मठ और ज्योतिर्मठ ही प्रसिद्ध हैं। किन्तु अब यह सिद्ध

करने की चेष्टा की जा रही है कि प्रथम पीठ कांची कामकोटि मठ है और उसके अधिपति ही जगद्गुरु शङ्कराचार्य हैं। यदि साधू सन्यासी के नाते उस मठ के अधिपति स्वामीजी महाराज को काशी में स्वागत करने का आयोजन हो तो इसमें किसी को कोई भी आपत्ति नहीं हो सकती। पर जिसप्रकार कतिपय व्यक्तियों द्वारा स्वागत का आयोजन किया जा रहा है उसमें तो महान रहस्य मालूम पड़ता है। इससे तो भोले-भाले धर्मप्राण पुरुषों को भ्रम में डालकर ये लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। हो सकता है, आज आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों की अपेक्षा कांची कामकोटि मठ ही अधिक समृद्धिशाली हो, उसके अधिपति स्वामीजी महाराज ही अधिक विद्वान तपस्वी एवं पुरुषार्थी हों, पर इससे न तो उनका मठ ही आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठों की तुलना में आ सकता है और न उनका स्वागत ही जगद्गुरु शङ्कराचार्य के नाम से किया जा सकता है।

यदि कांची कामकोटि मठ को ही आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित प्रथम पीठ और उसके अधिपति स्वामीजी महाराज को ही जगद्गुरु सिद्ध करने के लिये उनके स्वागत का आयोजन किया जा रहा हो तो यह प्रयत्न विचारशील पुरुषों की दृष्टि में कभी भी सराहनीय नहीं हो सकता। क्या इस प्रयत्न से कांची कामकोटि मठ प्रथम पीठ हो सकता है?"

श्रीकाशी में पधारे हुए कुम्भकोण मठाधीशजी से कुछ प्रश्न पत्रों और नोटिसों में पूछी गई थी जिनका संग्रह संस्कृत में अनुवाद कर निम्न प्रकाशित किया जाता है :—

1. श्रीमच्छङ्कराचार्यैः कामकोटिपीठमठं स्थापितं न वा? यदि स्थापितं तदा कुत्र कदा स्थापितम्? एकत्र स्थापितस्य पीठस्यान्यत्र नयने शास्त्रं संमनुते न वा? अन्यत्र नीतं पीठं भवितुमर्हति न वा?

2. श्रीमच्छङ्कराचार्यैः दिक्चतुष्टये विभज्य वेदचतुष्टयं मठचतुष्टयं स्थापितमिति यच्छ्रूयते तत्र किं प्रमाणम्? तदन्यथास्य कुम्भकोण मठस्य पंचमत्वं सिद्ध्यति न वा?

3. कुम्भकोणमठीयैः यदुच्यते 'श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्याः कांच्यामेकं मठं स्थापयित्वा तत्रैव सर्वज्ञ-पीठारोहणमकुर्वन्' इति। तत्र प्रमाणं वर्तते न वा?

4. 'तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः। सरस्वती भारतीच पूरी चेति दशैव हि'। इति दश सम्प्रदायाः श्रूयन्ते। कुम्भकोणमठीयानां 'इन्द्र सरस्वती' सम्प्रदायः (नाम) प्रमाणसिद्धो न वा? यदि सिद्धस्तदा तत्र किं प्रमाणम्? कुत आरभ्यास्य दशमिन्नस्य नवीनस्य प्रवर्तनमभूत्?

5. सुरेश्वराचार्याः श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्यैः कस्मिन् मठे नियोजिताः? तेषामवस्थितिसमयः कियान्?

6. कति महावाक्यानि? कस्य वेदस्य किं महावाक्यम्? महावाक्यस्य किं लक्षणम्? ॐ तत्सदिति वाक्ये महावाक्यलक्षणं वर्तते न वा? यदि वर्तते तर्हि कस्य वेदस्येदं महावाक्यम्? तत्र किं प्रमाणम्?

7. कत्याम्नायाः? तत्प्रतिपादकाः प्रमाणग्रन्थाः के?

8. शाङ्करविजयग्रन्थाः कति वर्तन्ते ? तन्निर्मातारः के ? कस्य ग्रन्थस्य प्रामाण्यं शिष्टैरुररी कृतम् ? तेषां परस्परविरोधे कथं निर्णयः ?

9. शिवरहस्यग्रन्थरचयिता कः ? तस्याष्टादशपुराणान्तर्गतत्वमस्ति न वा ?

10. श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्याः तद्गुरुपरमगुरुवः तच्छिष्याः सुरेश्वरपद्मपादहस्तामलकतोटकाचार्याश्च किं सांप्रदायकाः ?

7. पन्डितप्रवर श्रीहाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी का पत्र

मेरे पिता जी और मैं दोनों पन्डितप्रवर श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी (अध्यापक, राजकीय संस्कृत कालेज, काशी) के यहां जाने का अवकाश मिला। वार्तालाप के बीच में आपने एक पत्र का नकल दिखाया जिसे आपने श्री राय माधोराम संड को भेजा था। यह पत्र "सूर्य" ताः 9—10—1934 के अङ्क में प्रकाशित भी किया गया। पत्र का नकल नीचे दिया जाता है।

श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी का पत्र कुम्भकोणम् के श्री शंकराचार्य जी के संबन्ध में कुछ प्रश्न।
किसी प्रकार का उत्तर न मिला

कामकोटि पीठ के श्री शंकराचार्य जी के लिये बनी स्वागत समिति के सदस्य पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी ने निम्न पत्र पं० माधोराम संड के पास भेजा था जिसका इन्हें कुछ भी उत्तर न मिला :—

महाशय,

सविनय निवेदन है कि कामकोटि पीठ कांची के श्री शंकराचार्य जी के स्वागत के लिये जो समिति बनी है, उस समिति में मुझे सदस्य निर्वाचित किया है, इस लिये मैं कृतज्ञ हूं। परन्तु इस विषय में कुछ बात मन में आती है। आशा है उसका उत्तर देने के लिये अवश्य कृपा करेंगे।

मुझे यह सुनने में आया है कि उपर्युक्त शंकराचार्य महोदय शृङ्गेरीप्रभृति चार मठों के ऊपर अपना स्थान कहते हैं। परन्तु इसमें विद्यारण्य का "शंकर दिग्विजय" अथवा और किसी प्रमाणिक ग्रन्थ का निर्देश नहीं मिलता है, न शृंगेरी मठ जो कि भगवत्पाद का प्रधान स्थान समझा जाता है उसका वर्तमान श्री शंकराचार्य जी इस बात को स्वीकार करते हैं। इस स्थिति में आपकी स्वागत कारिणी समिति यदि इन शंकराचार्य को चारों मठ के ऊपर गुरु रूप में स्वागत करने का विचार करती है, तो इस झगडे में पडना काशी के पन्डितों के लिये कहां तक उचित होगा ?

पूज्यपाद गुरुवर्य कैलासवासी महामहोपाध्याय प्रातः स्मरणीय श्री शिवकुमार शास्त्री महोदय के साथ तात्कालिक शृंगेरी मठ के पूज्यपाद शंकराचार्य जी का बहुत कुछ सम्बन्ध था। हम परम्परा से सुनते आते हैं कि, शृंगेरी ही भगवत्पाद का प्रधान पीठ है। इस बात को परित्याग करने का कोई युक्त प्रमाण अभी तक न मिलने से हमें बहुत सन्देह हो रहा है।

पूर्व समय में भी अनेक माननीय धर्माचार्य काशी में आते थे। उनके लिये उस समय इस प्रकार स्वागत कारिणी समिति नहीं बनती थी। आप सब धर्मप्राण तथा प्राचीन पद्धति के अनुयायी हैं, सहसा इस प्रकार नवीन पद्धति पर आप लोगों को आरूढ होना उचित है या नहीं, यह आपको ही विचारणीय है।

गत आषाढ में मुझे जब्बलपुर जाना पडा था, उस समय कामकोटि शंकराचार्य जी वहीं ही थे। वहां के धनी लोगों की तरफ से आचार्य के अतिथ्य का प्रबन्ध अवश्य था परन्तु इस प्रकार स्वागत कारिणि समिति आदि नहीं थी।

साधारण रीति को परित्याग कर नवीन मार्ग के परिग्रह करने से कई शंका हो जाती हैं। आशा है आपके द्वारा मेरी शङ्का हट जायगी और मेरी प्रगल्भता के लिये मुझे क्षमा करेंगे।

भवदीय,
हाराणचन्द्र भट्टाचार्य।
("सूर्य" से उद्धृत 9—10—1934)

नोट:—(स्वागत कारिणी समिति व कार्यकारिणी समिति के कई सदस्यों ने इस प्रकार के अनेक पत्र भेजा था पर एक का भी जवाब अब तक न मिला)

8. काशी बिहारीपुरीमठ का सभा विवरण तथा काशी में 1886 ई० का व्यवस्था।

माननीय श्रीगोस्वामी शिवनाथपुरीजी, महन्त अन्नपूर्णा मन्दिर एवं माननीय श्रीस्वामी रामपुरीजी, महन्त विनायक बिहारीपुरी मठ, से भेंट हुई। कुम्भकोण मठ विषय की चर्चा जब उठी, इतने में पं० धूमावतीजी, ...र श्रीस्वामी लालनाथजी, पं० जानकीशरण त्रिपाठीजी (संपादक-सूर्य), वहां आ पहुंचे। उस समय जब ...ां पर पहुंचा मैं ने अनेक विद्वान व माननीय परिव्राजकों को वहां पर उपस्थित देखा। कुछ देर बहस के पश्चात् सबों ने निश्चय किया कि काशीधाम में एक विद्वत् सभा की जाय और आम जनों को भी बुलाया जाय और ...काञ्ची मठ विषयक प्रचारों पर अच्छी तरह बहस कर निर्णय कर दिया जाय। तदनुसार श्रीस्वामी शिवनाथपुरीजी ...न्त, अन्नपूर्णा मन्दिर) एवं श्रीस्वामी रामपुरीजी दोनों के हस्ताक्षर से एक नोटिस 'श्रीकाञ्ची कामकोटिमठ के ...चार्य के सम्बन्ध में विचार सभा' शीर्षक छपवा कर प्रकाशित किया- जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

श्रीकाञ्ची कामकोटि मठ के शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में विचार सभा।

हिन्दू धर्म के केन्द्र पवित्र काशीपुरी में पधार रहे श्रीकाञ्ची कामकोटि मठ के शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में जो कुछ नोटिसों द्वारा मतभेद फैल रहा है वह नितान्त अवांछनीय है, उसके सम्बन्ध में

उचितानुचित विचार करने के लिए आगामि आश्विन कृष्ण रविवार अष्टमी, 30 सितम्बर को, सायंकाल 4 बजे साक्षीविनायक बिहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित विद्वान एवं सन्यासियों की सभा होगी। आशा है कि उक्त अवसर पर पधार कर निरपेक्ष विचार में धर्म प्रेमी सज्जन सहायक होंगे।

निवेदक
गो० शिवनाथ पुरी,
(महन्त, श्रीअन्नपूर्णा मन्दिर)
स्वामी रामपुरी,
(साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ)

30 सितम्बर 1934 के सायंकाल चार बजे साक्षीविनायक बिहारीपुरी मठ में होने वाली विद्वानों सन्यासियों की सभा के बारे में सर्वसाधारण समस्त जनता को सूचना दी गयी जो 'आज' पत्रिका के 30-9-के अङ्क में सूचित कराया गया। नोटिस एवं "आज" पत्र 30-9-34 के अङ्क दोनों कुम्भकोणमठ के कर्मच मनैजर एवं मठ विद्वानों को भेजा गया ताकि वे अपने विद्वानों व प्रचारकों को उस सभा में भेज कर शङ्का समा करें। नगर में डिंडोरा पीट कर सभा की सूचना सबों को दी गयी।

उक्त बैठक के पूर्व मेरे यहां अनेक विद्वान, परिव्राजक, महन्त, गण्यमान सज्जन, बरावर इस कांची प्रचारों के बारे में चर्चा करने के लिये आया जाया करते थे। मैं भी स्वयं अनेकों के यहां गया था और सूची अनुसार करीब 140 व्यक्तियों से भेंट की। इससे तो यही प्रतीत होता है कि लोगों में किस तरह की सनसनी गयी। जो कुछ हुआ सो सब खुल्लम खुल्ला ही हुआ।

30—9—34 को बिहारीपुरी मठ में सभा हुई। इस सभा के मंत्री का रिपोर्ट नीचे दिया जा है। 1935 ई० में प्रकाशित "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तिका से सर्वजानकारी के लिये उ किया जाता है।

गत 30 सितम्बर सन् 1934 ई० को सायंकाल पांच बजे से कुम्भकोणम् के आचार्य के सम्बन्ध में विचार करने के लिये स्थानीय साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं संन्यासियों की एक विराट सभा हुई। भीड इतनी थी कि कई दर्शकों को बैठने की जगह तक भी न मिली। श्री प० प० स्वामी अच्युताश्रम जी (काशी शाखा द्वारका मठाधीश), स्वामी रामपुरीजी (महन्त बिहारीपुरी मठ), गो० विश्वनाथपुरी जी (महन्त अन्नपूर्णा मन्दिर), धर्मवीर स्वामी लालनाथ, पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी (गवर्नमेंट संस्कृत कालेज), पं० मदन मोहन जी शास्त्री (प्रिंसपाल मारवाडी संस्कृत कालेज), पं० विद्याधर जी गौड [हि० वि० वि०], पं० गोपाल शास्त्री जी दर्शन केसरी, पं० पूर्णचन्द्राचार्य जी (टीकमणि संस्कृत कालेज), श्री रुद्रभट्ट जी (प्रतिवादि भयंकर भयंकर,) पं० जानकी शरण जी त्रिपाठी, पं० सरजू प्रसाद जी 'द्विजेन्द्र', पं० तारामोहन जी, पं० धूमावती प्रसाद जी पाण्डेय, पं० देवर भट्ट जी, आदि प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे।

प्रारम्भ में स्वामी अच्युताश्रम जी ने काशी राजकीय संस्कृत विद्यालय के अध्यापक, काशी के प्रतिष्ठित विद्वान, पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी को सभापति पद पर बैठने का प्रस्ताव करते हुए कुम्भकोणम् के शङ्कराचार्य के संम्बन्ध में उनके अनुयायियों द्वारा होने वाले भ्रामक प्रचारों का कडे शब्दों में विरोध किया और कहा कि प्रसिद्ध चार प्रधान पीठों के अतिरिक्त कुम्भकोणम को प्रथम एवं प्रधान पीठ मानना तथा उसके शङ्कराचार्य ही जगद्गुरु शङ्कराचार्य हैं ऐसा कहना जनता को धोखा देना है। मैं कुम्भकोणम् के शङ्कराचार्य जी का काशी आने पर एक त्यागी विद्वान, प्रतिष्ठित संन्यासी होने के नाते स्वागत करने के लिये तैय्यार हूं पर उन्हें केवल जगद्गुरु मान कर जनता की आखों में धूल झोंकना नहीं चाहता। मैं उनको जगद्गुरु मानकर उनका स्वागत करने वालों का प्रथम विरोधी हूं। मठाम्नाय और विद्यारण्य कृत शङ्कर दिग्विजय ही प्रामाणिक पुस्तक है। इसके अनुसार आद्य शङ्कराचार्य जी ने चार ही मठ चार ही महावाक्य चार वेद के लिये चारों दिशाओं में स्थापित किया है। उन्होंने पांचवा कोई भी मठ स्थापित नहीं किया और न उसके लिये उन्होंने कोई पद्धति ही बनाई।

श्री स्वामी रामपुरी जी ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए पत्रों, ट्रेक्टों, पर्चों तथा अन्य प्रकार के अनुचित तरीकों से कुम्भकोणम् के कर्मचारी अपने को प्रधान बनने का जो षडयन्त्र कर रहे हैं उसकी भर्तसना की और कहा कि ऐसा करने से धर्म पर आघात पहुंचता है अतः इसका निर्णय यहीं काशी में हो जाना चाहिये और यह सिद्ध कर देना चाहिये कि शृंगेरी, द्वारका, गोवर्धन और ज्योति मठ के अतिरिक्त पांचवां कोई भी मठ श्री आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है।

पं० पूर्णचन्द्राचार्य जी तथा पं० मदन गोपाल जी के समर्थन करने पर पं० हाराणचन्द्र जी भट्टाचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। तत्पश्चात् पं० गोपाल शास्त्रीजी, दर्शन केसरी, ने कुम्भकोणम के शङ्कराचार्य द्वारा प्रकाशित करायी गयी पुस्तकों को पढ कर उनमें लिखी हुई झूठी बातों का खण्डन किया और कहा कि इस प्रकार का भ्रामक प्रचार करना बुरा है। असल में चार मठ हैं। पांचवां मठ का कहीं कोई भी उल्लेख नहीं है। पं० सूर्यनारायण शास्त्री जी ने कहा कि श्री प० प० श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी ने एक पत्र श्री कुम्भकोण मठाधीश को भेजा था जिसमें उन्होंने ऐसे भ्रामक प्रचारों का उल्लेख करते हुए आप से इनका उत्तर मांगा और यह निवेदन किया था कि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित मठों में कोई भी भेद भाव नहीं है, सब समान ही हैं ऐसा आप श्री मुख द्वारा कह कर भ्रम को दूर कर दीजिये। इसपर श्री कुम्भकोणम् स्वामीजी ने कहा कि इसका निपटारा काशी आने पर करूंगा। पर अब तक इसका निपटारा कुछ भी नहीं हुआ। प० मदन मोहन जी शास्त्री ने 48 वर्ष पूर्व काशी के 80 पण्डितों ने चार ही प्रधान मठ के होने की जो व्यवस्था दी है उसका समर्थन करते हुए कहा कि एक बार पण्डितों ने व्यवस्था दे ही दिया है, अब उस पर पुनः व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी व्यवस्था को हमें मानना चाहिये। इसके उपरान्त श्री स्वामी चन्द्रशेखर गिरि जी और कुछ कुम्भकोण मठ के अनुयायियों की भी भाषण हुए जिनका सप्रमाण सयुक्ति खंडन किया गया। धर्मवीर श्री स्वामी लालनाथ जी ने भी इनके मठ के विषय में कडी आलोचना की। श्री स्वामी जी 48 वर्ष पूर्व काशी के पण्डितों के व्यवस्था का समर्थन करते हुए और इन प्रचारों का घोर विरोध करते हुए पंडितों व संन्यासियों से प्रार्थना की कि इसका निर्णय पुनः आज यहीं कर देना चाहिये। ऐसे प्रचारों से हमारे

धर्म पर घोर आघात पहुंचता है। उन्होंने श्री 1008 श्री जगद्गुरु श्री श्रृङ्गेरी मठाधीश व श्री 1008 श्री जगद्गुरु गोवर्द्धन मठाधीश के भेजे हुए तारों को पढ कर उनका आशय हिन्दी में सुनाया। श्री श्रृङ्गेरी से भेजी हुई तार—

"Your wire. In our sincere opinion the only basis clearing doubts regarding Acharya's Gadis found in the famous work Mathamnayastotra. If you want you may ascertain also from Jagannath Dwarka Mutts."

श्री जगद्गुरु श्री भारती कृष्णतीर्थ जी गोवर्द्धन मठाधीश से भेजी हुई तार—"Yours recd. Adi Shankaracharyas all biographies mention only Govardhanmutt, Shringeri Mutt, Dwarkamutt and Jyotirmutt as established by himself. If Kumbakonam claims otherwise ask for original authorities."

इसके अतिरिक्त श्री रुद्रम भट्ट जी, पं० गोपालदास जी, पं० तारामोहन जी, पं० पूर्णचन्द्राचार्य जी, श्री विश्वनाथपुरी जी, श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी (टेढीनीम) आदि के भी ओजस्वी भाषण हुए।

सभापति जी ने कहा कि मैं स्वामी जी को एक योग्य विद्वान् प्रतिष्ठित संन्यासी होने के नाते से स्वागत करने के लिये तैय्यार हूं। अद्वैतियों के सामने कोई बडा और छोटा नहीं है। 48 वर्ष पूर्व सन् 1886 के व्यवस्था का समर्थन करते हुए आपने कहा कि आज कल के जितने पण्डित हैं वे उन्हीं गुरु पण्डितों के चेले हैं अतः इन्हें अपने गुरुओं के व्यवस्था को मानते हुए तदनुकूल चलना चाहिये। किसी भी प्रामाणिक पुस्तक से यह बात सिद्ध करना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है कि ॐ तत्सत् महावाक्य है, इन्द्र सरस्वती संप्रदाय पुरातन और श्रेष्ठ है और श्री शङ्कराचार्य जी ने एक मठ की स्थापना कांची में की है। इस प्रकार के प्रचार से हम लोगों के धर्म की हानी होती है।

अन्त में श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी का प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से निश्चित हुआ कि भगवान आद्य शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित (श्रृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्धन और ज्योतिर्मठ) चार ही मठों का प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है और इनके अतिरिक्त कोई दूसरा मठ श्री आद्य शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित नहीं मालूम पडता है। इस प्रस्ताव का समर्थन और अनुमोदन श्री स्वामी लालनाथ, पं० धूमावती पाण्डेय जी और श्री सुरेश्वर प्रसाद मिश्र जी ने किया।

पं० सीताराम शास्त्री, न्यायाचार्य
राजगोपाल शर्मा
मंत्री।

"सूर्य" ता० 2—10—34 और 5—10—34 के पत्रों में इस सभा का विवरण पाठकगण पायेंगे। सर्वजानकारी के लिये उसमें से कुछ भाग नीचे दिया जाता है।

काशी में पन्डितों और सन्यासियों की सभा
कुम्भकोण के शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में विचार
भ्रामक प्रचारों का निराकरण
काशी—सोमवार

काशी पुरी में पधार रहे कुम्भकोणम् के शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में विचार करने के लिये कल शाम को स्थानीय साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित विद्वान एवं सन्यासियों की एक सभा हुई। जिसमें काशी के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान एवं सन्यासीगण उपस्थित थे। अनेकशास्त्रविद् प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय म० म० शिवकुमार शास्त्री के शिष्य, काशी राजकीय संस्कृत विद्यालय के अध्यापक, काशी के प्रतिष्ठित विद्वान, पन्डित हाराण चन्द्र शास्त्रीजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया था।

कुम्भकोणम् के शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में जो उनके कुछ अनुयायीयों ने यह प्रचार कर रखा है कि प्रसिद्ध प्रधान चार पीठों के अतिरिक्त कुम्भकोणम् प्रधान एवं प्रथम पीठ है और उसके शङ्कराचार्य ही जगद्गुरु शङ्कराचार्य हैं, अन्य प्रधान पीठों के आचार्य श्री गुरु हैं, आदि अनेक प्रकार के भ्रमों के निराकरण करने पर विचार हुआ। उनके अनुयायियों की ओर से कहा गया कि इस प्रकार के प्रचार का दायित्व शङ्कराचार्य महाराज पर नहीं है। जिन लोगों ने ऐसा भ्रामक प्रचार कर रखा है उन्हीं से पूछना चाहिये। दूसरे पक्ष ने इस प्रकार के प्रचार का विरोध किया और कहा कि स्वामीजी महाराज को इसका निराकरण करना चाहिये। इसी प्रकार और भी कुछ भ्रामक बातें थी जिन पर विचार हुआ। इसी प्रकार का विवाद पहले भी पचास वर्ष पूर्व उपस्थित हुआ था। जिसपर काशी के प्रसिद्ध विद्वान प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय म० म० कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य और म० म० प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय शिवकुमार शास्त्री आदि अस्सी विद्वानों के हस्ताक्षर से एक व्यवस्था प्रकाशित हुआ था जिसमें चार पीठ प्रधान माने गये हैं और उन्हीं के अधिपति जगद्गुरु शङ्कराचार्य और अन्य पीठ उनके अन्तरगत हैं तथा उनके अधिकारीयों को केवल शङ्कराचार्य होने का व्यवस्था दिया गया था। अन्त में उसी व्यवस्था के आधार पर इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ "प्रातः स्मरणीय भगवान आद्यशङ्कराचार्यजी महाराज ने चार ही पीठों की चार दिशाओं में स्थापना की है। इसीलिये अन्य सब मठ उन पीठों के अन्तरगत हैं। कांची कुम्भकोण मठाधीश से प्रार्थना की जाय कि यदि वे काशी में पधारने पर ऐसे भ्रामक प्रचारों का निराकरण करें तो काशी की धर्मप्राण जनता उनका हार्दिक स्वागत करें।"

काशी बिहारीपुरी मठ सभा में आये हुए पन्डित लोगों ने और एक प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास किया कि पं. ज. ग. विश्वनाथ शर्माजी काञ्ची मठ विषयक प्रचारों के उत्तर रूप में एवं सत्यता की सर्वजानकारी के लिये एक पुस्तक प्रकाशित करें। तदनुसार मेरे पिता और मैं खुल्लम खुल्ला इस विषय के वाद-विवाद में भाग लेना आरम्भ कर दिया। इस सभा के निर्णयानुसार एक नोटिस "काशी के पन्डितों एवं सन्यासियों का प्रशंसनीय निर्णय" शीर्षक एवं 1886 ई० काशी के प्रकान्ड विद्वानों एवं माननीय परिव्राजकों का व्यवस्था पुनः छपवाकर प्रकाशित किया जिसका नकल पाठकगण मुझसे प्रकाशित 'श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक में पायेंगे।

कुम्भकोण मठानुयायीयों ने काशी में आक्षेप किया कि काशी के 1886 ई० का व्यवस्था एक ही पक्ष ने दिया था जिसे "श्रीमज्जगद्गुरु पीठाधिकार व्यवस्था चन्द्र" शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित किया गया था और इस 'व्यवस्थाचन्द्र' का 'परामर्श' दूसरे पक्षवालों ने प्रकाशित किया है, इसलिये विपक्षी दल की व्यवस्था पर भी आलोचना करनी चाहिये। तदनुसार विपक्षी दल के व्यवस्था पर भी आलोचना की गयी। इस विपक्षी दल के व्यवस्था को भी देखा गया। प्रकृतोपयोगी चौथे प्रश्न पर दोनों दलों का मत एक ही था। दोनों दलों के व्यवस्था के अनुसार यह मालूम हुआ कि केवल चार ही आम्नाय मठ हैं, पीठाभिषिक्त आचार्य भी चार ही हैं और सम्प्रदाय भी चार हैं। इन्हीं चारों पीठों के अभिषिक्त आचार्य ही पूजा और दिग्विजय करने के योग्य हैं। कुम्भकोण मठानुयायीयों का प्रचार कि विरोधी दल ने 1886 ई० के व्यवस्था के विरुद्ध व्यवस्था दी है सो प्रचार भ्रामक व मिथ्या प्रचार है ?

30—9—1934 के दिन जो सभा काशी साक्षीविनायक बिहारीपुरीमठ में हुई, उस सभा की निर्णय नोटिस रूप में छपकर प्रकाशित हुई थी जिसका नकल नीचे दिया जाता है—

काशी के पन्डितों और सन्यासियों का प्रशंसनीय निर्णय

आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार ही मठ हैं।

ता० 30 सितम्बर को सायंकाल साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित संन्यासी, महात्माओं और पन्डितों की सभा हुई। काशी के प्रतिष्ठित विद्वान् पन्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया था। काशी में कुम्भकोणम् मठ के महाराज आने वाले हैं, उनके अनुयायी 'पण्डितपत्र' आदि में एवं कुछ अन्य आधुनिक ट्रेक्टों द्वारा कुम्भकोणम् कामकोटि मठ को आद्य शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित प्रथम पीठ कहकर प्रचार कर रहे हैं, इस पर विशद रूप से विचार करने के पश्चात् सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि भगवान आद्य शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित (शृंगेरी, द्वारका, गोवर्धन, और ज्योतिर्मठ) चार ही पीठों का प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार का निर्णय प्रातः स्मरणीय कैलाशचन्द्र शिरोमणी भट्टाचार्य प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र प्रभृति उस समय के अस्सी विद्वानों ने लगभग 48 वर्ष पूर्व शास्त्रानुकूल एक व्यवस्था देकर किया था, अतः उक्त चार मठों के अतिरिक्त कोई दूसरा मठ श्री आद्य शंकराचार्यजी द्वारा स्थापित नहीं मालूम पड़ता है।

महावीर प्रसाद त्रिपाठी।
(अध्यक्ष श्री विश्वनाथ मन्दिर, काशी)
गो० शिवनाथ पुरी,
(महन्त श्री अन्नपूर्णा मन्दिर)
हाराणचन्द्र भट्टाचार्य,
(अध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज, काशी)
स्वामी रामपुरी,
(साक्षी विनायक बिहारीपुरी मठ)
स्वामी ब्रह्मानन्द संन्यासी,
गोपाल शास्त्री, दर्शन केसरी,
श्री पूर्णचन्द्राचार्य
(परीक्षा बोर्ड सदस्य यू० पी० गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस,
व्याकरण वेदान्त प्रधानाध्यापक, टीकमणि संस्कृत कालेज)

"पन्डित पत्र" ता० 13—5—1935 के अङ्क में श्री नन्दकिशोर शर्म्मा 'वाणीभूषण' ने एक पत्र 'मिथ्या प्रचार' शीर्षक प्रकाशित किया था। ताः 30—9—1934 के दिन बिहारीपुरी मठ की सभा का विवरण देते हुए आप कहते हैं कि मिथ्या प्रचार हम लोग कर रहे हैं। इस पत्र का उत्तर 'पन्डित पत्र' ता० 27—5—1935 को एक 'प्रत्यक्षदर्शी' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसका नकल नीचे दिया जाता है। बिहारीपुरीमठ की सभा के 7½ महिने बाद श्रीनन्दकिशोर शर्म्माजी की आंखे खुली और वे अब इस सभा का विवरण देने लगे। पाठकगण स्वयं जानलें कि सत्यता किस पक्ष में है।

मिथ्या प्रचार किसका !

हर्ष की बात है कि अपने आप को "वाणीभूषण" लिखनेवाले "पं. नन्दकिशोरजी" की आंखे बहुत दिन बाद खुली। पर निद्रा के आवेश में आपको यह भी ज्ञात न हुआ कि आठ माह बाद जिस सभा की कार्यवाही में गलत सिद्ध करने जा रहा हूं वह किस महीने में हुई थी। अच्छा होता कुछ दिन बाद जब लोग बिलकुल भूल जाते तो आप अपना प्रचार प्रारम्भ करते। "उल्टा चोर कोतवाल को डांटे" वाली कहावत को आपने चरितार्थ कर दिया है। जब पंडितगण द्रव्य की आशा से पीडित होकर अपने पिता गुरु के बचनों को उल्लंघन करते, उन्हें अज्ञानी बनाने में तैय्यार हैं और अपने कार्यसिद्धि के लिये नूतन पुस्तकें लिखते हैं, अर्थ की लालसा से "हां में हां" मिलाते हैं, शास्त्र व शिष्टाचार परित्याग कर मनमानी धर्मशास्त्र गढते हैं, उनसे तो हमारे पं. नन्दकिशोर जी गये बीते नहीं हैं, ऐसा मालूम पडता है। इससे मुझे सन्तोष ही है। स्वयं पं. जी बहुत देर तक खडे रहते हुए भी यह लिखते संकोच नहीं करते हैं कि जगह काफी थी। श्रीमान् पं. धूमावती पान्डेयजी के उद्योग से थोडी सी जगह आपको भी मिल गई। पं. जी! जरा अपने स्थिति का मनन तो एक बार करें। श्री बिहारीपुरी मठ के हाल एवं आंगन सब भरे ही थे। आप सभा के प्रारम्भ से ही "वीरभद्र" का कार्य कर रहे थे। यह खेद है कि सफलता प्राप्त करने के बदले आपको अपमानित होना पडा। विद्वानों की सहनशीलता और श्रीमान् पं. धूमावती प्रसाद पान्डेय की प्रयत्न से आपको भी कुछ बोलने का अवसर प्रदान किया गया। बस आप अपनी "वाणी" का दूषण प्रकट करने लगे। अहंकार से झूमते हुए पन्डितजी ने स्व० प्रातः स्मरणीय म० म० कैलाशचन्द्र भट्टाचार्यजी, म० म० शिवकुमार मिश्रजी, स्व० म० म० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री प्रभृति गणों को मूर्ख बताते हुए उनकी व्यवस्था के विरुद्ध भद्दे शब्दों से भाषण करने लगे। जहां विद्वानों की सभा में शान्त रूप से शास्त्रीय विचार हो रहे थे, वहां आपके अनर्गल भाषण से कोलाहल होने लगा। लोगों ने आपको बैठा दिया। बाद में श्री गो० रामपुरीजी, श्रीमान् हाराणचन्द्र भट्टाचार्य, श्रीमान पं. धूमावती पान्डेय और धर्मवीर स्वामी लालनाथजी ने आपके भाषण की कडी आलोचना कर लोगों को शांत किया। बाद आप चिढ कर वहां से चलते भये। श्रीमान् पं. हाराणचन्द्रजी के सभा विसर्जित करने के उपरान्त ही श्री प० प० स्वामी अच्युताश्रमजी, श्रीमान् पं. मदनमोहनजी, श्रीमान् पं. विद्याधरजी गौड आदि प्रतिष्ठित विद्वान और सन्यासी सब सभा से उठ कर चले गये। यदि पं. नन्दकिशोरजी सभापति पं. हाराण चन्द्रजी, गो० रामपुरी जी, गो० विश्वनाथपुरीजी (अन्नपूर्णा मन्दिर), धर्मवीर स्वामी लालनाथजी, पं. जानकी शरण त्रिपाठी आदि लोगों से मिलें तो शंका एवं अपनी गलती का निवारण उसी समय हो जायगा। मुझे सन्देह हो रहा है शायद पन्डितजी स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। स्वयं सभा विसर्जित होने के पहिले भागकर सब अन्य लोगों को भी उसी कक्षा में मिलाने का साहस देखकर आश्चर्य हो रहा है। ऐसा व्यक्ति क्या क्या नहीं कर

सकता। स्वयं सत्य का गला घोंटते हुये पं. नन्दकिशोर जी ने गो॰ तुलसीदास के शब्दों को चरितार्थ कर दिया है। (झूठे लेना, झूठे देना, झूठे भोजन, झूठे चबेना)। शायद ऐसा काम तो हर एक पद पद पर न करते होंगे।

व्यक्तिगत रूप से श्री काञ्ची कामकोटि कुम्भकोणम् मठाधीशजी पर कोई आक्षेप अथवा शंका है ही नहीं। वे तपस्वी, सदाचारी, सौम्यमूर्ति भले ही हो सकते हैं पर उनका मठ इससे न तो श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित कहलाया जा सकता है और न वे तो श्री शङ्कराचार्य के साक्षात परम्परा के हो सकते हैं। हम लोगों का आक्षेप तो इसी विषय पर है। शास्त्र विचारों को छोड, पूछे गये दसों प्रश्नों का उत्तर न देकर, ऐसे छोटे विषय पर छेड छाड करना निष्प्रयोजन है। पं. नन्दकिशोरजी क्यों नहीं उन प्रश्नों का उत्तर देते। अपने पुरुषार्थ असत्यता पर न दिखाकर शास्त्र-विचार-पर दिखाते तो काशी का गौरव बढता पर शास्त्र विचार से तो आप उतना ही दूर रहना चाहते हैं जितना सती स्त्री कामी पुरुष से। खूब याद रहे कि "नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात् पातकं महत्"। सत्य को बहुत दिन छिपाकर असत्य का प्रचार करने पर ही श्री विश्वेश्वर पुरी में इसका भंडाफोड हुआ। अनेक मठाधीश और श्री आचार्य चरण यहां आये पर ऐसा वाद विवाद कभी किसी के आगमन पर नहीं हुआ।

एक प्रत्यक्षदर्शी

9. श्री विश्वनाथ एवं श्री अन्नपूर्णा मन्दिरों के अध्यक्षों का भ्रम निराकरण नोटिस

"पन्डितपत्र" ता॰ 1—10—1934 के अङ्क में प्रकाशित हुआ था कि श्री विश्वेश्वर मन्दिर के अध्यक्ष एवं श्री अन्नपूर्णा मन्दिर के महन्त दोनों देवदेवी प्रशाद लेकर स्वयं श्री स्वामीजी को सिगरा चौमुहानी पर अर्पण करेंगे। ऐसे मिथ्या प्रचार की भंडा फोड़ हो गई। श्री विश्वनाथ मन्दिर के अध्यक्ष एवं श्री अन्नपूर्णा मन्दिर के महन्त दोनों ने इस भ्रम निवृत्यर्थ एक नोटिस छपवाकर प्रकाशित किया जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

भ्रम-निराकरण

सडकों पर प्रसाद देना मर्य्यादा विरुद्ध है।

कामकोटि मठ के महाराज काशी आनेवाले हैं। इस सम्बन्ध में "पण्डित पत्र" के पहली अक्टूबर के अंक में छपा कि श्री विश्वेश्वर मन्दिर के अध्यक्ष एवं श्री अन्नपूर्णा मन्दिर के महन्त सिगरा चौमुहानी पर प्रसाद श्री स्वामी जी महाराज को अर्पण करेंगे। हमलोग भ्रम निवृत्यर्थ यह बतलाना चाहते हैं कि श्री विश्वेश्वर दरबार और अन्नपूर्णा माताजी का प्रसाद यों सडकों पर देने की मर्य्यादा नहीं है। "पण्डितपत्र" में जो भ्रमजनक समाचार छापा गया है वह हम लोगों की स्वीकृति के बिना ही छापा गया है। आशा है कि हमारे इन शब्दों से भ्रम दूर होगा।

महावीर प्रसाद त्रिपाठी
(अध्यक्ष, श्री विश्वनाथ मन्दिर, काशी)
गो॰ शिवनाथ पुरी
(महन्त, श्री अन्नपूर्णा मन्दिर, काशी)

प० प० श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी (काशी पञ्चगङ्गेश्वर मठ) का पत्र

कुम्भकोण मठ प्रचारों द्वारा काशीधाम में जब सनसनी पैदा हुई और जब कुछ माननीय परिव्राजकों व स्वतंत्र विचार के कुछ विद्वानों ने इन भ्रामक प्रचारों का विरोध किया तब कुछ पूर्व में तटस्थ रहे विद्वान व परिव्राजक इन प्रचारों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया था। काशी पञ्चगङ्गेश्वर मठ के प० प० श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी महराज ने मेरे पिताजी एवं मुझे बुला भेजा था। पिता व मैं दोनों वहां पहूंचे। उनको सब हाल कह सुनाया। श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज ने कहा कि आपने कुम्भकोण मठाधीशजी को एक पत्र लिखकर अपने एक शिष्य द्वारा इलाहाबाद भेजवाया था। उस पत्र में आपने श्री कुम्भकोण मठाधीश को लिखा था कि मठाधीशजी इन भ्रामक असत्य एवं द्वेष भरी प्रचार पुस्तकों का निराकरण कर दें और श्रीआद्यशङ्कराचार्य प्रतिष्ठित मठों में भेदभाव नहीं हैं ऐसा श्रीमुख द्वारा लिख दें। कुम्भकोण मठाधीश ने उक्त पत्र के उत्तर में कहवा भेजा कि आप श्रीकाशीधाम में आने पर इस विषय का निपटारा करेंगे।

श्रीकाशी पञ्चगङ्गेश्वर मठ के प० प० श्री 108 श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामीजी मुंशीगंज में ठहरे हुए कुम्भकोण मठाधीशजी को पन्डितों द्वारा प्रेषित पत्र का नकल नीचे दिया जाता है।

"श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्येत्यादिसकलविरुदावलीविराजमानश्रीकांचीपुरकामकोटि पीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरुचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीस्वामिचरणयुगलेषु—

श्रीमदद्वैतमतानुयायी ब्रह्मानन्द सरस्वतीकृतसाष्टांगदण्डवन्दनपूर्वकविनयविज्ञप्तिः। अद्य यावत् षट्त्रिंशद्वत्सरेभ्यः पूर्वं महामाघपर्वनिमित्तं कुम्भकोणमागतवान् तदा श्रीचरणसन्दर्शनं कृतवान्। तत्समये श्रीमन्तः भवतां शृंगेरीमठ विषये यादृशोऽभिमानः वर्त्तते तादृगेवास्मत्कामकोटिपीठविषयेऽपि अभिमानः कर्त्तव्य इत्याज्ञा जाता। अहमपि भवदीयामाज्ञां शिरसा स्वीकृतवान्। गतवत्सरे श्रीमतामास्थानत आगतविपश्चित्समीपेऽपि श्रीमतामाज्ञां शिरसा वहन्नस्मीत्यब्रुवम्। अधुना अस्मदादिपुण्यविशेषवशाच्छ्री-काशीक्षेत्रं प्रति भवतां शुभागमनं श्रुत्वाऽऽनन्दमग्नोऽस्मि।

श्रीकाशीस्थितद्वितचिन्तकयन्त्रालये एकोनविंशद्वत्सरेभ्यः पूर्वं श्रीमन्मठाधिकारिणा श्रीरामशास्त्रि उपाध्यायेन 'श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य चरित्र' नामकपुस्तके श्रीकामकोटिपीठमेकमेव श्रीजगद्गुरुपदवीं अर्हति अन्यानि शृङ्गेर्यादीनि केवलश्रीगुरुशब्दप्रयोगार्हाण्येवेति मुद्रितं विलोक्य एतद्देशीया अन्ये च पंचद्राविडाश्च बहवस्तदसहनं प्रख्यापयन्ति। यदि श्रीपूज्यपादाः जनेषु जातामीर्षां न शमयेयुस्तदा प्रतिक्षणं प्रवृद्धा सती महान्तमनर्थं जनयेदित्यालोच्य विनयपूर्वकं विज्ञापनपत्रमिदं भवच्चरणसन्निधौ प्रेषयामि। अतः अहर्निशं शिष्यश्रेयोऽभिवृद्धिमभिलषन्तः श्रीमन्तः शिष्याणामतिशयितभक्तिश्रद्धाभिवृद्ध्यर्थं श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्यैः परिकल्पितपीठेषु ईषदपि न्यूनाधिकभावो नास्ति सर्वाण्यपि समानानीत्यभिप्रायकश्रीमुखपत्रिकानुग्रहेण शिष्याणां हृद्गतभेदबुद्धिमसहनं च सन्निवारयन्तु भवन्त इति सविनयमभ्यर्थये।'

11. कुम्भकोणमठ का देवदेवी मूर्तियां एवं मूल्यवान वस्तुओं का चोरी होना एवं पुलीस विभाग के कर्मचारियों का प्रयत्न

कुम्भकोण मठाधीश इलाहाबाद से श्रीकाशीधाम आते समय मडुवाडीह के समीप अपना डेरा डाला। सुना जाता है कि मठाधीशजी का पूजापेटी जिसमें देवदेवी मूर्तियां थी सब चोरी हो गयी। समाचार पत्र 'सत्यवाणी' अनकापल्ली, ता० 23—12—1934 के अङ्क में इस चोरी होने का विवरण भी प्रकाशित हुआ है। उस पत्र में लिखा है:—

'कुछ दिनों से कामकोटि पीठाधीश यहां काशी में वास कर रहे हैं और काशीधाम पहुंचने के प्रायः दो दिन पूर्व पीठ की कुछ मूल्यवान वस्तुओं की चोरी हो गयी—स्वर्ण चांदी विग्रह, मूर्तियां, चेन, नेकलस इत्यादि—जिनका मूल्य करीब रु० 15,000 का है, सो लापता हो गया। किस प्रकार चोरी हुई कोई जानता नहीं। मालूम होता है इसके पूर्व एक बार मठ के एक शिष्य ने चोरी की थी और वह शङ्कराचार्य की कृपा व दया द्वारा दन्ड से बच गया। इस समय भी लोग समझते हैं कि ऐसा ही कुछ हुआ होगा।'

इस चोरी के कुछ दिन बाद मेरे यहां खुफिया विभाग के (सि. ऐ. डि.) श्रीयुत उपाध्यायजी मुझसे मुलाकात करने आये थे। उन्होंने मुझको चोरी होने की कथा सब सुनाई। उन्होंने मुझसे कहा कि कुम्भकोण मठवाले मेरे ऊपर बहुत शंका करते हैं और वे चाहते हैं कि किसी प्रकार हो इस चोरी में मुझे फंसाया जाय। उनका अभिप्राय है चूंकि मैं ने मठ विषय का वाद विवाद खडा किया है और मैं कुम्भकोण मठ के प्रचारों का कट्टर विरोधी भी हूं, सम्भवतः इस चोरी में मेरा भी हाथ हो। उन दिनों जब मैं कांग्रेस आन्दोलन में भाग लिया था, श्रीयुत उपाध्याय जी (सि. ऐ. डि.) मेरे ऊपर निगरानी रखते थे और इस सम्बन्ध से हम दोनों के बीच पूर्व परिचय एवं जानकारी थी। एक दिन मडुवाडीह के पुलीस कर्मचारी व मेलूपुरा थाना का एक पुलीस और कुम्भकोण मठ के एक कर्मचारी, ये तीनों मुझे देखने आये। उस पुलीस कर्मचारी ने मुझको दो चिठ्ठियां दिखाई जो मैं ने श्रीकुम्भकोण मठाधीश को 25—7—34 एवं 3-8-34 को लिखा था। उन्होंने पूछा 'क्या आप ने ही ये दोनों पत्र लिखा था?' मैं ने कहा 'हां'। तब उन्होंने इस चोरी के बारे में कहा। मैं ने उनको इस मठ विवाद का विवरण सुनाया। करीब दो घंटे बातें हुई। उन्होंने मेरे घर की तलाशी लेने की इच्छा प्रकट की और मालूम नहीं क्यों उस दिन बिना तलाशी लिये ही, वे चले गये। इसके बाद एक दिन आकर मेरे घर की तलाशी भी ली और कुछ न पाये। मडुवाडीह के पुलीस कर्मचारी अपने पाकेट डायरी में मेरी बातों के प्रश्नोत्तर का नोट लिख लिया। कुछ दिन बाद यही पुलीस कर्मचारी मेरे यहां फिर आये। उन्होंने कहा कि कुम्भकोण मठ के कर्मचारी, कुछ शहर के गण्यमान रईस एवं मठ के कुछ पण्डित लोग उनसे मिलकर बतलाया कि 'किसी प्रकार भी हो मुझे कुछ दिन के लिए कारागृहवास कराना ही होगा और उनके बार बार जोर देने पर वे मेरे यहां दूसरी बार आये। उन्होंने कहा 'वे लोग कहते हैं कि श्रीकुम्भकोण मठाधीश बहुत संतुष्ट होंगे यदि मैं कम से कम एक दिन के लिए भी आपको पुलीस हवालात में बन्द रक्खूं।' उस दिन भी एक घंटा बातें करके फिर चले गये। इस बीच में और एक दिन श्रीउपाध्यायजी पहुंचे और वे मुझे डाटते हुए चले गये। उन्होंने कहा 'यदि आप इस मठ विषय का वाद विवाद छोड दें तो आपके ऊपर इस चोरी का दोषारोपण न लगायेंगे, यदि ऐसा न करें तो आपको जेल की हवा खानी पडेगी'।

एक दिन मेलूपुरा थाने के सब इन्सपेक्टर मेरे यहां आये। आपने मुझको वही कथा सुनायी जो मडुवाडीह के पुलिस कर्मचारी कह गये थे। आपसे पता चला कि कुम्भकोण मठ के कर्मचारी और दो दाक्षिणात्य

प्रभावशाली पण्डित व शहर के रईस 'राय साहब' कि सहायता से कोतवाल साहब और कलक्टर साहब से भेंट कर आये हैं। इसके उपरान्त कुछ दिनों बाद मुझे चौक कोतवाली में बुलाया गया और मुझको कहा गया कि कोतवाल साहब मुझे देखना चाहते हैं। शहर में अफवाह उडा कि मुझे कैद किया जायगा। जब मैं चौक कोतवाली पहुंचा शहर के कुछ गण्यमान सज्जन, विद्वान एवं परिव्राजक कोतवाली के बाहर इकठ्ठा हुए और इस एकत्रित भीड को देखकर कोतवाली में मुझे कहा गया कि मैं घर जा सकता हूं। बाद मुझे भेलूपुरा थाना में बुलाया गया। मुझे धमकी दी गई ताकि मैं कुम्भकोण मठ प्रचारों का विरोध न करूं। दुःख का विषय है कि धर्माचार्य राजकीय कर्मचारियों की सहायता प्राप्त कर अपने विरोधियों का मुंह बन्द कराना चाहते हैं।

एक दिन शहर में मैं जनाब अमीर मिंया, यन्त्रवाला, (कासीपूरा, बनारस) से मिला। जनाब अमीर मिंया का मेरे यहां बराबर आना जाना था और आप यंत्र विषय में मेरे पिता जी के साथ चर्चा भी करते थे। कुम्भकोण मठ में जो चोरी हुई थी उस वृत्तान्त को मिंया ने कह सुनाया और आगे कहा कि उसने कुम्भकोण मठ को स्फटिक लिङ्ग, मेरु और यन्त्र बेचा है। उसने यह भी कहा कि उसे कुछ गहरी रकम मिली थी। इस रकम के साथ साथ दो तोला सोना, चालीस तोला चांदी भी मिला जिसके प्रति उसने स्फटिक शिवलिङ्ग, पंचलोह का यन्त्र, दशोकविद्या यंत्र, आदि बनाकर दिया। ये सब यंत्र व मूर्तियां उसने अक्टूबर 1934 में कुम्भकोण मठ को बेचा था। अमीर मिंया ने एक पत्र मेरे पिताजी को दिया है जिसमें उक्त विवरण पाया जाता है। कुछ महिनों बाद यह भी सुना कि बम्बई में किसी एक सन्यासी पर सन्देह किया जा रहा है और तलाशी भी ली जा रही है। मैं ने पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी से सुना था कि चोर ने एक कुंए के पास योग लिङ्ग, यंत्र, आदि छोडकर भाग गया और चोरी का माल सब मिल गया। मैं ने यह भी सुना कि कुम्भकोण मठाधीश के तपस्या बल पर प्रभावित होकर चोरी की हुई मूर्तियों को चोर ने लौटा दिया। कुम्भकोण मठ के कुछ कर्मचारियों से पूछताछ करने पर यह भी सुना कि खोई हुई मूर्ति मिली नहीं और नवीन मूर्तियां अब पूजित होते हैं। मेरे पिता ने अपने से प्रकाशित पुस्तिका "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" (1935) में चोरी का हाल दिया है। इसके उत्तर रूप में कुम्भकोण मठानुयायीयों से प्रकाशित पुस्तक में कहा गया कि मूर्तियों की चोरी हुई नहीं और कुम्भकोण मठाधीश ने इस कथन की पुष्टि किया है। एक तरफ चोरी होने की खबर पुलिस में देते हैं और पुलिस अपनी कारवाई शुरु कर देती है और दूसरी तरफ प्रचार करते हैं कि चोरी हुई न थी। यथार्थ परमात्मा जानें। यथार्थ चाहे जो हो, इन सब विविध वार्ताओं से सन्देह होता है।

12. माननीय श्री काशी नरेश के साथ पत्र व्यवहार

माननीय श्री काशी नरेश जी को एक पत्र मैं ने 8—9—34 को लिखा था जिसमें महाराजा काशी नरेश को कांची कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों का पोल खोलकर के प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर बतलाया गया था कि श्री आद्यशङ्कराचार्य जी ने केवल चार ही आम्नाय मठ स्थापित किये और काश्मीर देश के सर्वज्ञपीठ पर सर्वज्ञपीठारोहण करके हिमालय सीमा के केदार क्षेत्र से निजधाम जा पहुंचे। मैं ने 23—9—1934 को और एक पत्र भी लिख भेजा। श्री काशी नरेश के यहां से दो पन्डित मेरे यहां आये। आप दोनों ने बतलाया कि महाराजा श्री काशी नरेश मेरे पत्रों को प्राप्त करने के पश्चात् यथार्थ विषय ग्रहण करने के लिये आप दोनों को भेजा है। इनमें से एक व्यक्ति का नाम "झाजी" था (पूरा नाम मैं भूल गया)। आपने इस विषय का पूर्ण विवरण मुझसे पूछा और दो घंटे तक बातें हुई। जाते समय आपने कहा कि काशी नरेश जी को सब हाल विस्तार रूप में कह सुनायेंगे पर आपको एक विषय का खटका था। आपने कहा—

"यद्यपि आपका कथन सब सत्य हैं और हम सबों को सत्य पथ पर जाना न्याय व धर्म है तथापि पं० राजेश्वर शास्त्री जी श्री काशी नरेश जी को आपके कथन विरोध ही में आदेश देंगे। शास्त्री जी का बहुत कुछ प्रभाव है और आप कुम्भकोण मठाधीश के परम भक्त शिष्य हैं। उनका अभिप्राय दरबार में माननीय है। ऐसी स्थिति में आपका प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

कुछ दिन बाद 'झा जी' मेरे यहां फिर आये और अनेक कथा भी सुना गये। इन विषयों का विवरण यहां लिखने से कुछ व्यक्तियों के दिल में दुख होगा, कुछ व्यक्ति इन विषयों को छुपाने का प्रयत्न करते हुए दूसरों पर दोषारोपण करना प्रारम्भ कर देंगे, कुछ व्यक्ति मुझे धमकाने का प्रयत्न भी करेंगे और मैं नहीं चाहता कि आदरणीय महाराजा श्री काशी नरेश जी का नाम इस विवाद में लाऊं, अतः मैं विषयों का विवरण यहां नहीं देता।

केवल मैं इतना कहना चाहता हूं—महाराजा श्री काशी नरेश जी और आपके पूर्वजों ने अनेकानेक परिव्राजकों, तपस्वियों, मठाधीशों और श्री शंकराचार्य प्रतिष्ठित चतुराम्नाय मठाधीशों का सादर स्वागत भी किया है और पाद पूजा भी की है। अनेकों को अभिनन्दन वत्र, स्वागत पत्र, आदि भी दिये हैं। आपके राज्य में ईसा पादरी भी आये, बडे काज़ी भी आये और श्री काशी नरेश ने उनका भी स्वागत किया है? इससे क्या हम कह सकते हैं या निश्कर्ष निकाल सकते हैं कि श्री काशी नरेश जी इन सब महात्माओं के शिष्य हैं या अनुयायी भक्त हैं या उनके प्रचारों को स्वीकार किया है? श्री काशी नरेश जी क्या जाने शास्त्र, श्रुति, स्मृति, पुराण और अन्य प्रामाणिक ग्रंथों का विवरण। अपने दरबार पन्डितों के कथनानुसार आप मान लेते हैं और वे जो कहते हैं वही आपके लिये प्रमाण हो जाता है। कुम्भकोण मठ के भाग्यवश पं० राजेश्वर शास्त्री जी द्रविड का प्रभाव काशी नरेश पर होने से मठाधीश को अभीष्ठ सिद्धि प्राप्त हुई। श्री काशी नरेश द्वारा दिया गया अभिनन्दन पत्र जो कुम्भकोण मठाधीश को दिया गया था उसके द्वारा क्या स्मृति, पुराण और अन्य प्रामाणिक ग्रंथों को आप श्री काशी नरेश मिथ्या अथवा अप्रामाणिक ठहरा सकते हैं? क्या वे स्वयं शास्त्रज्ञ हैं जिससे जटिल समस्याओं पर व्यवस्था दे सकते हैं? कुम्भकोण मठाभिमानियों ने अपने प्रचारों की पुष्टि के लिये व्यवस्था रूप में अभिनन्दन पत्र लिख कर उस पत्र को महाराजा श्री काशी नरेश द्वारा मठाधीश को दिलाया था। मुझसे प्रकाशित पुस्तक "श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" जो निस्सन्देह प्रमाणों के आधार पर सिद्ध करता है कि कांची मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा न प्रतिष्ठित था और न आपसे अधिष्ठित था तथा उस पुस्तक में दिये गये प्रमाणों के विरुद्ध एवं अपने से दियेहुए अभिनन्दन पत्र की पुष्टि में क्या महाराजा श्री काशी नरेश प्रमाण दे सकते हैं? यह विषय इस लिये यहां लिखना पडता है कि कुम्भकोण मठाभिमानी व प्रचारकों ने यह प्रचार करना आरम्भ किया है कि श्री काशी नरेश द्वारा उनको श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य के साक्षात् अविच्छिन्न गुरु परम्परा होने का एवं उनका मठ आदि शङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित होने की वार्ता को प्रमाण से अभिनन्दन पत्र द्वारा सिद्ध किया है। जो विषय आर्ष ग्रंथों एवं प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर सिद्ध हैं तथा जो वृद्ध विज्ञों को परम्परागत स्वीकार है, व्यवहार रूप से जो विषय स्वयं सिद्ध हैं उसके लिये व्यवस्था, प्रचारात्मक पुस्तकें एवं प्रचारों की आवश्यकता नहीं है। यह तो उन्हीं के लिये है जो एक नई समस्या खडी करना चाहते हैं और उनकी पुष्टि के लिये ये सब प्रचार करते हैं और विद्वानों से व्यवस्था मांगते हैं। इन प्रचारों का उद्देश्य केवल कल्पित कथा की पुष्टि करना चाहते हैं। आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठों में तीन मठों की परम्परा (श्री शृङ्गेरी, श्री द्वारका, श्री पुरी जगन्नाथ) अब भी प्रचलित है और तीनों मठाधीश कांची कुम्भकोण मठ प्रचारों का स्वीकार नहीं करते। आप महात्माओं का श्रीमुख अभिप्राय मुझसे प्रकाशित पुस्तक "श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" में प्रकाशित हैं। क्या श्री काशी नरेश उक्त श्रीमुख अभिप्रायों के विरुद्ध में प्रमाण दिखा सकते हैं? महाराजा श्री काशी नरेश ने केवल उनको वही अभिनन्दन पत्र दिया जो कि उनके पन्डितों ने उनको लिखकर दिया था।

13. कुम्भकोण मठाधीश का श्रीकाशी आगमन, "जगद्गुरु लौट जाओ" शीर्षक नोटिस एवं स्वागत का विवरण।

ऐसी भयंकर स्थिति में श्रीकुम्भकोण मठाधीशजी श्रीकाशीधाम, अक्टूबर 6, 1934, को आ पहुंचे। इनका स्वागत अवश्य हुआ पर जैसी धूम मचाई गई थी उसके अनुसार आयोजन वहां नहीं दिखाई पडा और स्वागत प्रबन्ध का दस का एक हिस्सा भी न हो सका। सिनेमा पोस्टर की तरह लम्बी चौडी नोटिसें जगह जगह पर चिपकाया गया। नगर में ढिंढोरा पीटा गया। हर एक वार्ड में एक आदमी को नियोजन किया गया कि वह वहां के लोगों को इकट्ठा करके कमच्छा चौमुहानी पर पहुंच जांये। काशी नरेश के यहां से हाथी, घोडे, ऊंट आदि मंगवाये गये। शहनाई एवं बैन्ड बाजा भी प्रबन्ध हुआ। सुन्दर फाटक का आयोजन किया गया। एक माह के प्रयत्न द्वारा, हजारों रुपयों के खर्चों से, केवल कार्यकारिणि सभा द्वारा लगभग 1000 लोगों को इकट्ठा कर सके, वह भी श्रीकाशी नरेश व पूज्य महामना मालवीय जी एवं तमाशा आदि के आयोजन के कारण था। स्वागत कारिणि सभा के लोग बहुत कम थे। प्रतिष्ठित संन्यासियों में कोई भी नहीं था। स्वागत की जैसी धूमधाम मचाई गई थी उसके अनुसार वहां आयोजन कुछ भी नहीं दिखाई पडा। इस भीड में कुछ पन्डित, सन्यासी, विद्यार्थी आदि लोगों के हाथों में काला झन्डा भी था। काले झन्डे फहराये गये। काले झंडेवालों को हटाने की पूर्ण कोशिश हुई। पुलिस भी झन्डों को छीनने लगे। सनातन धर्म संरक्षणी सभा के श्रीरामतेज शास्त्री ने एक नोटिस 'जगद्गुरु लौट जाओ' शीर्षक प्रकाशित कर आम जनता में बंटवा दिये। नोटिसें खूब बंटी। पुलिसों ने नोटिस बांटनेवालों को मारा। पर सब प्रयत्न निष्फल रहा।

सनातन धर्म संरक्षणी सभा के तरफ से श्रीरामतेज शास्त्री ने एक नोटिस 'जगद्गुरु लौट जाओ' शीर्षक प्रकाशित किया, जिसमें से कुछ भाग नीचे दिया जाता है:—

जगद्गुरु लौट जाओ!

आज किसी भी भारतीय के हृदय में आपके प्रति सहानुभूति नहीं है। शास्त्रीय आधार से अब तक श्रीशङ्कराचार्य के चार पीठों का ही प्रमाण मिलता है। अब आप भी आदि शङ्कराचार्य बनने के लालायित होकर काशी आ रहे हैं और यहां के विद्वानों से अपने को आदि शङ्कराचार्य मनवाना चाहते हैं। काशी के विद्वान ऐसे गये बीते नहीं हैं कि आपके भुलावे में आकर आपवाली करने लग जायेंगे। जो आपवाली करेंगे, वे विद्वान नहीं, स्वार्थी होंगे। आप विद्वान, तपस्वी तथा पूज्य हो सकते हैं; पर आदि शङ्कराचार्य के गद्दीनशीन नहीं हो सकते।' ... ...

जब जुलूस चौक पहुंची तो क्या पूछना था—सडक के आने जानेवाले लोग तमाशा देख रहे थे। हाथी, घोडा, ऊंट, शहनाई, बैन्ड का तमाशा भी देख रहे थे। शाम का समय, शहर के वासिन्दे घर से बाहर निकले हुए और चौक मैदागिन का रास्ता जहां हर एक घन्टे में प्रतिदिन हजारों आदमी गुजरते हैं, ऐसी ; (

तमाशा देखनेवाली भीड़ का क्या पूछना था। कुम्भकोण मठाभिमानियों व प्रचारकों ने फ़ोटो लेना शुरूकर दिया चूंकि प्रचार करते समय यह सब फोटो काम में आवे। अब पढ़िये 'सूर्य' पत्र ता० 7—10—1934 के अङ्क में क्या लिखा है—

कल शनिवार 6 अक्तूबर को ढाई बजे दिन में काशी में कमच्छा की चौमुहानी पर कुम्भकोणम् से यात्रा करनेवाले तपस्वी विद्वान शङ्कराचार्य का श्रीमान् काशी नरेश द्वारा स्वागत हुआ। महीनों से इस स्वागत समारोह की बड़ी धूम थी, स्वामीजी के कुछ अनुयायियों ने समाचार पत्रों तथा ट्रक्टों द्वारा स्वामीजी को ही एक मात्र जगद्गुरु शङ्कराचार्य और उन्हीं के मठ को प्रथम पीठ बतला कर प्रचार कर रक्खा था, इसपर विचार करने के लिये श्रीबिहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित विद्वानों और सन्यासियों की सभा हुई थी जिसमें निर्णय हुआ कि भगवान आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठ (श्रृङ्गेरी, शारदा, गोवर्द्धन और ज्योतिमठ) ही प्रधान हैं, अन्य सब मठ इन्हीं के अंतर्गत हैं। स्वमीजी का तपस्वी विद्वान एवं सन्यासी के नाते स्वागत होना चाहिये और उनसे अनुरोध करना चाहिये कि काशी आनेपर वे इस प्रचार का विरोध करें जिसके कारण पन्डितों और सन्यासियों में भ्रम फैल रहा है। श्रीमान् काशी नरेश अपने मुसाहिबों सहित स्वागत के लिये चौमुहानी के रामलीला वाले चबूतरे पर पहुंचे जहां स्वागत के हेतु एक सुन्दर फाटक बनाकर तथा तोरण आदि बांधकर आयोजन किया गया था। काशी के रईस रा० सा० पं० माधोराम संन्ड नें श्रीमान् का स्वागत किया। चबूतरे पर श्री शङ्कराचार्य महाराज के लिये एक कुर्सी रखी थी और लोग खडे थे, बाद में चौमुहानी के पूर्व की ओर से श्रीशङ्कराचार्य महाराज की सवारी बाजे के साथ निकली। आगेवाले हाथी पर काशी के आदर्श ब्रह्मचारी श्रीशिवानन्दजी महाराज झंडा लिये हुए बैठे थे। पीछेवाले हाथी पर शङ्कराचार्य जी की तस्वीर थी। बाद में महामना मालवीयजी भी पहुंचे।

स्वागत के लिये श्री मान् काशी नरेश के साथ मालवीय जी, रा० सा० प० माधवराम संड, श्री राजेश्वर शास्त्री तथा पन्डित लक्ष्मण झाजी, उस चबूतरे पर मौजूद थे। श्री शङ्कराचार्य महाराज के कुर्सी पर बैठ जाने पर श्री मान् काशी नरेश ने उन्हें दंड प्रणाम किया और जमीन पर बिछे हुए बिछौने पर बैठ गये। बाद मे अन्य लोगों ने भी वैसा ही किया। स्वागत करनें के बाद श्री मान् काशी नरेश अपने कमच्छा वाले मकान में चलें गये, मालवायी जी भी चले गये, फिर वहां से स्वामी जी जुलूस के साथ जतनबड महल्ले में पं० माधवराम संड की कोठी पर पधारे जहां आप के निवास के लिये आयोजन किया गया था। चौमुहानी पर स्वागत करने के समय लगभग एक हजार जनता मौजूद थी। स्वागत कारिणि सभाके सदस्यों में से बहुत ही कम लोग वहां उपस्थित थे, प्रतिष्ठित सन्यासीयों में से तो कोई भी नहीं दिखाई देता था। स्वागत की जैसी धूम मचाई गई थी उसके अनुसार आयोजन वहां नहीं दिखायी पडा। लोगों का कहना था कि श्री बिहारीपुरी मठ में प्रतिष्ठित विद्वान एवं संन्यासियों के निर्णय का स्वागत करने वालों पर बडा प्रभाव पडा है, कुछ लोग स्वामी जी महाराज के अनुयायियों के भ्रामक प्रचारों का दोष दे रहे थे। जो कुछ हुआ हो, यह पहला ही अवसर है कि श्रीमान् काशी नरेश द्वारा धर्म के एक आचार्य का इस प्रकार सम्मान पूर्वक स्वागत हुआ है। शहर में जुलूस देखने के लिये जगह जगह बडी भीड इकट्ठी थी, पटरियों और मकानों की छतों पर से लोग जुलूस देख रहे थे।

("सूर्य" 7—10—1934)

14. 'जगद्गुरु की लालसा'; 'कांची कामकोटिमठ के महन्तजी सावधान'; 'काशीवासी विद्वान ध्यान दें' शीर्षक कुछ नोटिसों का प्रकाशन।

सनातनधर्म संरक्षिणी सभा के श्री पाण्डेय रामतेज शास्त्री ने और दो नोटिसें छपवाकर शहर में बांटा। एक था 8—10—1934 का 'जगद्गुरु की लालसा' शीर्षक और दूसरा 13—10—1934 का 'कांची कामकोटि मठ के महन्त जी सावधान' शीर्षक। इन नोटिसों को पढकर मुझे भी दुःख हुआ जैसा कि अन्यों को हुआ। पर कौन क्या कर सकता है जब मठाधीश ही स्वयं मौन धारण कर, अपने मठाभिमानियों द्वारा किये भ्रामक प्रचारों का अपनी सम्मती मौन द्वारा देकर, पूछे प्रश्नों का उत्तर न देकर तथा ऐसे विवाद को अंकुर ही में न मिटाकर, व्यर्थ का यह अपमान मोल लिया। अन्य दलवालों ने ऐसे अवसर को हाथ में लेकर अपने अपने दलमत का प्रचार करने लगे। अन्यों से कई बार पूर्व में प्रार्थना करने पर भी मठाधीश ने इन भ्रामक असत्य प्रचारों का निराकरण नहीं किया। मठाधीशजी इन भ्रामक प्रचारों का पहिले ही निराकरण किये होते तो ऐसी समस्या ही उठती नहीं। सम्भवतः मठाधीश जी को अपने बल का एवं प्रभावशाली मठानुयायी भक्त शिष्यों के बल का पूर्ण विश्वास हुआ होगा और जिससे आपने सोचा कि सबों को पराजित कर देंगे। इन प्रकाशित नोटिसों में कुछ मार्के की बातें हैं जिसे मैं नीचे उदधृत करता हूं।

जगद्गुरु की लालसा

कल आखिर कुम्भकोणमठ के महन्त महाराज आ ही गये। भक्तों ने अपनी भक्ति की पराकाष्ठा दिखा दी। खूब स्वागत किया। विष्टर, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय तथा नैवेद्य से पूजन हुआ। हाथी, घोडे, ऊंट सभी जुटाये गये थे। काशीराजजी भी पधारे थे। खूब चहल पहल रही। तमाशाइयों के दो तीन घंटे मौज से बीते। यह सब तो हुआ, लेकिन यह क्यों और कैसे हुआ?

... ...
... ...

कतिपय स्वार्थ के साक्षात् मूर्ति रईस नामधारी जन्तुओं की भाव भक्ति देखकर सन्देह हुए बिना नहीं रहता। यह संशय हमी को हो सो बात नहीं है। क्या विद्वान क्या मूर्ख सब के बीच यही चर्चा चल रही है। कोई कहता है कि आचार्यजी महाराज यदि काशी में भी आदि शङ्कराचार्य मान लिये गये तो आपके नेपाल सरकार से कुछ खास रकम मिल जायगी? सुना जाता है कि वह रकम बहुत बडी है, लाखों की संख्या के पार। .... जब आप सब प्रकार से साबित कर देंगे कि और चारों शङ्कराचार्य इस गद्दी के चेले हैं, असली शङ्कराचार्य मैं हूं, तब आप कृतकार्य हो सकेगें।

....
....

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि आपने अपने को शङ्कराचार्य सिद्ध करने के लिये एक पांचवें महावाक्य को भी सृष्टि कर डाली है। यद्यपि अब तक हमने चार ही देखे थे। यह बात भी शिष्ट परम्परा और मठाम्नाय सिद्धान्त के प्रतिकूल है। एक बात और है, यहां के कुछ इने-गिने दक्षिणा प्रेमी दक्षिणियों का ही बातों को प्रामाण्य समझ कर आप अपने को कृतकृत्य न मान लीजियेगा कि जो अपने ही सगे-सम्बन्धियों को शास्त्र का ठेकेदार समझे बैठे हैं। ये तो शास्त्र और धर्म को ताख पर रखकर हैकडी से बकरी के तीन टांग सिद्ध करने के लिए एडी-चोटी एक कर देनेवाले जन्तुविशेष हैं।

कांची कामकोटि मठ के महन्त जी सावधान!

जब से आपके काशी आने की सूचना निकली थी तब से अब तक आपके (काशी आ जाने पर भी) सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की अफवाहें बराबर सुनाई देती है। सुना जाता है कि आपके अनुयायी आपके उक्त मठ को श्री आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित प्रथम पीठ सिद्ध करने के लिये पण्डितों से व्यवस्था लेने वाले हैं। यह बात निराधार भी नहीं समझी जा सकती। क्योंकि मठ के साथ सम्बन्ध रखने वाले आपके अनुयायीयों ने इस प्रकार की पुस्तकें पहले से ही छपवाई है, जिनमें उक्त मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित एवं केवल उक्त मठ के अधिपति को ही जगद्गुरु की पदवी दी गई है। बाकी शृङ्गेरी, द्वारका, गोवर्धन और ज्योतिर्मठ के अधिपतियों को श्री गुरु की ही पदवी होना लिखा है। सनातनी जनता बडे संदेह में है कि आपका यह पांचवां मठ कहां से टपक पडा। उपर्युक्त चार मठों के अन्तर्गत होने पर भी आप जगद्गुरु कहलाने की इच्छा पूर्ण कर सकते थे। मठाम्नाय तथा शङ्कर दिग्विजय आदि प्रमाणिक ग्रंथों एवं स्वर्गीय म० म० शिवकुमार शास्त्री प्रभृति महामान्य विद्वानों की व्यवस्था के विरुद्ध आपके अनुयायी क्यों चेष्टा कर रहे हैं? क्या आपके मौनावलम्वन से सनातनी जनता यह समझ ले कि आपके इशारे से ही ऐसा हो रहा है? अन्यथा आप प्रतिवाद क्यों नहीं करते? आपकी आन्तरिक चेष्टा को समझ कर ही काशी के अनेक रईस, पंडित एवं बहुत से प्रतिष्ठित संन्यासी आपके स्वागत में सम्मिलित होने से अलग रहे, सुने जाते हैं। पत्रों में आपके स्वार्थी, श्रद्धालु चाहे जो छपवायें, परन्तु आपका स्वागत फीका ही हुआ और उसका कारण आपके अनुयायीयों की अनधिकार चेष्टा और आपका मौनावलम्बन ही समझा जा सकता है।

हम आपको बतला देना चाहते हैं कि काशी में विद्वान दो प्रकार के हैं। एक दक्षिणा-प्रेमी दूसरे शास्त्र प्रेमी। दक्षिणा पाकर व्यवस्था देना दक्षिणाप्रेमियों का धन्धा है। चाहे कोई कैसी भी व्यवस्था मांगे, ढूंढ ढांड कर व्यवस्था देने का आधार बना ही लेंगे। शास्त्रप्रेमी विद्वान् शास्त्रों पर ही निर्भर रहते हैं। आपके मठ को आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित होने का व्यवस्था दक्षिणाप्रेमी एवं आपके शिष्यादिकों के दबाव में पडकर कुछ पन्डित भले ही देने की चेष्टा करें परन्तु शास्त्र प्रेमी आदर्श विद्वान कदापि व्यवस्था न देंगे। आप इस बात का ध्यान रखें कि इने गिने पन्डित दक्षिणा का मोह न छोड सकने के कारण प्रामाणिक ग्रन्थों के विरुद्ध भी व्यवस्था दे तो देते हैं, परन्तु कुछ दिन बाद अपनी भूल स्वीकार करके पहले की व्यवस्था के विरुद्ध दूसरी व्यवस्था भी दे दिया करते हैं। ....
यदि व्यवस्था लेने आदि के बातें भ्रमपूर्ण हों तो आप अति शीघ्र विज्ञप्ति निकालकर धार्मिक जनता को सन्तोष दिलाने की कृपा करें।

एक प्रत्यक्षदर्शी वर्णाश्रमी से प्रकाशित एक नोटिस 'काशीवासी विद्वान ध्यान दें' शीर्षक शहर में बांटा गया। यह नोटिस पढते समय दुःख होता है पर विशय मार्के की है, इसलिये मैं नीचे कुछ भाग उद्धृत करता हूं।

काशीवासी विद्वान ध्यान दें?

दाक्षिणात्य मण्डली के माननीय श्री काञ्ची कामकोटि मठ के श्रीशङ्कराचार्य स्वामीजी जब से काशी पधारे हैं, तब से प्रतिदिन प्रायः कुछ न कुछ अनोखी घटनायें देखने में आती हैं।

उस दिन स्थानीय सांगवेद विद्यालय रामघाट में श्रीस्वामीजी को पादपूजा थी, श्रीस्वामीजी आते खड़े ही खडे स्वामी ब्रह्मानन्दजी से बात कर रहे थे। स्वामीजी के गौरवार्थ सारी जनता भी खडी रही, यही उचित भी था, किन्तु उसी समय आये हुए श्रीपंचाननतर्करत्नजी (स्वामीजी तथा सारी जनता के खडी रहने पर भी) स्वामीजी के सन्निहित आसन पर बैठ गये। क्या यह व्यवहार उचित हुआ? इतना ही नहीं, इसके बाद ज्यों ही स्वामीजी अपने आसन के समीप आये, किसी के कथनानुसार उन्होंने अपने एक शिष्य के द्वारा पचांननजी के गले में माला पहिराई। पश्चात् पंचाननजी प्रणाम कर चले गये।

उनके जाने के बाद श्रीस्वामीजी को पादपूजा तथा माल्यार्पण आदि हुआ। दर्शकों में से अनेक जानकार व्यक्तियों को ये बातें बेतरह खटकी। इससे सिद्ध होता है कि पंचाननजी इतने अधिक पूज्य हैं कि स्वामी शङ्कराचार्यजी के खडे रहते हुये भी वे आसन को ग्रहण कर सकें, तथा स्वामीजी को माल्यार्पण करने के पूर्व उनको माला पहिरायी जाय। सामान्यतः सन्यासी मात्र गृहस्थों का पूज्य होता है। पंचाननजी बडे भारी पन्डित हो सकते हैं किन्तु स्वामीजी के मुकाबिले में शान्ति-दान्ति, क्षमा तथा सर्वभूतों में समता इत्यादि सद्गुण तो कदाचित पं० पंचाननजी को स्पर्श भी नहीं करते। ऐसी स्थिति में एक पीठाधीश विरक्त सन्यासी के मुकाबिले में एक गृहस्थ का विशेष आदर होना केवल अन्याय ही नहीं किन्तु, अधर्म भी है।

दूसरी बात यह है कि आज तक दाक्षिणात्यों के धर्म कार्यों में पंच गौढ ब्राह्मणों का कभी प्रवेश न होता था। वास्तव में दाक्षिणात्यों के समान वर्णोच्चारण तथा वेदाभ्यास योग्यता पञ्च गौढ ब्राह्मणों में है भी नहीं, ऐसा दाक्षिणात्यों का ख्याल है। परन्तु कामकोटि मठाधीश स्वामीजी के यहां नवरात्रोत्सव में वर्णोच्चारण करने में सर्वथा पिछडे हुए कतिपय बंगाली ब्राह्मणों का समावेश हुआ है। यह क्या कम आश्चर्यजनक है? क्या दाक्षिणात्य लोग स्वामीजी तथा उनके भक्त पंचाननजी को खुश करने के लिये ही ऐसा कर रहे हैं अथवा इसमें और कुछ गूढ रहस्य है?

जब काशी में कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और स्वतंत्र विचार रखनेवाले कुछ प्रभावशाली विद्वान एवं माननीय परिव्राजकों ने कुम्भकोण मठानुयायियों द्वारा रचित नाटक में भाग न लिया तो कुम्भकोण मठ प्रचारकों को उनके कार्यों में सहयोग देने के लिये किसी एक प्रभावशाली विद्वान की साहयता की परमावश्यकता पडी। पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री और पं चिन्नस्वामी शास्त्री के अनुरोध एवं बलपर पं० पंचानन तर्करत्नजी ने अपनी सहायता प्रदान करने की बात दी थी। पं० पंचानन तर्करत्न जी का प्रभाव विद्वत् वर्ग में होने से उनके टोली की सहायता प्राप्त कर कुम्भकोण मठानुयायी अपनी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त की। ऐसी अवस्था में कुम्भकोण मठाधीश द्वारा श्रीपंचानन तर्करत्नजी का विशेष रूप से सन्मानित होना कोई आश्चर्य नहीं है। जब मैं ने पंचानन तर्करत्नजी से भेंट किया और प्रमाण सब दिखाकर यह सिद्ध किया कि कुम्भकोण मठ के प्रचार असत्य व भ्रमात्मक हैं और आपने स्वीकार भी किया कि प्रामाणिक ग्रंथ केवल चार आम्नाय मठ होने का उल्लेख करता है तो भी न जाने क्यों पश्चात् आपने अपनी व्यवस्था अपने पूर्व अभिप्राय के विरुद्ध दी है।

15. कुम्भकोण मठाधीश का पञ्चगङ्गेश्वर मठ में आगमन एवं प० प० श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी का मठविषयक प्रचारों पर भाषण।

पंचगङ्गेश्वर मठ के प० प० श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी कुम्भकोण मठाधीश को अपने यहां 8—10—34 की रात्री को बुलाया था। न मेरे पिता जी उपस्थित थे और न मैं, चूंकि हमलोगों को श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी से केवल इसी विषय पर मतभेद था। इसके पूर्व अनेक प्रयत्न करते हुये भी श्री मठाधीश के मौन को तोड न सके और अब क्या मठाधीश भ्रामक प्रचारों का निराकरण कर देंगे? लेकिन पाठकगण जानने में उत्सुक होंगे कि पंचगङ्गेश्वर मठ में क्या हुआ। "सूर्य" पत्र ताः 12—10—34 एवं 7—11—34 दोनों अङ्कों में इसका विवरण प्रकाशित हुआ है। चाहे जो हो, सत्य तो यह है कि श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी ने भी हर एक मार्ग से प्रयत्न किया कि इन भ्रामक प्रचारों को बन्द करा दें पर एक दम निष्फल होते गये जैसे प्रारम्भ में हम लोग असफल रहे। अन्त में विवश हो कर चुप साध कर उन्हें बैठना पडा। "सूर्य" पत्र ता 7-11-34 के अङ्क से उद्धृत कुछ भाग नीचे दिया जाता है।

कुम्भकोण के श्री शंकराचार्य

अभी 8 अक्टूबर की रात्री को श्री कांची कामकोटि कुम्भकोण मठाधिपति जी श्री काशी क्षेत्र में विन्दुमाधव मन्दिर के समीप वाले श्री पंचगङ्गेश्वर मठ में जब पधारे थे, तब श्री परमहंस ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी ने, श्री पं० राजेश्वर शास्त्री जी आदि अनेक पंडित वैदिक और लौकिक मंडली की उपस्थिति में, उपर्युक्त मठाधिपति जी से निम्नलिखित प्रकार सविनय प्रार्थना की।

मैं आज से करीव 25 वर्ष पहले महामाघ पर्व निमित्त कुम्भकोण में आया था। उस समय मैंने श्री चरणों का दर्शन किया था। मुझे श्री श्रृङ्गेरी मठ का शिष्य जानकर आप महाराज ने आज्ञा दी कि जिस प्रकार श्री श्रृङ्गेरी मठ पर आपको अभिमान है, उसी प्रकार इस मठ में भी अभिमान रखना चाहिये। मैं ने उसे सिर से स्वीकार किया। उस समय से आज तक मैं दोनों मठों को अपने दो नेत्रों के समान देखता आ रहा हूं। करीव दो वर्ष पहिले जब मैंने सुना कि काशी यात्रा निमित्त आपका शुभागमन होने वाला है, तब मेरे मन में यह भाव उठा कि क्या तब तक जीवित रह कर आपके श्री चरणों का दर्शन करूंगा? पर श्री विश्वनाथ जी की कृपा से आज आपका शुभदर्शन पाकर मेरे आनन्द की सीमा न रही। आपका शुभागमन जब मेरे द्वारा स्थापित इस पंचगङ्गेश्वर मठ में हुआ तो मैंने यह अपना अहोभाग्य समझा।

... ...
... ...
आपका निरभिमान, निष्कपट, समत्व बुद्धि को समझाने के लिये यहां के नागरिक आप से अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। पूर्व में श्री आदि शङ्कराचार्य जी को जीवब्रह्म प्रपंच विषयक भेद बुद्धि वालों से वाद कर तथा उन्हें पराजित कर अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना करनी पडी थी। इस समय आप महाराज को श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य द्वारा स्थापित पीठों के बारे में अज्ञानी अनजान लोगों के विवाद विषय भूत न्यूनाधिक्य बुद्धि को दूर कर, सब पीठ समान हैं, इस समत्व बुद्धि का उपदेश करना पडा है।

आजतक अनेक मठाधिपति इस काशी–क्षेत्र में आये परन्तु कभी ऐसा वैषम्य, घृणा, भेदभाव और वाद-विवाद नहीं खडा हुआ था जैसा कि आज आपके आने पर हुआ है। विवाद के कारण मुख्यतः तीन हैं। प्रथम यह कि आप के मठ के अधिकारी ने स्वरचित श्री "शङ्कराचार्य चरित्र" नामक ग्रन्थ में जो काशीपुरी के हितचिन्तक प्रेस में छपी है—यह लिखा है कि "श्री जगद्गुरु" की पदवी केवल एक कांची कामकोटि पीठ को ही है और शृङ्गेरी आदि पीठों को केवल "श्री गुरु" की पदवी है। विवाद का दूसरा कारण यह है कि यहां आपके आगमन के पहिले ही भवदीय पीठाभिमानी पदवी लालसी श्री पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी ने "लीडर" में यह लेख लिखा था कि श्री कामकोटि पीठ आदि श्री शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित मुख्य पीठ है। उसके अनन्तर अद्वैत बोध के लिये चारों दिशाओं में स्थापित शृङ्गेरी आदि चार पीठ हैं। तीसरा कारण यह है कि "पंडितपत्र" के संचालक श्री वेङ्कटेश्वर शास्त्री जी ने भी अपने पत्र में यही लिखा जो पं चिन्नस्वामी शास्त्री जी ने "लीडर" में लिखा है। विवाद के ये मुख्य तीन कारण हैं, ऐसा ही सभी लोगों को निश्चय है। प्रमाणरहित उन प्रचारों को सुनकर भी, आप के द्वारा उनका खन्डन न होने के कारण तथा श्रीमुख पत्र द्वारा यह प्रकाशित न करवाने के कारण कि श्री भगवान शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित सब पीठ समान हैं, किसी में कुछ भी न्यूनाधिक्यभाव नहीं है, यहां के नागरिकों में द्वेष और भी फैला तथा आपके पीठ की निन्दा बहुत ही ज्यादा बढ गई। जब यह निन्दा मुझसे नहीं सही गई तो मैंने आपसे प्रार्थना की कि आप श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य द्वारा स्थापित सभी पीठ समान हैं, किसी में कुछ भी न्यूनाधिक्य भाव नहीं है (ऐसा अपने श्रीमुख द्वारा प्रगट कर दें)। मेरी प्रार्थना सुन कर उदासीनभाव से आपने यही उत्तर दिया कि श्री काशी जी आने के बाद अपने व्याख्यान में मैं इसे प्रकट करूंगा।

फिर आपके यहां आने के बाद जब सांगवेद विद्यालय में हम दोनों में एकान्त में वार्तालाप हुआ था, उस समय भी मैंने आपसे यही प्रार्थना की थी कि आप श्री मुख पत्र द्वारा यह प्रकाशित करवाने की महत् कृपा करें कि श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य द्वारा स्थापित सभी पीठ समान हैं, किसी में कुछ भी न्यूनाधिक्य भाव नहीं है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अनेक तरह के विपरीत कार्य होने लगेंगे। इसके बाद वही सभा में भाषण करते समय आपने कहा था कि पीठों के तारतम्य का निश्चय करने मे मैं अनधिकारी हूं। अनुयायी लोगों को ही इसका निर्णय करना चाहिये। मैं उनके निर्णय के अनुसार ही रहूंगा। अनजान अज्ञानी शिष्यों के अज्ञान जनित द्वेषभाव को हटाना गुरु का मुख्य कर्त्तव्य है। ऐसी स्थिति में शिष्यों के अनुसार गुरु का चलना अनुचित एवं धर्म विरुद्ध होने के कारण हम लोगों के लिये व्याख्यान में आपका यह भाषण कर्ण कटु था।

युद्ध क्षेत्र में सेना के जयाजय का परिणाम जैसे राजा में पर्यवसाव होता है वैसे ही शिष्यों की आज्ञान जनित उद्दण्डता का परिणाम गुरु में ही पर्यवसित होता है। मुझे तो यह भय हो रहा है कि आप अपने भाषण द्वारा शिष्यों के द्वेष-भाव को और भी अधिक बढाकर तद्द्वारा उनसे अनेक दुष्कर्म करा कर उनको अधोगति में पहुंचाने वाले हो जायेंगे, तथा 'शिष्यपापं गुरोपि' इस सिद्धान्त के अनुसार दोषभागी भी होंगे।

श्री आदिशङ्कराचार्य जी ने कई पीठों की स्थापना की। कहां कहां पर किसे स्थापित किये और किस स्थान में किसको पीठाधिपति बनाये, इनविषयों के समझाने के लिये हम लोगों के लिए ग्रन्थ प्रमाण को छोडकर कोई दूसरा साधन ही नहीं है। ऐसे ग्रन्थ भी अनेक तरह के हैं और वाद उत्पादक हैं

ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उन ग्रंथों के तात्पर्य का यथार्थ निर्णय करना मेरे लिये असाध्य है। इसलिए वर्तमान स्थिति को देखकर कहना पडता है कि प्रकृति में चारों दिशाओं के चारों मठों में उत्तरी मठ तो नष्ट ही है। पूर्व और पश्चिम के मठ–विवाद–ग्रस्त हैं और दक्षिण में आसपास में रहने वाले शृङ्गेरी और कामकोटि मठ के अधिपति दोनों अपने अपने प्रदेश में स्थित शिष्य जनों के आचार विचार आदि के अधिकार के विषय में अपना अपना स्वतंत्र निर्णय करते हैं। और शिष्य लोग उन्हीं निर्णय को मानते हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि दोनों मठ स्वतंत्र हैं। उनमें कुछ भी न्यूनाधिकभाव नहीं है!

आज तक काशी में बहुत से मठाधिपति आये, परन्तु, किसी के भी मठ का अपमान नहीं हुआ। मुझे आपके मठ का अपमान हो जाने का भय है और इसीलिये दुखित होकर पुनः आप से मैं सविनय प्रार्थना करता हूं कि आप श्री मुख पत्र द्वारा यह प्रकाशित करवाने की महत् कृपा करें कि श्री भगवान आदि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित सभी पीठ एक समान हैं, तथा किसी में कुछ भी न्यूनाधिक भाव नहीं है। मैं ने अपना कर्त्तव्य पालन किया है, इससे मुझे अतीव शान्ति मिली है, अब मेरी प्रार्थना प्रकाशित करवाना या न करवाना आपके ऊपर निर्भर है।

श्री परमहंस ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी का भाषण सुनकर श्री कुम्भकोण मठाधिपति जी ने कहा कि आपका सर्व कथन न्याय संगत है। सत्य है। अतएव इसके निवारण के लिये मैं प्रयत्न करूंगा।

16. श्री एस. पि. सन्याल का लेख

मैं ने दो लेख अंग्रेजी भाषा में "लीडर" दैनिक पत्र ताः 6—10—1934 एवं 12—10—1934 के अङ्कों में रायसाहब एस्. पि. सन्याल के नाम से प्रकाशित देखा जिनका नकल मैं नीचे पुनः प्रकाशन करता हूं।

A Candid Opinion of a well known Citizen of Benares
AN EMINENT SANYASI

Sanyas is the last stage of a Hindu's life, so say the Shastras. Nowhere in the world except India is there to be found such an immense body of men who have renounced the the house-holder's life and entered the Sanyas Ashram or the life of renunciation. In these ranks there have ben some of the most eminent of scholars. Unquestionably Shree Shankara-charya's is the greatest name in this order during the post Buddhistic period of Indian History. He was believed to be an incarnation of the Lord Shiva; his birth was foretold in several Puranas, reputedly written long before his birth. Even if one is not prepared to accept the incarnation theory,

Shree Shankaracharya shows by his life that he was the rare efflorescence of his age the like of whom India has not yet produced. At the age of eight, when he took Sanyasam, he had studied all that could be read; at the age of sixteen he had written most erudite works on the Hindu Philosophy which to this day are the wonder of Sanskritists of the East and the West; at the age of thirtytwo, when he had thoroughly revived and consolidated Brahmanism after its set-back by Buddhism, Jainism, etc. he died.

Broadly speaking there are ten classes of Sanyasis, popularly known as Dasnami. According to authoritative texts such as Shanker Vijaya Vilas, Yati Dharma Nirnaya, Visheshwar Smirti and others, they are Teertha, Ashrama, Vana, Aranya, Giri, Parvata, Sagara, Saraswati, Puri and Bharati. These seem to be the only orders of Sanyasis recognised by text writers and no others. Shree Shankaracharya enjoined his disciples, particularly Shree Sureshwaracharya, the most learned of his four disciples, who was in his earlier life known as Mandan Misra, to whom and whose wife Saraswani the greatest Sanyasi in Kali gave Sanyasam after winning them by force of his arguments to preach the Advaita philosophy. Shree Shankaracharya laid down the rules of Sanyasi living and gave a real impetus to Vedic religion. He belonged to the order of Bharati Sampradaya. His first disciple was Sanandan, to whom on conversion he gave the name of Padma Padacharya. The other two disciples were Totaka or Anandagiri, and the deaf mute Hastamalaka or Prithividhara.

The protaganist of Sanyas, Shree Shankaracharya, himself, established four sacred seats (Peethas) of learning and devotion for Sanyasis in the four quarters of India, placing in charge of each Math (sanctuary) one of his four disciples named above, of whose advent the puranas—Linga, Kurma, Vayu, Bhavishya and Markandeya—had foretold. The four Peethas and Mathas are as under :—

	Peetha	Matha
North	Purnagiri or Badri	Jyotir
East	Bimala or Puri	Gowardhan
South	Sharada or Bharati	Shringeri
West	Kalika.	Sharada or Dwarika

To each of these sacred seats he allotted one of four Vedic Maha—Vakyas—the basic formula for realisation of the oneness of Jivatma and Paramatma—the crux of the Advaita doctrine which the great master propounded during his life and which his immortal work will do on proclaiming for all time to come.

These four peethas and Mathas are, however, not the only institutions of their kind in India. As a multitude of Sanyasis so a plethora of Peethas and Mathas. In the south their number is galore. Besides these four, the Kanchikamakoti matha claims to be the fifth founded by Shri Shankar. The present occupant of the Kamakoti pitha is Jagadguru Swami Shree Chandra Shekharendra Saraswathi Maharaj. His Holiness is a scholar of great repute. His eloquence, grace of style, power of expression and diction keep his audience spell-bound. I hear he is the first Mathadhipathi of a well-known peetha who has undertaken an All-India tour by land marching from stage to stage. He is now approaching holy Kashi from Prayag; and such is his veneration for this holiest of holies that he is coming all the way from Allahabad to Benares on foot in this rainy season. All joy and success to him. A strong reception committee has been formed at Benares to give his holiness a right royal welcome. Its president is His Highness the Maharaja of Benares and its Honorary Secretary Rai Saheb Madho Ram Sund, a local silk merchant.

That our popular Kashi Naresh should have consented to take this part is nothing to be wondered at. His orthodox ruling house has always been conspicuous in doing honour to scholars, ascetics and other holy men. Pandit Madho Ram

Sund is to be congratulated upon his display of energy in organising a committee to welcome the holy visitor to sacred Kashi.

In this connection I hear overzealous partisanship has unfortunately given rise to controversy and faction amongst a section of people in the city. An attempt is, however, being made to smooth the differences.

('Leader' 6—10—1934)

"LEADER" Allahabad, Dated 12—10—1934
POSITION OF KANCHI MATH

Anent the visit of the present Jagadguru Sree Shankaracharya of the Kanchi Kamakoti Peetham, I referred in my previous communication to a controversy and a faction at Benares. The admirers and adherents of Kanchi Matham claim for it the unique position of being supreme in India and assert that the Kanchi Matham is the only institution, the director of which is entitled to be designated Sree Jagadguru Shankaracharya, while the heads of the other four institutions cannot aspire to anything higher than the title of Sree Shankaracharya. Needless to say that this exaggerated and fanciful claim on behalf of the Kanchi Peetham finds no support in any authoritative text books. The works relied upon in the publication of 1931, entitled "Sree Shankaracharya and His Kamakoti Peetha" by Mr. N. K. Venkatesam Pantulu, are availed of to bolster up the claim of the Kamakoti Peetha in the following words :—

"When he (Sree Shankara) had thus established the central math at Conjeevaram which even today ranks as one of the Saptapuris and one of the seven Sakti Peethas and one specially of the three most eminent of such seats—the Kamakoti Peetha—the other two being the Jalandhar and the Odhyana Peetha, he made Sree Sureshwaracharya, his foremost and fittest disciple, the next Jagadguru to be occupant of the

Kamakoti Peetha and the head of all the Maths in India." In section III, pages 19 to 21, the statement is repeated that Sree Shankaracharya founded the central math at Conjeevaram with four maths in the four directions. The relationship among these mathas is said to be shown in a tabular statement that follows. To an untrained eye the relationship does not appear at all clear; but what does seem noticeable is that the first entry regarding Kanchi is something which is not traceable in Mathammnaya, and that the Sanyasa name of Indra-Saraswati is not to be found in the ten well-known orders of Sanyasis enumerated in the first article; and that the Mahavakya OM TAT SAT referred to in the last column is not to be traced in any book where the Mahavakyas are mentioned. In another work published in Madras in 1923 by Mr. Venkataraman, called "Shankaracharya the Great and His Successors at Kanchi" 'dedicated with kind permission' to the Jagadguru of Kanchi Kamakoti Peetha the same statement is repeated with the addition that the jurisdiction of these (five including Kanchi) Mathas, their traditions and observances are given in a book, the Mathammnaya, said to have been written by Sree Adi Shankara himself. In a Hindi publication issued by Hitchintak Press, Ram Ghat, Benares City in 1915, the author of which was Pandit late Ramaswami Upadhyayaji, the then manager of Kumbakonam Math, it is the Mathammnaya Setu that is relied upon the name of which seems somewhat different from the famous Mathammnaya the authorship of which is ascribed to Sree Adi Shankara.

To my mind it is clear that when parasites, panderers, place-hunters and profiteers become partisans, there is no end of mischief done in this world. That is what seems to me is being repeated in the present dispute as to the position of Kanchi Kamakoti vis-a-vis the other four principal Peethas specifically mentioned in all Sree Shankara Vijayas which proclaim Sree Shankara's life history to the world. In 1886 a galaxy of famous pandits of Benares unequivocally declared that Sringeri, Dwaraka, Jyotish and Gowardhan were the only four Peethas

and Mathas established by Sree Adi Shankaracharya himself. Some people with more enthusiasm than knowledge have rushed to raise the expected distinguished visitor to a pinnacle which the holy Sanyasi himself would fain mount.

It was a very good move on the part of some of the pandits and Sadhus to discuss dispassionately the present situation at a select meeting held in the Biharipuri Math under the presidency of the distinguished professor of the Government Sanskrit College Pandit Haran Chandra Bhattacharyaji. They came to the conclusion that they could not go back upon the Benares Vyavastha of 1886. This recent decision of the Benares Pandits and sanyasis has received further support from the action of some of the Mahants whose names were proclaimed without their consent as members of the reception committee. I trust the over-zealous enthusiasts will desist from creating unpleasantness during the stay at Benares of a holy and learned Sanyasi like Sree Shankaracharya of Kanchi Kamakoti. To create one more division in the divided ranks of the Hindus is neither desirable, nor will it become the fair fame of this sacred city of Viswanath.

('Leader' 12—10—34)

इसी प्रकार की सम्मतियां तथा कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों पर विमर्श "पाञ्चजन्य," "त्रिलिंग," "युगन्धरा," "सत्यवादी," "इन्डियन मिरर," "सूर्य," "लीडर," "हिन्दू," "स्वदेशी मित्रन," आदि पत्रों में प्रकाशित हुए हैं।

17. काशी साङ्गवेद विद्यालय में कुम्भकोण मठाधीश का भाषण एवं शङ्काओं के समाधान तथा उन पर आलोचना

कुम्भकोण मठाधीश ने काशी के साङ्गवेद विद्यालय में एक भाषण दिया जिसका संक्षिप्त विवरण "पण्डित पत्र" ता: 15—10—1934 के अङ्क में प्रकाशित था। काशी के कुछ गण्यमान सज्जनों, कुछ माननीय विद्वानों एवं कतिपय आदरणीय प्ररिव्राजकों ने अपने अपने पत्र द्वारा श्री मठाधीश जी से प्रार्थना की थी कि वे इन भ्रामक प्रचारों को या तो बन्द करा दें या स्वयं श्रीमुख पत्र द्वारा इसका निराकरण कर दें। बहुतों को प्रार्थना पत्र का उत्तर मिला नहीं परन्तु मठाधीश ने प० प० श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी जी को कहा भेजा कि आप काशी धाम आने पर शङ्का निवारण कर देंगे। इसलिये हम सब लोग बडी आकांक्षा से आपके उत्तरों की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्री मठाधीश जी ने अपने भाषण द्वारा इन मिथ्या प्रचारों को बन्द कराने के बदले स्व प्रचारों की पुष्टि की। मठाधीश का भाषण "पन्डित पत्र" ता: 15—10—1934 के अङ्क से उद्धृत किया जाता है।

जगद्गुरु श्री आचार्य जी का भाषण
(संक्षिप्त विवरण)

आज आपलोगों ने त्रिशती रुद्राध्यायी से शिवार्चन किया है। उस रुद्राध्यायी में जो शङ्कर का नाम आता है वही आदिशंकराचार्य के भावी अवतार का सूचक वचन (भविष्यवाणी) माना जाता है। यद्यपि शङ्कर शब्द का "परमशिव" यही रूढ अर्थ है तथापि "नमः कपर्दिने च विमुक्त केशाय" में जो विमुक्त केश है, वह भगवान शंकर सन्यासी रुप में अवतीर्ण होने का सूचक है। इसी भावी शङ्कराचार्य के अवतार का शिवरहस्य के नवमांश के षोडशोऽध्याय में विशेष रूप से समर्थन हुआ है। इससे न केवल इतिहास से किन्तु श्रुति से भी अवतार सिद्ध होता है।

शिवरहस्य के नवमांश 16 वें अध्याय को देखने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि आदि शङ्कराचार्य श्री कांची के साक्षात् परमेश्वरार्पित योगेश्वर नामक लिंग का अपने आश्रम में अर्चन करते थे और श्री कांची में उन्होंने परम-पद प्राप्त किया। आनन्दगिरि शङ्कर विजय का मूलाधार भी यही शिवरहस्य है। कांचीपुर के वर्णन में नैषध काव्य में श्री हर्ष ने भी अपने नवम सर्ग में उस परमेश्वर प्रसाद का विशेष रूप से वर्णन किया है जो उन्हें योगेश्वर लिंग के अर्चन से प्राप्त हुआ था। मैं भी अपने पीठ में रहकर योगेश्वर लिंग का अर्चन करता हूं। उनका कैंकर्य करना ही मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। दृश्यमान सब सपंत्तियां उन्हीं श्री चन्द्रमौलीश्वर का ही है। मैं भी उन्हीं का एक दास हूं। बडा या छोटा, यह मैं क्या जानूं? उपाधी देने वाले जानें।

आजकल लोगों में पीठों के प्राधान्याप्राधान्य की चर्चा चल रहीं है। कई अपने शिष्यों से यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। भला मैं इसका निर्णयक कैसे हो सकता हूं। श्री मुख-पत्र की बिरुदावली में जगद्गुरु आदि की उपाधियां आदि श्री शङ्कराचार्य को ही दी जाती है (अपने को नहीं) और मैं अपने को आदिशङ्कराचार्य के सिहांसन पर अभिषिक्त श्री महादेवेन्द्र सरस्वती का अन्तेवासी ही लिखता हूं। भक्त भक्ति और प्रेम के कारण मुझ में श्री आदि शङ्कर की भावना करते हैं और उसी प्रकार पूजते हैं तो इसमें मेरा क्या अधिकार? यह उनका काम है वे जानें।

जगद्गुरु शब्द आदि श्री शङ्कर को मुख्य रूप से लगता है और मैं अपने बारे में उसे बहुव्रीही समास समझता हूं, जगत जिसका गुरु हो क्योंकि मैं पिपिलिका से लेकर पर्वत जैसी बडी वस्तु के भी जानने का जिज्ञासू है और सभी मुझे कुछ न कुछ शिक्षा देते हैं, जगत् ही मेरा गुरु है। जगत् का गुरु बनने के लिये जगत् का ज्ञान आवश्यक है। वह ज्ञान, छोटे, बडे, और समानवय वाले सभी लोगों में मिल सकता है। मैं केवल श्री चन्द्रमौलीश्वर का विशेष सेवक हूं। यही सौभाग्य मेरी विशेषता है और उसी सेवा के अधिकार के कारण मैं अपने को कृतकृत्य समझता हूं।

मठों के प्राधान्याप्राधान्य निर्णय के बारे मे मैं इतना ही कहूंगा कि मैं वेदों और शास्त्रों के अर्थों का निर्णय करने का अधिकारी हूं पर पीठ की प्रधानता का निर्णय मेरे अधिकार के बाहर की वस्तु है। यह काम शास्त्रज्ञ भक्तों का है। वे जिस ढंग से रखेगें मैं रहूंगा। उन्हीं का निर्णय "निर्णय" होगा। जैसे एक डाकटर भी अपनी चिकित्सा के लिये दूसरा डाकटर बुलाता है वैसे ही मुझे भी अपनी बातों को दूसरों के निर्णय पर छोडना पडता है। आप अपने स्वाभिमान को छोडकर चाहे जैसा निर्णय दीजिये।

कृ
३६८

कांचीकामकोटिपीठ अनादि है, आधुनिक नहीं। इसका प्रमाण शिवरहस्य में मिलता है। शिवरहस्य की आदर्श पुस्तक (हस्तलिखित प्रति) महाराजकाशीराज के पुस्तकालय, धर्मप्राण (स्वर्गीय) श्री लक्ष्मण शास्त्री द्रविड के पुस्तकालय आदि कई काशी के पुस्तकालयों में भी मिल सकती है।

अन्त में उन्होंने विद्यालय के विषय में कहा कि इस सांगवेद विद्यालय (रामघाट) के वेद शिक्षा और परिक्षा आदि की प्रणाली अद्वितीय है। ऐसी पढाई भारत में अन्य कहीं नहीं देखी जाती। मैं इसके संचालकों और अध्यापकों को धन्यवाद देता हूं और यह भी घोषित करता हूं कि प्रतिवर्ष जब उत्तीर्ण वैदिकों को पारितोषिक दिया जाता है उस समय मेरे मठ से भेजे हुए पारितोषिक को भी आप अपने फंड में मिलाकर बांट दिया करें।

कुम्भकोण मठाधीश के इस भाषण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मठाधीश अपने शिष्यों के निर्णय एवं उनके मनोभावानुसार ही चलते हैं। मठाधीश जी अपने मठविषयक प्रचारों का समर्थन करते हुए, पीठ और अधिकार संपन्न आम्नाय मठ में भिन्नता होते हुए भी कामकोटि पीठ के बारे में ही भाषण देते हुए, पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर न देते हुए, अति चातुर्यता व लोकरीति के अनुसार अपनी नीतिनिपुणता द्वारा उत्तर दिया कि काशी में मठविषयक वाद विवाद बन्द हो जाय। मठाधीश ने भाषण में बहुव्रीही समास का उपयोग कर सोचने लगे कि आपके मठविषयक वादविवाद पर ठन्डा पानी गिर जायेगा। एक तरफ अपने मठानुयायियों व प्रचारकों द्वारा प्रचारात्मक पुस्तकोंका वितरित कराते हैं और दूसरी तरफ चातुर्यता से उन प्रचारों की पुष्ठि भी करते हैं। कुम्भकोण मठाधीश नेरुच्चिपे इ स्थान पर 13—4—1927 के भाषण में जो भाषण कुम्भकोण मठ के समाचार पत्र "आर्य धर्मम" में प्रकाशित हुआ है, उसमें उन्होंने स्पष्ट काशी के भाषण के विरुद्ध ही भाषण दिया है। उक्त कहे भाषण में मठाधीश ने अपने मठ प्रचारों का समर्थन किया है। कुम्भकोण मठाधीश द्वारा मद्रास शहर के भाषण में (1932 ई०) भी आपने मठ प्रचारों का समर्थन तथा पुष्टि भी की है। आपने मदरास भाषण में यह भी कहा है कि दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ शिथिल होकर विच्छिन्न पडा हुआ था और उस मठ का पुनरुद्धार भी हुआ। काशी के विद्वान व जनता मठाधीश से पूर्व किये हुए प्रचारों का विवरण नहीं जानते थे और मठाधीश के भाषण को वे सत्य वचन मान लिये। कुम्भकोण मठ के विभिन्न कथनों का (शंकराचार्य चरित्र सम्बन्धी) एक सूची मैं ने बनायी है, जिसका विवरण मुझसे प्रकाशित पुस्तक "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" में पायेंगे। समय समय पर परिस्थिति के अनुसार चातुर्यता से विभिन्न प्रकार के कथन कहे व प्रचार किये जाते हैं। श्रोतागण यति के वचनों को सुनकर तथा सत्य मानकर चुप हो जाते हैं। वे बेचारे क्या जानें कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का विवरण एवं मार्ग। जो विज्ञ व्यक्ति इन प्रचारों का पोल खोलते हैं उन्हें साम दान दन्ड भेद मार्गों के अवलम्बन से उनका मुंह बन्द करा देते हैं।

कुम्भकोणम् मठाधीश श्रीसुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती (1849-1889 ई० एवं अन्य एक प्रचार पुस्तक में 1851-1891) काशीयात्रा निमित्त कुम्भकोणम् से रवाना हुए। आपकी हार्दिक इच्छा थी कि आप सारा भारतवर्ष भ्रमण करके अपने मठ के नवीन कल्पित 'श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य काञ्ची कामकोटि पीठाधीश्वर' पदवी एवं कल्पित कथनों की 'श्रीआचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित व अधिष्ठित कांची कामकोटि मठ था और उनके अविच्छिन्न गुरुपरम्परा में आप ही हैं' तथा श्रीशङ्कराचार्य का एक नवीन चरित्र (पूर्व में तैय्यार हुई चरित्र की) प्रचार कर, अपने मठ के लिये गौरव एवं सर्वोच्च स्थान प्राप्त करें। परन्तु यह सुना जाता है कि अभाग्यवश आपकी इच्छा पूर्ति न हुई क्यों कि आपको अपने कल्पित भ्रामक प्रचारों के फलाभूत अनेक बाधाओं व विपक्षी दल के वादविवादों एवं अपने मठ के यथार्थ इतिहास की भन्डाफोड से अपनी यात्रा जगन्नाथ पुरी क्षेत्र में समाप्त करके दक्षिण को फिर लौट आना पडा।

लौकिक निपुणता व परिस्थिति के कारण आप अपने प्रचारों से पीछे हट गये। 1876 ई॰ में प्रकाशित पुस्तक 'शाङ्करमठतत्त्वप्रकाशिका' एवं भट्ट श्रीनारायण शास्त्री द्वारा रचित 'विमर्श' पढा जाय तो स्पष्ट मालूम होगा कि कुम्भकोण मठ का कर्तूत सब किस प्रकार भ्रमात्मक व मिथ्या था। मठ प्रचार पुस्तक में लिखा है—'He started on an all India tour, but when he went as far as Jagannath, he had to return owing to certain obstacles.' 'कुछ रुकावट तथा बाधाओं के कारण' आप दक्षिण लौट आये। इन बाधाओं का विवरण दिया नहीं गया है। यह वह समय था जब कुम्भकोण मठ के मठाधीश श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती (V) (1814-1851) के समय में तथा मठाधीश श्रीसुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती (1851—1891) के समय में मठ ने प्रमाणाभास पुस्तकें तैय्यार कर जैसे अप्रामाणिक परिष्कृत्य आनन्दगिरि शङ्करविजय, अनुपलब्ध अप्राप्य मार्कन्डेय संहिता के कुछ क्षिप्त श्लोक, शिवरहस्य नवमांश षोडशोध्याय के कुछ क्षिप्त श्लोक, श्रीमुख दर्पण, श्रीमुख व्याख्या, नवीन मठाम्नाय सेतु (जहां पांच वेद, पांच उपदेष्टव्य महावाक्य, पांच संप्रदाय, पांच ब्रह्मचारी, पांच दृष्टिगोचर आम्नाय, आचार्य के पांच मुख्य शिष्य, ग्यारहवां अङ्कित नाम आदियों का रचना कर एक मठाम्नाय सेतु तैय्यार किया गया), श्रीरामानुज अय्यङ्गार द्वारा प्राप्त 'सिद्धान्त पत्रिका', प्रचार प्रारम्भ किया था। स्वरचित एकत्रित प्रमाणाभास पुस्तकें (गुरुरत्नमाला, सुषमा टीका, पुण्यश्लोकमंजरी) भी प्रकाशित होकर प्रचार होने लगा था। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'मठाम्नाय' एवं 'महानुशासन' को असत्य ठहराने का प्रचार भी होने लगा। माधवीय शङ्करविजय की मान्यता व प्रामाणिकता को घटाने का उद्देश्य से इस पुस्तक पर अपने प्रचारों द्वारा कीचड फेंकने लगे और एक नवीन पुस्तक 'व्यासाचलीय' तैय्यार भी हुआ। ऐसे भ्रामक मिथ्या प्रचारों के कारण देश के कुछ विज्ञ सज्जनों के हृदय में दुःख हुआ और वे अन्य स्वतंत्र मत रखनेवाले विद्वानों के साथ मिलकर इन प्रचारों का खूब खण्डन भी किया। जगह जगह सभायें हुई और कुम्भकोण मठ के प्रचारों का खण्डन भी किया गया था। इसी समय उत्तर भारत में मठविषयक चर्चा उठी और 1886 ई॰ में काशी के प्रकाण्ड दिग्गज विद्वानों व आदरणीय परिव्राजकों ने एक व्यवस्था दिया था कि आचार्य शङ्कर ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी। उन दिनों में जो सनसनी फैली थी और मठ प्रचारों का खन्डन किया गया था, उन सबको आप कुम्भकोण मठाधीश रोक न सके और खण्डनकारों से न सामना कर सके। कुम्भकोण मठ इस विषय को मानने तैय्यार न होंगे पर अपने प्रचार पुस्तकों में लिखते हैं 'कुछ बाधाओं के कारण' लौट आयें।

कुम्भकोण मठाधीश श्री सुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती के पश्चात् प्रस्तुत कुम्भकोण मठाधीश जो 1907 ई॰ में सन्यासाश्रम लेकर मठाधीश बनें और 1914 ई॰ में मठ का निर्वाह अपने हाथ में लिये, आप पुनः प्रचार करना शुरु कर दिये। 1916 ई॰ में कुम्भकोण मठ का एक प्रचार पत्र 'आर्यधर्मम्' के नाम से प्रकाशित होने लगा। इस पत्र में अपने मठ द्वारा कल्पित भ्रामक मिथ्या प्रचारों का विस्तार पुनः प्रारम्भ होने लगा। आपके पूर्वाचार्य श्री महादेव VII उर्फ श्री सुदर्शन से अधूरा छोडा कार्य को आपने अपने भ्रमण में पूर्ण किया था। आपके मठ बारे में जो कुछ प्रचार 1915 ई॰ से हो रहा है और जिस प्रचार का शिखर 1962 में पहुंच चुका है इसकी तुलना में आपके पूर्वाचार्यों ने उतना प्रयत्न किया न होगा। भारत के विविध भाषाओं में आपके मठ प्रचार पुस्तक उपलब्ध होते हैं और प्रचार सामग्री की बंटवारा आधुनिक काल के प्रचार मार्गों के अवलम्बन द्वारा होता है। प्रस्तुत मठाधीश का कहना है कि आप इन प्रचारों के दायित्व नहीं हैं और आप भ्रामक प्रचार नहीं करते पर उनके प्रचार इन कथनों की पुष्टि नहीं करते। दक्षिण भारत में प्रायः 1910 के पूर्व काल में कुंभकोण मठ का आधिपत्य केवल मद्रास प्रान्त के दो तीन जिलों में था। विशेषतः तंजौर जिला के लोग कुम्भकोण मठ के शिष्य भक्त थे। जब से कुम्भकोण मठ का प्रचार 'चिक्कुडयार' जी के मठ से महागुरु मठ होने का तीव्र रूप से प्रारम्भ हुआ तब से तंजौर जिला का आधिपत्य छोडकर सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अपना प्रभाव एवं धर्मानुशासन जमाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

कुम्भकोण मठाधीश के भाषण की व्याख्या रूप में और सन्देहों के निवारण के लिये 'पण्डित पत्र' ता: 15—10—34 के अङ्क में एक विद्यार्थी का लेख 'कुछ शंकाओं के समाधान' शीर्षक रूप में प्रकाशित हुआ है। इन सब भ्रामक मिथ्या प्रचारों का उत्तर मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श' में विशेष रूप से पायेंगे। इसलिये मैं केवल यहां कुम्भकोण मठानुयायियों के अभिप्राय को प्रकाशित कर रहा हूं।

कुछ शंकाओं के समाधान
(कांचीकामकोटि पीठ और श्री शङ्कराचार्य)

जगद्गुरु श्री आचार्य जी ने अपने भाषण में जो संयत और उदात्त बातें कही है उन्हीं से अनेक शंकायें दूर हो जाती है तो भी मैं दो एक प्रश्नों के उत्तर का निर्देश कर देना चाहता हूं। कुछ लोगों को लाभ ही होगा।

एक प्रश्न यह है कि मठाम्नाय में चार ही पीठों का उल्लेख है फिर यह पांचवां (कामकोटि, कांची) पीठ कैसा? उत्तर देने के पहले मुझे यह पूछना है कि क्या चारों अन्य पीठों के मठाम्नाय में एक सा सर्वसम्मत अविरुद्ध वाक्य मिलता है? मेरा कहना तो यह है कि एक दूसरे के मठाम्नाय परस्पर विरुद्ध देख पडते हैं। तब उसी परस्पर विरुद्ध मठाम्नाय के आधार पर कोई निर्णय कैसे संभव हो सकता है। उन उन मठों द्वारा प्रकाशित किये गये मठाम्नायों से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि शृङ्गेरी में भारती संप्रदाय, गोवर्धन पीठ में "वन अरण्य" संप्रदाय प्रचलित है। परन्तु शृङ्गेरी में श्री विद्यातीर्थ, श्री विद्यारण्य प्रभृति भिन्न भिन्न संप्रदायों के आचार्य हुए हैं, एवं गोवर्धनमठ में श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज, श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, प्रभृति विराजमान थे और अभी विराजमान हैं। यदि उन उन मठों से प्रकाशित और प्रचलित मठाम्नाय का प्रामाण्य स्वीकार करें तो इन सब आचार्यों का उस उस पीठाधिपति होने का निर्णय करना कठिन होगा। इतना ही नहीं, मठाम्नायों में अपने प्रथमाचार्यों के विषय में परस्पर विरोध माऌम होता है। शृङ्गेरी भी श्री विश्वरूपाचार्य जी को अपना प्रथमाचार्य कहतें हैं। और गोवर्द्धन मठ भी उन्हीं को अपना प्रथमाचार्य कहते हैं। ऐसा परस्पर विरुद्ध व्यवहार होने के कारण प्रचलित मठाम्नाय प्रमाण्य से चारों मठों का ही निर्णय करना कैसे संभव हो सकता है।

यदि मठाम्नायों को ठीक मान लें तो भी हम एक बात कहेंगे कि श्री जगद्गुरु आदि शङ्कराचार्य ने अपने चार शिष्य सर्वश्री पद्मपाद, सुरेश्वर, त्रोटक और हस्तामलक को मठों की व्यवस्था की—मठाम्नाय का आदेश दिया। पर क्या उसी प्रकार वे अपने पीठ के लिए भी आज्ञा दे सकते थे? वे तो स्वयं कांची में रहते थे और वहीं उन्होंने शरीर त्याग किया तब उनके विषय में मठाम्नाय हो ही कैसे सकता है? गुरु स्वयं अपने लिए कुछ नहीं कहता। उनके अवसान के उपरान्त उनके प्रसिद्ध शिष्य श्री चन्द्रमौलीश्वर की अर्चना करने लगे। और भक्त लोग उन्हें आदिशङ्कर का आदर और मान देने लगे। इस प्रकार इस गद्दी का इतिहास है।

(2) दूसरा प्रश्न यह है कि इस पीठ की प्रामाणिकता क्या है? शिवरहस्य में इस पीठ का उल्लेख है। शिवरहस्य के विषय में आचार्य का भाषण पढो।

(३) कुछ लोगों का यह संदेह है कि इन्द्र सरस्वती नाम कैसा? यतिधर्मनिर्णय देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आनन्द सरस्वती और इन्द्र सरस्वती दोनों नाम संन्यासियों के होते हैं। और लोक में भी श्री सदाशिवेन्द्र सरस्वती जैसे महात्मा प्रसिद्ध हो चुके हैं। इतने से समझदार सब कुछ समझ लेंगे।

(3) अन्तिम आक्षेप "ॐ तत्सत्"—इस महावाक्य के सम्बन्ध में है कि महावाक्य ही अप्रसिद्ध है, जिसको श्री कांचीकामकोटिपीठ अपना महावाक्य समझते हैं। इस विषय में श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति श्री जगद्गुरु श्री 108 शंकराचार्य जी महाराज से उत्तर लेकर उसे प्रकाशित करने के सम्बन्ध में उनसे हमने प्रार्थना की, तदनुसार श्री चरणों ने उत्तर दिया कि, "ॐ तत्सत्" यह कांची मठ का महावाक्य नहीं है। किन्हीं पुस्तकों में यही कांची मठ का महावाक्य है ऐसा देखने में आता है परन्तु, वे पुस्तक मठ की अनुमति से या मठ के तरफ से प्रकाशित नहीं की गयी है। इन पुस्तकों के लिये मठ एवं श्री चरण उत्तरदायी नहीं हैं। —एक विद्यार्थी।

विद्यार्थी के उपर्युक्त लेख में एक विचारणीय विषय है। आप लिखते हैं कि श्री कुम्भकोण मठाधीश ने कहा कि 'ॐ तत्सत्' कांची मठ का महावाक्य नहीं है और जो पुस्तक 'ॐ तत्सत्' को कांची मठ का महावाक्य बतलाते हैं वह सब पुस्तक मठ की अनुमति से या मठ की तरफ से प्रकाशित नहीं की गई हैं और उन सब पुस्तकों के लिये मठ एवं श्रीचरण उत्तरदायी नहीं हैं। मठाधीश जी को मालूम है कि आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित मठों के लिये आम्नाय पद्धति होना एवं उन मठों को महानुशासन से बद्ध करना परमावश्यक है। मठाम्नाय पद्धति का एक अङ्ग हर एक मठ का वेद और महावाक्य है। कुम्भकोण मठाधीश ने "ॐ तत्सत्" महावाक्य कांची मठ का न होने का समाचार दिया हैं पर यह कहा नहीं कि कांची मठ का महावाक्य कौन है? इस मौन का तात्पर्य क्या है? चार वेद के चार उपदेष्टव्य महावाक्य (शुकरहस्योपनिषद) हैं और अब कहां से पांचवां वेद और महावाक्य टपक पडा। जितने खण्डन एवं विमर्श का विमर्श कुम्भकोण मठ प्रचारकों व विद्वानों द्वारा व्यवस्था रूप में लिखा और प्रकाशित हुआ है और कुम्भकोण मठानुयायियों द्वारा प्रकाशित 'श्रीशाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक में 'ॐ तत्सत्' को कांची मठ का महावाक्य होना सिद्ध किया है। वर्तमान 1962 ई० में कुम्भकोण मठ विषयक प्रचार मासिक पत्रिका "कामकोटि प्रदीपम्" में भी "ॐ तत्सत्" को न केवल महावाक्य होने का सिद्ध किया है पर यह भी प्रचार किया है कि "ॐ तत्सत्" सर्वश्रेष्ठ महावाक्य कांची मठ का ही है। कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रामाणिक पुस्तक "गुरुरत्नमाला" की टीका "सुषमा" जिसे कुम्भकोण मठ के श्री आत्मबोध द्वारा रचित होने की कथा सुनायी जाती है उसमें श्री आत्मबोध ने "ॐ तत्सत्" को कांची मठ का महावाक्य लिखा है। क्या वर्तमान मठाधीश ने अपने मठ के प्रामाणिक पुस्तक को पढा या देखा नहीं है? क्या वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश अपने वचनानुसार अपने मठ का प्रामाणिक पुस्तक "सुषमा" को निराकरण करने तैय्यार हैं या श्री आत्मबोध को कुम्भकोण मठ से कोई सम्बन्ध न होने का कथन स्वीकार करने का तैय्यार हैं? परिस्थिति के अनुसार समय समय पर विभिन्न कथनों से अपने प्रचारों की पुष्टि करना ही भ्रामक व मिथ्या प्रचार कहलाता है।

'पन्डितपत्र' ता० 21—1—1935 के अङ्क में श्री कुम्भकोण मठाधीश के उपदेश का कुछ सार प्रकाशित हुआ है जिसे मैं नीचे उद्धृत कर पुनः प्रकाश कर रहा हूं।

'इस बात की भी चर्चा की कि अन्य पीठों के कुछ हार्दिक भक्तों के मन में पीठों के श्रेष्ठत्व के बारे में आपत्ति है। स्वामीजी ने स्पष्ट कहा कि मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं किसी पीठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व का दावा करूं।'

'लीडर" पत्र ता० 18—1—35 के अङ्क में प्रकाशित है—

'In this connection His Holiness referred to the grievances of some sincere Bhaktas of other Peethas with regard to the superiority of the Peethas. His Holiness clearly expressed that it was not his wish to claim superiority over any Peethas and exhorted his disciples to revere all the Peethas equally.'

पाठकगण कृपया "पन्डित पत्र" 15—10—1934 के अङ्क में प्रकाशित श्री स्वामीजी का भाषण फिर से पढ़ें और उन वाक्यों के अर्थों एवं भावों से अब छपे हुए "पन्डितपत्र" 21—1—1935 के अङ्क एवं "लीडर" 18—1—1935 के अङ्क कें 'उपदेश के कुछ सार' शीर्षक में दिये वाक्यों के अर्थों एवं भावों से मिलायें और इसके बीच में जितनी व्यवस्थायें, पुस्तकों, लेखों व ट्रक्टों आदि में प्रकाशित हुए हैं उनसे भी मिलायें तो सत्यार्थ पाठकगण समझ पायेंगे।

कुम्भकोण मठाधीश का कहना है कि आपका यह इच्छा नहीं है कि आप किसी मठ या पीठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व का दावा करें। कुम्भकोण मठ द्वारा रचित व प्रकाशित मठाम्नाय सेतु में स्पष्ट उल्लेख हैं कि अन्य आम्नाय मठ आपके प्रधान सर्वोच्च मठ के संचालन में है, इन चार मठों के मठाधीश न वे अन्य सीमा में जा सकते हैं या वे आपकी आज्ञा विना देश भ्रमण कर सकते हैं पर प्रधान सर्वोच्च कांची मठ जहां कहीं भी भ्रमण कर सकते हैं तथा आपके मठाधीश "जगद्गुरु" हैं और अन्य 'श्रीगुरु' हैं। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्री आद्य शंकराचार्य के अनुक्षण अनुकरण करने घाले व आपके परम निकट शिष्य श्री चित्सुखाचार्य द्वारा रचित 'बृहच्छंकरविजय' से कांची मठाम्नायसेतु उद्धृत है। पृष्ठ 6 में कुम्भकोण मठ मठाम्नायसेतु से श्लोक उद्धृत हैं और कृपया पाठकगण इसे पुनः पढ़ें। इन दोनों भिन्न कथनों में पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठाधीश के भाषण में कितनी यथार्थता है। क्या कुम्भकोण मठाधीश इस मठाम्नाय सेतु को निराकरण करने तैय्यार हैं?

मुकद्दमा नं. 95/1844 ई०, जिला अदालत तिरुचिनापल्ली, में कुम्भकोण मठाधीश ने एक बयान अपने प्रतिनिधि द्वारा दिया है कि सरस्वती छोटी श्रेणी की देवी हैं और कांची कामाक्षी ऊंची श्रेणी की देवी हैं और आचार्य शङ्कर ने नीची श्रेणी देवी मन्दिर में श्रीचक्र प्रतिष्ठा नहीं की थी। इसी प्रकार अन्यत्र यह भी प्रचार करते हैं कि पांच लिङ्ग जो आचार्य शङ्कर कैलास से लाये इसमें योगलिङ्ग 'सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ' है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश काशी में कहा कि 'मेरा यह इच्छा नहीं है कि मैं किसी पीठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व का दावा करूं' परन्तु आपके परम्परा के पूर्व मठाधीश श्रेष्ठत्व की दावा की है। इन भिन्न कथनों में कौन कथन सत्य है? एक ओर निराकरण करते हैं और दूसरी ओर अपने शिष्यों द्वारा भ्रामक प्रचारों की पुष्टि करते हैं तथा कहते हैं 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है।' ऐसी भ्रमात्मक प्रचारों के ही हम विरोधी हैं।

श्री स्वामीजी एक अद्वितीय विद्वान होते हुए भी पीठ एवं मठ की भिन्नता को अभी तक नहीं समझ सके। सत्य कहने में हानी होगी चूंकि पीठ जो कांची में अनादि काल से है और जिसकी अधीश्वरी पराशक्ति कामाक्षी हैं और जिसे सब मानते व पूजते हैं, उसके नाम से अपना ध्येय सिद्ध कर सकते हैं यदि यह सिद्ध हो जाय कि श्री आद्यशङ्कर ने आम्नाय मठ की प्रतिष्ठा कांची में नहीं की तो आप पीठ के नाम से प्रचार कर सकते हैं। अर्थात् पीठ और आम्नाय मठ उनके लिए एक ही है। यदि पीठ है तो मठ है। यदि मठ नहीं तो पीठ है इसलिये वे पीठाध्यक्ष (मठाध्यक्ष)

हैं। इसप्रकार आपको भ्रमात्मक प्रचार करने में सुविधा ही है। मठ (धर्मराज्य केन्द्र) की चर्चा उठी न कि पीठ की। हमलोगों ने जो "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक प्रकाश किया और उसके उत्तर में आप द्वारा "श्री शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन" प्रकाश हुआ। पीठ और मठ दोनों भिन्न भिन्न शब्द हैं और इनका अर्थ भी भिन्न हैं। इन विषयों का विवरण "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" नामक पुस्तक में पायेंगे। यहां मठ शब्द (धर्मराज्य केन्द्र) आम्नायानुसार प्रयोग किया गया है। एक ओर कहते हैं कि मैं किसी पीठ के ऊपर स्व श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करता और दूसरी तरफ कहते है "शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है" और शिष्यगण आपके मठ को श्रेष्ठ व सर्वोच्च व सर्वोत्तम ही निर्णय देते हैं। ऐसा कोई भी भ्रामक प्रचार की एक सीमा निर्धारित होती है पर यह तो अतीत है।

विद्यार्थी का लेख "पन्डित पत्र" ता० 15—10—34 को जो प्रकाशित हुआ है उसे पढने पर मालूम होता है कि श्री स्वामीजी और उनके अनुयायी, भक्त सब सदा शृंगेरी तथा उनके शिष्यों का ही अहोरात्र स्वप्न देखते हैं और जो कुछ कांची मठ के विरुद्ध घटता है अथवा उनकी इष्टसिद्धि में अड़चन होती है व जो न्यायोक्त शास्त्रीय प्रश्न पूछे जाते हैं व आपके कपोल कल्पित कथाओं का भन्डा फोड होता है—उपर्युक्त घटनाओं का श्रेय श्री शृंगेरी मठ तथा उनके अनुयायीयों को समझते हैं। "अन्य पीठों के कुछ हार्दिक भक्तों के मन में" अर्थात् "शृंगेरी मठाभिमानी एवं शिष्य" "श्री शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन" के अनुमानानुसार। "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक के तीसरे खन्ड में सम्मति पत्रें एवं व्यवस्थायें भी प्रकाशित पायेंगे जो सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्राप्त हुआ है। ये सब गण्यमान माननीय सज्जन तथा परिव्राजक शृंगेरी के शिष्य नहीं हैं। कुम्भकोण मठानुयायीयों का एक ही उद्देष्य यह है कि जिस प्रकार भी हो शृंगेरी की निन्दा करें। श्री चिद्विलास कहते हैं" यस्त्वद्वैतमते स्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः सयाती नरकं घोरं यावदा भूत संप्लवं।" कुम्भकोण मठानुयायी द्वारा रचित एक पुस्तक में उल्लेख है कि श्री चिद्विलास यति जिन्होंने 'श्री शङ्कर विजय विलास' ग्रन्थ रचा था (और जिस ग्रन्थ द्वारा उपर्युक्त श्लोक उदधृत किया है) वह कांचीकामकोटि मठाध्यक्ष थे।

मैं ने "लीडर" पत्र ता० 21—10—34 के अङ्क में एक पत्र श्री विश्वनाथ शास्त्री द्रविड के नाम से 'Kanchi Kamakoti Peetha' शीर्षक प्रकाशित देखा। इस पत्र का विषय सब 'पन्डितपत्र' ता० 15—10—34 के 'एकविद्यार्थी' के लेख से मिलता जुलता है। मैं ने 'सूर्य' ताः 24—10—1934 के अङ्क में 'श्रीस्वामीजी का भाषण तथा एक विद्यार्थी के लेख की समालोचना' शीर्षक प्रकाशित किया। 'लीडर' पत्र को एक अंग्रेजी भाषा में लेख लिखकर भेजा था और न मालूम वह प्रकाशित हुआ है या नहीं।

श्री स्वामीजी का भाषण तथा एक विद्यार्थी के लेख की समालोचना

15 अक्टूबर के "पन्डित पत्र" में कुम्भकोण मठ के श्री स्वामीजी का भाषण एवं एक विद्यार्थी से प्रकाशित कुछ "शङ्काओं के समाधान" शीर्षक लेख को देखकर सन्देह और भ्रम दूना हो गया। आशा है कि कुम्भकोण मठ के स्वामीजी पूर्ण विचार करके समाधान करने का फिर से कोशिश करेंगे।

श्री आदि शङ्कराचार्यजी कांची में परम पद प्राप्त किये इसमें कुछ भी प्रमाण नहीं है क्योंकि शिवरहस्य कई जगह प्रकाशित है एवं हस्तलिखित प्रतियां भी हैं। कुछ कल्पित पुस्तकों के बिना बाकी किसी पुस्तक में श्री शङ्कराचार्यजी कांची में शरीर त्याग किये ऐसा नहीं है। इसमें सिद्ध होता है कि कुछ लोग एक श्लोक के कुछ पदों को बदल दिये हैं। इसलिये इसको किस प्रकार प्रमाण माना जाय।

जब मूलाधार ही अप्रमाण है तब उसके आधार पर लिखा हुआ 'आनन्दगिरि शङ्कर विजय' कैसे प्रमाण हो सकता है और कई पन्डितों ने निर्विवाद माना है कि "आनन्दगिरि शङ्कर विजय" अप्रमाण है। यहां तक कि ब्रिटिश ला कोर्ट भी एक समय कतिपय पन्डितों ने शपथ पूर्वक "आनन्द-गिरी शङ्कर विजय" को अप्रमाण कहा है। अब रह गया 'नैषध'। पता नहीं कि श्री हर्षरचित नैषध को भी स्वामीजी प्रमाण मानते हैं या स्वामीजी द्वारा रचित कोई दूसरा ही नैषध है जिसको श्री स्वामीजी श्री हर्षरचित प्रकट करना चाहते हैं। वास्तविक श्री हर्षरचित नैषध के नवम (द्वादश सर्ग में "यागेश्वर" पद है) सर्ग में न तो कांची पुर का वर्णन है न योगेश्वर लिङ्ग का गन्ध है तो इस में संदेह ही नहीं है कि श्री स्वामीजी के माने हुए तीन प्रमाण भी पूर्ण रूप से कल्पित एव प्रमाणाभास है।

जगद्गुरु पदवी श्री आदि शङ्कराचार्य जी को (एवं उनसे स्थापित चार मठों के गद्दी नशीनों को ही) मुख्य रूप से लगता है, यह बात ठीक है। इस बात को सभी लोग मानते है। परन्तु श्री स्वामीजी कहते हैं कि जगद्गुरु शब्द बहुब्रीहि समास से अपने में लगता है इससे उनके शिष्य, शुभचिन्तक एवं भक्त लोग अपने गुरु पीठ के गौरव का लोप समझ रहे हैं। जो हो। जब श्री स्वामीजी ही अर्थात् श्री शङ्कराचार्यजी से स्थापित चार मठों को अपने गुरु मठ मान रहे हैं तो अपने शिष्यों द्वारा उल्टा प्रचार क्यों करा रहे हैं? इसका तत्त्व नहीं मालूम हो रहा है। अब आगे स्वामीजी कहते हैं कि मैं वेदों और शास्त्रों के अर्थों के निर्णय करने का अधिकारी हूं पर पीठ की प्रधानता का निर्णय मेरे अधिकार के बाहर की वस्तु है, यह काम शास्त्रज्ञ भक्तों का है, इत्यादि। अब यह शङ्का होती है कि श्री स्वामीजी शास्त्रों के अर्थ को पूर्ण रूप से समझ कर निर्णय करते हैं या न समझ कर। यदि शास्त्र के अर्थ को पूर्ण रूप से समझ कर करते हैं तो स्वयं शास्त्रज्ञ होने के कारण मठों के प्राधान्याप्राधानता का भी निर्णय कर सकते हैं। यदि वेद और शास्त्र के अर्थ ठीक नहीं समझते हों तो किसी बात के निर्णय करने में अधिकारी कैसे होंगे? उस अवस्था में शास्त्रार्थ के निर्णय के लिए उनके भक्त पर्याप्त नहीं हो सकते हैं किन्तु श्री स्वामीजी के दिये हुए दृष्टान्त के अनुसार अर्थात् एक डाक्टर अपने रोग आदि के निर्णय में अन्य डाक्टर की अपेक्षा रखता है उसी प्रकार अब स्वामीजी का संदिग्ध विषय अन्य मठाधिपतियों से ही निर्णय होना चाहिए न कि उनकी अपेक्षा अनभिज्ञ उनके शिष्यों से। क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि प्रायः शिष्य लोग अपने गुरु की अपेक्षा अधिक ज्ञान नहीं रखते हैं। अब यह विचार करना चाहिए कि यदि कुछ समय के लिये कामकोटि पीठ श्री आदि शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित मान भी लिया जाय तो भी किस स्थल में स्थापित है। यदि कहें कि कांची में स्थापित है तो उनसे पूछना चाहिए कि आप अब कुम्भकोण में किस प्रमाण से ले गये हैं क्योंकि अन्य चारों पीठ जहां जहां स्थापित हैं वे उसी जगह में हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि देवालय स्थापित मूर्तियों को स्थान भ्रष्ट कर अन्य स्थल में ले जाने पर वे पूजार्ह नहीं होती है तो कांची में स्थापित पीठ यदि कुम्भकोणम् में लाया गया तो वह कभी पूजार्ह नहीं हो सकता।

अब श्री स्वामीजी आपत्ति पाकर अपने गुरु उपदेश का भी त्याग कर रहे हैं। असी श्री स्वामीजी का कथन है कि "ॐ तत्सत्" यह कामकोटि पीठ का महावाक्य नहीं है। श्री स्वामीजी के पूर्वाचार्य श्री आत्मबोध जी ने स्वकृत 'सुषमा' नामक ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है कि "ॐ तत्सत्" कामकोटि मठ में उपदेष्टव्य महावाक्य है। पता नहीं कि श्री स्वामी जी अपने पूर्वाचार्यों का नाम डुबाने का साहस यहीं खतम करेंगे या पूर्ण कर छोड़ेंगे।

अब विद्यार्थी के लेख पर कुछ विचार कीजिये। विद्यार्थी भी भारी पंडित मालूम होता है। श्रुति में कहीं "असद्वा इदमग्र आसीत् ततो वै सदजायत" यह पहले असत् था, उस असत् से सत् उत्पन्न हुआ है और कहीं "सदेव सौम्येदमग्र आसीत" हे सौम्य! पहले यह सत् ही था ऐसा है। इससे श्रुति में परस्पर विरोध मालूम होता है तो क्या विरोध के भय से श्रुति अप्रमाण मानी जायगी? नहीं, कदापि नहीं, किन्तु ऐसे विरुद्ध वाक्यों का समन्वय किया जाता है। ब्रह्म सूत्र में इस बारे में एक समन्वयाध्याय ही बनाया गया है। इसी प्रकार यदि किसी अंश में मठाम्नायों में विरुद्धसा मालूम भी पड सकता है, उसका पूवजों ने समन्वय किया ही है। इस बात को सब मानते हैं कि श्री आद्यशङ्कराचार्य जी श्री विश्वरुपाचार्य जी को शृंगेरी मठ में नियोजित करते हुए भी उनको अन्यमठों के व्यवस्थापक बनाये। इससे हो सकता है कि वे कभी कभी अन्य मठों में भी जाकर कुछ कुछ दिन रहे हों। अतः सभी मठवाले उनको अपने आचार्य मानते हैं। इससे कोई विरोध नहीं है। विद्यार्थी "यतिधर्म निर्णय" का प्रमाण देते हुए लिखता है कि 'आनन्दसरस्वती' और 'इन्द्रसरस्वती' दोनों नाम संन्यासियों के होते हैं पर खेद है कि विद्यार्थी ने उस पृष्ठ को पूरा नहीं पढा। उसी पृष्ठ में यह लिखा है कि "इन्द्र सरस्वती" आदि नाम अपने आचार विचार के अभिमान से कल्पित हैं। अतः स्वामीजी से प्रार्थना है कि सत्य विषय को प्रकट करें।

18. 'कुम्भकोण मठाधीश के ओर से भ्रामक प्रचार' शीर्षक नोटिस

इसके अतिरिक्त एक नोटिस 'कुम्भकोणम् मठाधीश की ओर से भ्रामक प्रचार' शीर्षक 'विद्यार्थी' के नाम पर छपकर प्रकाशित हुआ है। श्री मठाधीशजी से 11 प्रश्न पूछे गये जिसका उत्तर अभी तक मिल ही रहा है।

कुम्भकोणम् मठाधीश की ओर से भ्रामक प्रचार

कुम्भकोणम् मठ के स्वामीजी महाराज श्री काशीपुरी पंहुचकर नवरात्री, मौनव्रत और विजय यात्रा भी समाप्त कर लौट आये। अब सब को यह स्पष्ट ही मालूम हो गया है कि कुम्भकोणम् मठाधीश अपने शिष्यों द्वारा जो प्रचार करवा रहे हैं कि श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित प्रथम एवं प्रधान पीठ वही कांची है; मौलाम्नाय, ऋग्वेद, ॐ तत्सत् महावाक्य, मिथ्यावार संप्रदाय और श्री स्वामीजी ही एक मात्र जगद्गुरु शङ्कराचार्य और अन्य पीठ के श्री गुरु मात्र पदवी के अर्ह हैं; यह सब असत्य एवं प्रमाण रहित है। अब उनके प्रमाणों को देखने और उस पर विचार करने का समय आ गया है। बिना विषय को अच्छी तरह समझे राय देना अज्ञता है। केवल इतना ही नहीं पर "पन्डितपत्र" के 15 अक्टूबर में जो श्री स्वामी जी का भाषण और एक विद्यार्थी द्वारा प्रकाशित "कुछ शङ्काओं के समाधान" निकले हैं, उन्हें देखकर सनातनी जनता और भी बडे संदेह में पड गई है। श्री स्वामी जी ने भाषण में जगद्गुरु शब्द का बहुव्रीही समास में अर्थ बतलाया है। इससे सबसे बडी शङ्का यह होती है कि स्वागत जो किया गया था क्या वह एक शिष्य को किया गया था? बाद उन्होंने कहा कि मैं इसका निर्णयक कैसे हो सकता हूं। मैं तो केवल वेदों और शास्त्रों के अर्थों का निर्णय करने का अधिकारी हूं। पीठ के तारतम्य का निर्णय शास्त्रज्ञ भक्तों का है, इत्यादि। तो क्या श्री स्वामीजी

शास्त्रज्ञ नहीं हैं ? यदि हैं तो क्यों नहीं इसका विवेचन स्वयं करते। 'ॐ तत्सत्' महावाक्य यह कांची मठ का नहीं है इस प्रकार श्री स्वामीजी ने कहा, पर यह न कहा कि कौनसा महावाक्य इनका है। यह तो और भी भ्रम में डाल रहा है। "गुरुरत्नमाला" के "सुषमा" व्याख्या में यह स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है "मौलाम्नाय, श्री शारदामठ, कामकोटि पीठ, सत्यव्रत कांची, पम्पासर, एकाम्रनाथ, कामकोटि, ऋग्वेद, मिथ्यावार, इन्द्र सरस्वती, ॐ तत्सत्, शङ्करभगवत्पाद इति मौलाम्नायः" जो कि इनके पूर्वजों का लिखा हुआ एक प्रमाणिक ग्रंथ है। चाहे श्री स्वामीजी शिष्यों से लिखी हुई पुस्तक को निराकरण करदें पर उनके प्रामाणिक ग्रंथ को किस प्रकार निराकरण कर सकते हैं ?

विद्यारण्य जी के (जो कि वेदों के भाष्यकर्ता हैं) शङ्कर विजय को प्रमाण नहीं मानते हैं और श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य द्वारा रचित मठाम्नाय को प्रामाणिक नहीं मानते हैं और ऐसी ही कई ग्रंथ जो कि हमारे पूर्वजों द्वारा प्रामाणिक माने गये हैं अब वे सब प्रामाणिक नहीं रह गये। अब विचारना है कि किस आधार पर वे खडे हैं। उनके आधार केवल यही है कि अन्य पुराण प्रमाण वचनों से विरुद्ध एवं कल्पित एक श्लोक जिसको कि शिवरहस्य का बताते हैं, आनन्दगिरि शङ्कर विजय जो कि कई अंशो में पंडित सभा और ब्रिटिश ला कोर्ट में अप्रमाणिक ठहराया गया है और श्री हर्षरचित नैषध काव्य का एक श्लोक जिसमें एक पद बदल दिया गया है। आश्चर्य का तो यह विषय है कि प्रामाणिक ग्रंथ आनन्दगिरिशङ्कर विजय में भी (हम सबों का प्रामाणिक नहीं है) श्री शृङ्गेरी मठ का वर्णन करते समय लिखा है कि "सरसवाणीं निधाय एनंमाकल्पं स्थिराभवमदाश्रमे।" इससे स्पष्ट [मालूम होता है कि श्री आद्यशङ्कराचार्य जी का आश्रम श्री शृङ्गेरी ही था। बाद उसी पुस्तक में यह लिखा है कि श्री सुरेश्वराचार्य को श्री शृङ्गेरी में बैठाये। शिवरहस्य नवांश 16 वां अध्याय कई जगहों में प्रकाशित किया गया है। अन्यत्र प्रकाशित पुस्तकों की अपेक्षा कुम्भकोणम् से प्रकाशित पुस्तक में यह विशेषता है कि तीन श्लोक निकाल दिये गये हैं और एक श्लोक के कुछ पद भी बदल दिये गये हैं। यद्यपि कांची अठारह शक्ति पीठों में एक है और श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्यजी वहां श्रीचक्र आदि निर्माण कर और एक मास ठहर कर अन्त में वहां के राजा द्वारा ब्राह्मणों को पूजा पाठ आदि के लिए नियुक्त कराकर वहां से आगे बढे किन्तु वहां मठ का निर्माण करके स्वयं मठाधिपति थे और अपने बाद शिष्यों को बैठा कर गये, इस विषय में कुछ भी प्रमाण किसी भी प्रामाणिक पुस्तक में नहीं मिलता। इससिए वे केवल चार मठों का निर्माण कर चार शिष्यों को बैठाये और स्वयं कहीं नहीं बैठे। कई पुराणों प्रामाणिक ग्रन्थों और शासनपत्रों द्वारा यह सिद्ध है कि आद्यशङ्कराचार्यजी के हस्त से परिकल्पित चार ही मुख्य शिष्य हैं तथा चार ही मठ हैं। केवल यहां नहीं परन्तु अन्य मतावलम्बियों द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों में केवल ऊपर कही बात मिलती है।

अब आप लोग इस विषय पर भलीभांती विचार कीजिएगा कि कुम्भकोणम् मठ के श्री स्वामी जी शिष्यों द्वारा इस प्रकार के निरर्थक निष्प्रमाण वचनों से अपने मठ को प्रथम एवं प्रधान बताते हुए लोगों को क्यों भ्रम और संदेह में डाल रहे हैं ? क्यों नहीं वास्तविक तत्त्व को लेख द्वारा प्रकाशित कर लोगों के भ्रम को दूर करते हैं। जब तक निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्रामाणिक सयुक्तिक रूप से ग्रंथों के आधार पर नहीं मिलता तब तक किस प्रकार इनके प्रकाशन को यथार्थ और सत्य माना जाय।

प्रश्न

1. श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य जी द्वारा कुम्भकोगम् मठ स्थापित है या नहीं? यदि स्थापित है तो कब कहां स्थापित है? एक जगह स्थापित पीठ को दूसरी जगह ले जाने में शास्त्र की सम्मति है या नहीं? दूसरी जगह ले जाने पर वह पूजा के योग्य हो सकता है या नहीं?

2. श्री शङ्कराचार्य जी ने चार दिशाओं में चार वेदों के विभाग पूर्वक चार मठों की स्थापना की है ऐसा जो निर्विवाद प्रसिद्ध है उसकी दृष्टी से यह कुम्भकोणम् मठ श्री शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित पांचवां मठ हो सकता है या नहीं? यदि हो सकता है तो प्रमाण क्या है?

3. कुम्भकोणम् मठ के लोग यह जो कहते हैं कि "श्री आद्य शङ्कराचार्य जी ने कांची में एक मठ की स्थापना करके वहीं सर्वज्ञ पीठारोहण किये" इसमें कौन सा प्रमाण है?

4. तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, पुरी, ये दस संप्रदाय प्रमाण सिद्ध हैं। कुम्भकोणम् मठ के स्वमीजी का "इन्द्र सरस्वती" संप्रदाय क्या प्रमाण सिद्ध है? यदि सिद्ध है तो उसमें क्या प्रमाण है? इन दस से भिन्न नवीन "इन्द्र सरस्वती" संप्रदाय कब से आरम्भ हुआ है?

5. परमगुरु गौडपादाचार्य, गुरु गोविन्द भगवत्पादाचार्य, श्री शङ्कराचार्य जी और उनके चार शिष्य सुरेश्वर, पद्मपाद, हस्तामलक, और तोटकाचार्य किस संप्रदाय के थे?

6. महावाक्य कितने हैं? किस वेद का कौन महावाक्य है? महावाक्य का लक्षण क्या है? "ॐ तत्सत्" इस में महावाक्य का लक्षण है या नहीं? यदि है तो यह किस वेद का है? इसमें प्रमाण क्या है?

7. आम्नाय कितने हैं? आम्नाय को बताने वाले प्रामाणिक ग्रन्थ कौन कौन हैं?

8. शङ्करविजय ग्रन्थ कितने हैं? उनके रचयिता कौन हैं? शिष्ट लोग किस शङ्करविजय ग्रन्थ को विशेष रूप से प्रमाण मानते हैं? यदि उन ग्रन्थों में किसी अंश में परस्पर विरोध हो तो कैसे निर्णय करना चाहिए?

9. श्री शङ्कराचार्यजी ने श्री सुरेश्वराचार्यजी को किस मठ में बैठाया था और श्री सुरेश्वराचार्य कितने वर्ष जीवित थे?

10. संन्यासियों के लिये काम्यकर्म निमित्तक कुमारीपूजा इत्यादि स्वयं करने का अधिकार है कि नहीं? यदि है तो क्या प्रमाण है? कुमारी का लक्षण क्या है?.

11. शिवरहस्य ग्रन्थ के रचयिता कौन हैं? क्या वह अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत है? वह व्यास रचित है तो इसमें क्या प्रमाण है?

19. कुम्भकोण मठाधीश के साढ़े पांच माह काशीवास का कार्यक्रम सूची।

श्री कुम्भकोण मठाधीश 6 अक्टूबर 1934 को काशी धाम पहुंचे और उसी दिन रात को रामघाट के सांगवेद विद्यालय में आपका स्वागत एवं पादपूजा हुआ और स्वागत पत्र पढा गया। 8 अक्टूबर को श्री स्वामीजी पंचगङ्गेश्वर मठ गये जहां प० प० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी ने स्वागत पत्र पूर्वक श्री कुम्भकोण मठाधीश जी द्वारा भ्रामक प्रचारों के निराकरण करने को कहा। श्री स्वामी जी रा० सा० राय माधोराम सन्ड के यहां उतरे थे और वहीं नवरात्री अक्टूबर 9 से 16 तक उत्सव मनाया गया। तीर्थ स्थलों, मन्दिरों, विविध जगह में गङ्गा स्नान इत्यादि श्री स्वामीजी ने किया। काशी विश्वविद्यालय के प्राच्य संस्कृत विभाग में 6—2—35 को अभिनन्दन पत्र मिला। उसी दिन महामना मालवीय जी ने भी एक अभिनन्दन पत्र पढा। 16—2—35 के दिन सांगवेद विद्यालय के वार्षिकोत्सव में श्री स्वामी जो के प्रति एक और अभिनन्दन पत्र पढा गया। श्री स्वामीजी ने भाषण दिया। श्री आद्यशङ्कराचार्य जी के पट का उद्घाटन किया। ऐसे अवसर पर श्री काशी नरेश जी द्वारा एक और अभिनन्दन पत्र पढा गया। 9—3—35 के दिन काशी टाउनहाल में एक सभा वर्णाश्रम संघ, सांगवेद विद्यालय एवं काशी विश्वविद्यालय द्वारा संस्कृत कालेज के अध्यापकों से आयोजित किया गया और सारे काशी धाम की तरफ से आयोजित सभा कहकर श्री स्वामी जी को एक अभिनन्दन पत्र दिया गया। एक प्रणति पत्र भी पढा गया। 9—3—35 को काशी युवक संघ के नाम से एक अभिनन्दन पत्र पढा गया। श्री स्वामी जी का "पन्डितपत्र" कार्यालय में 11—3—35 के दिन स्वागत किया गया। ब्राह्मण महासम्मेलन व वर्णाश्रम स्वराज्य संघ और कार्यालय की तरफ से भी अभिनन्दन किया गया। हनुमानघाट के पूर्णानन्द मठ से (दाक्षिणात्य) एक अभिनन्दन पत्र श्री स्वामीजी को दिया गया। 18—3—35 को श्री काशी के दाक्षिणात्यों की तरफ से एक और अभिनन्दन पत्र दिया गया। श्री स्वामीजो 20—3—35 को श्री काशी धाम छोड कर स्व यात्रा के निमित्त कलकत्ता की ओर चले। श्री काशी धाम 6—10—34 को आये और 20—3—35 को काशीधाम छोड चले। श्री स्वामी जो काशी धाम में साढे पांच महीना रहे और उपर्युक्त विवरण उनके साढे पांच महीनों के कार्यक्रम था। और इसके अलावा कुछ भी उन्होंने न किया और न नागरिकों की तरफ से कुछ हुआ। भिक्षा के लिए कुछ जगह बुलाये गये थे और श्री स्वामी जी उन जगहों पर पधारे थे।

श्री स्वामी जी जिस कार्य निमित्त से काशीधाम आये उसकी पूर्ति पं. राजेश्वर शास्त्री जी, म० म० पं. अनन्त कृष्ण शास्त्री जी एवं म० म० पं. चिन्नस्वामी शास्त्री जी आदि दाक्षिणात्य पंडितों एवं उनकी पथ के टोलियों की सहायता से तथा इनसे चलाया हुआ सांगवेद विद्यालय, काशी वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (पं. राजेश्वर शास्त्री जी) और काशी विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज (पं चिन्नस्वामी शास्त्री जी) के भगीरथ प्रयत्न से श्री स्वामी जी की इच्छा पूर्ति की। धन्य हो धर्म का। श्री स्वामी जी को काशीधाम पहुंचने के पूर्व तथा बाद भी यही सुना गया था कि श्री स्वामी जी दस माह तक श्री काशी धाम में रहेंगे। कौन जाने किन कारणों से श्री स्वामी जी केवल साढे पांच माह श्री काशीधाम में वासकर अचानक 20—3—35 को काशी से रवाना हुए। सुना गया कि नैपाल से उनका कार्यसिद्धि नहीं हुआ और उनकी योजनाओं में अनेक बाधायें आखडी हुई। कुछ लोग कहते थे कि श्री स्वामी जी अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, बदरी, काटमन्डू इत्यादि जगहों में अपनी यात्रा करने की जो पूर्व योजना थी उसे अचानक रद कर दिया। चाहे जो हो, श्री स्वामी जी काशी आये और चले गये। अपने साथ वाद विवाद को भी लेते हुए चले गये। दाक्षिणात्य पन्डितों को छोडकर श्री काशीधाम के निवासी पन्डित वर्ग जिन्होंने श्री स्वामीजी के आयोजन में भी भाग लिया व समर्थन किया एवं उनके प्रचारों की पुष्टी के लिये यत्र तत्र अनर्गल युक्ति वाद द्वारा व्यवस्था तैय्यार किया,

वे सब पन्डित वर्ग अब अन्य कथा सुनाने लगे। यहां तक कि इन टोलियों के कुछ वर्ग ने मेरे पिताजी को बडी बडी कथायें भी सुनाई। और वे हमलोगों के व्यवस्था में हस्ताक्षर करने को तैय्यार भी हुए। जो सत्य पथ छोड कर किन्हीं कारणों से भ्रामक प्रचारों की पुष्टी करने लगे और सत्यपर एक पर्दा डाल तथा अशोभित कर अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कृत्य कर दिखाये और उस पर्दा के नष्ट होते ही अपने द्वारा स्वाभाविक सत्य का शोभित करने लगे। इसीलिये तो वे अब दूसरी कथा सुना रहे हैं।

20. कुम्भकोण मठ तरफ से काशी में प्रचार व कर्तूतें, मठविषयक विवाद बन्द कराने का प्रयत्न एवं 1935 ई० का काशी व्यवस्था तथा 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तिका के प्रकाश।

पं० अंकुराज सुब्बराय शर्म्मा ने 1934 में कुछ नोटिसें छापकर शहर में ढिंडोरा पिटवाया कि शर्माजी स्वयं इस विवाद का उत्तर दे सकते हैं और कुम्भकोणमठ को आद्यशङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित पंचम मठ सिद्ध कर सकते हैं। आपने "श्री शङ्कराचार्य मठ और चरित्र का विमर्शण" नामक एक पुस्तक प्रकाशित किया। इस पुस्तक द्वारा श्री आद्यशङ्कराचार्य के चरित्र को पढने में घृणा उत्पन्न होती है और हर एक सनातन धर्मावलम्बी ऐसी बातों को सुनकर घृणा करेंगे। सुना जाता है कि कुम्भकोण मठ की तरफ से उसके प्रचार का खर्च दिया गया था। श्री अंकुराज सुब्बराय शर्मा संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अनभिज्ञ थे और उनके द्वारा पुस्तकें व नोटिस हिन्दी भाषा में प्रकाशित की गई। आपका आर्थिक दशा सोचनीय थी और नित्य प्रातः भोजन की खोज के विचार से ही उठते थे। ऐसी स्थिति में अपने खर्चों से नोटिस, पुस्तक छपवाना कहां तक साध्य है? उन दिनों श्री शर्मा दक्षिण भारत में शृङ्गेरी के विरुद्ध प्रचार करते थे और इन्हें उत्तर भारत में बुलाकर यह प्रचार काशी में स्वयं कराया गया।

एक छोटी पुस्तक शीर्षक 'श्री कामकोटि पीठ,' श्री के. एस. वेंकटरमणी से रचित और कुम्भकोण मठ के मनैजर द्वारा प्रकाशित किया गया जिसको काशी के प्रत्येक गली में वांटा गया। 1935 में और एक पुस्तक "कांचीकामकोटि मठविषयक संवाद—पूज्यपाद श्री 1008 श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी चरणों द्वारा" शीर्षक श्री सभापति जी उपाध्याय ने प्रकाशित किया। संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में लिखा गया था। इन पुस्तकों द्वारा मठ के वाद विवाद विषय में उत्तर एवं समाधान रुप से प्रकाशित किया गया। अप्रामाणिक, कल्पित, भ्रमात्मक, व विवादास्पद विषयों को जो इन पुस्तकों में दिया गया है उन सबों का ही उत्तर एवं विमर्श मुझ से प्रकाशित "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक में पायेंगे। श्री कुम्भकोण मठाधीश का भाषण सांगवेद विद्यालय में पुस्तक रूप से प्रकाशित किया गया है। मकर संक्रान्ति के अवसर पर श्री स्वामी जी ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया जो 'लीडर' पत्र ता० 18—1—35 के अङ्क में, "आज पत्र ता० 17—1—35 के अङ्क में तथा" "पन्डित पत्र" 21—1—35 के अङ्क में प्रकाशित हुआ है। 19—2—35 के दिन पं. जानकी शरण त्रिपाठी जी "सूर्य" पत्र के सम्पादक, एक पत्र प्रतिनिधि की हैसियत से कुम्भकोणम् के आचार्य से मिलें। वे कहते हैं "विवादास्पद और भ्रामक विषयों पर विचार करने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। आपकी (श्री स्वामी जी) इच्छा है कि दो दलों में जो भ्रामक प्रचार हो रहे हैं उन पर विचार किया जाय।" यह समाचार 'सूर्य' पत्र 22—2—35 के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। सांगवेद विद्यालय के भाषण में श्री स्वामी ने कहा कि "शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है और वे जैसा रखेंगे वैसा मैं रहूंगा और इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता।" पर पं. जानकी शरण त्रिपाठी जी से कहा कि उन पर

(भ्रामक प्रचारों) विचार किया जाय और मकर संक्रान्ति के दिन अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए श्री स्वामी जी ने कहा कि यह मेरी इच्छा नहीं है कि मैं किसी पीठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व होने का दावा करूं। पर श्री काशी धाम में उनके सम्मुख ही भक्तों, शिष्यों व मठाभिमानियों के द्वारा पुस्तकें छपी और व्यवस्थायें व अनुमोदन व अभिनन्दन व प्रमाण व प्रार्थना व स्वागत आदि पत्र प्राप्त किया गया जिसमें इनके द्वारा भ्रामक प्रचारों की पुष्टी हुई थी, जिसमें कुम्भकोण मठ को सर्वोच्च सर्वोत्तम, श्री मदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित अविच्छिन्न परम्परागत महागुरु मठ होने का उल्लेख था। कभी कुछ कहते और करते कुछ और। अब पाठकगण स्वयं यथार्थ विषय जान गये होंगे।

इसी समय 'लीडर' पत्र ता० 4—3—35 के अङ्क में सम्पादकीय कालम में संपादक जी का अभिप्राय प्रकाशित देखा जिसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है—

> His Holiness rightly emphasised that every institution should prosper on its own merits and on its contribution towards the spread of true religious knowledge rather on petty considerations of its status and importance. We are grieved to learn that in a place like Benaras, which is the religious capital of India, some disciples of other mutts have thought fit to carry on propaganda against the Kumbakonam mutt, basing such action on untrue assumptions. To them His Holiness reply is that "it was not his wish to claim superiority over any peetha". Furthermore His Holiness exhorted his own disciples to revere all the pithas equally ... . "

इस अभिप्राय के प्रति मेरे पिता ने तीस पन्ने का एक लेख अंग्रेजी भाषा में लिखकर भेजा जिसमें आपने 1845 से लेकर 1934 तक के कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों, कल्पित कथाओं, द्वेषभरी पुस्तकों, लेखों तथा भाषणों के अनेक वाक्यों को उद्धृत कर यह सिद्ध किया कि कुम्भकोण मठाधीश तथा उनके अनुयायी ही प्रथमतः इस विवाद को खडा करके प्रचारों द्वारा स्व इष्ट सिद्धि प्राप्त करने लगे और ऐसे प्रचारों का दायित्व स्वयं श्री स्वामी जी पर था। श्री स्वामी जी के काशीधाम आने के पूर्व अनेक प्रकारों से यह प्रयत्न किया गया कि श्री स्वामीजी अपने भ्रामक प्रचारों का या तो निराकरण कर दें या बन्द करा दें। श्री स्वामीजी के पास ऐसे भ्रामक प्रचारों की एक सूची भी लिखकर भेजी गई। पर हम लोग अपने प्रयत्न में असफल रहे। श्री स्वामीजी काशीधाम में भ्रामक प्रचारों का निराकरण करने के अलावा उसकी पुष्टी की। वे यही कहते रहे कि शिष्यों का निर्णय ही "निर्णय" है। क्या ही अच्छा होता यदि श्री स्वामीजी इस विवाद को शुरु में ही नष्ट कर देते। पर वैसा न करके विषैले वृक्ष को पल्लवित किया और जब हमलोग उनका पोल खोलने लगे तब विपक्षी लोग कहने लगे कि आप लोग "उपद्रवी" हैं। हम लोगों को संपादक जी ने अपना अभिप्राय दिया है। बहुत ही अच्छा होता यदि वे कुम्भकोण मठाधीश को यही अभिप्राय देते क्योंकि वे ही इस विवाद को सर्व प्रथम खडा किये। यदि मठाभिमानी, अनुयायी एवं श्री स्वामी जी इस वाद विवाद को खडा न करते तो हमलोगों को भी विरोध करने का कोई कारण न होता। दुःख की बात है कि विषयों का आन्वेषण व पूर्ण विचार तथा बिना पुस्तकों के पढे ही किसी अन्य के कहने पर अभिप्राय देना उचित नहीं है, जैसे "उलटे चोर कोतवाल को डांटे" वाली कहावत चरितार्थ होती है। मेरे पिता ने इस लम्बे लेख द्वारा सम्पादक जी को प्रमाण युक्त यह सिद्ध कराया कि आद्यशङ्कराचार्य द्वारा आम्नायानुसार प्रतिष्ठित केवल चार ही मठ (धर्मराजधानी) हैं। उसके बाद कुम्भकोण मठ स्थापित हुआ। पर इस लेख का कोई उत्तर न मिला। मेरे

पिता के एक मित्र जो गण्यमान्, विद्वान् व रईस और "लीडर" सम्पादक के परम मित्र थे, आप से यह पता चला कि सम्पादक जी ने पं. चिन्नस्वामी शास्त्री जी तथा उनके लाये हुए एक "Introduction letter" के आधार पर विना विचार किये ही अपनी राय छाप दी। बाद जब उनको मेरे पिताजी का लिखा लेख मिला तो पता चला कि यह राय गलत थी। रायसाहब एस. पि. सन्याल ने भी इस विषय पर एक पत्र 'लीडर' सम्पादक को लिख भेजा था और आपको भी वही विषय मालूम हुआ जो मेरे पूज्य पिता जी को मालूम था। क्योंकि श्री स्वामीजी उनदिनों काशी छोड के चले गये और यह विवाद भी वर्त्तमान समय के लिये काशी में बन्द हो गया तब सम्पादकजी ने अपनी दूसरी राय छापी नहीं। पिताजी के मित्र के पास सम्पादक जी ने अपना दुःख प्रकट किया। चाहे जो हो, पाठकगण अब जान गये होंगे कि कुम्भकोण मठ का प्रचार किस प्रकार प्रचारित किया जा रहा था।

श्री काशीधाम में जो कुछ वास्तविक घटना घटी मैं उसके आधार पर जो कुछ यथार्थ विषय नीचे लिख रहा हूं, सम्भवतः इससे कुछ पन्डितों के दिल में चोट पहुंचे। पहले सबों से क्षमा मांगता हूं और प्रार्थना करता हूं कि इसे व्यक्तिगत न लें। सत्य कटु होता है और आजकल कुल्हाडी को कुल्हाडी के नाम से पुकारना पाप समझा जाता है। पर मन कहता है कि सत्य को लिखो। इस सत्यपुरी काशी में ये सब विद्वान अपने हृदय पर हाथ रख कर श्री विश्वनाथ के नाम से विवेचना करें कि मेरा विचार ठीक है या नहीं। "श्री शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन" के आचार्यों, सम्पादकों तथा लेखकों का कहना है कि मूर्ख, अनपढ़ पन्डित एवं संन्यासी सबों ने "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" पुस्तक के प्रकाशित व्यवस्था में हस्ताक्षर किया है। उनका कहना है कि "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" के सम्पादक जो पं. ज॰ ग॰ विश्वनाथ शर्मा हैं वे एक यात्रावृत्ति करने वाले अनपढ क्षुद्र और मूर्ख ब्राह्मण हैं और दूसरे सम्पादक पं. प्रतापं सीताराम शास्त्री काशी में शृङ्गेरी मठ के कर्मचारी हैं। काशी शृङ्गेरी मठ के कर्मचारी होने से क्या सत्य का प्रकाशन करना अनुचित है! पं. सीताराम शास्त्री "न्यायाचार्य" काशी के गिने हुए विद्वानों में एक थे और वे व्यक्तिगत रूप से इस वाद विवाद में भाग लिये। मैं अपने पिताजी पं. ज॰ ग॰ विश्वनाथ शर्माजी के बारे में कुछ नहीं लिखना चाहता हूं चूंकि लोग यह न कहें कि पुत्र ने अपने पिता की स्तुति की है। इन लोगों से प्रार्थना करूंगा कि वे श्री काशीधाम में किसी गण्यमान लोगों से पूछें तो मालूम होगा कि यथार्थ विषय क्या है। मेरे पिताजी ने संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण काशी के प्रकान्ड पन्डित (स्वर्गीय) सीताराम शास्त्रीजी द्वारा पढे। उन्होंने कुछ साल तक वेदाध्ययन भी किया। प्रस्थानत्रय भाष्य (वेदान्त) तीनवार तीन पन्डितों के पास पढकर उसका अध्ययन किया। श्री विद्या की दीक्षा गुरु महाराज स्वामीजी से लिये। एफ. ए. तक अंग्रेजी भाषा भी पढे थे। अपने पुस्तकालय में लगभग 1000 पुस्तकों का संग्रह किया और प्रायः 15 साल तक पुस्तकों के पढने का ही नित्य कर्म बना लिया। श्री काशीधाम में 1840 ई॰ से आपके वंशज रहते हुए चले आ रहे हैं और शहर के गण्यमानों में एक गिने जाते थे। यात्रावृत्ति जरूर था पर वह भी उन्होंने 1930 के बाद क्रमशः कम करके पीछे बिलकुल बन्द कर दिया। आधुनिक काल में जब यात्रावृत्ति एक व्यापार रूप में परिवर्तन हुआ और इस वृत्ति में अनेक लोग सम्मिलित हो कर अपना कार्य व्यापार भावना से शुरु कर दिया तो मेरे पिता ने इस कार्य को बन्द कर दिया। पर इस वृत्ति में कोई खराबी नहीं है। यह तो ब्राह्मण का धर्म है। जैसे अन्धा सारे जगत को अन्धकार मय ही दीखता है वैसे ही ये लोग भी सोचते हैं। मैं स्वयं 'मैं मैं' 'तू तू' विवाद में शामिल होना नहीं चाहता।

स्वामीजी के भ्रामक प्रचारों ने काशीधाम में बडी सनसनी पैदा कर दी और सब लोग इनके मठ के विषय में चर्चा शुरु कर दी। यह भी सुना गया कि विवादियों के मुंह को बन्द कराने के लिये गहरा रकम भी पुजाया गया। कुम्भकोण मठ के एक कर्मचारी मेरे पास आकर कहे 'तुम विद्यार्थी हो, तुम्हें विद्याध्ययन करना ही परम कर्त्तव्य है, इस विवाद को पढे लिखे बडे लोगों के ऊपर छोड दो, मैं मठ से तुम्हें पढने का खर्च सब दिला

दूंगा, तुम डाक्टरी पढना चाहते हो तो श्री स्वामीजी द्वारा तुम्हारी पढाई का खर्च दिला दूंगा,' पर वे निराश होकर लौट गये। बोधायन रामाशास्त्रीजी ने कुछ दिन बाद यही वार्ता कह कर सुनायी और वे स्वयं अनुरोध किये कि मैं कुम्भकोण मठ से गहरी रकम लेकर इस वाद विवाद को बन्द करा दें। कुम्भकोण मठ के एक सज्जन (शायद उनका नाम श्री वैद्यनाथ अय्यर था) आकर मेरे पिताजी से कहने लगे कि यदि वे इस वाद विवाद में भाग न लें और मौन धारण कर लें तो रु० 5000) मठ से दिलवा देंगे। मैं प्रमाणपूर्वक यह नहीं कह सकता कि ये सज्जन मठ द्वारा भेजे गये थे। पर इनके वातों से यही मालूम हुआ कि मठ में भी ऐसा काम किया जाता है। मठ की सम्मति हो या न हो पर जब तक मठ के लोग इस प्रकार का कार्य हाथ में लेकर तथा लोगों को प्रलोभन देकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं तब तक यह कहने में गलत न होगा कि मठ की भी सम्मति है। यह बात शहर में भी फैल गई। इसके बाद पं. जानकीशरण त्रिपाठी जी, श्री राम अभिलाष पन्डिय जी, श्री सत्यनारायण शास्त्री जी व महन्त श्री पूरण गिरी जी आदि व्यक्तियों ने पूछा कि क्या हम लोग रुपये के प्रलोभन से पीछे हट जायेंगे? मठ में नित्य दो दो तथा एक एक पन्डितों को अलग अलग बुलाकर उनको दुशाले, दुपट्टे व रुपये आदि से पूजवाकर स्वयं उनके मुंह को बन्द कर दिया। "सूर्य" पत्र ता० 27—5—1935 के अङ्क में एक "शङ्करमतानुयायी" के लेख पढने से पाठकगण समझ जायेंगे कि उस समय की अवस्था क्या थी।

कुछ स्वतंत्र मत रखने वाले एवं इनके प्रलोभन में न पढने वाले पन्डितों, सन्यासियों तथा दो मठ के महन्तों ने मेरे पिता को यही राय दी कि आप स्वयं एक व्यवस्था बनायें और कम से कम स्वतंत्र भाव रखने वाले (अर्थात कुम्भकोणमठ के मायाजाल से परे) पंन्डितों और सन्यासियों का एक अलग व्यवस्था निकाला जाय! तदनुसार मेरे पिता ने अपने मित्र पन्डित सीताराम शास्त्री की सहायता से एवं प० प० स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी की सहायता से एक व्यवस्था तैय्यार किया और इसके हस्ताक्षर के लिए पन्डितों के पास पहुंचा गया। तब कुम्भकोण मठ के पन्डित एवं भक्त शिष्यों ने मोटर गाडी लेकर पन्डितों के मकान पर जाने लगे और हम लोगों के बनाये हुए व्यवस्था में हस्ताक्षर न करने के लिये गहरी रकमों द्वारा पन्डितों को पुजवाया गया। जब मैं फिर उन पन्डितों के यहां पहुंचा तो मालूम हुआ कि यदि उनके पाये हुए "विद्वत् सम्भावना" से कुछ ज्यादा दें तो उनको मेरी व्यवस्था में हस्ताक्षर करने की कोई आपत्ति नहीं होगी। चाहे जो हो, श्री काशीधाम में मठाधीश आये और साढे पांच माह वास करते हुए एक दिन भी विद्वत् सभा न कराये। सिवाय इन भ्रामक प्रचारों के खर्च को यदि वे विद्वत् सभा कराकर विद्वानों का आदर करते और उनमें उत्सुकता पैदा करते तो क्या ही अच्छा होता। लज्जा की बात है कि अन्य मतावलम्बी यहां पर आकर पन्डितों की सभा कराकर शास्त्र विषयों की चर्चा कराते हैं पर यही एक कुम्भकोण मठाधीश ही ऐसे दिखाई पडे जिन्होंने काशीधाम में एक भी सभा न कराये। मैं ने इनके काशी यात्रा के अवसर पर तथा साढे पांच माह काशी निवास करने का कार्यक्रम पत्र सब देखा पर एक दिन भी पन्डितों की सभा न हुई। पन्डितों को अलग अलग बुलाया गया और मठ की ओर से "विद्वत् सम्भावना" हुई। सम्भवतः कुम्भकोण मठवालों को भय था कि उस सभा में मठ की चर्चा न उठ जाय। काशी में उनदिनों प्रत्येक गली गली में पन्डितों और गण्यमान सज्जनों के द्वारा आपके मठ की ही चर्चा होती थी। काशीधाम में कितने ही शङ्कराचार्य आते देखा पर उन लोगों के सम्बन्ध में कभी भी कोई विवाद उपस्थित नहीं हुआ था पर कुम्भकोण मठाधीश के बारे में ही इतना बडा विवाद क्यों खडा हुआ? इसका क्या कारण था? इस भ्रामक प्रचारों के मूल कौन थे? काशी के पन्डितों को बडे बडे प्रलोभन दिये गये। श्री स्वामी जी महाराज ने सनातन धर्म के प्रचार का कार्य तो कुछ किया नहीं, लगभग 6 मास आप काशी में थे और केवल वाद विवाद ही काशी में चलता रहा। एक तो संस्कृत के विद्वानों की आर्थिक दशा हीन है दूसरे बेचारे वे इतने सीधे होते हैं कि द्राविणी मायाजाल में आकर सहज ही में फंस जाते हैं। उन बेचारों को क्या मालूम हैं कि उनके नाम पर कितनी रचनायें रची जा रही है।

जितनी पुस्तकें 1935 के बाद प्रकाशित हुई है उसे यदि काशी के पन्डित देखें तो उन्हें मालूम होगा जो कि उनके नाम पर अन्य जगहों में क्या क्या प्रचार किया जा रहा है। अब कुछ साल से यह भी प्रथा काशी में प्रारम्भ हुआ है कि जो लोग अधिक दक्षिणा सभा में देते हैं वे उसी तरफ अपनी व्यवस्था भी देते हैं। अनुमानवाद, युक्तिवाद व तर्कशास्त्र के ओट लेकर पन्डितवर्ग जिस प्रकार व्यवस्था की आवश्यकता समझते हैं वे उसी प्रकार की व्यवस्था भी देते हैं। ये तो वकीलों (पक्षि-प्रतिपक्षी) के समान अपनी अपनी राय व्यवस्था रूप में देते हैं। पर जो विषय स्वयं सिद्ध व वृद्ध परम्परागत व्यवहार रूप में सिद्ध होते चले आ रहे हैं, जिसके विषयों की पुष्टी प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा होता है, वे उन सबों को छोडकर युक्तिवाद, अनुमानवाद व् तर्कशास्त्र के आधार पर ही व्यवस्था देते हैं। यह कहां तक शास्त्रों में उचित है वे ही जानते हैं। जब मेरे पिता तथा मैं दोनों पन्डितों के हस्ताक्षर के लिये उनके पास गये प्रायः सभी ने यही कहा "कुम्भकोण मठाधीश को मैं अपना वचन दे चुका हूं और मैं मठ से "सम्भावना" पा चुका हूं इसलिए मैं आपकी व्यवस्था में हस्ताक्षर नहीं कर सकता।" श्री स्वामीजी एक तरफ कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता और दूसरी तरफ पन्डितों से प्रतिज्ञा कराते हैं कि वे हमारी व्यवस्था में हस्ताक्षर न करें। सत्य मेरे पास है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अवश्य अन्त में सत्य को प्रकट कर पाऊंगा। जो विषय आर्ष ग्रन्थों एवं प्रामाणिक पुस्तकों से सिद्ध है उसके लिये पन्डितों के हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं है। यह तो उन्हीं के लिये है जो एक नई समस्या खडी करके उसकी पुष्टी के लिये युक्तिवाद, अनुमानवाद एवं क्षिप्त ग्रंथों के आधारों पर व्यवस्था मांगते हैं। पर पाठकगण पूछ सकते हैं कि क्यों आपके पिताजी ने एक व्यवस्था तैय्यार करके उसपर अनेकों से हस्ताक्षर लेकर प्रकाशित किया। सच पूछिये तो यह 'व्यवस्था' नहीं है। मेरे पिताजी ने तो कुम्भकोण मठ के असत्य एवं भ्रामक प्रचारों का खण्डन करके एक प्रबन्ध संक्षित रूपमें तैय्यार कर पामर लोगों की जानकारी के लिये प्रकाशित किया। पामर लोग क्या जाने कि कौन ग्रन्थ मूल है व कौन ग्रन्थ क्षिप्त है और वे क्या जाने शास्त्र की बातों को। उन्हीं के लिए यह सब प्रकाश किया जा रहा है। कुछ लोग अन्यों के मत एवं सम्मति पर ही अपना मत निश्चय करते हैं इसलिये यह व्यवस्था उन्हीं लोगों के लिए प्रकाशित की गयी है। संसार आडम्बरों में लिप्त है और अन्य दूसरों को दिखाने के लिए मुझे बाध्य होकर यह व्यवस्था को प्रकाशित करनी पडि। स्वयं मैं नहीं चाहता।

काशी के प्रसिद्ध विद्वानों, गण्यमान सज्जनों एवं माननीय परिव्राजकों द्वारा 1935 ई॰ में दिया हुआ प्रशंसनीय निर्णय का विवरण नीचे दिया जाता है। इस व्यवस्था में दिये हुए विषयों एवं निर्णयों का विस्तार विवरण तथा कुम्भकोण मठ के भ्रामक मिथ्या प्रचारों पर आलोचना और विमर्श मुझसे प्रकाशित पुस्तक "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" के द्वितीय खंड में दिया गया है। इस व्यवस्था में 71 हस्ताक्षर हैं जिसका नकल 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक में प्रकाशित पायेंगे।

॥ ॐ ॥

॥ श्री काशीविश्वेश्वरः प्रसन्नोऽस्तु ॥

श्री 1008 श्रीमदादिशंकराचार्य भगवत्पादाचार्यपादारविन्देभ्यो नमः

1943 अब्दे (विक्रमशके) श्री काशीक्षेत्रे सञ्जातजगद्विख्यात पण्डितसभायां— 'श्रीमदादिशङ्करभगवत्पादाचार्या श्चतुरो मठानेव चतुर्षु दिक्षु संस्थाप्य तेषु मठेषु स्वकीयप्रधानशिष्यान् चतुरःसंस्थाप्य चतुरः संप्रदायांश्च प्रवर्तयामासुः। एते चत्वार एव चातुर्वर्ण्याश्रमधर्मव्यवस्थां कर्तुं दिग्विजयञ्च कर्तुमधिकारिणः एतदतिरिक्ताः पूर्वोक्तवर्णाश्रमधर्मादिविचारपूर्वकनिर्णयकरणे दिग्विजयकरणे च

अनधिकारिणः' इति 79 प्रधानपण्डिताः काशीस्थाः निर्णयमकुर्वन्। एवं स्थितेसत्यऽपि सम्प्रति श्रीकांचीकामकोटि कुम्भकोणमठाधिपाः स्वकीयमठ एव श्रीमच्छंकरभगवत्पादाचार्यैः कांचीक्षेत्रे प्रथमतः संस्थापित इति तत्पीठस्था एव जगद्गुरव इति प्रख्यापयन्तः श्रीकाशीक्षेत्रं प्रति समागताः। अतस्तद्विषयकयाथार्थ्यं प्रकटयितुमधस्तात् विराजमाननिर्णयः क्रियते।

श्री कामकोटि कुम्भकोणमठाधिपाः श्रीमदादिशङ्करभगवत्पादाचार्यैरस्मदीय एव मठः प्रथमं स्थापित इति वदन्तोऽस्मिन्विषये शिवरहस्यमानन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजयं च प्रमाणत्वेन प्रतिपादयन्ति।

(1) तत्र शिवरहस्यग्रन्थं प्रथमं विचारयामः। शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये

तद्योगभोगवरमुक्तिसुमोक्षयोगलिंगार्चनात्प्राप्तजयस्वकाश्रमम्।
तान्वै विजित्यतरसाक्षतशास्त्रवादैर्मिश्रान् सकाञ्च्यामथसिद्धिमाप॥

अयमेकैकस्मिन्पुस्तके अन्यथा अन्यथा परिदृश्यते। कस्मिंश्चित्पुस्तके अयं श्लोको नैव दृश्यते। अन्ये केचन श्लोकाश्च तस्मिन्नेवाध्याये अन्यैः प्रमाणत्वेन उदाहृयमाणाः अन्यग्रन्थे नोपलभ्यन्ते च। अतः श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति प्रतिभाति। यदि कदाचित् श्लोकं प्रमाणत्वेन गृह्णीमः तस्मिन् श्लोके आद्यशङ्कराचार्याः स्वाश्रमं प्रत्यागत्य तदनन्तरं काञ्च्यामागत्य सिद्धिमाप्नुवन्निति दृश्यते।

अतः काञ्च्यां सिद्धिमाप्नुवन्नित्येव वक्तुं शक्यते न तु तत्र मठं स्थापितवन्तः। अपि च बहुषु शङ्कर दिग्विजयग्रन्थेषु श्रीमदाचार्यपादाः काश्मीरे सर्वज्ञपीठमध्यास्य तदनु हिमवत्पर्वतनः सशरीरं स्वधाम कैलासमारोहन्निति प्रतिपादनात् काञ्च्यां समाधिमाप्नुवन्नित्येतत् वक्तुं नार्हति। अपि च कुम्भकोणमठाधिपैः स्वपीठविषये प्रमाणित्वेनोपन्यस्तशिवरहस्यग्रन्थस्य नवमांशे विद्यमानषोडशाध्यायोऽनेक विधतयाऽन्यान्यपुस्तकेषूपलभ्यमानत्वेन तेषामन्यतमोऽपि प्रकारस्तन्मठनिर्माणादिकं न वक्ति, इत्यतः शिवरहस्यग्रन्थस्तेषामननुकूलो भवन् प्रत्युतास्माकमेव अनुकूल इति।

(2) अथ आनन्दगिरिशङ्करविजय विषये विचारयामः। आनन्दगिरिशङ्करविजयस्य मूलं शिवरहस्यमिति श्रीकुम्भकोणमठाधिपाःवदन्ति। शिवरहस्यग्रन्थे केरलदेशे ब्राह्मणदम्पतिभ्यां शङ्कराचार्यस्य जन्म प्रतिपादितम्। आनन्दगिरिशङ्करदिग्विजयेतु अरण्ये तपस्यतः कस्यचित् ब्राह्मणस्य पत्न्याः चिदम्बरक्षेत्रे वसन्त्याः चिदम्बरेशंध्यायन्त्याः मुखद्वारा शैवंतेजः कुक्षौ प्रविश्य शङ्कराचार्यरूपेण तस्यामजनीति शिवरहस्यविरुद्धतया प्रतिपादितम्। तस्मिन्नेवानन्दगिरीये शिवकांची विष्णुकांचीति नामकेपत्तने निर्माय तत्र ब्राह्मणान् अद्वैतसम्प्रदायेन्ययोजयन्निति चास्ति। शिवरहस्ये तु तत्पत्तनद्वयनिर्माणं नोपलभ्यते। तत्र स सिद्धिमापेत्यस्ति न तत्र सिद्धिशब्दः देहत्यागमाचष्टे। अपि तु स्वाश्रमात् शृङ्गेरीतः काञ्चीमागत्य तत्रत्यकुवादिनः अवैदिकमार्गस्थान् शाक्तादीन् निर्जित्य श्रीचक्रकामाक्षीस्थापनादिरूपेष्टसिद्धिमवापेत्यर्थकरणे अन्यग्रन्थानुरोधेन सामञ्जस्ये सति न शरीरत्यागरूपासिद्धिः तस्माद् ग्रन्थादवगम्यते।

आनन्दगिरिशंकरविजयकर्तृविषयेऽपि किञ्चित् विचार्यते। अस्य ग्रन्थस्य कर्ता अनन्तानन्दगिरिः। अस्य जन्म क्रैस्त 1119 अब्दे। क्रैस्त 1199 अब्दे शरीरत्याग इति। पूर्वाश्रमे अस्य नाम वासुदेवाचार्य इति। अस्य गुरोर्नाम अच्युतप्रेक्षाचार्य इति। आश्रमस्वीकारानन्तरं

आनन्दगिरिरनन्तानन्दगिरिः ज्ञानानन्दगिरिरित्यादीनि अष्टौ नामानि सन्ति। अयं च सप्तत्रिंशद् ग्रन्थ रचयिता, तेषु ग्रन्थेषु शङ्करविजयाख्योऽप्येकः। अस्य शिष्यास्तु पद्मनाभतीर्थ, माधवतीर्थ, अक्षोभ्यतीर्थ, नरहरितीर्थ इत्येवं विद्यमानत्वेन गुरुशिष्यपरम्परा द्वैतमठीयेति प्रतिभाति। अतः शांकराद्वैत सिद्धान्ते द्वेषबुद्धि रचितोऽयमानन्दगिरि शङ्करविजयाख्यो ग्रन्थः अद्वैतिनां प्रमाणपथं नारोहति। अपि च कलकत्ता नगर समीपस्थ ताडकेश्वरदेवालयसम्बन्धिनि विवादे राजकीयन्यायस्थाने कीर्तिशेष महामहोपाध्याय द्रविड श्रीलक्ष्मण शास्त्रिणा आनन्दगिरिशङ्करदिग्विजय ग्रन्थः अप्रामाणिक इति प्रतिज्ञापूर्वकमुक्तमित्यत आनन्दगिरिशङ्करदिग्विजय ग्रन्थः अप्रमाणमित्येव निश्चीयते। किञ्च (अयं कलिकाता मुद्रितः आनन्दगिरि शङ्करविजयः) महामहोपाध्याय श्रीलक्ष्मणसूरि, के० टि० तेलङ्ग, वेंकटरामन्, मेक्समुलर, विलसन्, प्रभृतिभिश्च अप्रमाणत्वेनैव भणितः।

(3) अतः परं नैषधकाव्यविषये विचारयामः। इदं च काव्यं श्रीहर्षरचितम्। अस्य ग्रन्थस्य काव्यत्वेन अनादरणीयता। अपि च अस्मिन् काव्ये नवमसर्गे वादिना 'जागर्ति योगेश्वर' इति वर्तत इत्युक्त्वा योगेश्वरपदेन अस्मिन्मठे समर्च्यमानयोगेश्वरस्योल्लेखनात् कामकोटिपीठमठः श्रीमदाद्य-शङ्कराचार्यैरारचित इत्यस्मिन्विषये प्रमाणत्वेन अयं श्लोकः उपन्यस्तः। स तु तस्मिन्सर्गे नैव दृश्यते, अपि तु द्वादशसर्गे अष्टत्रिंशतितमश्लोके 'जागर्ति यागेश्वर' इति वर्तते। तद् व्याख्यानेऽपि यागेश्वर इत्येव व्याख्यात्रा प्रतीकत्वेन परिगृह्य व्याख्यापि यागेश्वरपदस्यैव कृतम्। अपि च प्राक् भारतयुद्धात् नलदमयन्ती चरित्रस्य वर्णनात् कलियुगादितः त्रिसहस्रसंख्याकवत्सरेभ्यः संजात श्रीशङ्कराचार्यैरानीतयोगलिङ्गवर्णनं नैषधकाव्ये असम्भवमित्यस्मिन् वाद्युक्तविषये इदं काव्यं न प्रमाणं भवति॥

अपि च कुम्भकोणमठाधिपास्तु स्वकीय इन्द्रसरस्वतीति योगपट्टं तीर्थाश्रमादिदशविधसम्प्रदाय-कोट्यन्तर्भूतमित्युक्त्वा तत्र यतिधर्मनिर्णयाख्यं ग्रन्थं प्रमाणयन्ति। तन्न शोभनम्। तस्मिन्नेव यतिधर्मनिर्णये पूर्वोक्त तीर्थाश्रमाणां मध्ये केषाञ्चित् नाम्नां स्वस्वशीलाचारमत्ताभिमानेन जाताः सम्प्रदायाः तन्नामभेदाश्चेत्युक्त्वा सरस्वतीसम्प्रदायभेदौ आनन्दसरस्वती इन्द्रसरस्वती चेति प्रतिपादनेन अयं इन्द्रसरस्वती सम्प्रदायः तीर्थाश्रमेत्यादिदशनामबहिर्भूतः शीलाचारमत्ताभिमानेन परिकल्पित इत्यवगमात्। नायं यतिधर्मनिर्णयाख्यो ग्रन्थः अस्मिन्विषये अनूचानत्वेन प्रमाणं भवितुमर्हति।

कुम्भकोणमठाधिप महावाक्य विषये चिन्त्यते। श्रीमद्भाष्यकारैः आदि शङ्कराचार्य भगवत्पादैः स्वशिष्येभ्यः उपदिष्ट प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्मेति महावाक्य-चतुष्टयादन्यत् ॐ तत्सदिति महावाक्यमस्मदीयमिति कामकोटिपीठगुरुपरम्परान्तर्गत आत्मबोधस्वामिभिर्वि-रचितायां गुरुरत्नमालायाः सुषमाख्यटीकायां प्रतिपादितम्। इदानीं तन्मठस्थ श्रीचन्द्र शेखरेन्द्रसरस्वती-स्वामिभिः विद्यार्थिकृत प्रश्न प्रतिवचनत्वेन ॐ तत्सदिति महावाक्यं नास्माकमित्येवोक्तम्। परन्तु स्वकीय महावाक्यमीदृशमित्यपिनोक्तम्। अतः श्रीमद्भाष्यकारोपदिष्ट चतुर्विधमहावाक्यबहिर्भूतम् तदीयपूर्वगुरु-वाक्यानुसारेण ॐ तत्सदित्येव तदीयं वाक्यमिति निर्णीतं भवति। यद्येते भाष्यकारसम्प्रदायपरम्परायामागताः स्युः तदा स्वगुरुपरम्पराप्राप्तमहावाक्यानामुपरिनिर्दिष्टानां चतुर्णामन्यतमं महावाक्यमेव भगवत्पादाचार्यैः एतत्परम्परामूलपुरुषाय उपदिष्टं स्यात्—नैतदेवमस्ति। अतः श्री कांचीकामकोटिमठाधिपाः श्रीमदादिशङ्कर-भगवत्पादाचार्यसम्प्रदायात् बहिर्भूता एवेति निश्चीयते।

अपि च कैश्चित् महात्मभिः काञ्च्यां परिकल्पित कामकोटिसंज्ञकपीठं कदाचित्केनचित्कारणेन तस्मादुद्धृत्य कुम्भकोणनामपत्तनान्तरमानयनात् स्थानभ्रष्टतामापन्नं कथं पूजार्हं भवेदिति।

एतावता प्रबन्धेन कामकोटिकुम्भकोणमठाधिपैः स्वविषये प्रमाणत्वेन निर्दिष्टाः शिवरहस्य, आनन्दगिरिशङ्करविजय, नैषधकाव्य, यतिधर्मनिर्णयाख्याः ग्रन्थाः तेषामननुकूला एव प्रत्युत अस्माकमनुकूला भवन्ति॥

इत्यतः सिद्धं कांचीकामकोटिकुम्भकोणमठः श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्यैः न स्थापित इति।

1943 विक्रमशके अनुरूप 1886 ई॰ में जगद् विख्यात काशी के दिग्गज पन्डितों और आदरणीय परिव्राजकों का 79 हस्ताक्षरों सहित प्रशंसनीय निर्णय को प्रमाण व आधार स्वीकार करते हुए काशी के बिहारीपुरी मठ की सभा (ताः 30—9—1934) ने अपना निर्णय देते हुए इस प्राचीन व्यवस्था की पुष्टी की थी। उक्त व्यवस्था भी इस निर्णय का उल्लेख करता है। पाठकगणों की जानकारी के लिये इस 1886 ई॰ के व्यवस्था से प्रस्तुत विवाद से सम्बन्ध रखने वाला चतुर्थ विषय का विवरण नीचे दिया जाता है। इस 1886 ई॰ के व्यवस्था का पूर्ण विवरण "श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठ विमर्श" पुस्तक के तृतीय खंड में पायेंगे।

1886 ई॰ में जगद् विख्यात् काशी के पण्डितों और
आदरणीय परिव्राजकों का प्रशंसनीय निर्णय।

.... इदानीं चतुर्थी जिज्ञासा शिष्यते। तत्र पुरस्तादयमर्थो विचारपथमारोढुमर्हति। 'चातुर्वर्ण्यं यथायोगं वाङ्मनः कायकर्मभिः। गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै। धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः। कृताधिकारा आचार्याधर्मतस्तद्वदेव हि' इति शिक्षा यावद् गुर्वाचार्यविषयिणी मठचतुष्टयाध्यक्ष मात्रविषयिणी वा। "मठाश्चत्वार आचार्याश्चत्वारश्च धुरन्धराः। सम्प्रदायाश्च चत्वार एषा धर्मव्यवस्थितिः" इत्येतदव्यवहितोत्तरत्वान् मठचतुष्टयाध्यक्षमात्रविषयिणीचेत् कथमन्यस्य। संन्यासिनश्चातुर्वर्ण्यमात्र समर्चितपादाम्बुजस्थानाचार्यभ्रान्तिदनामचिह्नधारण पूर्वकं सञ्चरणं नानुचितं स्यात्।

नह्यराजा प्रजाभ्यो दण्डं जिघृक्षन् राजचिन्हेन गच्छन् न पापीयान् भवति। ननु भवतु यस्यकस्यचित् संन्यासिनस्तथागमनमनुचितम्। पीठाचार्यस्यैव तु कारणविशेषेण स्थानच्युतस्य स्थलान्तरमधिवसतस्तथा गमनमुचितमेवेति वाच्यम्। 'कृताधिकारा आचार्य धर्मतस्तद्वदेवहि। अस्मत्पीठे समारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः। अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः।' इति परमगुरूक्तेः स्थानच्युते राजनि दण्डानधिकारदर्शनेनौचित्याच्च तस्यापि तथागमनमनुचितमेवेत्यवधेयमित्यलम्।

व्यवस्थेयं रामाब्धिग्रहेन्दुमिते 1943 विक्रमशके माघशुक्लैकादश्यां शुक्रे समजनीति शिवम्।

॥ शुभमस्तु ॥

मेरे पिताजी द्वारा प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तिका को 1935 ई॰ में बहुतों के पास भेजा था और मेरे पास 150 से भी अधिक अपनी अपनी सम्मति भी लिखकर भेज दिये थे। उसमें से कुछ सम्मति एवं व्यवस्था पत्रें मुझसे प्रकाशित "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक में मैं ने प्रकाश किया है। अब पाठकगणों को मालूम होगा कि क्या यह विवाद एक आदमी का था जिसको 'क्षुद्र, मूर्ख, यात्रावृत्ति

मठवाला ब्राह्मण' कह करके कुम्भकोण मठानुयायियों ने अपने द्वारा प्रकाशित 'श्रीशाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' में बतलाया है या क्या सार्वजनिक सेतुहिमाचल के लोगों का विवाद था? दुशाले व सैकडों रुपये लेकर जांगड को ब्राह्मण बनाने वाले, शारदा बिल एवं मन्दिर प्रवेश के समर्थन में हस्ताक्षर करने वाले, अन्त्यजों को गंगा तट पर प्रणवोच्चारण करने की सम्मति देने वाले, छिपी तौर से अब्राह्मणों को ब्राह्मण बनाने के लिये हजारों की सम्पत्ति लेने वाले, किसी राजा को धर्म से भ्रष्ट बतलाकर उसका घोर विरोध करने वाले एवं अर्थ प्राप्ति की लालसा से भूरी भूरी प्रशंसा करने वाले, एक ओर विलायत जाने वालों को धर्म से पतित होने की व्यवस्था देने वाले व दूसरी ओर अपने प्रतिनिधियों को पांच सवारों में गिनती कराने के लिये पुष्प माला पहिनाकर बिलायत भेजने वाले, कभी "मालवीय पन्थी" कहकर तिरस्कार करने वाले, कभी उन्हीं विद्वानों के कन्धों से कन्धा मिलाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि कराने वाले, झूठ खबर देकर गहरी माल पुजाने वाले, सौ पचास के आंकडों में रुपये लेकर जात्यभिमान से मनगढन्त ग्रंथ रचने वाले, संभावना प्राप्त कर व्यवस्थाभास देने वाले, वैसराय दम्पतियों को (वर्दी एवं जूता सहित) काशीधाम के घाट पर होमकुन्ड के सामने वेद ध्वनि के साथ स्वागत कर तथा उनके लिए होम कर बाद भूरी-भूरी प्रशंसा कर वेद पुराणों के देव देवता महान् पुरुषों एवं ऋषियों से वाइसराय की तुलना कर अपने को तुच्छ एवं हास्यप्रद करने वाले, कलकत्ते और काशी में महिष दान एवं शैय्या व गहरे रकम के लिए दान लेने वाले, पदवी (टाईटल) पाने के लिए देश के धर्म को बेचने वाले, ऐसे योग्य पन्डितों का हस्ताक्षर "श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" में बिलकुल नहीं है। संभवतः इन योग्यताओं के पन्डितों का हस्ताक्षर न होने से ही उनको मूर्ख एवं अनपढ बतलाया है। जो कोई विद्वान इनके उचित अनुचित के सहायक बने रहते हैं वे ही तो आपके कृपा भाजन होते हैं और अन्य स्वतंत्र विचार के बडे से बडे विद्वान सब आपकी दृष्टी में मूर्ख हैं। जब पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर सप्रमाण देते नहीं बनता और भ्रामक प्रचारों की भन्डाफोड होती है तब पूछने वालों को अयोग्य एवं मूर्ख बनाना इनका स्वाभाविक गुण है चाहे वह प्रश्न अत्युत्तम उत्तर देने के योग्य क्यों न हो। मुझको इसमें आश्चर्य न होगा कि वे संपादक जी और कोई भद्दी शब्द कहें या लिखें। दूसरों को मूर्ख क्षुद्र बनाने वाले स्वयं अपनी योग्यता को देखकर तब टीका टिप्पणी करते तो क्या ही अच्छा होता। हस्ताक्षर करने वाले जो हों पर संपादकों का कर्त्तव्य था कि वे शास्त्रानुकूल उत्तर देते न कि व्यक्तिगत आक्षेपों से भरे हुए 'तू तू मैं मैं'। ऐसे धूल प्रक्षेपण पुस्तक छपवाकर तथा पामर लोगों को और ही कुछ कथा कह कर पत्रों में हस्ताक्षर कर करके जो रचना रची जा रही थी वह सब ठीक "कुम्भकोणम्" शब्द के अर्थ को चरितार्थ कर रहे थे ('तामिल शब्द कोष निरंजन विलास मुद्रशाला, मदरास, 1911 के मुद्रित कोष में "कुम्भकोणम्" शब्द का अर्थ 'धोखेबाज' लिखा है। "मलबार अंग्रेजी कोष" 1910 ई॰ के पृष्ट 213 में कुम्भकोणम् शब्द का अर्थ Fraud, chickenery उल्लेख है।) ऐसे पन्डितों के हस्ताक्षर जो गहरे माल पुजाकर लिये गये हैं उसका कितना मूल्य है? अब पाठकगण जान गये होंगे कि चंचल लक्ष्मी का प्रभाव महान है। मनुष्य रुपये के बल द्वारा अनेक प्रकार का अत्याचार कर सकता है। काशी के दाक्षिणात्य पन्डितों को छोडकर कोई और विद्वान न इनका मठ का नाम सुना था या न वृत्तान्त जानते थे। कुम्भकोण मठ के प्रचार से ही इन सबों को आपका मठ का विवरण मालूम हुआ। यदि कुम्भकोण मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित होता तो क्यों नहीं जिस प्रकार श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित चारों दिशाओं में चारों वेदों के लिये चार मठों का नाम प्रख्यात है वैसा कुम्भकोण मठ भी प्रख्यात क्यों नहीं है? क्या आश्चर्य की बात है कि पामर व विद्वान लोगों ने केवल चार दिशाओं के चार शिष्यों के मठों का नाम सुने हैं पर कहे जाने वाले गुरु श्री शङ्कर का 'निज मठ' का नाम भी सुने नहीं? बात तो मार्के की है कि यदि गुरु मठ होता तो अवश्य सबको विदित रहता और इन प्रचारों की कोई आवश्यकता भी नहीं होती। कल्पित मठों के लिए प्रचारों की आवश्यकता पडती है और स्वयं सिद्ध प्रख्यात मठों के प्रचारों की आवश्यकता नहीं है।

21. कुम्भकोण मठाधीश का कुछ संस्थाओं में स्वागत और घटनाओं का विवरण।

पाठकगण इसके पूर्व पारा में पढ चुके होंगे कि श्री काशीधाम में कुम्भकोणम् के श्री स्वामी जी का स्वागत सांगवेद विद्यालय, काशी विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज, 'पन्डित पत्र' कार्यालय, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ व ब्राह्मण महासभा आदि के द्वारा हुआ। इसमें एक रहस्य है। यह सबको विदित है कि पं. राजेश्वर शास्त्री जी सांगवेद विद्यालय के अध्यक्ष हैं और उनके पूज्य पिता धर्मवीर स्वर्गीय म० म० पं. लक्ष्मण शास्त्री जी से चलाया हुआ "पन्डित पत्र" कार्यालय, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, ब्राह्मण महा सम्मेलन, ये तीनों व्यवस्थायें आपका घरेलू विषय था, इसलिये पं. राजेश्वर शास्त्री जी का बडा प्रभाव था। पं. चिन्नस्वामी शास्त्री जी विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग के प्रोफसर होने के कारण वहीं यह नाटक रचा गया। इन जगहों को छोडकर और कहीं पर भी श्री स्वामी जी का नाटक रचा नहीं गया।

श्री कुम्भकोण मठाधीश के इस रंग मंच पर केवल तीन सूत्रधार ही दिखाई पडे। प्रथम म० म० पं. अनन्त कृष्ण शास्त्री जी। आप एक प्रकान्ड विद्वान हैं। आप की चातुर्यता अपार है। आपका कर्त्तव्य है कि कुम्भकोण मठाधीश द्वारा किसी नगर जाने के पूर्व आप वहां पहुंचकर, लोगों को अपनी चातुर्यता से आकर्षित कर, विरोध करने वालों को वडे-वडे प्रलोभन देकर, साम दाम भेद और दन्ड का प्रयोग अति चातुर्यता से कर वाद मंच तैय्यार करके आगे बढते हैं। इस काम को साफल्य बनाने में आपका आयुध—(1) लछिमिनियां (2) भ्रामक एवं द्वेषात्मक पुस्तकों के प्रचार, (3) मठाधीश का सैकडों फोटो (बैठते, उठते, चलते, बोलते, पूजा पाठ, स्नान, ध्यान, सिंहासन पर बैठ कर, पाद पूजा, शहरी भीडों का फोटो, सोते, जागते, भिक्षा करते इत्यादि), (4) अन्य जगहों में कराये गये पन्डितों के हस्ताक्षरों की सूची (न मालूम क्या कथा कह कर यह सब लिया गया), (5) प्रत्येक जगहों से प्राप्त अनुमोदन, अभिनन्दन, स्वागत, प्रमाण, प्रार्थना, व्यवस्था, इत्यादि पत्रें (6) मठ का इतिहास और वंशावली, (7) मठ दूसरों की आखों में (प्रशंसा पत्र), (8) श्री स्वामी जी का अपूर्व अलौकिक साधना, योगवल व चमत्कारी कार्यों का विवरण कथा रूप में, (9) द्वेष भरी अन्य मठों की निन्दा। प्रारम्भ में लोग इनके मठ के विषय न सुने व न पढे होंगे और आप द्वारा उपर्युक्त अस्त्रों से लोगों के दिल में विश्वास पैदा कर देते हैं और वाद जो यह कहते हैं लोग उसे मानने लगते हैं।

जब मंच तैय्यार हो जाता है तो सूत्रधार अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। श्री काशी में ऐसे दो सूत्रधार दिखाई दिये। एक उत्तर में और एक दक्षिण में। उत्तर के "पन्डितराज" ने अपनी टोली द्वारा अपना कार्य प्रारम्भ कर दिये और "पन्डितराज" उन दिनों सांगवेद विद्यालय के अध्यक्ष थे और श्री काशी नरेश जी सभापति थे। "पन्डित राज" का गौरव व प्रभाव काशी नरेश के यहां वहुत ऊंचा था। श्री काशी नरेश पन्डितराज के वाक्यों को वेद वाक्य सा मानते थे। "पन्डितराज" के पूज्य माननीय पिता म० म० पं. लक्ष्मण शास्त्री जी से स्थापित वर्णाश्रम स्वराज्य संघ व ब्राह्मण-महा-सम्मेलन तथा 'पन्डित पत्र' था। श्री कुम्भकोण मठाधीश द्वारा उन दिनो में श्री लक्ष्मण शास्त्री जी के वर्णाश्रम स्वराज्य संघ एवं ब्राह्मण महा-सम्मेलन दोनों व्यवस्थाओं को अपने आशीर्वाद के अलावा अनेक रूप से सहायता भी दी जिसके लिये धर्मप्राण माननीय पं. लक्ष्मण शास्त्री जी वडे कृतज्ञ थे। अव 'पन्डित राज' का कर्त्तव्य था कि उस कृतज्ञता का प्रत्योपकार करके अपनी कृतज्ञता प्रकट करें। इसके अलावा आपके पूर्वज कुम्भकोणम् के समीप तिरुवसनल्लूर ग्राम से उत्तरी भारत में आये थे। तंजौर जिले के लोगों के लिए यह गुरु मठ है और वहां के निवासी सब इनके शिष्य हैं। अभिनन्दन पत्र, अनुमोदन पत्र, सम्मति पत्र, स्वागत पत्र, प्रमाण पत्र, प्रार्थना पत्र, व व्यवस्था पत्र आदि सब तैय्यार करके जगह जगह पर बंट-वाया गया जिससे वे लोग सुगमता पूर्वक स्वनिर्धारित कार्य कर सकें। मैं एक दिन कुम्भकोण मठ पन्डित के

पास एक मोटी पुस्तक देखा और उसमें मैं ने लगभग 50 नमूने के पत्रों को लिखा हुआ पाया। इसी पत्रों को प्रत्येक जगह छपवाकर हस्ताक्षरों के साथ प्राप्त किया जाता है। श्री काशीधाम में एक टोली है जिसमें पन्डितराज का बडा प्रभाव है। जब विवाद चला और सनसनी फैल गई तो इस टोली के पन्डितों की सहायता से पन्डित राज जी द्वारा पुस्तकों को ढूंढ कर तथा अप्रमाणिक ग्रन्थों को प्रामाणिक मान कर; वृद्ध परम्परागत आये हुए विषयों को छोडकर; शास्त्र विरुद्ध; युक्तिवाद, अनुमानवाद, हेतुवाद के आधार पर इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिए तर्क शास्त्र का पान्डित्य दिखाकर; एक मनगढन्त व्यवस्थाभास तैय्यार करके स्वटोली के पन्डितों का हस्ताक्षर कराकर इस व्यवस्था को अभिनन्दन पत्र के नाम से श्री स्वामी जी को अर्पण कर अपनी इच्छा की पूर्ति प्राप्त की। इस अदिनन्दन पत्र के विषयों व प्रमाणाभास का विमर्श "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक में पाठकगण पायेंगे। ऐसे पन्डितराज तथा कुछ महात्मा मिल जायें तो अपना मोह का जालबिछाकर प्रत्येकलोग को स्वयं हस्त कर लेने में कोई विलम्भ न होगा। वास्तविक विषय को कौन जानना चाहता है अथवा चर्चा करना चाहता है। ठीक है पूर्वजों का कहनाः—" गतानुगातिको लोकः न लोक पारमार्थिः।

22. पन्डितराज श्री राजेश्वर शास्त्री जी एवं श्रीरामतारक मठ महन्त जी के साथ पत्र व्यवहार।

पन्डितराज राजेश्वर शास्त्री जी श्रीरामतारक मठ के महन्त जी को और ही कुछ कथा सुनाकर कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टि के लिये तथा अपने कार्य सिद्धि के लिये क्या क्या प्रपंच रचा सो सब विषय पाठकगण 'सूर्य' पत्र ताः 21—6—1935 के अङ्क में देख पायेंगे जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

पंचम पीठ सिद्ध करने का षडयंत्र
पत्र व्यवहार से भण्डाफोड
पूज्य पिता और मातामह को मूर्ख बनाना।

मैं ने हाल ही में रामघाट के सांगवेद विद्यालय से प्रकाशित "श्री 108 मदाद्य शङ्कराचार्य पूजा कल्पः" पुस्तक को देखा। उसमें कई संदेह होने और ग्रंथ कर्त्ता का नाम न होने से प्रस्तावना के नीचे श्री रामतारक मठ के महन्त श्री पुरुषोत्तमाश्रम स्वामी जी के हस्ताक्षर को देख उन्हीं को ग्रन्थ कर्त्ता समझकर महन्त जी को 16—5—35 को एक रजिस्ट्री पत्र भेजा था। उस पत्र के 12 प्रश्नों का उत्तर न देकर श्री महन्तजी ने अपनां यथार्थ स्थिति लिखकर जवाब के तौरपर कृपया भेजा था जिसकी भी प्रति हिन्दी भाषा में मराठी भाषा से अनुवादित है। महन्त जी के उत्तर देखने के बाद यह निश्चय हुआ कि पुस्तक के कर्त्ता एवं मूल कारण श्रीमान श्री राजेश्वर शास्त्री ही हैं। इस उपस्थिति पर मैं कुछ प्रश्न पन्डितराज से पूछना चाहता हूं।

(1) क्या आपने आज पर्य्यन्त श्री आचार्य जी की पूजा पद्धति पुस्तक कभी नहीं देखी? अभी छपवाने की क्या आवश्यकता पडी? पूर्व में छपी हुई पुस्तक से इस पुस्तक में क्या विशेषता है? पुस्तक में छपे हुए अष्टोत्तरशतनामावली क्या पुरातन है? पुस्तक में षोडषोपचार पूजा के लिए श्लोक सहित क्यों नहीं लिखा? क्या यह आपके सम्प्रदायों में नहीं है?

(2) जिस प्रकार कुछ निरुपयोगी लोग कृष्णाष्टमी और मुहर्रम से संबन्ध लगाते हैं उसी प्रकार आपने पन्डितराज होते हुए भी श्री शङ्करभगवत्पाद के पूजा पद्धति में शिवरहस्य एवं आनन्दगिरी शङ्करविजय ग्रन्थों का सम्बन्ध लगाया। ऐसा अप्रस्तुत प्रसंग लाने से आपको क्या लाभ है और लोकोपयोग कौन सा है ?

(3) आपके स्व. पूज्य मातामह सुप्रसिद्ध विद्वान म॰ म॰ सुब्रह्मणियम शास्त्री जी द्रविड मरण पर्यन्त दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी मठ को ही जगद्गुरु मठ कह कर सादर पूर्वक अपनी भक्ति दिखाई थी और 48 वर्ष पूर्व की व्यवस्था जो चार मठ मात्र होने की है उसमें भी अपनी सम्मति दे हस्ताक्षर किया है। इतना ही नहीं आपके पूज्य पिता जी प्रातः स्मरणीय जगद्विख्यात पन्डितचक्रवर्त्ति स्व॰ म॰ म॰ श्री लक्ष्मण शास्त्री जी द्रविड न्यायस्थल में प्रमाण पूर्वक जिस आनन्दगिरी शङ्करविजय को अप्रमाण एवं आनादरणीय घोषित किया है, अब आप इन दोनों दिग्गजों को मूर्ख बनाकर श्री कुम्भकोण मठ को जगद्गुरु मठ, श्री शृंगेरी को शाखा मठ बनाकर एवं उसी आनन्दगिरी शङ्कर विजय को प्रामाणिक ग्रंथ मानकर अपनी विद्वत्ता एवं योग्यता का परिचय दे रहे हैं। पता नहीं आसेतु हिमाचल पर्य्यन्त कीर्त्तिशेषित एवं वर्त्तमान् पन्डित लोगों के अभिप्राय को न मानकर तृतीय पन्था की खोजकर इसप्रकार सत्य का गला घोटने को आप क्यों तैय्यार हैं ? खूब याद रहे कि 'नहि सत्यात् परोधर्मो नानृतात् पातकम् महत्।" इसलिए अब भी आप अपने इस कार्य से विरत हो जाइये।

(4) यदि कदाचित कोई आशा से अथवा किसी अनिर्वाच्य गुप्त कारण से आप में श्री कुम्भकोण मठ को श्री जगद्गुरु आद्यमठ बनाने की आतुरता हो तो हम लोगों से पूछे हुए 10 प्रश्नों के शास्त्रीय यदि उत्तर न देते बने तो कम से कम हम लोगों के इन चार आक्षेपों का उत्तर देकर शङ्का निवारण कर बाद अपनी ध्येय (कुम्भकोण मठ को जगद्गुरु मठ बनाने का) साधें तो ठीक है।

(1) क्या 'ॐ तत्सत्' महावाक्य है ? यदि है तो यह किस वेद का और इसमें क्या प्रमाण ?

(2) 'इन्द्रसरस्वती' संप्रदाय दसनामी के बहिर्भूत एवं अभिमान से नवीन परिकल्पित है या नहीं। यदि शास्त्रीय सिद्ध दसनामी में हो तो उसमें क्या प्रमाण ?

(3) स्थानभ्रष्ट हुआ पीठ पूजाई कभी नहीं हो सकता। यदि हो तो इसमें क्या प्रमाण ?

(4) श्री आचार्य से परिकल्पित केवल चार ही मठ हैं न कि कोई पांचवा।

अपनी विद्वत्ता इस प्रकार के शास्त्रीय विचारों पर न कर लाखों अनामक ग्रंथ बनाने में और भाषा ज्ञान रहित लोगों को धोखा देकर हजारों हस्ताक्षर लेने से आपको ही इससे न कोई लाभ है अथवा श्री कुम्भकोण मठाधीश को ही कोई इष्ट सिद्धि होगी परन्तु दोनों की अपकीर्ति संसार में चिरस्थायी रह जावेगी। आपके हितचिन्तक होने के कारण अन्त में आप से मेरी प्रार्थना है कि लोगों को इस प्रकार भ्रम में और न डालकर सत्य मात्र का प्रचार करिये।

पं॰ ज॰ ग॰ विश्वनाथ शर्मा

पं० ज० ग० वि० शर्मा जी का पत्र श्री पुरुषोत्तमाश्रम स्वामीजी (महन्त, श्रीरामतारक मठ) को

पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा
हनुमान घाट,
श्रीकाशी,
ता० 16—5—35

ॐ नमोनारायण,

श्री वल्लभराम शालिग्राम सांगवेद विद्यालय से प्रकाशित 'श्री 108 मदाद्यशङ्कराचार्य पूजा कल्पः' पुस्तक जो आपने लिखी है, देखकर मुझे आश्चर्य एवं सन्देह हो रहा है। आपका हस्ताक्षर 6 माह पूर्व मुझसे प्रकाशित की हुई "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" में छपी हुई काशी के परिव्राजकों एवं पंडितों के व्यवस्था में है। पता नहीं इतनी जल्दी आपने क्यों अपनी बुद्धि फेर ली। कई संदेह होने पर मैं ने आपको यह पत्र लिखा। इस पत्र को रजिस्ट्री करने का कारण केवल आपके हाथ पत्र पहुचें और उत्तर शीघ्र ऊपर दिये हुए पते से मिले। मैं कुछ आक्षेपनीय विषय एवं प्रश्नों का संग्रह नीचे दिया हूं जिसका उत्तर लिख भेजने का कष्ट अवश्य करिये जिससे मेरा सन्देह निवारण हो जाय।

(1) प्रस्तावना क्या आपने ही लिखा हैं ? हस्ताक्षर क्या आप ही का है ? समग्र पुस्तक क्या आपने ही लिखा है अथवा दूसरा कोई लिखकर आपके पास ले गया ? समग्र पुस्तक पढने के बाद आपने हस्ताक्षर किया है अथवा बिना पढे हस्ताक्षर कर दिया है ? ग्रन्थ कर्त्ता का नाम न होने से आप ही कर्त्ता हैं यह निश्चित है।

(2) 6 माह पूर्व काशी के परिव्राजकों एवं पन्डितों की व्यवस्था में स्वयं आपने स्वबुद्धि से हस्ताक्षर किया था अथवा बलात्कार से ? यदि स्व बुद्धि से किये हों तो अब बदलने का क्या कारण है ?

(3) पूर्व व्यवस्था पर आपने 'आनन्दगिरी' के शङ्करविजय को अप्रमाण, कांची में मठ की स्थापना असत्य और श्री भगवत्पाद का निर्याण स्थान केवल केदार बदरिकाश्रम सीमा ही, न कांची में, मानकर हस्ताक्षर किया था। यह सत्य है अथवा आपकी अभी छपवायी हुई पुस्तक जिसमें आनन्दगिरी के शङ्कर विजय को प्रामाणिक, कांची निर्याण स्थान एवं मठ की स्थापना मानी है, क्या यह सत्य है ?

(4) इस समय पूजा पद्धति अलग लिखने की क्या आवश्यकता है ? क्या आज तक कोई पूजा पद्धति प्रामाणिक पुस्तकों में लिखी हुई संसार में प्रचलित नहीं हैं ? क्या आपने अभी तक श्री श्रृङ्गेरी श्री जगद्गुरु मठ के विद्वानों से एवं श्रीमती हनुमाम्बा से प्रकाशित की हुई पुस्तकों को नहीं देखा ? जिस प्रकार ध्यान श्लोक लिखा है उसी प्रकार क्यों नहीं आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, इत्यादि 16 पूजा के लिये नहीं लिखा ?

(5) पूजा विधि जिस प्रकार नूतन बना ली वैसा क्यों नहीं 108 नामावली भी बना ली ? इस 108 नामावली का मूल कहां है ? इसके कर्त्ता कौन है?

फ
३८८

(6) जिस प्रकार गृहस्थ लोग द्रव्य आदि आशा से पीडित होकर गुरु पित्रादि को भिन्न भिन्न भाव से एवं उन्हें अज्ञानी बनाकर समय समय पर अपनी राय भिन्न भिन्न देते हैं, उसी प्रकार आप वैराग्य भूषित संन्यासी होकर पहिले अभिप्राय से भिन्न ऐसा काम क्यों किया ?

(7) "चतुर्दिक चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः" इससे केवल चार ही मठ का प्रमाण मिलता है। अब पांचवा कांची मठ कहां से टपक पडा ? 'काञ्च्यां श्री चक्रराजाख्य यन्त्रस्थापन दीक्षिताय नमः' इससे यह सिद्ध हुआ कि श्री चक्रस्थापना केवल काञ्ची में की है पर मठ की स्थापना नहीं बतलाई है।

(8) आपकी छपवायी हुई नामावली में केवल "कैलास यात्रा संप्राप्त चन्द्रमौली प्रपूजकाय नमः" है, इससे एक ही लिङ्ग चन्द्रमौलीश्वर लाने का वर्णन है। काञ्ची का योग लिंग किस बाजार से मोल लाया गया।

(9) आद्यशङ्कराचार्य जी द्वैती हैं अथवा अद्वैती ? यदि अद्वैती हुए तो जीवभेदास्पद ग्रन्थ रचने का अपने शिष्य परमतकालानल को क्यों उपदेश दिया जैसा आपने अपने शङ्कर विजय में (आनन्दगिरी कृत) दिखाया है ?

(10) आपके प्रामाणिक शङ्कर विजय में आद्यशङ्कराचार्य जी के शरीर त्याग का वर्णन दियाहुआ है —"स्थूल से सूक्ष्म में परवर्त्तन होकर और सूक्ष्म से कारण में विलीन होने के बाद अंगुष्ठ मात्र पुरुष हुए" यह किस प्रकार हो सकता है ? कारण में विलीन होने के बाद अंगुष्ठ मात्र पुरुष होना बिलकुल असम्भव है। बाद लिखा है कि श्री आचार्य जी का चैतन्य ईश्वर सन्निधि को प्राप्त हुआ। इससे तो सामीप्य मुक्ति की पुष्टी होती है तो क्या आप श्री शङ्कराचार्य जी को सामीप्य मुक्ति ही मानते हैं ?

(11) सब आनन्दगिरी शङ्करविजयों में केवल 74 प्रकरण हैं पर आपके छपवाने में 130 प्रकरण पाते हैं। क्या आप 130 प्रकरण आनन्दगिरी शङ्कर विजय में दिखा सकते हैं ?

(12) आपके दिये हुए 66 वां प्रकरण का भाग आनन्दगिरि शङ्कर विजय में बिलकुल उक्त प्रकरण में है ही नहीं पर 67 वें में है। उसमें "निज शिष्य परम्परां आकल्पं शृङ्गगिरी स्थानस्थां कृत्वा" यों है। उसमें से आपने "शृङ्गगिरी स्थानस्थां" को काट कर कामकोटि कुम्भकोण मठ के पक्षपाती होकर उक्त कहे हुए के बदले "कांची पीठादि ... ..." जोड दिया है। इस साहस को देख कर अति आश्चर्य हुआ। इसके अतिरिक्त आपने 63 वें प्रकरण में "सुरेश्वराचार्य कञ्चिच्छिष्यं पीठाध्यक्षं कृत्वा" वाक्य में "सुरेश्वराचार्य" पद को काट कर "पद्मपादाख्यं" उसके जगह में बदलने का एवं 62 वां प्रकरण में "मदाश्रमे" के बदले "मदाश्रया" बदलने का साहस दिन दहाडे देखकर अति विस्मय हो रहा है। आशा करता हूं कि इन कुछ सन्देहों को आप शीघ्र निवारण कर देंगे

इति अनेक वन्दन पूर्वक

ज० ग०. विश्वनाथ शर्मा

16—5—35

श्री पुरुषोत्तमाश्रम जी का उत्तर मराठी भाषा से हिन्दी में अनुवादित।

तारक मठ, दुर्गाघाट,
काशी,
23—5—35

पन्डित जे० जी० विश्वनाथ शर्मा, हनुमान घाट, बनारस सिटि, आपको पुरुषोत्तमाश्रम स्वामी, तारकमठ की तरफ से नारायण। आपका ता० 16—5—35 का पत्र मिला। हमको हिन्दी भाषा या संस्कृत भाषा अच्छी आती नहीं। इसलिए उस भाषा में पुस्तक लिखने के लिए हम समर्थ नहीं। इतना ही नहीं, किन्तु आपकी हिन्दी भाषा का पत्र उसका उत्तर हिन्दी भाषा में भी देने में हम समर्थ नहीं और हम आज आठ महिनों से बिमार हैं। डाक्टर ने भी हमारा रोग असाध्य बतलाया है। मठ के महन्त भी हमने दूसरे को नियुक्त कर दिया है। इस हालत में रा० रा० गोपीनाथ शास्त्री एक दिन हिन्दी भाषा में लिखो हुई प्रस्तावना पत्रिका और कुछ कच्चे लिखे हुए कागज लेकर हमारे पास आये और प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही कराने के लिये पन्डित राजेश्वर शास्त्री ने भेजा है कहा और उसे पढ सुनाया। हमने उस समय उनको ऐसा समझाया कि हमने इसके पहिले "श्री आनन्दगिरी के शङ्कर दिग्विजय" के ऊपर टीका आक्षेपादि होने के कारण "विमर्श" नामक पुस्तक में सही किया है। इसलिये हम इस पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते। इसके ऊपर हस्ताक्षर करने में कोई हर्जा नहीं, इसमें केवल 108 नामावली पूजा विधि है, इसका प्रचार होने के लिये ही आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है, इसमें आनन्दगिरी के आक्षेपादि विषय का सम्बन्ध नहीं, ऐसा उनके कहने से हमने कागज न पढकर प्रस्तावना पत्रिका के ऊपर सही किया है, यही हकीकत है। नारायण।

(द) पुरुषोत्तमाश्रमस्वामी महन्त

श्री प० प० स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी महाराज, महन्त श्री रामतारक मठ के यहां से और एक पत्र ता० 14—5—1935 को प्राप्त हुआ। यह पत्र प० प० श्री दक्षिणामूर्ति आश्रम स्वामी जी के ता० 14—5—35 पत्र का उत्तर रूप में भेजा गया था। मराठी भाषा से हिन्दी में अनुवादित पत्र का नक़ल नीचे दिया जाता है।

काशी,
ता० 14—5—35.

आपका पत्र ता० 14 मई का प्राप्त हुआ। श्री आनन्दगिरी कृत शङ्करविजय आक्षेपार्ह ग्रन्थ है और उस पुस्तक की ये आक्षेपार्ह विषयें उसका अप्रमाणिक होने की बात 'विमर्श' पुस्तक में लोक सहाय्य के लिये उल्लेख है, वह सही ही है। श्री शङ्कराचार्य के 108 नामावली, पूजा विधि, मुझे मान्य है पर आक्षेपार्ह आनन्दगिरी पुस्तक मेरा सम्मति उस पर नहीं है, यह आपकी जानकारी के लिए लिखते हैं। नारायण।

इन पत्रों को "सूर्य" पत्र में प्रकाशन के कुछ माह बाद "श्री 108 मदाद्यशङ्कराचार्य पूजा कल्पः" द्वितीय मुद्रण छपकर सांगवेद विद्यालय में प्रकाशित किया। प्रथम मुद्रण की पुस्तक में दिए हुए नामावली के 84 वां नामावली 'चतुर्दिक् चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः' जिसपर टिप्पणी ऊपर दिये पत्र में की गई थी, इस नामावली को

छोडकर पुस्तक के द्वितीय मुद्रण में 107 नामावली का प्रकाशन किया गया। चूंकि यह नामावली कुम्भकोण मठ के प्रचारों के विरुद्ध है और उनके कल्पित प्रचारों की पुष्टी नहीं करती है इसलिए अब इसे 108 नामावली से निकाल दिया गया। क्या आश्चर्य है कि ऐसे लोग मनगढन्त पुस्तकें तैय्यार कर, प्रमाण पुस्तकों को अदल बदल कर, तथा शब्दों का जोडतोड बदलकर, नये ग्रन्थों को तैय्यार कर, स्व इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये क्या नहीं कर सकते? इस पुस्तक में दिये हुए शिवरहस्य नवांश 16 अध्याय एवं आनन्दगिरी शङ्करविजय के ऊपर विमर्श एवं टिप्पणी पाठकगण "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" नामक पुस्तक में पायेंगे। क्या अष्टोत्तरशत नामावली का अर्चन सप्तोत्तरशत नामावली से किया जा सकता है? क्या कारण है कि इस नामावली को दूसरे मुद्रण में पुस्तक से निकाल दिया गया है? इष्ट सिद्धि प्राप्त तथा स्वार्थ के लिए यदि यह नामावली निकाल दिया गया तो क्यों नहीं दूसरा कोई एक नवीन नामावली जोडकर 107 नामावली के बदले 108 नामावली बनाया जाय? यदि चोरी क्षिप्त करना ही था तो ऐसा करते कि शीघ्र पकड में न आते। क्या कारण है कि और कोई नामावली न निकालकर इसी एक नामावली "चतुर्दिक् चतुराम्नाय प्रतिष्ठात्रे नमः" को निकाल दिया गया है? पाठकगण जान लें कि किस प्रकार कुम्भकोण मठ की तरफ से मिथ्या भ्रामक प्रचार किया जाता है। ऊपर दिये हुए पत्र के 11 वां प्रश्न के उत्तर रूप में उन्होंने "आनन्दगिरी शङ्कर विजय" के 130 प्रकरण को अब बदल कर 74 प्रकरण अपनी दूसरी मुद्रण में छाप दी। इनके दिये हुए 108 नामावली में 96 नामावली "ब्रह्मराक्षस पोषकाय नमः" है। यह नामावली कहां तक प्रमाण युक्त है, पाठकगण "श्री मज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श" नामक पुस्तक में इसका विमर्श पायेंगे। इनके नामावली में केवल चार शिष्यों का नाम उल्लेख है और इनके प्रचारानुसार पुस्तकों में 5 शिष्यों का एवं श्री शङ्कराचार्य की शिला मूर्ति अनुसार 6 शिष्यों का उल्लेख है। क्यों नहीं चार के साथ पांचवां नाम "श्री सर्वज्ञात्म श्री चरणेन्द्र सरस्वती" का नाम भी 108 नामावली में जोड लिया?

23. कुम्भकोण मठाधीश का काशी टाउनहाल में विदाई सभा विवरण।

क्योंकि प्रथम दिन का स्वागत उतना अच्छा न घटा जितना कि ये लोग संभावना करते थे और वाद-विवाद से जो सनसनी पैदा हो गई थी उसके प्रत्योत्तर में एक आडंबर युक्त महानाटक टाउनहाल के मंच पर दिखाया गया। अपनी अपनी टोली के साथ एक एक अभिनन्दनपत्र देने का आयोजन भी किया गया। तदनुसार एक लम्बी चौडी लाल रंग की नोटिस भी छपी जिसमें अनेकों का नाम उल्लेख था। सिनेमा पोस्टर की तरह जगह जगह पर चिपकाया गया। शहर में ढिंढोरा पीटा गया, आधुनिक काल के प्रचारात्मक सब मार्गों का अवलम्बन किया गया। निवेदकों की सूची एक लम्बी सूची थी। उसमें 11 लोगों का नाम था जो काशी में उस समय उपस्थित थे ही नहीं। इन ग्यारह नामों में 5 नाम ऐसे थे जो कि वे श्री स्वामी जी को न देखे थे और न कुम्भकोण मठ का नाम सुना था। पामर लोग क्या जाने। लम्बी चौडी नोटिस और सबों का नाम देखकर वे भी इनके कथनानुसार कल्पित कथाओं को सत्य मानने लगे। इस नोटिस द्वारा लोगों को बतलाया गया कि श्री स्वामी जी तथा आपका मठ सर्वोत्तम, सर्वोच्च मठ है और इनको "परमशिवावतार" कहा गया था। इस पर पं॰ मणिराम शर्मा जी ने आक्षेप भी किया और उन्होंने एक नोटिस "कुम्भकोणन् (कांची कामकोटि) मठ के महन्त जी को परम शिवावतार तथा जगद्गुरु शङ्कराचार्य बनाने वालों से खुले प्रश्न" शीर्षक प्रकाशित की। इस नोटिस का नकल नीचे दिया जाता है।

सारे संसार में यह बात प्रसिद्ध है कि श्री जगद्गुरु भगवत्पादाद्यशङ्कराचार्य जी महाराज ने शारदा, गोवर्धन, शृङ्गेरी और ज्योतिर्मठ इन चार ही मठों की स्थापना चारों दिशाओं में की थी।

इन्हीं मठों का उल्लेख प्रामाणिक ग्रन्थों में भी विस्तार पूर्वक मिलता है। इधर कुछ काल से कुम्भकोणम् मठ के अधिपति अपने को जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहलाने और अपने मठ को श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित होने की प्रसिद्धि करने के निमित्त भ्रमण कर रहे हैं। मालूम होता है कि इसी निमित्त उक्त मठ के महन्त जी काशी में भी आये जो लगभग पांच मास निवास करने के पश्चात् अब रवाना होने वाले हैं। जिस समय महन्त जी आने वाले थे उस समय यह विवाद खड़ा हुआ था कि उक्त मठ आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित है या नहीं। श्री विहारीपुरी मठ में काशी के प्रतिष्ठित सन्यासी और पन्डितों की एक सभा ने परम श्रद्धेय काशी के प्रसिद्ध विद्वान पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी की अध्यक्षता में चार मठों के अतिरिक्त और कोई भी मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य जी ने स्थापित नहीं किया, यह निर्णय किया था। इसी प्रकार का निर्णय स्वर्गीय म० म० पं० शिवकुमार जी शास्त्री, म० म० श्री पं० कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य शिरोमणि प्रभृति प्रसिद्ध पन्डितों नें भी 48 वर्ष पूर्व किया था। इन सब बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन तथा अनेक प्रकार की अन्य आशंकायें श्री पं० सीताराम शास्त्री जी एवं पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा जी द्वारा प्रकाशित "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" नामक पुस्तक में किया गया है, जिससे कुम्भकोण मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित नहीं है, यह अच्छी प्रकार से वर्णित है। इस पुस्तक में उल्लिखित बातों का प्रतिवाद अब तक किसी ने नहीं किया, ऐसी हालत में हम जगद्गुरु शङ्कराचार्य तथा शिवावतार कहकर उक्त मठ के महन्त जी के स्वागत करनेवालों से नीचे खुले प्रश्न पूछना चाहते हैं। हम जनता को यह भी बतला देना चाहते हैं कि जो नोटिस महन्त जी का स्वागत सभा की सूचना के लिये काशी में बांटी गई है उसमें जो निवेदक हैं सम्भवतः वे सब उक्त महन्त जी को शिवावतार माननेवाले और जगद्गुरु शङ्कराचार्य माननेवाले न होंगे बल्कि उन लोगों को और ही बातें कह कर नोटिस में नाम देने को कहा गया होगा। किसी लोभ के बदले में उनको शिवावतार और जगद्गुरु शङ्कराचार्य लिखनेवाले इनेगिने व्यक्ति होंगे। हमारे प्रश्न उन्हीं सज्जनों के प्रति है।

(1) परमशिवावतार के लक्षण क्या हैं? वे लक्षण काञ्ची कामकोटि मठ के महन्त जी में घटते हैं या नहीं। यदि नहीं घटते तो नोटिस में उक्त महन्त जी को परम शिवावतार किस आधार से लिखा गया है?

(2) श्री भगवान शङ्कर जी के अवतार लेने की इस समय क्या आवश्यकता थी, कृपया बतलाइये, और उसकी पूर्ति यह महन्त जी कर रहे हैं या नहीं?

(3) क्या कुछ पन्डितों को दुशाले और दक्षिणा देकर अपने को जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहलाने के लिये ही यह नवीन शास्त्र सिद्ध शिवजी का अवतार हुआ है, और इसलिये सभायें और स्वागत का नाटक रचा जा रहा है?

(4) महाराजकुमार विजयनगरम् और रा० ब० कुंवर कवीन्द्र नारायण सिंह आदि कई एक महानुभाव काशी में कितने ही दिनों से उपस्थित नहीं हैं फिर इनका नाम निवेदकों में देकर जनता को भ्रम में क्यों डाला जा रहा है?

(5) उक्त महन्त जी के काशी आने के अवसर पर जो स्वागत समिति बनी थी उसमें श्री स्वामी जयेन्द्र पुरी, श्री स्वामी भागवतानन्द जी, श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी आदि मण्डलेश्वरों का तथा और अनेक महानुभावों का जो काशी में थे ही नहीं, नाम देकर जिस प्रकार अपना मतलब साधने का ढंग रचा गया था, क्या इस समय भी तो वैसे ही नहीं किया जा रहा है ?

(6) हमें साफ साफ बतलाने का कष्ट करें कि नोटिस में जितने निवेदक हैं उनका नोटिस पर दस्तखत कराया गया है या अनेक सज्जनों का नाम अपने आप लिख लिया गया है ?

(7) क्या कामकोटि मठ श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित है ? यदि है तो उसकी स्थापना कब और कहां हुई ? एक स्थान पर स्थापित पीठ को दूसरे स्थान पर ले जाना शास्त्र सिद्ध है या नहीं ?

(8) आप शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चारों दिशाओं में चारों मठों में से कुम्भकोण मठ किस दिशा में स्थापित कौन मठ है ?

(9) आद्यशङ्कराचार्य जी ने गिरि, पुरी, भारती आदि दसनाम के शिष्य बनाये थे जो संसार प्रसिद्ध हैं, प्रामाणिक ग्रन्थों में भी ऐसा ही लिखा है, किन्तु कुम्भकोणम् के महन्त अपने को "इन्द्रसरस्वती" नाम कहलाते हैं, कृपया बतलायें कि यह ग्यारहवां नाम कहां से टपक पड़ा और शङ्कराचार्य जी ने कब कहां पर इस नाम का शिष्य बनाया ?

(10) शुकरहस्योपनिषद में चार वेदों के चार ही महावाक्यों का वर्णन है किन्तु कुम्भकोण मठ का 'ॐ तत्सत्' (जो केवल ब्रह्म का निरुपण करता है) वह कैसे महावाक्य बन गया ?

पं० मणिराम शर्मा

श्री स्वामी जी सन्यास आश्रम लिये तो उन्हें "प० प० श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती" जी के नाम से पुकारा गया। जब वे मठाधीश बने तो उन्हें "जगद्गुरु शङ्कराचार्य" बनाया गया। बाद उन्हें "श्री मदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित कांची कामकोटि पीठाधीश और श्री मदाद्यशङ्कराचार्य के अविच्छिन्न महागुरु ब्रह्मविद्या परम्परा द्वारा जगद्गुरु शङ्कराचार्य" बनाया गया। जब श्री स्वामी जी दिग्विजय यात्रा के लिए रवाना हुए तो उन्हें "अवतारपुरुष" कहा गया। बाद दिग्विजय यात्रा करते करते कुछ साल बीते तो उन्हें "श्री आदिशङ्कराचार्य का अवतार" कहा गया। दिग्विजय करते हुए श्री स्वामी जी काशीधाम पहुंचे उन्हें "परमशिवावतार" कहा गया। लौटकर श्री स्वामी जी जब मदरास पहुंचे तो उन्हें "चलते फिरते भगवान" "चलते फिरते गुरुकुल" (तामिल भाषा में नडमाडुम् दैवम्, नडमाडुम् गुरुकुलम्) कहा गया। अब 1960 में जब श्री स्वामी जी मौन धारण कर लिए तब से "दक्षिणामूर्ति अवतार" माना जाता है। अब आगे क्या प्रचार किया जायेगा सो केवल प्रचारक ही जानते हैं। ऐसे प्रचारों से कोई आपत्ति नहीं है। यह तो भक्तों शिष्यों के अनन्य प्रेम से यह सब उपाधि दिया जाता है। आपत्ति तो तब ही आती है जब श्री स्वामी जी महाराज स्वयं इन उपाधियों द्वारा अनुभव करके "मैं" अहंकार में आ जाते हैं और व्यक्तिगत की उपाधि से लाभ उठाकर धर्मप्रचार के साथ ही साथ अपने मठ का प्रचार भी शुरु कर देते हैं।

काशी के टाउन हाल में बिदाई की सभा 9—3—35 को हुई। "पन्डित पत्र" 11—3—35 के अंक में लिखते हैं "आरम्भ में कुछ उपद्रवियों ने सभा में हुल्लड़ मचाने की चेष्टा की, परन्तु सनातनियों की दृढ़ता और मुस्तैदी के कारण वह क्षणमात्र में विफल हो गई।" अब पाठकगण कृपया अपनी दृष्टि 'सूर्य' पत्र ता: 12—3—35 के अङ्क में डालें, उस सभा के एक दर्शक ने जिसे प्रकाशित की है। "सूर्य" पत्र ता: 15-3-35 के अङ्क में "उपद्रवी कौन?" शीर्षक, पं० रामनिधि त्रिपाठी जी से लिखित पत्र पढ़ें तो मालूम हो कि सत्य घटना क्या थी।

कुम्भकोणम के महन्त की बिदाई

आदि शङ्कराचार्य बनाने वालों का प्रयत्न विफल

काशी 10, मार्च।

इधर लगभग 5 मास तक काशी में रहने के बाद कल 9 मार्च को कुम्भकोण मठ के महन्त जी महाराज की स्थानीय टाउनहाल में विदाई की सभा थी। सभा के एक दिन पहिले एक लम्बी चौडी नोटिस बांटी गयी जिसमें कितने ही प्रतिष्ठित नागरिकों का नाम था जो इधर कितने ही दिनों से काशी में नहीं हैं। पहले महन्त जी के आने के समय भी इसी प्रकार कितने ही लोगों का स्वागत करनेवालों में नाम दिया गया था जो काशी में मौजूद नहीं थे। मालूम नहीं इस प्रकार नाम देने में कौन सा रहस्य है। नोटिस में उक्त महन्त जी को "जगद्गुरु शङ्कराचार्य" और 'परम शिवावतार" लिखा गया था। जो कुछ हो, "परमशिवावतार" शब्द पर लोगों की आपत्ति थी। पन्डित मणिराम शर्मा ने एक नोटिस प्रकाशित कराके इसी प्रकार के कुछ प्रश्न स्वामी जी का बिदाई की नोटिसपर हस्ताक्षर करनेवालों तथा स्वयं स्वामी जी से पूछा था। प्रश्न बहुत उचित और सौम्य भाषा में लिखे गये थे, पर फिर भी सभा के बाहर नोटिस बांटने वाले विद्यार्थीयों से शङ्कराचार्य बनाने वाले इतने रुष्ट हो गये कि उनसे कुछ नोटिस लेकर फाड़ डाला। एक रईस साहेब का व्यवहार सभा में बडा ही निन्दनीय हुआ। स्वामी लालनाथ जी ने पहुंच कर उन्हें न फटकारा होता तो वे अपने व्यवहार से बाज न आते। जो कुछ हो, उनके व्यहार की सभा में बडी निन्दा हुई। स्वामी जी ने परमशिवावतार बनने पर आपत्ति की। उपस्थित जनता सभा वालों के इसकार्य पर रुष्ट हो गई। सभा में हो-हुल्लड़ मच गया।

महामहोपाध्याय पं० अनन्त कृष्ण शास्त्री जी ने स्वामी जी के पास जाकर कहा कि आपका बिरोध करना उचित नहीं है। मैंनें आप को भी शिवावतार बनाया था। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि मुझे भी आपने शिवावतार बनाया था तो वडी ही गल्ती की थी। अब मैं वैसी गल्ती नहीं होने देना चाहता। इस पर आपने स्वामी जी से माफी मांगी, पर उपस्थित जनता को इससे सन्तोष नहीं हुआ। अनेक लोग जिनका इस सभा से कोई स्वार्थ नहीं था, उठकर चले गये। फिर काशी के वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से 'दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा' की गति प्रारम्भ हुई और इसके बाद सभा विसर्जित हो गयी।

(सूर्य ता: 12—3—35)

एक दर्शक।



उपद्रवी कौन ?

(सूर्य पत्र ता : 15—3—35)

गत शनिवार 9 मार्च को स्थानीय टाउनहाल में कांचीकामकोटि के महन्त की बिदाई के लिए जो सभा हुई थी उसमें महन्त जी की ओर के कुछ लोगों का व्यवहार इतना बुरा हुआ कि उसे देखकर उपस्थित लोगों में से कितने ही सभास्थल से उठकर चले गये। पं० मणीराम शर्मा की प्रश्न सम्बन्धी कुछ नोटिसें जब सभा में बंटने लगीं तो महन्त जी की ओर के दो व्यक्तियों ने जिनका नाम मैं यहां नहीं देना चाहता नोटिस बांटनेवालों के हाथ से नोटिस छीन ली और उसे जोर से धक्का देकर उसके प्रति अपशब्दों का प्रयोग भी किया। इतने में स्वामी लालनाथ जी आ पहुंचे। उन्हें एक लडके के प्रति भले मानुष बनने वालों का ऐसा दुर्व्यवहार देखकर दया आई। उन्होंने महन्त जी के आदमियों को डांटा और शान्ति पूर्वक नोटिस बंटने देने का आग्रह किया। महन्त जी की ओर के एक आदमी के मुंह से यह भी कहते सुना गया कि नोटिस को फाड कर फेंक दो उनमें व्यर्थ की बातें हैं। इस पर सभा में आये हुए दो एक व्यक्तियों ने कहा कि प्रश्न तो बडे अच्छे हैं। इनका उत्तर महन्त जी को देना चाहिए। पर अन्त में प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया गया। उल्टे पूछने वाले को उपद्रवी और हुल्लड़बाज बतलाकर पन्डित बनने वाले 'पत्र' ने सत्य का गला घोंटा। प्रश्न पूछने का अर्थ उपद्रव मचाना नहीं है। उपद्रव मचाने वाले वे हैं जो प्रश्न कर्त्ता के प्रति ऐसे दुर्व्यवहार करते हैं जिससे असन्तुष्ट होकर जनता "शर्म शर्म" कहती है। रामनिधि त्रिपाठी॥

वास्तव तो यह है कि हुल्लड़ जब मचा और कतिपय रईसोंने अपनी उद्दन्डता भी दिखाई, उस समय भीड़ में से किसी ने चप्पल फेंका और दूसरे ने सडा फल भी फेंका। ये दोनों श्री कुम्भकोण मठ के महन्त जी के समीप गिरा। इस सभा के दर्शकों से यह विवरण मालूम हुआ। कुछ दर्शकों का पत्र भी मेरे पास है जो उक्त विषय की पुष्टी करती है। बडा खेद और शर्म की बात है कि लोग उद्वेग में ऐसे अपचारों का प्रयोग करते हैं। 'शांकरपीठतत्वदर्शन' में लिखा है कि एक भारी विराट सभा टाउनहाल में हुई। 'भारी' एवं 'विराट' शब्दों का क्या अर्थ या तात्पर्य है? इस सभा के दर्शक के विवरण से तो मालूम होता है कि इस सभा में केवल कुछ लोग ही रह गये और बहुतेरे उठकर चलदिये। यह सभा हम लोगों की आंखों के सामने हुई थी। तिसपर भी हम लोगों की आंखों में अब धूल फेंकने की कोशिश हो रही है। उस जगह श्री स्वामी जी के अनुयायी एवं "उत्तर" "दक्षिण" "अग्र" आदि सूत्रधारों की टोली के सदस्य ही थे। उस सभा के प्रकाशित नोटिसों में कई हस्ताक्षरी लोग वहां पर उपस्थित न थे। वर्णाश्रम संघ की धूमधाम थी।

24. कुम्भकोण मठाधीश का हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग के अध्यापकों द्वारा स्वागत तथा परमपूज्य महामना मालवीय जी का मठविषयक विचार

अब हमारी दक्षिण दिशा के सूत्रधार का खेल देखें। आप काशी विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग संस्कृत कालेज अध्यापक होने के कारण यथाशक्ति विश्वविद्यालय मंच पर नाटक रचा। जब मठाधीश विश्वविद्यालय पहूंचे तो म० म० पं० चित्रस्वामी शास्त्री जी द्वारा लिखित अभिनन्दन पत्र को प्राच्य विद्याविभाग के अध्यापकों की ओर से पं० बालकृष्ण मिश्र जी द्वारा पढ़कर श्रीस्वामीजी को अर्पण किया। पूज्य महामना मदन मोहन मालवीयजी ने भी एक

स्वागताभिनन्दन पत्र पद्य में पढ़ा। इस अभिनन्दन पत्र में एक मार्के की बात है कि जितने भी अभिनन्दन, अनुमोदन, स्वागत, प्रमाण, प्रणति, प्रार्थना, आदि पत्रें श्री काशीधाम में संग्रह किया गया और जो सब व्यवस्था रूप में मठविषयक का था उसप्रकार महामना मालवीय जी का पद्यमय स्वागत पत्र न था पर साधारण था।

प० प० श्री ब्रह्मानन्दसरस्वती स्वामीजी, महन्त श्री पूरण गिरिजी (जूना अखाडा), श्री एस. पि. सन्याल, पं० प्रतापं सीताराम शास्त्री जी और मैं पूज्य महामना मालवीय जी से मिला और उनको सब प्रामाणिक पुस्तकों को दिखाकर यही सिद्ध किया कि कांची कुम्भकोणमठ न तो आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित है इसलिये कांची कुम्भकोणमठ अपने को आद्यशङ्कराचार्य जी के साक्षात अविच्छिन्न परम्परा में आने का कह नहीं सकते। पूज्य मालवीयजी यह सब सुन व देखकर हंसते हुए बोले—

"पन्डित चिन्नस्वामी शास्त्री का कहना है कि कांचीमठ आद्यशंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित है और मैं ने ग्रन्थों को न तो पढा या इस विषय पर शोध किया। वृद्ध परम्परा से यहीं सुनता आया हूं कि श्री शङ्कराचार्य ने आम्नायानुसार चारों दिशाओं में चार ही मठ स्थापित किये और हिमालय के केदार सीमा से निजधाम पहुंचे। दक्षिणाम्नाय का मठ शृङ्गेरीमठ है। सौभाग्य की बात है कि शृंगेरीमठ से मेरा घनिष्ट सबन्ध है। माता शारदा की मुख्य क्षेत्र शृंगेरी है। यही व्याख्यान सिंहासन पीठ भी है। एक समय मैं ने प्रार्थना की थी कि शृङ्गेरी के गुरु महाराज काशीधाम आकर हिन्दू विश्वविद्यालय का नीवं डालें। इस कार्य निमित्त मैं ने मेरे मित्र श्री दत्तात्रेय कृष्ण दामले को भेजा था और मुझे वहां से गुरुपादुका प्राप्त हुई थी। माता शारदा एवं गुरु महाराज की कृपा से संकल्प किया हुआ कार्य निर्विघ्न सफल हुआ। कांची मठाधीश काशीधाम आये और हमारे यहां के पन्डितों ने उनका स्वागत किया और उन सबों ने मुझसे प्रार्थना की कि मैं भी शामिल हो जाऊं तब मैं वहां पहुंचा। मेरी इच्छा नहीं है कि मैं कांचि मठ प्रचारों का समर्थन या पुष्टि करूं।"

उक्त वार्तालाप के समय नोट लिख लिया गया था जिसमें से नकल ऊपर दिया गया है। श्री एस. पि. सन्याल जी ने एक पत्र महामना मालवीय जी को लिखा था जिसमें कुम्भकोण मठ भ्रामक प्रचारों का विवरण देकर आपका अभिप्राय पूछा था। महामना मालवीय जी ने अपने उत्तर पत्र में स्पष्ट उल्लेख किया है कि आद्यशङ्कराचार्य जी ने केवल चार आम्नाय मठों की स्थापना की थी और कांची मठ इन में गिने नहीं जाते। मैं ने उक्त पत्र का नकल प्राप्त किया था परन्तु अभाग्यवश अब वह मेरे पास नहीं है। पाठकगण अब जान गये होंगे कि किस प्रकार मठ की तरफ से भ्रामक प्रचार किया जा रहा है। पं० महादेव पान्डेय जी ने एक पद्य पढ़ सुनाया। विश्वविद्यालय प्राच्य विभाग द्वारा रचित सभा में भी खूब नोटिसें बंटी। एक विद्यार्थी ने 'आद्यशङ्कराचार्य बनने का विफल प्रयत्न' शीर्षक एक नोटिस छपवाकर प्रकाशित भी किया जिसका नकल नीचे दिया जाता है।

आद्यशङ्कराचार्य बनने का विफल प्रयत्न।

आद्यशङ्कराचार्य जी धर्म रक्षणार्थ चारों दिशाओं में शृंगेरी, द्वारका, बदरी और पुरी में चार वेद के लिये चार सम्प्रदाय, चार महावाक्य, अपने चारों शिष्यों को उपदेश देकर गद्दी में बैठा गये और वे स्वयं कहीं नहीं बैठे, यह विषय सब पर विदित है। इस विषय का समर्थन विद्यारण्य, सदानन्द, केरलीय, वृहद् शंकरविजयादि ग्रन्थ, मठाम्नाय और कूर्म, शिवरहस्य इत्यादि पुराण भी करते हैं। परन्तु कुम्भकोणम् के महन्त द्राविणी माया के बल से अपने

शिष्यों द्वारा केवल अपने को एक मात्र जगद्गुरु प्रख्यापन कराते हुए काशी पहुंचे पर आपकी पोल एक द्राविड ही ने खोलकर आपका बना बनाया खेल बिगाड दिया। काशी की पन्डित व सन्यासी सभा में जो आपकी दुर्दशा हुई सो सब को विदित ही है। आप अपनी द्राविणी माया को इस प्रकार फैलाये बैठे हैं कि पूज्य महामना मालवीय जी के सदृश पुरुष भी आपके जाल में फंस गये हैं। आपके आद्य शङ्कराचार्य के गद्दी नशीन होने और आपके सम्प्रदाय आदि के बारे में कई प्रतिष्ठित विद्वानों ने कई तरह के प्रश्न पूछे जिनका उत्तर आजतक आप कुछ भी नहीं दे पाये। स्वयं मौन रहकर शिष्यों द्वारा आद्यशङ्कराचार्य के गद्दी नशीन क्नने का विफल प्रयत्न क्यों कराते हैं? अपने असली रुप को जो शाखा मठ के महन्त होने का है उसे प्रकट कर लोगों के भ्रम को क्यों नहीं निवारण करते? मैं विश्वविद्यालय के छात्रों की ओर से आपको एक त्यागी, सन्यासी और महन्त के नाते से स्वागत करते हुए आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपने असली स्वरूप को इस विद्यालय में प्रकट कर हम लोगों को सन्तुष्ट करें।

"पन्डित पत्र" के 18—3—1935 के अङ्क में "सत्यशोधक" के नाम से विश्वविद्यालय की सभा का विवरण छपा है, वे लिखते हैं "परन्तु खेद है कि किसी पन्डित ने न जगद्गुरु के बारे में कुछ कहा, न मालवीय जी के व्याख्यान की ही कुछ समालोचना की, सब मौन रहे। पंडितों के लिए यह शोभा की बात नहीं था!" चाहे जो हो, यहां पर विषय लिखने का तात्पर्य यह है कि जहां जहां श्री कुम्भकोण मठाधीश गये वहां-वहां उपद्रव, वाद-विवाद छिड़ा और कहीं भी मठाधीश ने उसका सामना न किया। पन्डितों की सभा करा करके क्यों नहीं निर्णय करा लिए? छिपे तौर लोगों से हस्ताक्षर क्यों लिये गये? यदि उनका मठ आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित विषय सत्य है जैसा कि इनका कथन है तो क्यों विद्वत सभा कराने से भय खा गये। विपक्षी दलों की सार्वजनीनक सभा खुल्लम खुल्ला बिहारीपुरी मठ में हुआ और उस सभा में कुम्भकोग मठाधीश तथा उनके मठ के विद्वानों को भी बुलाया गया था। उसी प्रकार क्यों नहीं कुम्भकोण मठाधीश एक सार्वजनिक सभा करा करके अपने कल्पित प्रमाण ग्रन्थों को बाहर निकालकर सत्य का निपटारा करा लेते? ऐसा न करके स्वयं मौन धारण कर और सब को यह बताकर कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है" और अपने शिष्यों को युक्ति एवं अनुमानवाद की ओट लेने की आज्ञा देकर दूसरों पर कीचड फेंकने का कार्य शुरू कर दिये। श्री काशीधाम में जितने भी ट्रैक्टों, पुस्तक व पुस्तिका छपी उन सबों में केवल इन्हीं दोनों सूत्रधारों एवं अग्र टोलीवालों का ही हस्ताक्षर पाठकगण पायेंगे।

25. कुम्भकोण मठाधीश की बिदाई

श्री कुम्भकोण मठाधीश 20—3—1935 के सायंकाल काशीधाम छोडकर कलकत्ते की ओर चले। मेरा मकान जो हनुमानघाट के गङ्गा तट पर है, मेरे घाट के समीप नाव लगी थी और मठाधीश उस पर चढकर चलते भये। कुल 50 व्यक्ति मठ के कर्मचारी व अनुयायी शिष्यों घाट पर खडे थे। मैं भी यह तमाशा अपने घर से देख रहा था। पश्चात् कुम्भकोणमठ के अभिमानियों व कर्मचारियों से सुना कि कुम्भकोणमठाधीश जाते समय मुझे शाप देते हुए चले गये। यदि यह कथन सच है तो धन्य हो! परमशिवावतार का! 'पन्डितपत्र' का बिदाई विवरण सरासर झूठ है। जो सब सज्जन इस बिदाई में उपस्थित थे उनका दिया विवरण 'पन्डितपत्र' के कल्पित प्रचारों की पुष्टी नहीं करता। कल्पना जगत की सीमा भी होती है पर 'पन्डितपत्र' में दिया हुआ विवरण सीमातीत है।

26. कुम्भकोण मठ के अनुयायियों द्वारा कराये गये काले कर्तूतों का वित्ररण।

श्री कुम्भकोण मठाधीश जी के साढ़ेपांच महिने के काशीवास के समय अनेक घटनायें घटी जिनका विवरण देना मैं व्यर्थ समझताहूं चूंकि यह सब व्यक्तिगत था। पर मैं यहां पर एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूं यद्यपि यह व्यक्तिगत है। जब मैं उनके मायाजाल में न फंसा और न प्रलोभन में, जब तक वे मुझे गण्यमान रईसों और पुलिस कर्मचारियों द्वारा डंटवाया ताकि मैं डरकर इस काम को छोड़ दूं (उन दिनों मैं एक विद्यार्थी था) और जब वे निराश हुए तब अन्य रास्ता निकालना पडा। किंवदन्ति और घाट मंदिरों के गप्पे बहुत सुने। पर किसी पर विश्वास न किया लेकिन जब घटनायें वैसे ही घटने लगी जिसे मैं ने गप्पें समझा था तो मेरी आंखे बिलकुल खुली। मेरे घाट के निवासी एक सज्जन ने मुझसे कहा कि अतिशीघ्र तुम्हें अस्पताल भेजा जायगा ताकि तुम बिछौने में पडे रहो और ऐसा वादविवाद सर्वदा के लिए बन्द हो जायेगा। यद्यपि मेरे पिता माता बराबर मुझे चेतावनी देते थे पर मैं निर्भय होकर अपने काम को श्री काशी विश्वेश्वर के हाथ सौंपकर स्वतंत्र रूप से घूमा फिरा करता था।

नवम्बर 34 से जनवरी 35 तक तीन बार मेरे ऊपर आपत्ति आई। पर श्री विश्वनाथ ने मेरी रक्षा की। एक दिन की घटना है कि मैं करीब 9 बजे रात को चौक जाने के लिये अपने घर से निकला और मुझे कुंभकोण मठाधीश के काशी स्थित श्री शुकदेव मठ से होकर जाना पडा। आपका मठ सडक और गली के दोनों कोने पर है। मैं सडक पर आपके मठ के उत्तर पश्चिम कोने में खडा था। एक बडा पत्थर का ढोंका मेरे समीप आकर गिरा। मैं तो बच गया। अब मैं यह निश्चित रूप में कह नहीं सकता कि किस तरफ से यह ढोंका आया। चाहे जो हो मैं तो बचा और उस ढोंका को घर लाया। कुछ दिनों के बाद जब मैं रात को करीब 12 बजे प्रेस कार्यालय से लौट रहा था, रास्ते में गुन्डा मिला और वह मुझसे कहने लगा 'हे लौन्डे! मेरी बात सुन, तू शङ्कराचार्य का वादविवाद बन्द कर दे, नहीं तो मैं तेरी टांगे तोड दूंगा।' मैं डर गया था पर भगवान् विश्वनाथ की कृपा से निडर होकर मैंने कहा "देखो भाई! हम तुम दोनों यहां के रहने वाले हैं और जो बाबा आये हैं और उनके साथी सब दक्षिण चले जाने वाले हैं और उन्हें इस बात का फिकर नहीं है कि काशीधाम और यहां के लोग चाहे रहें या मरें।" उसने पूछा कि तुम कहां के रहनेवाले हो और मैंने अपना पता बता दिया। मालूम नहीं उसके दिल में क्या बात आई, वह मेरे साथ कुछ दूर आया और कहा 'आप क्यों नहीं टांगे में घर चले जाते, पैसा न हो तो मैं दूं।" फरवरी 35 मे एक दिन रात के समय करीब 8 बजे जब मैं शिवाला घाट से अपने घर आ रहा था किसी ने सल्फुरिकएसिड (तेजाब) फेंका और मेरा धोती जल गया और एक दो जगह मेरा चमडा भी जल गया। आज तक उसकी यादगारी चिन्ह मेरे पांव पर है। घाट से प्रायः नित्य मेरे यहां पत्थर फेंके जाते थे और कुछ दिन बाद गोबर गिरने लगा। मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है कि मैं यह कह सकूं कि यह सब काम मठाधीश ने अपने शिष्यों से कराया या शिष्यों ने बिना अपने गुरु कुम्भकोण मठाधीश के जाने ही स्वयं किया। हम चार पीढियों से काशीधाम में निवास करते हैं। हमारा कोई विरोधी न था और न है। मैं सबका मित्र था। मालूम नहीं क्यों ये सब घटनायें इसी समय घटी और बाद कुछ न हुआ।

प्रस्तुत जब मैं यह पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श' नामक मदरास शहर में लिख रहा था और जब आन्वेषणार्थ तथा विषयग्राह्य के लिए मैं पुस्तकालयों, ऐतिहासिक तथा तीर्थ स्थलों एवं प्रकान्ड पन्डितों से मिला करता था तब (यानि सितम्बर 60 से दिसम्बर 60 तक) मुझे पत्र प्राप्तहुए जो गन्दी अवान्छनीय भाषा में लिखे गये थे। इन सब पत्रों में मुझे मार डालने की धमकियां देकर मेझे मदरास छोड जाने को कहा गया था। रात के समय मेरे मदरास के निवासस्थल में पत्थर फेंके गये। आम रास्ते में गुन्डे तथा बदमाशों ने मुझे

बहुत तकलीफ दिया। इन सब कुकर्मों का एक ही ध्येय था कि यह पुस्तक प्रकाशित न होने पाये। एक अनजान मदरासी सज्जन अचानक एक दिन मुझसे मिलकर कह गये कि यदि यह पुस्तक मैं न प्रकाशित करूं तो वे कुम्भकोण मठ से काफी धन दिलायेंगे। यह निस्सन्देह कहा नहीं जा सकता कि ये सब कुकर्म कुम्भकोण मठ से प्रारम्भ हुआ परन्तु जब तक लोग उस मठ का नाम लेकर ऐसे अवांछनीय कुकर्म करते रहेंगे तब तक कुम्भकोण मठ का नाम ही लिया जायेगा (शिष्य पापं गुरोरपि)। कुम्भकोण मठाधीश जी को सितम्बर 29, 1960 के दिन इन घटनाओं को उल्लेख कर रजिस्टर डाक से एक पत्र भेजा गया था और आज पर्य्यन्त वहां से कोई भी उत्तर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। इस पत्र में कुम्भकोण मठाधीश के शिष्यों द्वारा कृत काले कर्तूतों का विवरण देकर आप से प्रार्थना की गयी कि आप अपने शिष्यों को उचितानुचित का बोध करा दें।

मेरे पूज्य पिता जी ने "श्री मज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श" नामक पुस्तक प्रकाशित किया और उस पुस्तक को करीब 500 व्यक्तियों को आसेतु हिमाचल भेजा। करीब 200 से ज्यादा अनुमति पत्र, प्रशंसापत्र, एवं व्यवस्था पत्र प्राप्त हुआ। बाद मैं कलकत्ता चलागया जहां मेरे बडे भाई श्री जयपुर विश्वनाथ कृष्णन् रहते थे। उन दिनों पिताजी को अपमान एवं गन्दी भाषा में अनेक पत्र तमिल भाषा व लिपि में लिखित प्राप्त हुआ। कुछ धमकियां पत्रों द्वारा प्राप्त हुआ। काशी नगर में तमिल भाषा व लिपि लिखित पत्र केवल तमिल देश दक्षिण वासियों जो काशी में थे उनसे ही लिखा गया होगा न कि उत्तरी भारत के काशीवासियों से। मठ के अनन्यभक्त शिष्य पन्डित ने कुछ वकीलों से मिलकर मेरे पिताजी के ऊपर मान हानि के दावा की आलोचना भी की। मेरे पिता जी के मित्र वकील ने आकर इस बात को कहा। खुफिया पुलिसविभाग के श्री उपाध्याय जी मेरे यहां दो बार आये और दूसरे दफे डांटकर चले गये। घाट मन्दिरों में यह चर्चा होने लगी और लोग कहने लगे कि श्री स्वामी जी ने उन दिनों श्री विश्वनाथन्, I. C. S., जो उनदिनों काशी में थे उनसे कह गये कि वे पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा की खबर लें। यह भी सुना गया कि मठ तरफ से श्री वि. विश्वनाथन्, I. C. S., को कहा गया कि काशी के यात्रावृत्ति करने वाले ब्राह्मण लोग यात्रियों को मारकर उनका धन संपत्ति हडप लेते हैं और पं० ज० ग० वि० शर्मा भी उसी टोली के एक हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि यह सब किंवदन्तियां कितना सच हैं पर जो घटना मेरे पिताजी पर जनवरी माह 1936 में घटी और दो माह की जो प्रयत्न की गई थी उससे यही अनुमान किया गया कि वे चर्चा गप्प न थे। मैं ऐसी घटना को संक्षिप्त रूप में पाठकों को सुनाता हूं।

उन दिनों में कुम्भकोणम् के श्री स्वामी जी कलकत्ता शहर में ठहर बाद टाटानगर इत्यादि शहरों से गुजर रहे थे। श्री के० के० एस० अय्यर, कलकत्ते से 12 दिसम्बर 1935 को श्री काशीधाम पहुंचे। आप पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी व हनुमान घाट के दो व्यक्तियों से (श्री भारद्वाज सुब्रह्मणियम् एवं शिवमठ के श्री केदार शिवजी) मिलकर बाद कहा जाता है कि वे श्री वि० विश्वनाथन्, I. C. S., से मिले। कुछ काल के बाद श्री भारद्वाजसुब्रह्मणियम् कुम्भकोण मठ की काशी शाखा मठ शुकदेवमठ के मैनेजर पदवी पर नियोजित किये गये थे। अब उनके पुत्र भी शुकदेव मठ के मैनेजर हैं। कुछ दिन बाद जनवरी 1936 में श्री के० के० एस० अय्यर फिर काशी आये और सबों से मिलकर फिर कलकत्ता लौट गये। श्री के० के० एस अय्यर कुम्भकोण मठाधीश के परमभक्त शिष्यों में एक गिने जाते थे। कुछ दिन बाद जनवरी '36 में एक सज्जन कलकत्ते से श्री काशीधाम पहुंचे और हनुमान घाट के शिव मठ में ठहरे। पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी, भारद्वाज सुब्रह्मण्यम् एवं श्री केदार शिव जी (काशीशिवमठ के) अनेकों से भेंट कर कलकत्ते से आये हुए सज्जन के साथ घूमने लगे। इसी बीच में घाट मन्दिरों में यह अफवाह उडी कि पं० ज० वि० शर्मा जी गिरफ्तार किये जायेंगे। कुछ लोग आकर मेरे पिताजी को चेतावनी भी देकर गये। ग्रहण के दिन रात को अस्सीघाट में जब श्री विश्वनाथन्, I. C. S., कोतवाल साहब और अन्य पुलिस कर्मचारी थे सबों ने

यह परामर्श की कि किस तरह पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा को गिरफ्तार किया जाय। मेरे पिता जी सब बातों को गप्प समझकर चुप रह गये। इस बीच में जो 6 माह से षडयंत्र रचा जा रहा था उसके फलाभूत मेरे पिताजी को जनवरी 1936 में एक दिन रात के समय अचानक पुलीस कर्मचारी ने घर आकर आपको सन्देश दिया कि दशाश्वमेध थानेदार आपको जल्द बुलाया है। हनुमान घाट मेलूपुरा थाना अन्तर्गत है पर यह कारवाई सब दशाश्वमेध चौकी से ही हुआ। मेरे पिता जी जब वहां पहुंचे तो एक घन्टे बाद आपको बतलाया गया कि आप गिरफ्तार किये जा रहे हैं। मेरे पिता के परम मित्र दो गण्यमान रईसों को जब यह मालूम हुआ तो रातो-रात उनको जामीन में छुडाने का प्रयत्न किया। पुलीस कर्मचारी ने कह दिया कि पं० ज० ग० वि० शर्मा पर फौजदारी धारा लागू किया जायेगा जिस धारा के अनुसार उन्हें जामिन में छोड नहीं सकते। प्रातः पिता के मित्रों ने फिर प्रयत्न किया और तब तक पुलीस उन्हें जामीन में छोडने का निश्चय भी किया। मैं और बडे भाई उन दिनों में कलकत्ते में थे और तार प्राप्त करने पर दूसरे दिन काशी पहुंचे और मेरे पिताजी जामिन में छोडे गये। अनेक रईसों ने उनकी जमानत देने को तैय्यार हुए।

मैं और मेरा भाई दोनों कलकत्ते से काशी आ रहे थे। पिताजी गिरफ्तार हुए और घर में केवल माताजी थी और कोई न था। कुम्भकोणमठ के भक्त शिष्यों ने मेरे मां को अकेले पाकर कहा "तुम्हारा लडका भी जेल जायगा-ऐसा कुम्भकोण मठाधीश की आज्ञा थी-वे चाहें तो सारे वंश को नाश कर दें।" हमलोगों के घर आते ही मां ने यह बात कह सुनायी। परमशिवावतार की लीला ही अपार है-धन्य हो-कुम्भकोण मठाधीश! 19—1—36 के दिन पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी ने सबों को मिठाई बांटी और मठ के अनुयायी भक्तों शिष्यों ने परमानन्द प्राप्त किया। उस दिन मन्दिर में नारियल फोडा गया और कर्पूर जलाया गया। पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी 19—1—36 के दिन डेहरादून एक्सप्रेस से टाटानगर के लिए रवाना हुए। टाटानगर 20—1—36 को पहुंचे। उन दिनों में श्री स्वामी जी टाटानगर में थे। वहां क्या घटा यह नहीं मालूम। पर पं० चिन्नस्वामी शास्त्री टाटानगर से 21—1—36 को रवाना हुए और काशी 22—1—36 को पहुंचे। पश्चात् पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी इलाहाबाद 23—1—36 को पहुंचे। फिर काशी लौट आये। जो कुछ कलकत्ता, टाटानगर, इलाहाबाद में घटा सो मुझे मालूम नहीं। पर इतना तो अवश्य मालूम हुआ कि कचहरी के दावा जो कि कल्पित जुर्म मेरे पिता पर षडयन्त्र फलाभूत लागू किया गया गवर्मेन्ट के कर्मचारियों की सहायता से वह असत्य एवं कल्पित कचहरी से ठहराया गया। कुम्भकोण मठाधीश टाटानगर में मेरे बहिनोई को देखना चाहते थे और मेरे बहनोई दर्शन के लिये गये नहीं। जब मठाधीश फाक्टरी देखने आये तो वहां मेरे बहिनोई से मिलकर व्यङ्ग हास्यप्रद प्रश्न पूछा 'क्या तुम विश्वनाथ शर्मा के दामाद हो?' यह वह समय था की कुम्भकोण मठानुयायि मेरे पिता को अपमानित करने के लिये तुले हुए थे और प्रचार था कि कुम्भकोण मठाधीश कुछ भी जानते नहीं। पर मठाधीश का व्यङ्ग प्रश्न से क्या कहा जाय कि आप कुछ न जानते थे! मेरे पिता ने उनके मित्रों वकीलों के आदेश पर मानहानी के दावा करने का निश्चय करके फौजदारी कचहरी में एक अर्जी पेश की। मेरे पिता के कुछ मित्रों ने एवं सिटि माजिस्ट्रेट ने कहा कि "पंडित जी। इसे वापिस ले लिजिए। आपके अपमान करने के लिये द्वेष भाव से यह मुकदमा चलाया गया और हमे अच्छी तरह यथार्थता मालूम है। आप सरीखे गण्यमान विद्वानों को चाहिए कि क्षमा कर दें और जो कुछ बीता सब भूल जायें। आप और हम क्या दंड देंगे। उनके कुकर्म ही उनको दन्ड देगा।" उन दिनों में कहा जाता था कि सब खर्च कुम्भकोण मठ द्वारा ही किया गया ताकि पं० ज० ग० वि० शर्मा जी को सबक पढाया जाय। 'परमशिवावतार, करुणामयी, साक्षात श्री आद्यशङ्कर के अविच्छिन्न गुरु परम्परा के श्री स्वामी जी' (अपने को कहने वाले) के चेलों की कर्तूतों को पाठकगण अच्छी तरह से जान गये होंगे। जब पूछे प्रश्नों का उत्तर शास्त्रयुक्त नहीं देते बनता तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाले कहावत के अनुसार अपनी वीरता लाठी से दिखाकर, न्याय, धर्म, सत्य का गला घोंटते व द्वेषराग से बदला

लेना क्या शास्त्रज्ञ विद्वानों एवं यतियों का काम है? आज श्री काशी के गण्यमान वृद्ध लोग उपर्युक्त कहे विषय का सबूत दे सकते हैं और आप लोगों से विपक्ष दल के काले कर्तूतों का विवरण भी पा सकते हैं।

27. काशी में मठविषयक वादविवाद का प्रकाशन-पत्रिकाओं की सूची।

श्री स्वामी जी काशीधाम छोड यात्रा में चले तो प्रत्येक जगह विरोधी पक्ष वालों ने अपने द्वारा वाद विवाद छेडकर सनसनी पैदा कर दी। कुम्भकोण मठानुयायियों का कहना है कि मेरे पिता और मैं व्यक्तिगत द्वेष रख कर इस विवाद को काशी में खडा किया। श्री स्वामी जी अपने कई वर्षों की यात्रा द्वारा काशी पहुंचने तक रास्ते में विरोधियों का सामना नहीं करना पडा पर आपके प्रति जो विवाद काशी में प्रारम्भ हुआ वह दिन दिन बढता ही गया। काशी धाम पहुंचने के पूर्व आपके देव देवी मूर्तियों का चोरी होना ही ऐसा सूचक था कि सत्यपुरी श्री काशीधाम में असत्य का प्रचार करके अपनी कल्पित ध्येय की पुष्टी न करें। आद्यशङ्कर के हृदय पटल को खोल सत्य ब्रह्म निरुपण द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा श्री विश्वेश्वर ने चान्डाल रुप में आकर की थी। उसी प्रकार आपकी देव मूर्तियों की चोरी होना भी एक अद्भुत रहस्य था जो उनके तथा अनुयायियों के हृदय को परिवर्तन करे। पर ऐसी परिवर्तनों से आपको कोई आवश्यकता न थी। कुम्भकोण मठ के प्रत्येक विरोधियों का विवरण मेरे पास नहीं है पर कुछ समाचार पत्रों द्वारा जो मुझे प्राप्त हुआ उन पत्रों का नाम देता हूं ताकि पाठकगण जान जांये कि यह विवाद व्यक्तिगत रुप से प्रारम्भ न हुआ पर स्वतंत्र मत रखने वाले (अर्थात् कुम्भकोण मठ के माया जाल में न पडने वाले) सबों ने इनके भ्रामक प्रचारों का विरोध किया। उन लोगों का लेख, पत्र, प्रश्न, उत्तर, इत्यादि निम्न पत्रों में प्रकाशित हैं—'Forward' कलकत्ता, 'Hindu' मदरास, 'पन्डित पत्र' काशी, 'सूर्य' काशी; 'आज' काशी, 'स्वदेशमित्रन्' मदरास, 'विशगम्' पान्डुचेरी, 'विश्वकर्नाटक' बेङ्गलूर, 'सत्यवाणी' अनकापल्ली; 'पाञ्चजन्यम्' विजयवाडा, 'कल्पवल्ली' नरसरावपेट; 'त्रिलिंग', 'युगन्धरा', 'इन्डियन मिरर' बम्बई, इत्यादि हैं।

कुछ समाचार पत्रों (जैसे 'लीडर' 'इन्डियन मिरर' 'फेडरेटड इन्डिया' 'मेल' इत्यादि) में कुछ विवादास्पद लेख प्रकाशित हुए। उन सब लेखों का उत्तर भी भेजा गया पर न जाने क्यों वे सब पत्रों में छपे नहीं। "फेडरेटड इन्डिया" में एक लेख "श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श" नामक पुस्तक पर विमर्श प्रकाशित हुआ। इस विमर्श का उत्तर भेजा गया पर पत्र ने प्रकाशित किया नहीं।

28. कलकत्ता शिवकुमार भवन की सभा एवं कलकत्ता पत्रों में भ्रामक प्रचारों का विरोध

7—3—1935 के दिन कलकत्ते के शिवकुमार भवन में एक सभा हुई। उस सभा के निर्णयानुसार कुम्भकोण मठाधीश को सभा के तरफ से स्वागत करने का एवं एक व्यवस्था बनाने की खबर भी थी जिसका कुम्भकोण के मठानुयायी प्रचार कर रहे थे। पर वास्तविक विषय और ही कुछ था। उस सभा में मठाधीश को सभा के तरफ से स्वागत करने एवं व्यवस्था बनाने का कोई निर्णय नहीं लिया गया। पाठकगण "सूर्य" पत्र ता०: 12-3-35 के अङ्क में उनके कलकत्ता के सम्वाददाता द्वारा दिये हुए समाचार को पढें तो मालुम होगा कि सत्य विषय क्या था। पं० अनन्त कृष्ण शास्त्री तथा पं० पंचानन भट्टाचार्य तर्करत्न जी के कर्तूतों का भी विवरण पढें। बङ्गीय ब्राह्मण सभा की तरफ से पं० पंचानन तर्करत्न जी द्वारा जो व्यवस्था लिखकर प्रकाशित किया है (Shri Shankaracharya-

The Great and His Connection with Kanchipuri" नामक पुस्तक में व्यवस्था प्रकाशित है) सो "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श" नामक पुस्तक में उसका विमर्श पायेंगे। श्री भट्टाचार्य जी अपने टोली की सहायता द्वारा एक मनगढ़न्त व्यवस्थाभास तैयार कर ब्राह्मण सभा के नाम से प्रकाशित किये।

शिवकुमार भवन की सभा

कामकोटि को शङ्कराचार्य स्वीकार करने के लिये।

(सम्वाददाता द्वारा) (कलकत्ता 10 मार्च)

गत 7 मार्च, गुरुवार के कलकत्ते के शिवकुमार भवन में कुछ पन्डितों की सभा का आह्वान किया गया था। सभा की सूचना निमन्त्रित लोगों को देते हुए बताया गया था कि स्थानीय शिवकुमार भवन में किसी राजगढ़िया महोदय की ओर से पन्डितों का स्वागत उस दिन अपरान्ह के तीन बजे किया जायगा। इस सूचना पर बडे बाजार के निमन्त्रण-प्राप्त पन्डित सभा स्थान पर पहुंच गये थे। पर वहां पर यजमान और पेडे तथा दक्षिणादि का अभाव देखकर परस्पर में चर्चा होने लगी कि किसी ने होली की दिल्लगी तो नहीं की है? पन्डितगण इसी उलझन में फंसे हुये थे। तब साढे चार बजे के लगभग पं० पंचानन तर्करत्न के साथ पं० अनन्त कृष्ण शास्त्री आ पहुंचे और समवेत लोगों को कामकोटि पीठ के स्वामी जी को शङ्कराचार्य स्वीकार करने के लिए कहा। इस पर कलकत्ता ब्राह्मण सभा के भूतपूर्व मंत्री पं० कालीचरण जी शर्मा ने कहा कि कैलासवासी पूज्य पाद श्रीमच्छङ्कराचार्य मधुसूदन तीर्थ जी से प्राप्त "मठाम्नाय" के दो संस्करण ब्राह्मण सभा द्वारा कितने ही वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए हैं, परन्तु उनमें चार मठ के सिवाय पांचवें मठ का उल्लेख नहीं है।

यों तो "दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्" के अनुसार हम समस्त सनातनी प्रत्येक स्वामी का सम्मान और अतिशय करते हैं परन्तु शङ्कराचार्य का सम्मान केवल मठाम्नाय में बताये हुए चार ही मठों के आचार्यों को दिया जा सकता है। पं० बलदेव शास्त्री प्रभृति कई सज्जनों ने उक्त सभा को ही अनियमित कहा क्योंकि सूचना में यही बताया गया था कि वह सभा किसी वैश्य राजगढ़िया के द्वारा पंडितों के सत्कारार्थ ही बुलाई गयी है। इसलिए पन्डितों को इस बात के विचार का अवसर ही नहीं दिया गया था कि कामकोटि पीठ के स्वामी महोदय शङ्कराचार्य हैं या नहीं। सभा में बहुत किंतडा हुआ जिस पर पं० पंचानन तर्करत्न ने कहा कि मठाम्नाय में तो कामकोटि पीठ चार मठों में नहीं है। परन्तु शिवरहस्य से ज्ञात होता है कि आदि शङ्कराचार्य भगवान ने कामकोटि पीठ की भी स्थापना की थी। अतः हमें उसके आचार्य को शङ्कराचार्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु सभा का मत तर्करत्न जी की इस व्यवस्था के प्रतिकूल ही होने के कारण पं० अनन्त कृष्ण शास्त्री ने कहा कि चूंकि पं० पंचानन जी हम सभी के पूज्य हैं, अतः उनकी बात माननी चाहिये। पर लोगों ने कहा कि ऐसी व्यवस्था बिना विचारे नहीं की जा सकती है, इसपर बहुत अनुचित प्रभाव लोगों पर डाला गया और एक कागज पर कुछ लोगों की सही भी करायी गयी। सही होने के पश्चात् एक बंगाली सज्जन ने कहा कि बंगीय ब्राह्मण सभा से आपकी सभा का आह्वान किया गया है, इसमें उपस्थित होनेवाले लोगों को 'रिक्सा' इत्यादि का भाडा व्यय स्वरूप उठाना पडा है। अतः बंगीय ब्राह्मण सभा ने उनका व्यय भेजा है जो पन्डितों को लेना चाहिए। इस पर कई लोगों ने कहा कि बंगीय ब्राह्मण सभा को ऐसी क्या आवश्यकता

थी कि इस प्रकार का व्यय भार उठाने के लिये ऐसा आयोजन उसने किया है। वंगीय ब्राह्मण सभा के सदस्यगण तो विना पाथेय लिए ही महत्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलनों मे ही भाग नहीं लेते हैं। खैर यदि बंगीय ब्राह्मण सभा रिक्सा इत्यादि का खर्च देती है तो हम स्वीकार नहीं है। इस प्रकार बहुत पन्डित विना पाथेय लिए ही अपने अपने स्थान को चले गये। किन्तु कई एक दक्षिणाप्रेमी पन्डित महानुभावों ने दिये गये एक एक रूपये को स्वीकार भी किया। लोगों में इस रहस्य को लेकर काफी चर्चा हो रही है और लोग कहते हैं कि अभी काशी में ही पन्डित प्रवर हाराणचन्द्र भट्टाचार्य आदि विद्वानों ने कामकोटि पीठ के स्वामी जी को खुले शब्दों में कहा ही नहीं ; परन्तु पत्रों में प्रकाशित भी करा दिया है कि वे शङ्कराचार्य नहीं हैं। इस स्थिति में पं० पंचानन तर्करत्न के दिखाये हुए 'शिवरहस्य' से क्या पं० हाराण चन्द्र भट्टाचार्य इत्यादि अनभिज्ञ थे जो उन्होंने कामकोटि पीठ के स्वामी जीको शङ्कराचार्य स्वीकार नहीं किया है। कलकत्ते की इस घटना से पं० हाराण चन्द्र प्रभृति प्रखर विद्वानों को भी सचेष्ट हो जाना चाहिए और वास्तविक स्थिति क्या है उस पर सविस्तार प्रकाश डालना उन्हीं के लिए आवश्यक है। ("सूर्य" 12—3—1935।

"Forward" पत्र कलकत्ता 1—8—35 के अंक में एक पत्र श्री टी. वी. भट्टाचार्य जी ने प्रकाशित किया, जिससे वहां पर भी इनके भ्रामक प्रचारों का पोल खोल दिया गया।

Sankaracharya of Kamakoti Pitha

To the Editor, "Forward"

Sir, I have read with great interest the news item appearing in your esteemed daily chronicling the arrival in Calcutta of Sri Sankaracharyaji Maharaj of Kanchi. A number of inaccuracies has occurred in the item; and I request you to correct them with your usual sense of fairness.

Historically it is untrue to say that Sri Sankaracharya attained 'siddhi' while adorning Kamakoti Peetha. Neither did Sankaracharya found Kamakoti Peetha nor did he attain 'sidhi' there. Shankara attained 'sidhi' in Kedarnath—Himalayas. Moreover, to say that the present holy visitor to our ancient city is a direct successor of Sankaracharya is to indulge in a terminological inexactitude. Sankara established only four peethas namely at Shringeri, Puri, Dwaraka and Badri. Only the Acharyas of these four peethas are direct representatives of Shankara and can call themselves "Jagatgurus." The Shankaracharya of Kanchi belongs to a peetha which might have been established even long before Sankara's age but learned pandits

of Benaras have established beyond a shadow of doubt that this gentleman is not entitled to be termed "Jagatguru." Last year I had the esteemed privilege of having 'darshan' of the holy swamiji at Benaras and before that at Allahabad. While I am in all respects for his erudition, scholarship and piety, I must respectfully protest against historical inaccuracies creeping in a responsible paper. This subject resolved itself into a controversy. The controversy resulted in a conference of pandits which decided against the title now claimed for Kanchi Maharaj.

A well known and reputed Bengali Proffessor of History in the course of a series of articles in "The Leader" last year has answerably disposed of the inaccuracies now creeping in your item.

29. मदुरै (दक्षिण भारत) की सभा एवं आलोचना।
'वित्तगम्' पत्र में काशी विवाद का प्रकाश।

मदरास के स्वदेशमित्रन' ता० 26—6—1935 के अङ्क में मदुरापुरी की सभा का विवरण प्रकाशित हुआ था उसमें कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का खन्डन भी किया गया था। उस सभा के विषय में कुछ लोगों ने अपनी स्वतंत्र टिप्पणी भी प्रकाशित की थी। कुम्भकोण मठाभिमानियों से कुछ प्रचुरित पत्रों मदरास के 'स्वदेशमित्रन्' ता० 2—7—35, 13—7—35, 25—7—35, एवं 27—7—35 के अङ्को में प्रकाशित हुआ था। उपर्युक्त पत्रों के उत्तर रूप में इसी पत्रों द्वारा ता० 13—7—35, 18—7—35 तथा 8—8—35 के अङ्को में कुछ पत्र प्रकाशित हुआ था। पूछे प्रश्नों तथा सन्देहों पर सशास्त्रीय प्रमाणयुक्त उत्तर न देकर अनुमान व युक्ति तथा तर्काभास का सहारा लेकर भ्रामक प्रचार करना तो कुम्भकोग मठवालों का प्रधानकर्त्तव्य था और इसमें आश्चर्य का विषय नहीं है कि उपर्युक्त चार लेखें भी उसी प्रकार के थे। पाठकगणों की सुविधा एवं जानकारी के लिए मैं 'स्वदेशमित्रन्' पत्र, मदरास, की तामिल भाषा में प्रकाशित पत्र ता० 13—7—35, 18—7—35 एवं 8—8—35 के अङ्को में जिसका सारांश का अनुवाद अब हिन्दी में देता हूं। "स्वदेशमित्रन्" पत्र के 13—7—35 के अङ्क में प्रकाशित दूसरा लेख जिसके लेखक का नाम प्रकाशित नहीं था पर लिखा है कि श्री काशीधाम के कुछ शृङ्गेरी शिष्यों से लिखित यह लेख दक्षिणवालों की जानकारी के लिये प्रकाशित किया गया है। अपने को शृङ्गेरी मठ शिष्य काशीधाम निवासी कहलाने वाले भक्त शिष्यकोटि को श्री कुम्भकोण मठाधीश तथा उनके अनुयायीयों द्वारा रचित पुस्तकों के भ्रामक मिथ्या प्रचारों से शायद शृङ्गेरी मठ को अगौरव या अपमान होना नहीं समझते होंगे और जो लोग सत्यान्वेषण कर विषयों की भ्रामकता, मिथ्या तथा अगौरव अपमान युक्त वाक्यों को सर्वसाधारण लोगों की हित के लिये प्रकाशित करते हैं उनको कहते हैं 'उन्हें आक्षेप नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार का उपदेश न्याय युक्त नहीं है। यह टोली जो अपने को शृंगेरी मठ का शिष्य कहते हैं इन भ्रामक प्रचारों को बन्द करने के लिये कुम्भकोण मठानुयायियों को क्यों नही उपदेश देते? घोषित करनेवाले इन शृंगेरी मठ के भक्तों से

प्रार्थना करूंगा कि वे " स्वदेशमित्रन् " पत्र के 8—8—35 ता० के अङ्क में प्रकाशित लेख को अच्छी तरह पढ़ें। उनके कथनानुसार वह कहां तक यथार्थ है यह मालूम होगा। इस लेख में दो विषयों का उल्लेख है (1) काशी के 1886 ई० की सभा का निर्णय एवं उस पर टिप्पणी (2) विहारीपुरी मठ की 30—9—34 की सभा की निर्णय एवं उस पर टिप्पणी। काशी के 1886 ई० की व्यवस्था के ऊपर उनकी टिप्पणी का उत्तर, पाठकगण इसी पुस्तक में पं० रमापति मिश्र जी को लिखे हुए पत्र में पायेंगे। यह विषय लेख रूप में "सूर्य" 12—4—35 के अङ्क में प्रकाशित है। विहारीपुरी मठ की सभा के निर्णय के विषय में, पाठकगण कृपया उस सभा के मंत्री का रिपोर्ट पढ़ें तो सब यथार्थता मालूम हो जायेगी। यह भी इसी पुस्तक में प्रकाशित है। इस प्रकार ये भक्त लोग जो अपने को शृंगेरी मठ के शिष्य कहते हैं, अपने मिथ्या प्रचारों से दक्षिण वालों को धूल प्रक्षेपण कर कुम्भकोण मठ की पुष्टी कर अपने को कृतार्थ कर रहे हैं। धन्य हो आपके गुरु भक्ति की। ये लोग श्री एकलव्य द्वारा गुरु भक्ति से भी अधिक गुरु भक्ति दिखा रहे हैं। कुम्भकोण मठविषयक विवाद जो काशीधाम में उठ खडा हुआ सो विवाद शृंगेरी मठ और कुम्भकोण मठ के बीच में न हुआ। इस विवाद को आपस के दो मठों का झगडा कहना ठीक व सत्य नहीं है। कुम्भकोण मठ का मिथ्या भ्रामक प्रचारों ने श्री आद्यशङ्कराचार्य के जीवन गाथा जो प्रामाणिक ग्रंथ एवं रूढी में परम्परागत चली आ रही है उस गाथा को मिथ्या ठहराकर एक नवीन कल्पित जीवन गाथा का प्रारम्भ करने से ही, विज्ञ सज्जन, विद्वान और परिव्राजकों ने इस नवीन कल्पित गाथा की विरोध कर सत्य का प्रकाशन किया। भारतवर्ष के जो सब धर्मनिष्ठ आचार्य शङ्कर मतानुयायी हैं उन सबों ने कुम्भकोण मठ प्रचारों का विरोध किया था।

स्वदेशमित्रन—मदरास (13—7—1935)

'श्री शङ्कराचार्य के मठ' शीर्षक श्री काशी धाम के श्री टी. एस. सीताराम शास्त्री एक पत्र में लिखते हैं।

युववर्ष आषाढ मास (तामिल आनि) ता० 18 (2—7—1935) मङ्गलवार को प्रकाशित 'स्वदेशमित्रन पत्रिका पृष्ठ ग्यारह में प्रकाशित "जगद्गुरु शङ्कराचार्य के मठ" शीर्षक—(श्रीमान् टी. एस. शास्त्री से प्रकाशित) लेख का उत्तर रूप में निम्नलिखित विषयों को लिखता हूं।

शास्त्री जी का मुख्य आक्षेपों का संक्षेप —

(1) शृंगेरी मठ के गौरव को आक्षेप कर किसने और कहां भाषण किया अथवा कहा?

(2) उन लोगों का क्या आक्षेप था?

(3) श्री काशीधाम में इस विवाद को अनावश्यक शुरु किया गया।

(4) इससे समाज में भेद भाव उत्पन्न होता है।

(5) इससे सनातन धर्म को हानी एवं चोट पहुंचाने का यह एक विवादी दल है।

इन आक्षेपों का समाधान:—

(1) कुम्भकोणम् मठ के श्री स्वामी जी काशी यात्रा निमित्त यात्रा करते हुए आते समय, ब्रह्म श्री रामस्वामी उपाध्याय से हिन्दी भाषा में प्रकाशित "आचार्य चरित्र" नामक एक पुस्तक मिला। उक्त पुस्तक "शङ्कर चरित्र" में विवाद विषय सारांश को "शाङ्कर मठ विमर्श" (जिसे श्री काशी के श्री

पं० सीताराम शास्त्री जी एवं श्री पं. जे. जी विश्वनाथ शर्मा जी ने प्रकाशित की है और जिसका एक प्रति मैलापुर वासी श्रीमान् टी. एस. एस.शास्त्री जी के पास है) पृष्ठ 32 और 33 में प्रकाशित किया गया है। श्रीकुम्भकोणम् आचार्य जी का आगमन विषय "लीडर" एवं "पन्डित पत्र" में प्रकाशित लेखों का सारांश भी उक्त "विमर्श" पुस्तक के पृष्ठ 34 और 35 में प्रकाशित किया गया है। श्रीमान् टी. एस. एस शास्त्री जी से अनुरोध करूंगा कि वे 'मठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठों 32, 33, 34, 35 को पढें। श्री चरण कों दर्शन करने के लिये जो गण्यमान सज्जन आते हैं उनको प्रसाद रूप में या मूल्य रूप में, संस्कृत, तामिल, तेलुगू, कर्नाटक, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में प्रकाशित नवीन चरित्र पुस्तकों को कुम्भकोणम श्री स्वामी जो के आज्ञानुसार दिया जाता है। इन पुस्तकों को पढने से मालूम पडता है कि सारे जगत में प्रख्यात आद्यशङ्कराचार्य भगवत्पाद के समय से लेकर आज पर्य्यन्त अविच्छिन्न गुरु परम्परा श्री जगद्गुरु पदवी विभूषित केवल एक ही मठ कुम्भकोण श्री कांची कामकोटि पीठाधीश ही हैं और अन्य मठाधीश केवल श्री गुरु पदवी के अर्ह हैं न कि जगद्गुरु पदवी के। यह सब विषय स्पष्ट रूप से इन पुस्तकों में लिखा है।

(1) श्री एन्. के. वेंकटेशम पन्तुलु, एम. ए., एल. टी., से रचित आङ्गल भाषा पुस्तक "Shankaracharya and his Kamakoti Peetha."

(2) श्री वेंकटरामन, एम. ए., से रचित अंग्रेजी भाषा पुस्तक "Shankaracharya the great and his successor in Kanchi"

(3) भाषात्रय पन्डित कविरत्न आत्रेय श्री कृष्ण शास्त्री से तमिल भाषा में रचित "शङ्करगुरु परम्परा चरित्रम" पुस्तक एवं उनसे लिखित भूमिका में कहा है कि श्री साक्षात् आचार्य परम्परा को जानकर, श्री चन्द्रमौलेश्वर की संभावना (भेंट) उचित रूप से करें और यह सर्वजन की जानकारी के लिये प्रकाशित की जाती है।

(4) श्री शिवराम सूरी से ग्रन्थाक्षर में प्रकाशित पुस्तक "श्रीमुख दर्पणम्" है। इस श्रीमुख दर्पणम् पुस्तक के पृष्ठ 34 से लेकर पृष्ठ 48 तक एवं उपर्युक्त 1 से 3 तक दिये विवरण पुस्तकों को अच्छी तरह पढें तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि कितने श्री शृङ्गेरी मठ के गौरव को आक्षेप किया है ? वार्तालाप एवं भाषण से अगौरव करने के बदले लिखित रूप में अगौरव करने से अगौरव की पुष्टी अधिक होती है।

(2) श्री कुम्भकोण मठ एवं मठानुयायियों ,से स्वकल्पित स्वगौरव जो केवल अपने मठ के लिए ही जगद्गुरु का गौरव है और अन्य मठों को अगौरव कर अपने स्वाभिमान से कल्पनात्मक चरित्रों को सृष्टि करना, प्राचीन काल के महापुरुषों श्री माधवाचार्य (विद्यारण्य), श्री चिद्विलास आदियों से रचित श्री शङ्कर विजयों को अप्रमाणिक सिद्ध करने के हेतु से नये रचे पुस्तकों द्वारा प्रचार करना तथा समाज में भेद भाव वुद्धि व फूट उत्पन्न करना, यही हम लोगों का आक्षेप है। इस प्रकार के सार्वजनिकों के आक्षेपों को विज्ञापन पत्र द्वारा श्री स्वामी जी को बतलाया गया था। विज्ञापन पत्र का नकल "शांकर मठ विमर्श" 61 वें पृष्ठ देखने से मालूम होगा। श्री काशी के प्रसिद्ध विद्वान श्री हाराण चन्द्र भट्टाचार्य जी का विज्ञापन पत्र "मठ विमर्श" पुस्तक के पृष्ठ 49 में देखें। श्री स्वामी जी को प्रत्यक्ष दिया हुआ विज्ञापन पत्र जिसका नकल "विमर्श" पृष्ठ 49 तथा 61 में हैं। इन पत्रों का किसी प्रकार का उत्तर श्री मुख द्वारा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।

(3) श्रीमान् टी. एस. शास्त्री जी हम सब काशीवासियों के प्रति कृपाकर, कुम्भकोण मठ एवं मठानुयायीयों से प्रकाशित और प्रचारित उपयुक्त पुस्तकें एवं आपके पास के "विमर्श" पुस्तक के ऊपर दिये हुए पृष्ठों को अच्छी तरह देखकर पढने के बाद श्री काशीवासी लोगों ने अनावश्यक फूट उत्पन्न की अथवा धर्मप्रचार किये इस विषय का निर्णय "मित्रन्" पत्र द्वारा प्रकाशित करते हुए, वे कृपया "शाङ्करमठविमर्श" के पृष्ठों 71, 72, 73 में दिये हुए प्रश्नों का सशास्त्रीय प्रमाण युक्त उत्तर भी दें।

(4) मैं प्रार्थना करूंगा कि ऊपर दिये पुस्तकों को अच्छी तरह ध्यान पूर्वक पढने के बाद एवं समाज में किसने प्रथम बार फूट भाव पैदा की, इसका ठीक आलोचना करने के बाद, दोषारोपण करने को सिद्ध हों।

(5) समाज में भेद भाव तथा फूट उत्पन्न करने योग्य विषयों से भरा हुआ पुस्तकें एवं शास्त्र विरोधी चरित्रों को स्वयं कल्पितकर उसे प्रचार करनेवालों से क्या सनातनधर्म को चोट एवं हानि उत्पन्न होता है अथवा क्या प्राचीन महानों से रचित एवं प्रकाशित व प्रामाणिक पुस्तकों के सिद्धान्तों को पामर लोगों में बतलाने से होता है? इन दोनों मेंसे कौन खराब है? कौन धर्म की पुष्टी करता है?

इस विवाद व फूट के कारणों को पूरा अन्वेषण न कर काशीवासियों को "अनावश्यक भेद भाव फूट उत्पन्न करने वाले" ऐसा दोषारोपण करके पत्रिका में प्रचार किये हुए को देखकर अति दुख होता है।

श्रीमान् टी. एस. एस. शास्त्री जी को सनातनधर्म पर श्रद्धा होने के कारण तथा आचार्य पर भक्ति होने के कारण, मठ विषय के उत्पन्न हुए हमारे संदेहों का शास्त्रोक्त रीति द्वारा निवारण करेंगे यही मेरी आशा है।

स्वदेशमित्रन्--मद्रास (18—7—35)

जगद्गुरु शंकराचार्य के मठ

श्रीमान् एम. वेंकटाचलम निम्नलिखित पत्र लिखते हैं :—

आनि (याने आषढ) माह, ता० 18, "स्वदेशमित्रन" पत्र के अङ्क में श्रीमान् टी. एस. अय्यर जी ने मदुरापुरी में घटित श्री शृङ्गेरी मठ शिष्यों का सार्वजनिक सभा के बारे में अपना अभिप्राय प्रकाशित किया है। "अपने को शृङ्गेरी मठ के शिष्य कहनेवाले कुछ लोगों ने एक सभा की आयोजन कर निर्णय किया है" इस प्रकार आप कहते हैं। पत्र, पर्चों द्वारा अच्छी तरह से घोषणा करके (प्रचार कर) श्री शृङ्गेरी मठ के सब शिष्य ऊपर कहे सभा में एकत्र हुए। इस विषय का कोई आक्षेप नहीं कर सकता। अपने को शृङ्गेरी मठ के शिष्य कहने वाले समाज में फूट तथा विभाग उत्पन्न कर देते हैं और सार्वजनिक कार्यों में सब स्मार्त पथ के अनुयायी संगठित होकर कार्यों को करना चाहिये, ऐसा शास्त्री जी का अभिप्राय भी है। तत्कालिक हमारे सनातन धर्म के विरोध में स्वदेशवासियों को कष्टों का सामना करना पड रहा है जैसे हमलोग सब शारदा एक्ट तथा बडे हानिकारक विषयों के निवारणार्थ स्व आचार्य महासन्निधान द्वारा अनुग्रह पाकर स्व नियमित कार्यों को करने में बाध्य हैं, यह बात वास्तव है। लेकिन सार्वजनिक कार्यों को ठीक तरह से करने तथा सफलता प्राप्त करने के लिये इस कार्य

करनेवालों के हृदय में अन्योन्य ऐक्य भाव होना परमावश्यक है। समुदाय के प्रत्येक श्रेणि के लोगों में जब अभिप्राय भेद मुख्य विषय पर हो, तब केवल उन विषयों से जितना सम्बन्ध उस समुदाय के साथ रखता है, समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने सार्वजनिक कार्यों को करना ही उचित है। इस प्रकार प्राचीन व वृद्ध लोगों द्वारा स्वीकार कर अपने अपने अनुष्ठान में चलता आ रहा है। महान् तपस्वी, अनुग्रह करने की शक्ति प्राप्त महान, हमारे सनातन धर्म के परम रक्षक, श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति के प्रति हम सब लोगों का विशेष भक्ति है। लेकिन श्री शृंगेरी मठ के शिष्यों और श्री कांची कामकोटि मठ के शिष्यों के भीतर श्री मदादि शङ्कर के चरित्र सम्बन्ध विषयों में अनेक अभिप्राय भेद हैं। श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति प्रायः 12 वर्ष के पूर्व जब आपने मदुरापुरी विजय किया था उस समय श्री शङ्कराचार्य चरित्र के बारे में भाषण किया था। उस भाषण में कहा कि श्री भगवत्पाद द्वारा श्री कांचीपुर में निज मठ स्थापित हुई थी। और आप वहां अपनी भूलोक लीला समाप्त करके सिद्धि प्राप्त की थी। ये दोनों विषय श्री विद्यारण्यकृत शङ्करविजय आदि प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों में नहीं होने के कारण उसको अङ्गीकार नहीं करना चाहिये, ऐसा प्रायः हम लोग सोचते हैं। मेरी समझ में प्रायः 12 वर्षों से श्री मदादि आचार्य के चरित्र सम्बन्धी विषय या चर्चा उठते समय इन दोनों मठों के शिष्यों के बीच में उपर्युक्त अभिप्राय भेदों का बराबर प्रकटन होता आया है। श्री कांची मठ के शिष्य श्री कांची मठ ही को श्री भगवत्पादाचार्य द्वारा स्थापित मठों में प्रधान एवं मुख्य मठ मानते हैं और अन्य चार मठों को तुच्छ (शाखा) मठ मानते हैं। इस प्रकार का कहना श्री शृंगेरीमठ शिषयों को श्री शृंगेरी मठ का अपमान एवं अगौरव समझकर स्व अभिप्रायों का प्रकाश करने का अवसर बार बार चला आ रहा है। यही अभिप्राय भेदों के कारण प्रस्तुत काल श्री काशीधाम में वादविवाद खडा हुआ और इन कारणों से वहां एक विद्वत परिषद में 30—9—34 के दिन श्री काशी के पन्डित इकट्ठा होकर निर्णय दिया कि आचार्य ने केवल चार आम्नाय मठों का ही स्थापना की थी। उनके द्वारा सभा कि आयोजन तथा निर्णय करने का समाचार प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध के विषयों की आलोचना करने निमित्त श्री शृंगेरी मठ के शिष्यों ने मदुरापुरी में एक सभा की थी। श्रीमान् शास्त्री जी का देखा हुआ पुस्तक में ये विषय हैं—"पन्डित पत्र" 10—9—34 के अङ्क में श्री युत वेंकटेश शास्त्री जी ने श्री कांची पीठ के बारे में श्री भगवत्पादाचार्य द्वारा स्थापित प्रथम पीठ है ऐसा लिखा हुआ प्रकाशित है, "लीडर" पत्र 19—7—34 के अङ्क में ब्रह्म श्री ए. चिन्नस्वामी शास्त्री जी ने श्री कांची कामकोटि पीठ को भगवत्पाद से स्थापित व उस पीठ को अपने निज आयू पर्य्यन्त मुख्य पीठ बनाकर अपने द्वारा कैलास से लाये हुए लिङ्गों में प्रथम एवं अन्य लिङ्गों में से सुप्रसिद्ध श्रेष्ठ योगलिङ्ग की वहां पूजा कर मेरु रूप में श्री पूजा भी करते हुये श्री कांचीपुर में ही अपना शरीर त्याग कर निर्याण हुए ऐसा लिखा प्रकाशित है। इसके पूर्व ही 1915 वर्ष में श्री कांची मठ के मैनेजर पं० रामस्वामी उपाध्यायजी से श्री "जगद्गुरु शङ्कराचार्य चरित्र" नामक प्रकाशित पुस्तक में ऊपर दिये हुए विषयों के साथ यह भी लिखा है कि केवल श्री कांची पीठाधिपति को ही "श्री मज्जगद्गुरु" पदवी है, श्री भगवत्पाद से स्थापित दीगर अन्य चार मठों के अधिपतियों को "श्री गुरु" पदवी है, इस प्रकार लिखित एवं प्रकाशित है। इसके अनुसार ऊपर दिये हुए विषयों को श्री कांची मठ के शिष्यों ने श्री कांची में प्रचार करते हुए आये हैं। श्रीमान् टी. एस. एस. शास्त्री जी के कहे हुए पुस्तक में ही यह सब उल्लेख हैं। श्री भगवत्पाद से स्थापित मठों में एक श्री शृंगेरी जगद्गुरु मठ के गौरव को उपर दिये हुए विषयों द्वारा घटाने यानी अपमान करना जानकर श्री मदुरापुरी निवासियों

में श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु मठ के शिष्य लोग अलग एक सभा आयोजन कर निर्णय करने से किसी प्रकार का गल्ती होने का इस लेखक की अल्प बुद्धि को ज्ञात नहीं हुआ। उस सभा में श्रीमान् टी. एस. एस. शास्त्री के कथनानुसार ऐसा कोई गुप्त मंत्र या छिपे तौर से सभा न की गयी। सभा के सब लोग निर्णय किये हुए विषयों में एक ही अभिप्राय रखने वाले थे। केवल श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु मठ के गौरव के बारे में ही निर्णय करना चाहिये और अन्य विषयों के बारे में निर्णय करने की जरूरत नहीं है—इस प्रकार निश्चय कर विना किसी के आक्षेप के सर्व सम्मति से सभा में निर्णय पास हुआ। श्रीमान् टी. एस. एस. शास्त्री के अनुरोध को पूर्ण गौरव देकर श्रीमदाचार्य के विषयों में ऊपर दिये हुए अभिप्राय भेदों के कारण श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु मठ के शिष्य उनके स्व सार्वजनिक कार्यों में अलग रूप से कार्यों को करते हुए तथा उन कार्यों को ठीक तौर पर कर सकते हैं। इस अभिप्राय को रखने वाले लेखक नम्रभाव से अपना अभिप्रायः प्रकाश कर रहा है। इस प्रकार करनें से ही शारदा एक्ट आदि अन्य धर्म विषयों में हम लोग सब अपने श्री मदाचार्य के अनुग्रह प्राप्त करने के हेतु से संगठित रूप में सार्वजनिक कार्यों को करने में साध्य होंगे।

स्वदेशमित्रन्-मदरास (8—8—35)

श्री शङ्कराचार्य के मठ

इस शीर्षक के नीचे दिये हुए कुछ लेखों के प्रकाशन को मुझे देखने का अवसर मिला। श्री काशी के पण्डित विश्वनाथ शर्मा से प्रचुरित 'श्री शांकर मठ विमर्श' नामक पुस्तक का अनुमोदन कर मदुरापुरी में श्री श्रृंगेरी मठ के शिष्यों एकत्रित होकर एक सभा में निर्णय किये सो अनुचित है ऐसा कुछ लोगों का अभिप्राय लेख में देखा। उनमें से माजी तहसीलदार श्रीमान् रामशेषय्यर एवं एक भक्त से लिखित अभिप्राय पर विचारना आवश्यक एवं उचित है। श्री श्रृंगेरी मठ शिष्यों के लिये उचित आचरण पालन के विषय पर कुछ उपदेश भी देखने में आता है। उपदेश देने वाले लोग अपने को श्री श्रृंगेरी मठ के शिष्य भी कहते हैं। श्री कुम्भकोण मठ से प्रचारित बहुतेरे शङ्कराचार्य चरित्रों में लिखा है कि-आचार विचारों को अक्षुण्ण रखने के कारण पश्चिम दिशा में द्वारका एक मठ, उत्तर दिशा बदरी में एक मठ, पूर्व दिशा जगन्नाथ में एक मठ, दक्षिण दिशा में श्री श्रृंगेरी में एक मठ आचार्य शङ्कर ने स्थापित किया है और इस विषय को मानने के कारण कांचीपुर, कुम्भकोणम् इत्यादि दक्षिण देश के सब लोग भी श्री श्रृंगेरी मठ के ही शिष्य हैं। इस विषय पर श्री कुम्भकोण मठ तथा अनुयायियों को आक्षेप करने का जगह नहीं है। इसलिये श्रृंगेरी मठ के शिष्य प्रत्येक हैं ऐसा विभाग करना उनके लिये न्याय युक्त नहीं है। लेकिन कुछ लोग श्रृंगेरी मठ के शिष्य वे नहीं है ऐसा सोचकर तथा घोषित करने के कारण ही से, श्रृंगेरी मठ के वे शिष्य हैं, ऐसा व्यवहार उत्पन्न होता है।

श्रृंगेरी मठ के श्री मदाचार्य जी मठ विषयों के तारतम्य के विचारों में अतृप्ति होने का एक लेखक लिखता है। इस प्रकार की अतृप्ति आस्तिक लोगों में होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार का व्यवहार उचित नहीं है ऐसा वास्तव होते हुए भी, इस व्यवहार का आरम्भ करनेवालों को उसे रोक देने का उपदेश दें तो उचित होगा। इसे छोड़कर पश्चात् जो व्यक्ति इस भ्रामक मिथ्या प्रचारों का भंडाफोड़ कर दिखाते हैं "उन्हें आक्षेप नहीं करना चाहिये" इस प्रकार का उपदेश देना किसी प्रकार भी

न्याययुक्त नहीं है। अन्त्यजों को आलय प्रवेश करना चाहिए ऐसा एक नवीन विवाद–समस्या आरम्भ करके और जिसे आक्षेप करनेवाले सनातनी सब, देशों में फूट तथा भेदभाव उत्पन्न कर रहे हैं जैसे नवीन परिवर्तनपक्षवाले दोषारोपण सनातनियों पर करते हैं, वैसा ही इनका कहना है। इसलिये इस विवाद में अतृप्त होनेवाले यदि उन्हें योग्यता व प्रभाव हो तो इस प्रकार के प्रचारों को बन्द करने का कुम्भकोणम् मठवालों को ही उपदेश देना या अनुरोध करना न्याययुक्त होगा।

कुम्भकोण मठ के अनुमति से प्रचारित पुस्तकों द्वारा शृंगेरी मठ के बारे में अपमान या गौरव की हानी युक्त एक वाक्य भी नहीं है, ऐसा एक सज्जन लिखते हैं। क्या अयोग्य, दुष्ट इस प्रकार लिखने ही से गौरव की हानी होती है अन्यथा नहीं?

(1) श्री शृंगेरी मठ कुम्भकोणम् मठ के निगरानी में है।

(2) श्री सुरेश्वराचार्य शृंगेरी मठ में थे ही नहीं। वे परमहंस संन्यासी भी नहीं हैं।

(3) श्री शृंगेरी मठ के मठाधिपति आचार्य नियुक्त और एक विश्वरूपाचार्य थे जो यम-देवता के अवतार हैं। पृथ्वीधवाचार्य मृत्यूदेवता के अवतार हैं।

(4) शृंगेरी मठ आचार्य वंशावली बहुत दिनों से विच्छिन्न था।

(5) विद्याशङ्कर का आलय श्री शृंगेरी में होते हुए भी विद्याशंकर शृंगेरी मठ के आचार्य थे नहीं। वे कुम्भकोण मठ के आचार्य थे।

(6) श्री विद्यारण्य के नाम से विजय नगर संस्थान द्वारा शासन पूर्वक कुछ ग्रामों का अर्पण होते हुए भी आज भी वे ग्राम शृंगेरी संस्थान के शासन में होते हुए भी कुम्भकोण मठ कहते हैं कि श्री विद्यारण्य शृंगेरी मठ के आचार्य थे नहीं। वे परमहंस सन्यासी भी नहीं, वे कुम्भकोण मठ के शिष्य थे, उन्हें यहां से भेजकर शृंगेरी मठ को पुनः उज्जीवन किया गया।

(7) शृंगेरी आचार्य केवल 'गुरु' पदवी के अर्ह हैं और वैसे ही पुकारे जा सकते हैं और "जगद्गुरु" पदवी केवल कुम्भकोण मठाधिपति को ही है।

कुम्भकोण मठानुयायियों द्वारा इस प्रकार का कहना व लिखना सब शृंगेरी मठ का दूषण नहीं होता ऐसा प्रतीत होता है, उक्त लेखक के कथनानुसार।

कुम्भकोणम् मठ के श्री स्वामी जी इस प्रकार के अनेक व्यवहारग्रस्त विवादास्पद ग्रंथों को अनेक गण्यमान सज्जनों व अनेक पुस्तकालयों को देने से; उनका अनुमति प्राप्त एवं प्रकाशित कुछ पुस्तकों तथा स्वामी जी को समर्पण की हुई पुस्तकों में विवादास्पद विषयों का उल्लेख देखने से; लिखे हुए पत्रिकाओं को अंगीकार करने से; श्री शङ्कराचार्य चरित्र विषय को लेकर एवं विवादास्पद विषयों की पुष्टी और भाषण करने से; ऐसी स्थिति में श्री स्वामी जी इन प्रचारों में अपना हस्तक्षेप नहीं करते ऐसा कहना कितना उचित एवं आधार रहित है।

इस प्रकार के प्रचार सब जो "शिवरहस्य के आधार पर प्रचारित होते हैं एवं शिवरहस्य के प्रामाण्यता को मानने के लियें सब अद्वैतमतावलम्बीयों को आक्षेपण नहीं करना चाहिये" इस प्रकार और एक लेखक लिखते हैं। शिवरहस्य प्रमाण है कहना अर्थात् उसमें कहे हुए प्राचीन यथार्थ मूल विषय प्रमाण हो सकते हैं न कि कहे जानेवाले कल्पित विषयों का उल्लेख करना (अर्थात् क्षिप्त विषय, अदल-बदल जोड या निकाल कर) प्रमाण नहीं हो सकता। इसके अलावा श्री शङ्कराचार्य के विषय में जिस प्रकार उल्लेख है उसी प्रकार अर्वाचीन काल के हरदत्ताचार्य के विषय में भी एक अध्याय अर्थात् नवांश 17 वां अध्याय होने का मालूम पडता है। इसी प्रकार समीप काल के श्री अपय्य दीक्षितर के बारे में भी शिवरहस्य में उल्लेख होने की पुस्तकों में छपकर प्रकाशित हुए हैं। इन चरित्रों के भागों को कहां तक प्रामाण्यता देना चाहिये पाठकगण स्वयं निर्धारण कर लें। शिवरहस्य में 'कांची में सिद्धि प्राप्त की' इस वाक्य का अर्थ कांची में तनुत्याग किये ऐसा अर्थ करना किसी प्रकार भी न्याययुक्त नहीं है। "सिद्धि" संस्कृत शब्द का अर्थ देह वियोग नहीं है। ऊपर कहे हुए श्लोकों में "तपस्सिद्धि को प्राप्त करने के बाद" देश के संचार करने की कथा सत्य एवं उचित होना हो, तो शिवरहस्य में पहले वर्णित श्लोकों में दिये हुए 'सिद्धि' पद का अर्थ तपस्सिद्धि ही मालूम पडता है।

ऊपर दिये हुए नवीन प्रचारों का विस्तार पूर्वक उत्तर लिखने के लिये पत्रिकाओं में अवकाश लेना न्याय नहीं होगा। श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वती जी को श्री शृङ्गेरी आचार्य वन्दन करने के समाचार से 'इन्द्र सरस्वती' संप्रदाय को आक्षेपन करना अपचार होगा, इस प्रकार तहसीलदार श्री रामशेषय्यर लिखते हैं। 'इन्द्र सरस्वती,' 'योगपट्ट' नाम है न कि संप्रदाय। भोगवार, कीटवार, नन्दवार, भूरीवार को ही सम्प्रदाय कहते हैं जो व्यवहार में है। सरस्वती नाम के सन्यास नाम में कुछ लोग आनन्द सरस्वती एवं कुछ लोग इन्द्र सरस्वती नाम धारण करने से सम्प्रदाय दूसरा हो नहीं सकता। इन्द्र सरस्वती योगपट्ट केवल कुम्भकोण मठाधीश को ही लागू हो सकता है इस प्रकार कहना भी ठीक नहीं है। इस विषय में लिखने की इस समय आवश्यकता न होने से लिखा नहीं जाता।

इसलिए अप्रामाणिक विवादों व नवीन कल्पित विषयों को उत्पन्न व प्रचार न करने से उस पर आक्षेपन करने का जगह भी नहीं रह जाता। शृङ्गेरी मठ के शिष्यों को उपदेश देना बन्द कर इन विवादों के मूल कारणाभूत वादों को उत्पन्न व प्रचार न करके तथा उसे सर पुनः न उठाने देना, सब आस्तिक महाजनों का कर्तव्य होगा ऐसा श्रीमान् कृष्ण शर्मा लिखते हैं।

'वित्तकम्' पत्र के 17—10—35 से 3—9—36 तक बीस अङ्कों में तमिल भाषा में इस विवाद के अनेक विषयों पर लेख प्रकाशित हुए हैं। ये सब लेख कुम्भकोण मठाधीश के भ्रामक प्रचारों का भन्डा फोड एवं यथार्थ विषयों का विवरण पाठकगण पायेंगे। प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर इन 20 लेखों में यह सिद्ध किया गया कि श्री आद्यशङ्कराचार्य केवल चार दिशाओं में चार धर्मराजधानियां (मठ) स्थापित किये और कांची कुम्भकोण मठ की स्थापना श्री मदाद्यशंकराचार्य के बहुकाल के बाद ही हुई थी। श्री काशीधाम में जो घटनायें घटी उसका भी विवरण इस पत्र में प्रकाशित हुआ है।

30. प० रमापति मिश्र जी, मुंबई, के पत्र का उत्तर

पं. रमापति मिश्र जी ने (बम्बई प्रान्तीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ) अपना अभिप्राय 'शाङ्करमठ पुस्तक पर 'पन्डित पत्र' ता० 1—4—35 के अङ्क में 'श्री मज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' शीर्षक प्रकाशित है। आपने 22—3—35 को एक पत्र मेरे पिताजी को भेजा है। इन दोनों के उत्तर में मेरे (पं. ज० ग० विश्वनाथ शर्मा जी) ने एक लेख "पन्डित पत्र" को लिख भेजा था पर वे कैसे छाप सकते हैं? पिताजी ने पं रमापति मिश्र जी को यह लेख उनके पत्र एवं लेखोत्तर के रूप में डाक द्वारा भेजा था। पिताजी ने "सूर्य" पत्र 12—4—35 के अङ्क में इस लेख को प्रकाशित किया है। इसी अङ्क में पं० जान त्रिपाठी जी, सम्पादक "सूर्य", अपना अभिप्राय भी प्रकाशित किया है।

काशी के पन्डितों का अपमान
(पं० जानकीशरण त्रिपाठी—सम्पादक "सूर्य" पत्र)

बम्बई वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से पन्डित रमापति मिश्र के नाम से "श्री मज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" नामक काशी से प्रकाशित पुस्तक का 'विमर्श' हमारे पास प्रकाशनार्थ आया है। पुस्तक के प्रकाशकों द्वारा आपसे सम्मति मांगी गयी थी अतः तटस्थ होकर आपने उक्त लेख द्वारा सम्मति प्रदान करने की कृपा की है। पर खेद है कि काशी के कतिपय स्वर्गीय प्रातः स्मरणीय विद्वानों के उपहासकारक एवं वर्त्तमान अनेक विद्वानों के अपमानकारक होने के कारण उक्त लेख को प्रकाश करने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के कारण कुछ दिनों से हम बम्बई के पन्डित रमापति मिश्र का नाम सुनते आ रहे हैं। अतः आपको एक आदरणीय विद्वान मानना हमारे लिये स्वाभाविक है। हमें तो विश्वास नहीं हो रहा है कि एक आदरणीय विद्वान की लेखनी द्वारा ऐसा लेख लिखा गया होगा।

आपने लिखा है कि मैं ने खन्डन मंडनात्मक दृष्टि से उस पुस्तक की आलोचना नहीं की है। हो सकता है, आपको किसी ने बहका दिया होगा कि वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के विरोधियों द्वारा उक्त पुस्तक प्रकाशित हुई है। बस क्या था, बुढौती का रोष संभालना आपके लिए कठिन हो गया होगा। इसी से पुस्तक में छपी हुई व्यवस्था पर हस्ताक्षर करने वाले केवल दो विद्वानों को छोड आपने सबको अयोग्य और अप्रसिद्ध लिख मारा। हां, बहुत कुछ संभव हो सकता है कि वे आपके सदृश योग्य और प्रसिद्ध संघ सेवक न हों। हम तो काशी के पन्डितों के लिये आपका यह वाक्य अपमान कारक मानते हैं। आप काशी के विद्वानों में से जिन दो की योग्यता स्वीकार करते हैं वे हैं पन्डित प्रवर हाराणचन्द्र शास्त्री जी और पन्डित प्रवर पूर्णचन्द्राचार्य जी। उनमें भी पन्डित हाराणचन्द्र शास्त्री जी इसलिये कन्ने से कट जाते हैं कि वे अपने प्रातः स्मरणीय महामहोपाध्याय स्वर्गीय गुरुवर्य पन्डित शिवकुमार शास्त्री जी की व्यवस्था के विरुद्ध नहीं जाना चाहते जो उन्होंनें काशी के अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ 48 वर्ष पूर्व दी थी। उस व्यवस्था पर महामहोपाध्याय प्रातः स्मरणीय कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य आदि अनेक महानुभाव विद्वानों के हस्ताक्षर हैं। हुआ करे, पर उसे पन्डित रमापति ऐसे धुरन्धर विद्वान कब मानने लगे। उस सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि—'व्यवस्था वही प्रामाणिक होती है जो तत्कालीन विद्वानों की सम्मति से पक्षपात के बिना बनायी जाती है।' पर वर्तमान विद्वानों में जिनको आप योग्य समझते हैं, उन

विद्वानों के हस्ताक्षर से 'विमर्श' चर्चित है। मालूम होता है वर्तमान विद्वानों में वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के दो एक कार्य कर्ताओं को छोड अन्य काशी के विद्वानों को आप योग्य विद्वान नहीं मानते। न मानें, पर वे आप ऐसे विद्वान के पास (सर्टिफिकेट) प्रमाणपत्र कब लेने गये थे। हो सकता है प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य जी शिरोमणि और महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री जी महोदय पक्षपात दोष से दूषित रहे हों क्योंकि उस समय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का जन्म नहीं हुआ था जिसके सदस्य होने का गौरव उन्हें प्राप्त होता। आगे चलकर आप धृष्टता करते हैं कि—"जिस समय यह व्यवस्था लिखी गयी है उस समय गुरुवर्य्य श्री शिवकुमार मिश्र जी प्रभृति विद्वान तरुण थे। तारुण्य चञ्चलता के कारण उन्होंने ऐसी व्यवस्था पर हस्ताक्षर कर दिया था।" इतनी दया आपने अवश्य इन विद्वानों पर की। आपने यह नहीं लिख मारा कि उन्होंने बालचांचल्य से उस पर हस्ताक्षर कर दिया था। संभव है आपने "गुरुवर्य्य" शब्द जो उनके नाम के पहिले लिख दिया था उसी की लाज रख ली है। आप किसको योग्य विद्वान मानते हैं यह भी आपके ही लेख से प्रकट हो जाता है। आप लिखते हैं—'वह व्यवस्था आचार्य के सम्बन्ध में थी। आचार्यों की इतिवृत्ति से दक्षिणी विद्वान अधिक परिचित रहते हैं। कारण प्रसिद्ध है कि आचार्य संपादन की कला दक्षिण प्रान्त के विद्वानों में ही विद्यमान है।' पर आपने यह पढने का कष्ट नहीं किया कि उस पर महामहोपाध्याय सुब्रह्मण्य शास्त्री जी आदि दक्षिणी विद्वानों के भी हस्ताक्षर मौजूद थे। आपने पन्डित प्रवर हाराण चन्द्र भट्टाचार्य जी पर यह भी दोषारोप किया है कि वे पचास वर्ष पूर्व के विद्वानों पर विश्वासकर वर्त्तमान विद्वानों से अलग हो गये। आपकी सम्मति से वर्त्तमान विद्वानों की बनायी हुई व्यवस्था ही सत्य हो सकती है। जब पन्डित रमापति मिश्र का यही मत है तो वे किस मुंह से सुधारकों का विरोध कर सकते हैं जो कहते हैं कि प्राचीन शास्त्रकारों की बात मान्य नहीं हो सकती। क्योंकि वह देशकाल के अनुकूल नहीं है। आजकल हम लोग जो व्यवस्था रचते हैं वही शास्त्र है और हम वर्तमान समय के शास्त्रकार हैं।

आप यह भी लिखते हैं कि "उस पुस्तक के प्रकाशन से धार्मिक जनता में कलह उत्पन्न होकर धर्म मर्य्यादा की अवहेलना हुई है।" हो सकता है, पर क्या आपने इस पर भी विचार करने का कष्ट किया है कि उस पुस्तक के प्रकाशित करने की अवश्यकता क्यों आ पडी। कांची कामकोटि मठ के आचार्य महोदय के काशी पधारने के पूर्व से ही यह आन्दोलन पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा होने लगा कि भगवान आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल एक ही मठ कांची कामकोटि ही है और उसी मठ के आचार्य महोदय केवल जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहला सकते हैं। अन्य चार पीठ उनके शिष्यों द्वारा स्थापित हुआ है और उनके आचार्य केवल "श्रीगुरु" कहला सकते हैं। आजतक प्रमाणों और गुरुपरम्परा से यही मालूम होता आया था कि भगवान आद्यशङ्कराचार्य जी ने केवल चार ही पीठ की स्थापना की। अन्य मठ प्रशाखा रुप में हैं। आज तक काशी में कितने ही जगद्गुरु शङ्कराचार्य आये पर उन लोगों के सम्बन्ध में कभी भी कोई विवाद उपस्थित नहीं हुआ। कांची कामकोटि के बारे में ही इतना बडा विवाद क्यों खडा हुआ? काशी के पन्डितों को बडे बडे प्रलोभन दिये गये। पर किसी ने भी पंचम पीठ होने की व्यवस्था नहीं दी और न यही स्वीकार किया कि इनका मठ प्रधान पीठ है। कामकोटि मठ के आचार्य द्वारा सनातन धर्म के प्रचार का कार्य तो कुछ हुआ नहीं, लगभग छः मास आप काशी में रहे। विवाद ही विवाद चलता रहा। अस्तु, पर आप वर्तमान विद्वानों में जिनको योग्य मानते हैं और जिनके स्वार्थ के कारण यह प्रपंच खडा हुआ उनका भी तो साहस नहीं हुआ कि एक

पंचम पीठ होने की व्यवस्था देकर कुछ विद्वानों का हस्ताक्षर करा लेते चाहे वे अप्रसिद्ध और अयोग्य ही क्यों न होते? यह त्रुटि अवश्य हुई कि उस अवसर पर बंबई से आप ऐसे योग्य विद्वान को नहीं बुला लिया गया। यदि आप पधारे होते तो सब काम बन जाता। आपको मालूम होना चाहिए कि जिन दक्षिणी विद्वानों को आचार्यत्व कला का सम्पादक मानते हैं उन्हीं लोगों ने तो यह 'विमर्श' प्रकाशित कराया है फिर आप पन्डित प्रवर हाराणचन्द्र भट्टाचार्य महोदय और पन्डित प्रवर पूर्णचन्द्राचार्य ही को क्यों कोसते हैं। मालूम पड़ता है कि इन लोगों का आपके वर्णाश्रम स्वराज्य संघ से कोई सम्बन्ध नहीं है। और न ये लोग आपके समान उसके अनन्योपासक ही हैं। सुधारकों की भांति आप भी शास्त्र की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं। और क्षमा मांगने की लचक भी उन्हीं की भांति आप में मौजूद है। इसके अतिरिक्त पुस्तक की आलोचना में आपने जो कुछ लिखे हैं उनका उत्तर पुस्तक के रचयिता और प्रकाशकगण देंगे। उनसे हमसे कोई मतलब नहीं। पंडितों को शास्त्रीय विचार करना चाहिए। युक्तिवाद की ओट लेकर किसी पर कीचड उछालना पन्डितों का काम नहीं।

यदि इस लेख में काशी के कतिपय पन्डितों को अयोग्य और अप्रसिद्ध बनाकर उनका अपमान और उपहास न किया गया होता, केवल सिद्धान्त प्रतिपादन करने के लिए शास्त्रीय प्रमाणों को दिखलाया गया होता तो हम दोनों पक्ष के वाद प्रतिवाद को प्रकाशित कर देते। विद्वान पाठक उनका निर्णय कर लेते। पर इस लेख में हमें कोई ऐसी बातें नहीं मालूम हुई। शास्त्रीय प्रमाणों की अवहेलना और स्वर्गीय प्रातः स्मरणीय विद्वानों का अनुचित उपहास, यह दोनों ऐसी बातें हैं जिन्हें कोई भी सनातन धर्मावलम्बी सहन नहीं कर सकता। हमें तो फिर भी आश्चर्य हो रहा है कि एक आदरणीय विद्वान की लेखनी से ऐसे अनर्गल शब्द कैसे लिखे गये जिनसे काशी के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय प्रातः स्मरणीय विद्वानों का उपहास और वर्तमान कतिपय विद्वानों का अपमान होता है, इस पर पन्डित रमापति मिश्र ऐसे योग्य आदरणीय विद्वान को प्रकाश डालना चाहिए।

श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार ही मठ हैं।
कांची कुम्भकोण मठ शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित नहीं है, यह एक शाखामठ है–"श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श"—विमर्श खण्डन।
(लेखक पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा)

पं० रमापति मिश्र जी ने मेरे निवेदन पर अपनी जो सम्मति "श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्कर मठ विमर्श पर दिया है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं, पर दुःख इस विषय का कि पन्डित जी ने पुस्तक को बगैर पूरा पढे और विषय को ग्रहण किये हुए तरुणावस्था के वेग में आंखे मूंदकर समालोचना की है। इसके लिए भी वे धन्यवाद के पात्र हैं। जब प्रश्न का उत्तर सप्रमाण (श्रुति, स्मृति, पुराण युक्त) देते नहीं बनता है तो पूछनेवालों को अयोग्य एवं मूर्ख बनाना तो स्वाभाविक ही है, चाहे वह प्रश्न अत्युत्तम एवं उत्तर देने के योग्य क्यों न हों। पन्डित जी का अभिप्राय कोई नूतन नहीं है। मुझे कोई आश्चर्य नहीं यदि पन्डित जी और कोई भद्दा या कडाशब्द कह या लिख जांय। कली के प्रभाव से वर्णाश्रम धर्म के श्रादलू पन्डित जी का हृदय भी घूम जाना कोई आश्चर्य नहीं। दूसरों को मूर्ख बनानेवाले स्वयं अपनी योग्यता देखकर तब बाद में टीका टिप्पणी करते तो अच्छा होता। इस लेख को प्रकाशित कर

हमारा अभिप्राय केवल सुहृदों के भ्रम को दूर करना है। यद्यपि पन्डित जी का लेख जो श्रुति, स्मृति पुराण से पुष्ट नहीं है उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि लोगों के भ्रम निवारणार्थ ऐसा करना ही पड़ता है।

किसी विषय की चर्चा छेडकर नयी नयी बातों का आविष्कार और उसका समन्वय सशास्त्रीय करना अवश्य ही धार्मिक सिद्धान्त की पुष्टि करना है। इस कलह का प्रारंभ तो श्री कुम्भकोण मठाधीश जी और उनके ओर से ही है। स्वयं चुप मारकर अपने शिष्यों, कारबारियों, मैनेजरों एवं शुभचिंतकों से पुस्तक छपवाकर, जो देखने मात्र से जनता में द्वेष और घृणा पैदा करती हैं, प्रकाश कराना मठाधीश जी का ही काम है न कि हमारा।

यदि श्री स्वामी जी इन सबों से सहमत न होते तो अवश्य ही अपनी असम्मति का लेख से प्रगट किये होते। ऐसा न कर और उनकी पुष्टी कर रहे हैं। इसलिये हमको उन प्रचारों का खन्डन करने की आवश्यकता हुई।

दुःख है कि पन्डित जी इन पुस्तकों को पूरा न पढ सके। ऐसी पुस्तकें कई नजर आता है। यदि पन्डित जी उन सबों को पढना चाहें तो मैं उनको सूची भेज सकता हूं। इतना ही नहीं, श्री काशीधाम पहुंचने पर भी पुस्तकों का छपवाना, पत्रिकाओं और नोटिसो में असत्य खबरें देना और अपने शिष्यों से तदनुसार लेख प्रकाशित कराना नहीं छूटा। 'शिष्य पापं गुरोरपि' के अनुसार आप ही इसके पापी बने। मैं ने तो विषय का पूर्ण ज्ञान कर लेने के हेतु श्री कुम्भकोण मठाधीश जी को पत्र एवं लोगों के द्वारा समाचार भेजवाया। पर श्री स्वामी जी महाराज अपने मौन को कैसे छोडें। बजाय शिष्यों के किये हुए कलह को दबाने के आपने साङ्गवेद विद्यालय में भाषण देते समय शिष्यों द्वारा उठाये गये कलह की पुष्टि की। आप के शब्द यों थे "शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है।" मैं आशा करता हूं कि पन्डित जी श्री स्वामी जी के अभिप्राय और कलह के मूल को समझ लेंगे। यह निःसन्देह है कि धार्मिक जनता में कलह उत्पन्न करना धर्म मर्य्यादा की अवहेलना करने के समान है। यह तो कलह के मूल पुरुष को ही अच्छी तरह जानना चाहिए। "लंगडी बिल्ली घर में शिकार" की कहावत तो उन्हें स्पष्ट रूप से जानना आवश्यक है। छेडने के बाद मौन निष्प्रयोजन है। जब कुम्भकोण मठाधीश जी अपनी कल्पना ही में आरूढ हैं तो मेरे मित्र पन्डित सीताराम शास्त्रीजी एवं मुझसे प्रकाश की हुई पुस्तक में कौन ऐसी गल्ती हो गयी है जिससे पन्डित जी इतने रुष्ट हो गये हैं।

श्रीयुत पन्डित रमापति जी "पुराण न्याय मीमांसा धर्म शास्त्रांग मिश्रिताः वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्यच चतुर्दश," "स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यं अनुमानश्चतुष्टयं" "वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" इत्यादि श्रुति, स्मृति के वचनों को जानते हुए भी वर्णाश्रमाचारादि के मूलभूत श्रुति, स्मृत्यादियों में अपनी अज्ञानता एवं अप्रमाणता पामर लोगों के समान क्यों दिखा रहे हैं? जिस व्यक्ति को श्रुति, स्मृति, पुराणों के वचन शिरोधार्य नहीं हैं उसको किस कक्षा में गिना जाय, सो पन्डित जी भली भांति जानते ही हैं। श्रीमच्छङ्कराचार्य जी के चरित्र सब ऐतिहासिक सरणी में ही लिखे हुए मालूम पडते हैं। कूर्म, लिंग, वायु, पुराणों; शिवरहस्य ग्रंथ; मठाम्नाय (उपनिषद, सेतु एवं चन्द्रिका); शंकर दिग्विजय ग्रंथों—विद्यारण्य, चिद्विलास, सदानन्द, बृहत्, गुरुपरम्पराचरित्र और नवीन अनेकानेक विजयों में मतमतान्तर के पुस्तकों एवं ग्रथों में चारों दिशा में चार वेद और उनके चार महावाक्यों को विभाग कर

केवल चार ही मठों की (धर्मराजधानी) स्थापना कर चार ही शिष्यों को बैठा कर अपने लिये कहीं भी अलग मठ न निर्माण कर, अपनी अवतार लीला समाप्त कर; केदार – बदरीकाश्रम सीमा से अपने 32 वें वर्ष में देवगणों के साथ सीधे शिवधाम पहुंचे, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख है जो कि सार्वजनिक है। जो कुछ शङ्कराचार्य के विषय में उपलब्ध हैं वे इन्हीं पुस्तकों से पायी जाती है। इतिहास, पुराणों की महत्ता हमारे श्रुतियों ने भी गाया है "इतिहास पुराण पञ्चममिति श्रुति"। शिवरहस्य ग्रन्थ में जैसा आचार्यजी का संक्षेप में विवरण दिया है वैसा अन्य पुस्तकों में मिलना कठिन है। उसमें शृंगेरी को प्रधान एवं व्याख्यान सिंहासन पीठ और श्रीमच्छङ्कराचार्य जी का निर्याण केदार-बद्रिकाश्रम में स्पष्ट लिखा हुआ है। "काञ्च्यामथ सिद्धिमाप" श्लोक के बाद 13 अधिक श्लोक हैं, और मध्य में 'दुर्वासः शापतो भूमौ' इत्यादि 2½ श्लोकों को कुम्भकोणम् मठाधीश के कर्मचारी अथवा किसी शिष्य ने उड़ा दिया है। मतलब साधने के लिए पाप कर्म करना कलियुग में कोई आश्चर्य नहीं है। कई पुस्तकालयों में खोज करने पर भी मुझे ऐसी ही पुस्तकें मिली जिसमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि श्री शङ्कराचार्य जी से परिकल्पित केवल चार ही मठ एवं निर्याण स्थान केदार बद्रिकाश्रम ही था और वे वहीं से कैलास गये। कोई आश्चर्य का विषय नहीं कि पन्डित जी इन ग्रन्थों के रचयिता की भी वैसे ही टीका टिप्पणी करें जैसे स्वनामधन्य स्वर्गीय शिवकुमार शास्त्री एवं कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य प्रभृति को की है। कारण, इनकी लेख की पुष्टी इन सब ग्रंथों में नहीं है। क्या श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, शङ्करविजय ग्रन्थ के (रचयिता) सब तरुणावस्था ही में लिख गये हैं? क्या शास्त्रीय प्रमाण देनेवाले तरुणावस्था से अयोग्य एवं अप्रसिद्ध हैं अथवा पन्डित जी ने स्वयं अशास्त्रीय लेख तरुणावस्था में लिखा है, इसका कुछ विचार कृपया कीजियेगा। क्या आप कुम्भकोणम् या कांची मठ को आद्यशङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित एवं उनके साक्षात् परम्परागत कथन को श्रुति, स्मृति, पुराण प्रामाणिक ग्रन्थों से सशास्त्रीय सिद्ध कर सकते हैं? मैं ऐसे व्यक्ति को 100 रुपया पारितोषक देने की घोषणा करता हूं। अतः श्रीमच्छङ्कराचार्य जी से प्रतिष्ठापित पीठ और मठ का सम्प्रदाय, आचारादि विषय सर्वशास्त्र सिद्ध हैं। ये सब युक्ति साध्य नहीं हैं।

वर्णाश्रमाचारादि धर्म सम्प्रदाय के माननेवालों को शास्त्र सिद्धान्त को मानकर ही धार्मिक विषयों का निर्णय करना उचित है, न कि नास्तिकों के समान शास्त्र सिद्धान्त को छोडकर मनमाना अनुमानवाद का प्राधान्य देकर तर्क करना। दुख एवं आश्चर्य इस विषय का है कि पन्डित जी ने वर्णाश्रमाचार सम्प्रदाय कक्षा में रह कर, स्वयं उनके अनुष्ठाता हो, धर्मोपदेश स्वयं करते हुए, श्रुति, स्मृति, पुराणों में अश्रद्धा खुल्लम खुल्ला प्रगट की है। पं॰ रमापति जी का कथन जो है कि जगन्त विश्रान्त स्वर्गीय शिवकुमार मिश्र, श्री कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य इत्यादि प्रकान्ड विद्वानों एवं परिव्राजकों की तरुणावस्था और चंचलता के वश हो, लगभग 50 वर्ष पूर्व दी हुई व्यवस्था अनादरणीय एवं शिरोधार्य नहीं है, सो कथन भूल है। तरुणावस्था से चंचलता का प्राप्त किये हुए पन्डितों का निर्णय प्रत्यक्ष में प्रमाण है। दुशाले, रुपये सैकडों में लेकर जांगडो को ब्राह्मण बनानेवाले; शारदा एवं मन्दिर प्रवेश बिलों के समर्थन में हस्ताक्षर करने वाले; अन्त्यजों को प्रणवोच्चारण कराने की सम्मति देने वाले; छिपी तौर से अब्राह्मणों को ब्राह्मण बनाने के लिये हजारों की संपत्ति लेने वाले; किसी राजा को धर्म से भ्रष्ट बतलाकर उसका घोर विरोध करनेवाले एवं अर्थ प्राप्ति की लालसा से भूरि भूरि प्रशंसा करनेवाले; एक ओर बिलायत जाने वालों को पतित होने का व्यवस्था देनेवाले दूसरी ओर अपने प्रतिनिधियों को पांच सवारों में गिनती कराने के लिये माला पहनाकर बिलायत भेजनेवाले; कभी 'मालवीय पंथी' कह कर तिरस्कार करनेवाले और

कभी उन्हीं विद्वानों के कन्धों से कन्धा मिलाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करनेवाले; झूठी अफवाहें फैलाकर बाहर गहरी रकम धुजाने वाले, क्या 'तरुण' एवं 'चंचल' हैं अथवा श्रुति स्मृति पुराणों को रक्षण करते हुए उनके वाक्यों के आधारों पर सशास्त्रीय सप्रमाण व्यवस्था देनेवाले, रुपये को धिक्कारनेवाले, धर्म की मर्य्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये सदा उद्योग करनेवाले आडम्बरों से परे रहनेवाले, 'तरुण एवं चंचल' हैं ? पन्डित जी ! कृपया निष्पक्ष होकर इसका विचार कीजियेगा। "यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्" यह उक्ति हर एक अविवेकों के लिये है, न कि सर्वशास्त्र पारंगत एवं जगन्त विश्रान्त स्वर्गीय श्री सीताराम शास्त्री, श्री कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य, श्री शिवकुमार मिश्र प्रभृति पन्डितों के लिये।

पन्डित जी का आक्षेप 'अन्य पन्डितों स्वनामधन्य स्वर्गीय गंगाधर शास्त्री, दामोदर शास्त्री, प्रभृति के हस्ताक्षर न होने से पुरानी व्यवस्था (1886ई०) अनादरणीय है' सो निर्मूल है। 'यति निन्दा कुलक्षय'— 'दुवृत्तोवा सुवृत्तोवा यतिः पूज्यो न संशयः' इत्यादि गृहस्थ धर्मों का स्मरणकर उपर्युक्त दक्षिणात्य और गौड पन्डित लोग तटस्थ रहे गये थे। यदि इनकी सम्मति इस व्यवस्था में न होती तो अवश्य ही विपक्षियों की व्यवस्था में हस्ताक्षर करते। पर ऐसी कोई बात नहीं थी। विपक्षियों की व्यवस्था भी मेरे पास है। उसमें भी चार ही मठों की स्थापना की व्यवस्था दी गई है। इस विषय को पं० रमापति मिश्र जी जान लें कि श्री कृष्णानन्द जी (कैवल्यधाम) एवं अन्य सन्यासियों का भी सम्मति चार ही मठ होने की है न कि कोई पांचवां। उनके छपवायें पुस्तक में स्पष्ट रुप से चार ही मठ होने की व्यवस्था दी गई है। यह निस्सन्देह है कि उक्त पन्डितगण चार ही मठ होने की व्यवस्था के समर्थक थे। अनुमान होता है कि वे केवल यतियों के मामले में नहीं पडना चाहते थे। जब अन्याय की मात्रा अधिक हो जाता है तब उसका भन्डाफोड ईश्वर की प्रेरणा से किसी के द्वारा अवश्य हो ही जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखने में आता है। स्वर्गीय पन्डित शिवकुमार मिश्र प्रभृति पन्डितगण 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्य्या कार्य व्यवस्थितौ' इत्यादि शास्त्र वचनों का स्मरण कर 'अलुक्षा धर्म कामास्युः' इस श्रुति के अनुसार होकर 'नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयात्' इत्यादि न्याय से अपने पास किये हुए प्रश्नों के धर्म संशय को निर्णय करना पन्डितों का आवश्यक कर्त्तव्य एवं धर्म समझ कर सत्य के आश्रय से निर्भीक हो अन्याय एवं अशास्त्रीय को इस सभा में खन्डन कर व्यवस्था पत्र में अपना हस्ताक्षर किये हैं। अनेक दिग्गज गौड और द्राविड पन्डितों का भी उस व्यवस्था में हस्ताक्षर हैं। पं० रमापति जी के दिये हुए नाम उस व्यवस्था में न होने के कारण कोई हानी नहीं है वरन् पुष्टी ही है। उसी प्रकार इस नवीन व्यवस्था की भी हाल है। कई केवल दुशाला और दक्षिणा मिलने की चंचलता से, कई सन्यासियों के झगडे में उदासीन भाव से, तटस्थ होकर इस पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं। 49 वर्ष पूर्व की सभा में उपस्थित एक दो व्यक्ति अब भी सजीव हैं। उनसे पूछने पर पूर्ण विवरण मालूम हो जायगा।

पं० रमापति मिश्र जी से मेरी प्रार्थना है कि आप अब भी कम से कम मठ और पीठ के अंतर को जान लें। मठ और पीठ दो अलग वस्तु हैं। पीठ अचल एवं स्थापित है और मठ निवास स्थान है जिसका स्थलान्तर हो सकता है। पीठ का स्थलान्तर होने से वह पूजार्ह नहीं होता। यदि श्री अन्नपूर्णा जी के मूर्ति को हटाकर अस्सी या वरुणा में स्थापना की जाय, क्या वह पीठ पूजार्ह है ? केवल अपने वैदिक मत में ही नहीं वरन अन्य मत मतान्तरों में भी एक जगह स्थापित मूर्ति अथवा

पुण्य स्थानों के चिन्ह को दूसरे जगह ले जाना अपराध एवं पाप ठहराया गया है। 'कलौस्थानानी पूज्यन्ते' इस उक्ति के अनुसार पीठ स्थान भ्रष्ट नहीं हो सकता है। स्वयं पन्डित जी वर्णाश्रम आचारादि धर्म निष्ठ होते हुए भी मूलभून आगम शास्त्रों के विरुद्ध अनुमान पर निर्भर होकर क्यों समर्थन कर रहे हैं? इसका आशय मुझे नहीं मालूम हो रहा है। श्री कालीकापीठ के आचार्य-चरण समाधिस्थ श्री मज्जगद्गुरु माधवतीर्थ आचार्य चरणों ने डाकोर में उस अचल कालीकापीठ एवं श्री कृष्ण जी तथा श्री शारदा का स्थलान्तर नहीं किया, पर उन्होंने अपना निवास स्थल (मठ) केन्द्र का परिवर्तन किया और इसमें कोई आपत्ति नहीं है। कांची का पीठ किस प्रकार दो तीन जगह (उदयारपालयम्, तंजौर एवं कुम्भकोणम्) परिवर्तित हो अब कुम्भकोण पहुंचा? आसेतु हिमाचल पर्य्यन्त श्रीमत् शङ्कराचार्य ने अनेक पीठों की स्थापना एवं उद्धार किया है? जिस-जिस स्थल में जाकर उद्धार अथवा स्थापना की है, क्या हर एक जगद्गुरु पीठ एवं मठ हो सकता है। ऐसा तो संसार में प्रतीत नहीं होता। शङ्करमठ अनेक हैं पर क्या वे सब धर्म राजधानी हो सकते हैं? केवल शङ्कराचार्य जी ने तो चार ही धर्म राजधानी की स्थापना की है। और स्वयं अपने इस अल्पवयस 32 वर्ष के भीतर बारह वर्ष शृङ्गेरी में निवास और अद्वैतमत की स्थापना कर श्री केदारबद्रिकाश्रम से शिवधाम पहुंचे। कांची में श्री कामाक्षी देवी गुफा में अति उग्र होने के कारण योगीराज श्री शङ्कराचार्य जी ने जिस प्रकार अनेकमूर्ति की उग्रता शान्त की है वैसे ही श्री चक्र निर्माण, देवी की उग्रता शान्ति, एक मास कांची में वास, श्री राजसेन महाराज से मन्दिरें बनवाकर पूजा पाठ के लिये ब्राह्मणों को नियोजन कर, वहां से आगे बढे। न तो वहां अनेक दिवस ठहरे, न वहां मठ (धर्मराजधानी) की स्थापना की, इस विषय की पुष्टी अनेक ग्रन्थ करते हैं।

'स्वाध्यायोध्येतव्यः' इसके अनुसार प्राप्त किये हुए वेद का परित्याग ब्राह्मण नहीं कर सकते। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रमी कर्माधिकार को त्याग कर सन्यास आश्रम लेते हैं, पर जन्म सिद्ध वेद जो वंशपरम्परा से प्राप्त हुआ है उसके बदले उसके महावाक्य का उपदेश लेकर चिंतन और मनन करते हैं। उसे अवश्य ग्रहण करना ही पडेगा। श्रीशङ्कराचार्यजी ने वेदचतुष्टय को दिक्चतुष्टय में विभाग कर हर एक दिशा के लिए कर्मकान्ड के अनुसार हर एक वेद एवं उस महावाक्य की नियुक्ति की। पन्डितजी यदि कर्मकान्ड के विवरण को देखें तो इस विषय का ज्ञान एवं कारण स्वच्छ मालूम हो जायगा।

श्री मच्छङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार पीठ के आचार्य ही शङ्कराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक अज्ञानी से लेकर प्रकान्ड विद्वान तक इसी नाम से पुकारते हैं। यह विषय सार्वजनिक है। "कृताधिकारा आचार्या धर्म तद्वदेवहि। अस्मत् पीठे समारूढः परिव्राडुक्त लक्षणः॥ अहमेवेति विज्ञेयो यस्यदेव इतिः श्रुतेरिति परम गुरुक्तेः"।

मालूम पडता है कि पन्डित जी का ज्ञान श्रुति, स्मृति में भी कुछ कम है। योगपट्ट दसनाम अनादिकाल से है। बीच में अनेक मत मतांतर के झगडे में लुप्त हो गये थे। श्री शङ्कराचार्य जी ने उसे पुनरुद्धार कर उसमें नवीन जीवन दिया न कि उन्होंने नयी खोज करके दस नाम प्रतिष्ठित की जैसा कि हमारे पन्डित जी का कथन है। इन दसों में कोई बडा छोटा नहीं है। सब समान ही हैं। पर "इन्द्रसरस्वती" योगपट्ट दसविध सम्प्रदाय के बाहर ग्यारहवां नाम यति धर्म प्रकाश (चन्द्रिका,

प्रबोधिनी), विश्वेश्वरस्मृति, वैद्यनाथ दीक्षित कृत धर्म शास्त्र एवं यतीन्द्रचरितामृतमहोदधि ग्रन्थों में नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि यह नाम केवल नवीन है। यह अभिमान से परिकल्पित एवं नवीन होने की पुष्टी "यतिधर्म निर्णय" करती है। पन्डित जी का कथन जो 'इन्द्र' शब्द विशिष्टतरत्व का परिचायक है सो भूल है। क्या स्मृति कर्ता सब तरुणावस्था के वेग से ही चंचलता के कारण छोड दिये हैं? पन्डित जी, जरा इस पर विचार करें। क्यों नहीं विशिष्टतरत्व होने की पुष्टी श्रुति, स्मृति वाक्यों से करते हैं। श्रेष्ठतरत्व का परिचायक तभी हो सकता है जब वह उत्तर पद हो जैसे नरेन्द्र, मृगेन्द्र, गजेन्द्र, राजेन्द्र इत्यादि में है। वैसा परमशिवेन्द्र सरस्वती, चन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वती इत्यादि आस्पदों में नही है। मध्य पद होने के कारण 'इन्द्र' शब्द श्रेष्ठतरत्व का परिचायक कभी नहीं हो सकता।

पन्डित जी के अपार वेदान्त विचार पर क्या कहूं? उन्हें यह अभी तक पता हीं नहीं कि "महावाक्य" किसे कहते हैं? उसके लक्षण क्या हैं? पन्डित जी जान लें कि जीवब्रह्म ऐक्य बोधवाचक शब्द को ही महावाक्य कहते हैं। न कि जो केवल ब्रह्म का निरुपण करता है। शास्त्र सिद्ध चार वेद के चार महावाक्यों में जो महावाक्य का लक्षण घटता है वैसा क्या आप "ॐ तत्सत्" में सिद्ध कर सकते हैं? क्या शङ्कराचार्य जी तरुणावस्था के चंचल वेग से केवल चार महावाक्यों के भाष्य लिख गये और इसे भूल गये? 'शुकरहस्योपनिषद' 'मठाम्नायोपनिषद' एवं 'महावाक्य रत्नावली' में क्यों नहीं इस पांचवें का उल्लेख किया गया है। केवल चार ही क्यों लिखा गया है? गीता के 17 वें अध्याय में 23 वें श्लोक के भाष्य में 'ॐ तत्सत्' को महावाक्यों में क्यों नहीं रखा? कोई भी सन्यासी 'ॐ तत्सत्' को जपता नहीं। संग्रहीत पद क्या कभी महावाक्य हो सकता हैं? 'यः शास्त्रविधि मुत्सृज्य वर्तते काम कारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्'। पद संग्रह कर उस कपोल कल्पित महावाक्य को जपना निष्फल है। न सुख न परांगति हीं है। इसलिए पन्डितों को ऐसे वेद व उपनिषद् विरुद्ध प्रयत्नों में लगना उचित नहीं है।

पन्डित जी का कहना 'ऐतिह्य' की अपेक्षा अनुमान अधिक विश्वास पात्र माना गया है, सो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है। जब विषय शास्त्र सिद्ध हैं तो अनुमान की क्या आवश्यकता है। 'योवमन्येततेतूभे हेतु शास्त्राश्रयो द्विजः ससाद्धुभिः बहिष्कार्यः नास्तिको वेदनिन्दकः' (उभे श्रुति, स्मृति) (मनुः); 'एतैर्यानि प्रणीतानी धर्म शास्त्राणिवै पुरा। तान्येतानि प्रमाणानि न हंत व्यानि हेतुभिः॥ यस्तानि हेतुभिर्हन्यात् सोंधे तमसि मज्जति।' (यमः); 'पुराणं मानवोधर्मः साङ्गो वेदश्चिकिर्तसतं आज्ञा सिद्धानी चत्वारी न हन्तव्यानि हेतुभिः।' 'इतिहास पुराणं पञ्चममिति श्रुतिः' (स्मृति चन्द्रिकायां) 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' (वेद) इत्यादि श्रुति, स्मृति, वचनों से अनुमान एवं हेतुवाद का खन्डन किया है। जब विषय शास्त्र सिद्ध नहीं होता तब अनुमान एवं हेतु की आवश्यकता होती है। यह विषय तो शास्त्र सिद्ध है।

पन्डित जी के कथनानुसार 'वही सन्यासी उत्तम श्रेणी का है जो आचार में उपदेश में आचार्यपाद के सिद्धान्त का अनुसरण करता है और वही शङ्कराचार्य है,' इसमें कोई आपत्ति नहीं है, केवल इतना हीं कहना है कि अनेक शङ्कराचार्य अब मिलने लगेंगें। दस को नित्य शङ्कराचार्य बनाना एवं गद्दी से उतारना ही पन्डित जी एवं उनके अनुयायीयों का अब आगे काम होगा। वैदिक वर्णाश्रम धर्मचार में पन्डित जी की दृष्टी से शायद ऐसा प्रमाण गोचर होता होगा।

अस्तु, मैं अपने लेख को यहीं समाप्त करता हूं। यदि मेरे इस लेख से पं० रमापति मिश्र जी एवं किसी अन्य को क्लेष मालूम हुआ हो तो में उनसे क्षमा मांगता हूं।

31. ब्रह्म श्री तेदियूर सुब्रह्मणिय शास्त्री से पत्र व्यवहार।

दक्षिण भारत में एक पन्डित ब्रह्म श्री तेदियूर सुब्रह्मणिय शास्त्री जी ने जो तंजौर जिले के निवासी थे, अपने पत्रिका 'सम्मार्ग प्रदर्शनी' में मेरे पिता जी से प्रकाशित 'शाङ्कर मठ विमर्श' पुस्तक की समालोचना की है। यह मई माह 1935 के अङ्क में प्रकाशित है। इस शास्त्री जी द्वारा ता० 16-4-35 से लेकर ता० 24-7-35 तक लगातार पत्र व्यवहार होता रहा। एक समय आपने ललकार कर लिखा था कि आप वादविवाद द्वारा कुम्भकोण मठविषयक प्रचारों को सिद्ध करने तैय्यार हैं। मैंने उनको लिखा था कि वे हमारे खर्चे से काशी आ सकते हैं और आपको पुरस्कार भी दी जायेगी यदि आप हम लोगों को पराजित कर दें। मैं और मेरे पिता ने आपको एक विमर्श लिखकर भेजा था। उक्त पन्डित के विमर्श पर खण्डन एवं मठविषयक विवादों पर उत्तर मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' में पाठकगण पायेंगे। यह शास्त्री 24-7-35 के पत्र में लिखते हैं:

> "मेरे सिद्धान्त के अनुसार देवता भी शृंगगिरि आचार्य पाद के मुकाबले में बडा नहीं है। मैं इसी भाव से उपासना कर रहा हूं। यह सत्य है।" आगे लिखते हैं "एक मध्व सम्प्रदाय विद्वान के साथ स्वयं मुझे एक राज सभा में वादविवाद करने का अवसर मिला। परन्तु वह मध्व जगत् मिथ्या है इसको समर्थन करने का आरम्भ किया। उसका प्रतिवादी मैं जगत सत्य है उस पर विवाद करना प्रारम्भ किया। इससे जगत मिथ्या के सिद्धान्त किये हुए आदि शङ्कर भगवत्पाद के अद्वैत सिद्धान्त से क्या मैं चुत हो जाऊंगा।" आगे आप लिखते हैं 'खण्डन, विमर्श, प्रश्नों का उत्तर आदि केवल वाद निमित्त ही मैं ने किया है। लौकिक व्यवहार में विवाद करना मेरा कर्त्तव्य है ऐसा मैं समझता हूं। यथार्थ चाहे जो हो।"

इस पत्र में और भी विषय हैं और मैं इतना ही यहां उद्धृत करता हूं। इस पत्र से यही मालूम होता है कि उनका वाद विवाद केवल व्यवहार रीति के लिए है पर यथार्थता एवं स्व विषय के लिए दूसरा ही सिद्धान्त है। उन्होंने इन उदाहरणों से अपने खण्डन की सत्यता प्रकट की है। वे सिद्धान्त को जानते हुए भी आप "केवल वाद निमित्त ही" जैसा आपने अपने पत्र में लिखा है अपने खण्डन को प्रकाशन किया है।

ब्रह्म श्री तेदियूर सुब्रह्मणिय शास्त्री जी ने एक पुस्तक "श्री शङ्कर विजयम्" शीर्षक प्रकाशित किया है। (दूसरा सम्सकरण—फरवरी 1951 और प्रायः इस पुस्तक का प्रथम प्रकाश मई 1944 था)। शास्त्री जी इस पुस्तक में श्री शङ्कराचार्य का चरित्र लिखते समय लिखे हैं कि श्री शङ्कराचार्य श्री शिवगुरु आर्याम्बा दम्पति के पुत्र थे। आपका जन्म व निवास स्थल कालटी था। सर्वज्ञ पीठारोहण काश्मीर में उल्लेख है। इस पुस्तक के पृष्ट 43 में उल्लेख है कि केवल चारों दिशाओं में चारों वेद के लिए चार शिष्यों को चार मठों पर प्रतिष्ठित कर तथा उसकी पद्धति बनाकर स्वयं बदरीकाश्रम पहुंचे। श्री शङ्कर से लाये 5 लिङ्गों को 4 मठों में पूजा के लिये देकर एक लिङ्ग चिदम्बर क्षेत्र में प्रतिष्ठा किया। तत्पश्चात् बदरीकाश्रम से श्री शङ्कर ने कैलास गमन किया। मेरे पिता से प्रकाशित "शांकर मठ विमर्श" पर शास्त्री जी ने अपना खन्डन विचार 1935 में प्रकाशित किया और 1944 में आपने सिद्धान्त को बदल दिया ऐसा आपकी पुस्तक से मालूम होता है। इस पुस्तक में कांची का विवरण नहीं है। उन्होंने न बताया कि कांची में मठ का निर्माण व सूर्वज्ञपीठारोहण और निर्याण हुआ।

श्री तेदियूर सुब्रह्मणिय शास्त्री ने 'शांकर भाष्य सारम्' शीर्षक लेख में केवल चार महावाक्यों का उल्लेख किया है और माधवीय शङ्करविजय को प्रमाणिक ग्रंथ भी माना है। पर आपने 'सन्मार्ग प्रदर्शमी' पत्रिका में 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श' पुस्तिका पर आलोचना करते हुए भगीरथ प्रयत्न कर 'ॐतत्सत्' को उपदेष्टव्य महावाक्य होने की कथा सुनायी है। क्यों नहीं इस समय उक्त लेख में 'ॐतत्सत्' को भी मिला लिया? क्यों अपने केवल चार उपदेष्टव्य महावाक्य होने का सिद्ध किया है? काशी के प्रकान्ड विद्वानों ने 1935 ई० में 'ॐतत्सत्' को महावाक्य न होने की व्यवस्था दी है तो अब यह पन्डित कुम्भकोण मठ के प्रभाव से दबकर 'ॐतत्सत्' को महावाक्य बनाने चले थे और पुनः इसे महावाक्य न होने की प्रचार भी किया। सम्भवतः कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वान होने से आपनी अपनी इच्छा विरुद्ध भी काम करना पडा हो। ऐसे पन्डितों के सिद्धान्त व खण्डन का क्या मूल्य है?

32. प. प. श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 श्री भागवतानन्द मण्डलेश्वर से पत्र व्यवहार।

ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी भागवतानन्द जी मन्डलेश्वर, कनखल, हरिद्वार, और अन्य 12 यतियों व ब्रह्मचारियों के हस्ताक्षर के साथ एक ट्रक्ट रूप में 'जगद्गुरु शङ्करमठ निर्णय' शीर्षक अप्रैल 9, 1935, में प्रकाशित किया। इसमें "श्री मज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श" के हस्ताक्षरियों को क्षुद्र बतलाया गया है। इस निर्णय को "शङ्करपीठ तत्वदर्शन" में प्रकाशित किया गया है। मैं ने श्री स्वामी भागवतानन्द मन्डलेश्वर जी को एक पत्र 7/8—2—36 को लिखा था। उनसे प्रकाशित "शांकर मठ निर्णय" पर शास्त्रीय आक्षेप प्रश्न पूछे गये थे, उसके उत्तर में मन्डलेश्वर जी ने 14—2—36 को एक पत्र भेजा था और अपना दुःख प्रगट किया था। पत्र का नकल मैं यहीं नीचे देता हूं ताकि पाठकगण यह अच्छी तरह जानलें कि कुम्भकोण मठानुयायि किस प्रकार सत्य विषय को छिपाकर आपसे हस्ताक्षर लिया था और अब दोनों पक्षों के विषयों को जानने के बाद उन्होंने अपना निर्णय भी दिया। उन्हीं का पत्र उनके द्वारा प्रकाशित व्यवस्था का खन्डन करता है। मेरा पत्र 7/8—2—36 तारिख का:—

श्री पूज्यपाद श्री 108 श्री स्वामी जी महाराज के चरणों में मेरा सादर अनेक वन्दन।

आप महाराज के नाम से 'श्री जगद्गुरु शङ्कर मठ निर्णयः' एक ट्रक्ट श्री जयकृष्णदास गुप्त, बनारस सिटि के यहां से प्रकाशित मैं ने देखा। देखकर मुझे आश्चर्य एवं शंका अति बढ़ गई। आश्चर्य इस विषय का है कि किसी आधार विना एवं शास्त्र विरुद्ध बातें आप महाराज ने दिखाई है, एवं शंका इसलिये हुई कि आप सरीखे महान् लोग भी क्या सचमुच यह व्यवस्था दी है। मैं ने उस ट्रेक्ट के विषय में श्री पूज्यपाद श्री 108 ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वरूपानन्द जो, महामण्डलेश्वर जी महाराज, टेढीनीम, श्री काशी, एवं श्री पूज्यपाद श्री 1008 श्री शङ्कराचार्य जी भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज, पुरी गोवर्धन मठ के जगद्गुरु से बातचीत की। श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज ने स्पष्ट रूप से मुझसे कहा कि आद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार ही मठ हैं और अन्य कोई पांचवां नहीं है। श्री स्वामी जी महाराज ने यह भी कहा कि श्री स्वामी श्री 108 श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज का सम्मति केवल चार मठ होने का है और मुझे आश्चर्य हो रहा है कि किस अधार पर आप महाराज ने मान लिया कि इस कांची कामकोटि मठ को आद्य मठ एवं श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित किया हुआ है। श्री स्वामी स्वरूपानन्द महाराज जी ने यह भी मुझसे कहा "पं० चिन्नस्वामी शास्त्री, कांची कामकोटि मठ के शिष्य, एक निर्णय पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए अनुरोध किये, पर मैं ने चूंकि कोई आधार न था हस्ताक्षर नहीं किया।" श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने भी अपनी सम्मति चार मठ होने की

सम्मति दी है और महाराज जी ने यह भी कहा कि इस अर्द्ध कुम्भ मेला के शुभ अवसर पर यह विषय जब सन्यासियों के अन्दर छिडा तो चार ही मठ होने की राय सब माननीय परिव्राजकों ने प्रकट की। श्री शङ्कराचार्य महाराज जी ने भी इस के पूर्व अपनी सम्मति एक तार द्वारा दी थी कि आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार ही मठ हैं और यदि कांची मठवाले (कुम्भकोणम्) अन्य कहें तो आधार मांगो। "Yours received. Adi Shankaracharya's all biographies mention only Govardhan mutt, Shringeri mutt, Dwaraka mutt and Jyotir mutt as established by himself. If Kumbakonam claims otherwise ask for original authorities."

"काषाय दण्ड मात्रेण यतिः पूज्यो न संशयः।" उस काषाय वस्त्र एवं उस आश्रम का गौरव कभी किसी समय जा नहीं सकता। वे सदा सबके पूजार्ह ही हैं। इस आश्रम के आशीर्वाद से ही हम सब किसी प्रकार स्वधर्म में दिन बिता मोक्ष की राह खोज करते हैं। श्री कांची कामकोटि मठ के श्री स्वामी जी इस हैसियत से अवश्य पूज्य हैं। आप एक अद्वैत मठ के मालिक एवं पढे विद्वान हैं। इसके लिये भी आप पूजार्ह हैं। इसका अर्थ पर यों न होगा कि आपका कांची कामकोटि मठ शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गुरु मठ है। यदि साधु संन्यासी के नाते से श्री काशीधाम पधारे होते तो किसी को कोई आपत्ति न थी पर उनके आते-आते नीचे दिये हुए विषयों का घोषणा पत्र, पुस्तक, ट्रक्टों नोटिसों द्वारा अपने कर्मचारी एवं शिष्य मंडलियों से कराई गई।

(1) 'मेरा कांची कामकोटि मठ ही श्री मज्जगद्गुरु मठ एवं श्री आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गुरु पीठ है और अन्य चार मठ शिष्यों का है और वे केवल श्री गुरु पदवी के अर्ह हैं' यह विषय लीडर, पन्डित पत्र, श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य नामक पुस्तक (मठ के कार्यकर्त्ता से प्रकाशित), श्री मुख दर्पण, जगद्गुरु परम्परा, श्री शङ्कराचार्य इत्यादि अनेक ग्रन्थों में पायी जाती है। इसके अतिरिक्त अनेक पुस्तकें जो मठ से प्रकाशित हैं उन सबों में भी यह विषय पाई जाती है। जगह के कमी के कारण ही मैं पुस्तकों का सूचीपत्र न दे पा रहा हूं।

(2) मठाम्नाय स्तोत्र ग्रन्थ झूठ है और एक मठाम्नाय सेतु के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें श्री कांची कामकोटि मठ का आम्नाय पद्धति यों दिया है :—

आम्नाय——मौलाम्नाय। मठ——शारदा मठ। वेद-ऋग्वेद। सम्प्रदाय-मिथ्यावार। आश्रम-इन्द्र सरस्वती। महावाक्य-ॐ तत्सत्। मठ-गुरु मठ।

(3) श्री शङ्कराचार्य जी ने चिदम्बर क्षेत्र में जन्म लिया, उनके पिता माता का नाम विश्वजित एवं श्रीमती था। (आनन्दगिरि शङ्करविजय के अनुसार)

(4) सर्वज्ञपीठारोहण वजाय काश्मीर में श्री आदि शङ्कराचार्य जी ने कांची ही में की और उनकी कैलास गमन कांची ही से हुई।

(5) कई वर्षों श्री कांची कामकोटि मठ के अधिष्ठाता हो मठ के कामों को देखा करते थे। इत्यादि... ... ...।

इस प्रकार के अनेकानेक विवादास्पद विषय मुद्रालय द्वारा निकलने लगा। काशी के परिव्राजकों एवं पंडित लोगों ने निस्पक्षपात से इन भ्रामक प्रचारों का घोर विरोध किया। कामकोटि मठ के श्री स्वामी महाराज से इनका निराकरण करने की प्रार्थना की जिसके उत्तर के तौर पर उन्होंने कह दिया कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' और शिष्य लोगों का लिखना बिलकुल ठीक एवं सत्य है। बजाय निराकरण करने के, इन भ्रामक प्रचारों द्वेष मूलक का समर्थन किया और उत्तर ठीक न मिलने के कारण, भ्रामक प्रचारों का प्रचार रात दिन बढने लगा तो विवश हो इसका शास्त्रानुकूल व्यवस्था करने का समय आया, नहीं तो हमलोगों में किर्रि नहीं लगी हुई थी कि व्यर्थ साधू सन्यासियों से छेड छाड करें। इससे हमलोगों को क्या प्रयोजन था। अब भी यही मन्शा है कि भ्रम का निवारण हो। अब आप महाराज, मैं विश्वास करता हूं, कि समझ गये होंगे कि "विमर्श" छपवाने की क्या आवश्यकता पडी। किसने पहले इस विषय को छेडा एवं क्षुद्र लोगों का काम किनका है।

मुझे पता नहीं लगता कि आप महाराज ने किस आधार पर "निराधार, द्वेषमूल, सद्धर्म प्रचार के बाधक" ये सब विशेषण "शाङ्करमठविमर्श" के लिये जोडी है। शास्त्र रीति से उत्तर देकर हम लोगों के भ्रम को निवारण कर देते तो यह भ्रम कब ही दूर हो जाता और शङ्का की जगह रह न जाती। हमलोग मूर्ख एवं क्षुद्र नहीं हैं कि शास्त्र रीति की बात को न मानें। क्या आप महाराज उनके भ्रामक प्रचारों को जिनमे से मैं ने तीन या चार यहां दिये हैं, मानते हैं? क्या इनका प्रचार सब आधार, द्वेषरहित एवं सद्धर्म प्रचार हैं? आप महाराज जी ने शिवरहस्य की प्रति देखी है? मेरे पास करीब 10 प्रतियां हस्तलिखित, मुद्रित एवं अमुद्रित ग्रंथ हैं। पर जो शिवरहस्य कांची मठवालों ने छपवायी है और जिसे आधार रूप से सबों को दिखाते हैं उसमें और मेरे पास की पुरातन प्रतियों में बहुतसे अन्तर हैं। श्री 1008 श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य जो श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने भी मुझे शिवरहस्य की एक प्रति दी है जो कि कामकोटि मठ के छपवाये हुए प्रति से फरक है। अन्तरों का कुछ ब्यवरा मैं यहां देता हूं।

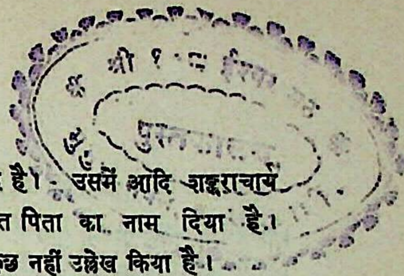
(1) अनेक शब्दों का जोड, उडान एवं नवीन बना बैठाया गया है। जगह के कमी के कारण पूरा ब्यवरा दे नहीं सकता। यदि महाराज की आज्ञा हो तो मैं पूरा शिवरहस्य (16 वां अध्याय) का नकल भेज सकता हूं।

(2) जहां श्री ऋष्य शृङ्गगिरि का वर्णन है करीब 2½ श्लोक उसे कामकोटि मठवालों ने उडा दिये हैं। "दुर्वासः शापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्यताम्। अगस्त्य चरिते देशे तुङ्गातीरे सुनिर्मले॥ पुण्यक्षेत्रे द्विजवर स्थापयित्वा सुपूजय। यत्रास्ते ऋष्य शृङ्गस्यमहर्षेराश्रमो महान्॥ कलावपि ततो द्वैत मार्गः ख्यातो भविष्यति।"

(3) 'तद्योगभोगवरमुक्तिसुमोक्ष योग लिंगार्चनात्प्राप्त जय सकामम्। तान्वै विजित्य तरसाक्षत शास्त्रजालैः मिश्रांसकांच्यामथसिद्धिमाप'। इस 45 वें श्लोक के भिन्न पाठान्तर मिलते हैं। "सकामम्" को "स्वकाश्रम" द्वितीयान्त और 'कांच्यांमथसिद्धिमाप' के जगह "नैजमवापलोकम्" "ततोलोकमवाप शैवम" आदि पाठान्तर हैं। 'स्वकाश्रम' द्वितीयान्त किसप्रकार 'कांच्यां' सप्तमी का बोध कर सकता है? "स्वकाश्रम" भी सप्तमी अर्थात् "स्वकाश्रमे" होनी चाहिये, सो भी नहीं है। "कांच्यांमथ सिद्धिमाप" को ही आधार मानें तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने शरीर का त्याग वहां किया है। उनकी

तपस्या की सिद्धि एवं अवतार की कार्य समाप्ती की सिद्धि ही कह सकते हैं न कि उन्होंने वहां मठ का निर्माण किया और कुछ काल तक वहीं रहकर बाद वहां से कैलास सिधारे। आप महाराज ही सत्य बतलाइयेगा कि क्या आपने ऐसा समाचार कभी सुना है। यह सब शङ्कर विजयें एवं अनेकानेक ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं कि श्री आदि शङ्कराचार्य ने अपने कार्य समाप्ति के पश्चात् 32 वें वर्ष में हिमालय से (केदार बदरीकाश्रम के नजदीक) वृषभारूढ कैलास गमन किये। तो आप मुझे बतलाइयेगा कि किस आधार पर आपने कांची मठ के निर्माण के विषय में शिवरहस्य को आधार ठहराया है? कांची मठवालों ने 16 वां अध्याय इस 45 वें श्लोक के बाद खतम कर दिया। पर इसके ऊपर और 13 श्लोकें हैं जिसको मैं ने एक पुरातन लिखित (17 वीं शताब्दी) शिवरहस्य ग्रंथ में देखा। शिवरहस्य में भी स्पष्ट रूप से हिमालय से ही कैलासगमन एवं चार मठों की स्थापना बतलाई है। "यूयं चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैस्साकम् वसन्तित्युपदिश्य हर्षात् ॥ 54 ॥" कुल 16 वां अध्याय 60 श्लोकों का है। श्री आदि शङ्कराचार्य जी कुल 32 वर्ष जीवित थे। 16 वें उम्र में भाष्य की रचना के बाद 12 वर्ष शृङ्गेरी तुङ्गभद्रा नदी के किनारे भारती पीठ की स्थापना कर पूजा स्वयं शारदा की करते हुए शिष्य जनों को अपने बनाये हुए भाष्यों का उपदेश करते हुए रहे। बाद श्री सुरेश्वराचार्य को बैठा बदरीकाश्रम की तरफ बढे। इतने में इनकी उम्र 28 हो गया। बाद इन्होंने संचार की और चारों तरफ चार मठ की स्थापना कराकर तब हिमालय गये। तो अब आप महाराज बतलाइयेगा कि कितने वर्ष कांची कामकोटि मठ में स्वयं बैठे थे? श्री आदि शङ्कराजार्य जी ने तो कामाक्षी देवी जो बहुत उग्र थी एवं गुहा में वास करती थी, उनके उग्रता को शान्त कर एक श्री चक्र का निर्माण कर, राजसेन महाराज को कह कर एक मन्दिर बनवा कर पूजादि विषयों को ब्राह्मणों के हाथ देकर वहां से आगे बढे। न तो वे वहां मठ की (धर्मराजधानी) स्थापना की और न तो वहां ठहरे। उन्होंने अनेकानेक पीठों के मन्दिरों की स्थापना की है तो क्या सब मठ कहलाया जायगा? क्या सब मठाधीश जगद्गुरु हैं? उन्होंने तो चार धर्मराजधानी चार वेद के लिये चारों दिशाओं में स्थापना की है। मैं आशा करता हूं कि अब आप महाराज जान लिये होंगे कि किनका प्रचार निराधार, द्वेषमूलक एवं सद्धर्म प्रचार बाधक है।

आनन्दगिरि शङ्करविजय को क्या महाराज आपने अवलोकन किया है? किस आनन्दगिरि द्वारा विरचित शङ्करविजय है? कुल नामी पुस्तक रचयिता केवल तीन ही हुए हैं। (1) श्री आद्यशङ्कराचार्य के शिष्य श्री तोटकाचार्य अथवा आनन्दगिरि। आपने "तोटकछन्द वृत्तोज्ज्वलित श्रुतिसारसमुद्धरण कालनिर्णय" ग्रंथ मात्र की है। (2) श्री शङ्कराचार्य भाष्य के व्याख्या कर्ता एक अन्य आनन्दगिरि थे। आपने भी "अश्रौतमेदगिरिविदारकद्वैतन्यायनिर्णयाख्यव्याख्यानरूपशतधारविधायक "रूप में ग्रंथ केवल किया है। (3) एक आनन्दगिरि थे 12 वीं शताब्दी में। आपका नाम भी आनन्दगिरि था। आपने ही केवल शङ्करविजय लिखी है। आपका चरित्र ब्यवरा एवं इतिहास "विमर्श" के 77 वां पृष्ठ पर दिया गया है। श्री कामकोटिमठ के स्वामी जी से पूछने पर पता चला कि "एक आनन्दगिरि 80 वर्ष पूर्व थे और उन्होंने एक ग्रंथ लिखी है जिसकी लिपि मेरे मठ में है और मैं उसी को आधार मानता हूं।" इस पुस्तक को दिखाने के लिये तैय्यार भी नहीं हैं। परमात्मा जानें कि कौन ऐसे महापुरुष 80 वर्ष पूर्व थे जिनका इतिहास मठवाले ही जानते हैं। क्या महाराज आपने भी इनके बारे में सुना एवं इनके पुस्तक को पढा है? शायद इसी आधार से आपने इनके मठ को श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गुरुमठ बतलाया है? एक शङ्करविजय जो जे. विद्याभूषण ने कलकत्ता में (1881 ई०) छपवाई



है, जिसका नाम आनन्दगिरि अथवा अनन्तानन्दगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें आदि शङ्कराचार्य को "गुन्डगोळक" (विधवा का पुत्र), जन्म स्थल चिदम्बर एवं विश्वजित पिता का नाम दिया है। ऐसे द्वेषद्वैत से लिखी हुई पुस्तक में भी कांची कामकोटि मठ के विषय में कुछ नहीं उल्लेख किया है।

इसके अलावा वेदभाष्य कर्त्ता विद्यारण्य महामुनि के शङ्करविजय में क्या आप महाराज इनके मठ का निर्माण का उल्लेख दिखा सकते हैं? यदि विद्यारण्य महामुनि ने न नाम लिया हो तो इसका कारण क्या था? क्या कामकोटि मठवालों से द्वेष था, लडाई थी कि उन्होंने उस मठ का उस समय वर्णन नहीं किया? क्या इतने वडे महान् असत्य वोल सकते हैं? श्री चिद्विलास यति, सदानन्द, ब्रह्मानन्द लघुशङ्कर विजयों में भी इस मठ का व्यवरा नहीं दिया है। यदि उस समय जब कि इन पुस्तकों को लिखा गया था मठ की स्थति होती तो कोई कारण न था कि इन महान् इस विषय को छोड दें। श्री चिद्विलास यति ने अपने पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा है: "यस्त्वद्वैतमते स्थित्वा भारती पीठ निन्दकः। सयाति नरकं घोरं यावदाभूत संप्लवम्॥" क्या आप मानते हैं कि मठाम्नाय मिथ्या है? मठाम्नाय में तो केवल चार मठ की स्थापना की हालत बतलाई है। "दिग्भागे पश्चिमेक्षेत्रं द्वारका कालिका मठः। द्वितीयः पूर्व दिग्भागे गोवर्द्धन मठः स्मृतः॥ उत्तरस्यां श्री मठः स्यात् क्षेत्रं बदरीकाश्रमम्। तुरीयो दक्षिणस्यां च शृंगेर्यां शारदा मठः॥" इस मठाम्नाय में ऋग्वेद को जगन्नाथ के लिये वतलाया है। किस प्रकार कामकोटिवालों ने अपने मठ के लिये नूतन एक आम्नाय पद्धति बना सब नये विषयों को जोड लिया है? ऋग्वेद का महावाक्य "प्रज्ञानं ब्रह्म" है, न कि "ॐतत्सत्"। "ॐतत्सत्" किस प्रकार महावाक्य माना गया? महावाक्य का लक्षण क्या उसमें घटित है? वह तो केवल ब्रह्म निरूपण शब्दों का संग्रह है जैसा कि भगवान् गीता में स्पष्ट बताया है। ॐ, तत्, सत्, तीनों ब्रह्म का निरूपण करता है न कि जीव ब्रह्म ऐक्यबोध वाचक वाक्य है। "शुकरहस्योपनिषद" (108 उपनिषदों में एक)—उसमें में भी केवल चार महावाक्यों का उल्लेख किया है। श्री आदिशङ्कराचार्य यजुर्वेदी थे, यह सब पर विदित है, पर कामकोटि वालों ने श्री शङ्कराचार्य को ऋग्वेदी बना डाला है। पता नहीं किस आधार पर।

इस "विमर्श" पुस्तक को जिसे आपने "निराधार, द्वेष मूलक, एवं सद्धर्म प्रचार बाधक और क्षुद्रों" का काम बतलाया है, उसे सारे भारत वर्ष में अनेक मठाधिपतियों, महन्तों, शङ्कराचार्यों, परिव्राजकों एवं पन्डितों को भेजा था और सबों से अपनी अपनी सम्मति मांगी गई थी। अब तक करीब सैकडों के हिसाब से व्यवस्थायें आ पहुंची हैं पर एक ने भी इस प्रकार सम्मति न दी जैसे कि आपने दी है। इसका कारण आप महाराज जानें एवं परमात्मा जाने।

आप महाराज जानते होंगे कि श्रुति से प्रमाणित योगपट्ट केवल दस ही है जो कि 'दसनामी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर आपका ग्यारहवां नाम "इन्द्र सरस्वती" कहां से निकला? "तीर्थाश्रमवनारण्य गिरिपर्वतसागराः। सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैवहि।" पूछने पर पता चला कि "यतिधर्म निर्णय" पुस्तक में इस योगपट्ट का उल्लेखन है पर उसी पृष्ठ में स्पष्ट लिखा है कि "पूर्वोक्त तीर्थाश्रमानां मध्ये केशाञ्चित् नाम्नां स्वशीलाचार मत्ताभिमानेनजाताः सम्प्रदायाः ...." अभिमान से परिकल्पित यह एक ग्यारहवां नाम है जैसा कि अभिमान से इनका मठ किसी महान् ने श्री शङ्कराचार्य के काल के बहु वर्ष के बाद स्थापना किया था, उसी प्रकार योगपट्ट भी परिकल्पित है। "यतिधर्म प्रबोध, समुच्चय एवं विमर्श" आदि पुस्तकों में इसका उल्लेखन है ही नहीं। श्री विश्वेश्वर स्मृति में भी बिलकुल इनका नामों निशान नहीं है। किस आधार पर आप इसे शास्त्रानुकूल कहते हैं।

आपने अपनी सम्मति में यह लिखा है कि "मैं ने विमर्श ग्रन्थ को पूरा पढ लिया है।" यदि ध्यान पूर्वक अपनी बुद्धि दौडाकर पढा हो तो कभी "क्षुद्र" शब्द का प्रयोग न करते। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि कृपया दूसरी बार सूचित भागों को पढ़ें ताकि "क्षुद्रता" का असल झलक जिन पर हो सो झलक जाय।

आप महाराज ने क्या "प्राचीन शङ्कर विजय" देखा है एवं पढा है? यदि हो तो कृपया मुझे लिखियेगा ताकि मैं भी कम से कम उसका स्वरूप तो देख लूं।

इन सब विषयों पर अपनी बुद्धि दौडाने से यही प्रतीत होता है कि इनका मठ अवश्य शङ्कर मतानुयायी मठों में से एक है, किसी महात्मा से स्थापित भी है पर आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित एवं गुरु मठ नहीं है। यदि हो तो क्या जगद्गुरु श्री 1008 श्री श्रृङ्गेरी, जगन्नाथ एवं द्वारका ; पूज्यपाद श्रीस्वामी जी स्वरूपानन्द जी महाराज ; पूज्यपाद श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज ; अखिल भारतवर्षीय परिव्राजकों पन्डितों एवं 50 वर्ष पूर्व काशी के दिग्गज पन्डितों एवं सन्यासियों का निर्णय व्यर्थ है? क्या वे नही जानते थे, अज्ञानी थे? क्यों नहीं वे सब मानते हैं? क्या उनसे रागद्वेष है? इसका कारण महाराज आप ही बतलाइयेगा। मैं तो बडे सन्देह में पड गया हूं। मुझे किसी प्रकार का आधार नहीं मिल रहा है। कृपया "विमर्श" के 71 वें पृष्ठ पर दिये हुए प्रश्नों को एक बार पढ जाइयेगा। यदि आप महाराज कृपाकर मेरे इस भ्रम को दूर कर दें तो मैं आपका कृतज्ञ हूंगा। अति शीघ्र मैं अखिल भारतवर्षीय सन्यासी पन्डितों का निर्णय छपवाऊंगा और आप महाराज से प्रार्थना है कि उसके छपने के पूर्व कृपा कर अपनी सम्मति मुझे नीचे दी हुई पता में लिख भेजें। उत्तर के लिए मैंने इस पत्र के साथ 5 पैसे टिकट भी रख दिया है ताकि आप महाराज स्वयं अथवा अपने शिष्यों द्वारा लिखाकर अपनी सम्मति शीघ्र भेज दें। इति शुभम्। राजगोपाल शर्मा।

श्री 108 ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी भागवतानन्द मण्डलेश्वर जी, (काव्य सांख्य योग वेदान्त तीर्थ, वेदान्त वागीश, मीमांसाभूषण, वेदरत्न, इत्यादि) कनखल, हरिद्वारवासी, श्री काशी धाम से, ता० 24—2—36 के पत्र का नकल :—

सद्विचार परायण श्री युत पण्डित राजगोपाल शर्मा महोदय। नारायण। पत्र मिला। आपके बृहत्पत्र के देखने से ज्ञात होता है कि आपने इस सम्बन्ध में विशेष गवेषणा की है। मैं ने जो कुछ लिखा है वह केवल कुछ लोगों के विश्वासवश से ही लिखा है। मैं ने शिवरहस्यादि हस्तलिखित ग्रन्थ नहीं देखे।

काशी में काशी नरेश एवं बहुत से विद्वानों द्वारा जो संमानित हुए हैं, उनके सम्बन्ध में संशय कैसा? यह एक विश्वास का कारण है। मैं ने इसकी प्रशंसा पंजाब में सुनी थी। उस समय मैं लाहौर में था, सम्भवतः पन्डितपत्रादि इनके मुखयशोगान करने वाले हैं, जिन्होंने मुझे ये सब बातें बतलाई है। उन्होंने इनके सम्बन्ध में मतभेद एवं दलबन्दी की कोई चर्चा नहीं की और इनके शङ्कराचार्यत्व के विवाद की बात तक नहीं की। यदि प्रथम मुझे इस परिस्थिति का परिचय होता तो मैं ऐसी व्यवस्था न देता। काशी के प्राचीन विद्वानों ने व्यवस्था दी है इसका मुझे पता नहीं था। 'बुद्धेः फलमनाग्रहः' की नीति के अनुसार मुझे इसका कोई आग्रह नहीं है, वास्तव स्थिति का पता न होने से ही

ऐसा हुआ है। आप को मेरे लेख से जो मानसिक कष्ट हुआ है तदर्थं मुझे बडा खेद है, भविष्य में ऐसा न होगा, आशा है, आप सन्तुष्ट होंगे। और जनता को वास्तविक परिस्थिति से परिचित कर देना परमावश्यक है। मैं विद्वानो की व्यवस्था एवं प्राचीन मर्य्यादा का माननेवाला हूं, परन्तु धर्म प्रचारार्थ काशी से बाहर मुझे अधिक रहना पडना है, अतः काशी की कतिपय बातों से अपरिचित रहना आश्चर्यजनक नहीं है। मैं आपको एतदर्थ धन्यवाद देता हूं कि आपने मेरे संमुख सब बातें उपस्थित कर परिस्थिति से परिचय कराया है। मेरे से आप किसी प्रकार की शङ्का न करें, मैं सत्य का पक्षपाती हूं, परन्तु दुख के साथ लिखना पडता है कि विश्वासवश मैं ने इस विषय पर पूर्ण विचार एवं तत्सम्बन्धि ग्रन्थों का पूर्ण स्वाध्याय किये बिना ही मत प्रकाश किया है। ऐसे विवादग्रस्त विषयों का निर्णय विद्वन्मण्डली को स्वयम् सद्भाव से कर लेना चाहिये, इसमें पक्षपात नोटिसबाजी या परस्पर के कलह की क्या आवश्यकता है, यदि उन महापुरुष में शङ्कराचार्यत्व एवं तत्पीठाधीश्वरत्व मान्य है तो उनकी उसी रूप से पूजा होनी चाहिये, अन्यथा विद्वान यति के रूप में सत्कार होने में किसी की विप्रतिपत्ति हो ही नहीं सकती। समझ में नहीं आता ऐसे झगडों का क्या रहस्य है, सत्य तो छिपाया जा सकता नहीं। आप मेरे विचारों को समझ गये होंगे, मैं इस वादविवाद को यहीं समाप्त कर देना चाहता हूं, इस सम्बन्ध में मुझे कोटिक्रम असीष नहीं है। मैं अभी काशी में ही हूं, यदि और कुछ आप पूछना चाहें तो निःसङ्कोच पूछ सकते हैं। भवदीय—स्वामी भागवतानन्द मण्डलीश्वर, काशी देवी मठ, सप्त सागर, बनारस।

मैं श्री स्वामी भागवतानन्द मण्डलेश्वर जी से फरवरी, 1936 में काशीधाम में मिला और इस विषय पर आलोचना की। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि श्री आदिशङ्कराचार्य जी ने आम्नाय पद्धति अनुसार चार वेदों के चार महावाक्यों का चार दिशाओं में चार धर्मराजधानियां (मठ) स्थापित किया और उन्होंने स्वयं कहीं भी निज मठ की प्रतिष्ठा नहीं की और वे केदारक्षेत्र से निजधाम को पहुंचे। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनका पत्र प्रकाशित करूं ताकि सार्वजनिक लोग जान लें कि उन्होंने जो हस्ताक्षर "श्री जगद्गुरु शांकर मठ निर्णय" में किया है और बाद जिसे "शांकरपीठतत्वदर्शन" में प्रकाशित किया है उसे अब निराकरण कर, दोनो पक्षों के विषय पर आलोचना करके अब अपनी यथार्थं का निर्णय दिये।

33. स्वागत कारिणी सभा के कुछ सदस्यों का मठविषयक विचार।

श्री कुम्भकोण मठाधीश के काशीधाम आने के पूर्व एक वाराणसीय क्षेत्रिय स्वागत कारिणी समिति बनाई गई थी। पाठकगण इसके पूर्व पढे होंगे कि श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी एवं पं० ज० ग० विश्वनाथ शर्मा जी, इन दोनों ने अस्वीकृती पत्र कार्यकारिणी समिति के सदस्य पदवी से, लिखकर भेजे थे। इसी प्रकार अन्य 6 अस्वीकृति पत्र भेजे गये थे। इस स्वागत कारिणी समिति ने एक संरक्षक-मण्डली बनाई थी। इस संरक्षक-मण्डली के सात सदस्यों का विवरण नीचे देता हूं ताकि पाठकगण जान लें कि किस प्रकार यह स्वागतकारिणी-समिति ने अपने भ्रामक प्रचारों से एक षडयन्त्र रचकर एवं कुम्भकोण मठाधीश ने स्व मठ को श्रेष्ठ, प्रधान एवं प्रथम बनाने की चेष्टा की और इस प्रकार कुम्भकोण मठ के भ्रामक और मिथ्या प्रचारों की पुष्टी की।

(1) श्री 108 श्री शङ्कर स्वामी श्रीमदच्युताश्रम् स्वामी (शारदा पीठ, शाखा मठ, काशी) —— बिहारीपुरी मठ की सभा में 30—9—34 के दिन श्री स्वामी जी ने स्वयं पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी को उस सभा के सभापति

पद पर बैठने का प्रस्ताव करते हुए कुम्भकोण मठ के सम्बन्ध में उनके अनुयायीयों द्वारा होने वाले प्रचारों का इन शब्दों में विरोध किया और कहा :

" प्रसिद्ध चार प्रधान मठों के अतिरिक्त कुम्भकोण मठ को प्रथम प्रधान मठ मानना, जनता को धोखा देना है। मैं कुम्भकोण मठ के शङ्कराचार्य जी का काशी आने पर एक त्यागी विद्वान् प्रतिष्ठित सन्यासी होने के नाते से स्वागत करने के लिये तैय्यार हूं पर उन्हें केवल जगद्गुरु मानकर जनता की आखों में धूल झोंकना नहीं चाहता। मैं उनको जगद्गुरु मानकर उनका स्वागत करनेवालों का प्रथम विरोधी हूं। मठाम्नाय और श्री विद्यारण्य कृत शङ्करविजय ही प्रामाणिक पुस्तक हैं। इसके अनुसार आद्यशङ्कराचार्य जी ने चार ही मठ चार ही महावाक्यों चार वेद के लिए चारों दिशाओं में स्थापित किया है। उन्होंने पांचवां कोई भी मठ स्थापित नहीं किये और न उसके लिये उन्होंने कोई पद्धति ही बनायी " (सभा मंत्री का रिपोर्ट एवं ' सूर्य ' पत्र से उद्धृत)

ऐसे अभिप्राय रखनेवाले श्री मदच्युताश्रम स्वामी जी, न मालूम कैसे उनका नाम स्वागत कारिणी समिति के संरक्षक मण्डली के सदस्य बनाये गये। इनका अभिप्राय " सूर्य पत्र " में प्रकाशित हुआ है और श्री विहारीपुरी मठ की सभा के मंत्री का रिपोर्ट में भी यही अभिप्राय लिखा हुआ पाया। उस सभा के अन्य विद्वानों एवं परिव्राजकों ने भी यही अभिप्राय मुझे कह सुनाये। मार्के की बात है कि पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुष्टी नहीं करते और न आप कुम्भकोण मठाधीश को महागुरु मठ परम्परा मानते हैं। आपका अभिप्राय 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तक में प्रकाशित है। अतएव काशी शाखा मठ के श्रीस्वामीजी का अभिप्राय निजी अभिप्राय ही होगा यदि आप कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का समर्थन करें।

(2) श्री 108 पुरुषोत्तमाश्रम स्वामी जी (रामतारक मठ)——श्री स्वामी जी ने हम लोगों की बनायी व्यवस्था में स्वतन्त्रतापूर्वक दोनों पक्षों के विवादों पर पूर्ण आलोचना कर वाद हस्ताक्षर किया है। इनका भी अभिप्राय चार मठ का है। इन्होंने 'श्री 108 मदाद्यशङ्कराचार्य पूजा कल्पः', जिसे साङ्गवेद विद्यालय ने प्रकाश किया है, उस पुस्तक का प्रस्तावना लिखा है। इस पुस्तक द्वारा जो पंचम मठ सिद्ध करने का षडयंत्र रचा गया था उसका भन्डाफोड पत्र व्यवहार द्वारा किया गया। पाठकगण इसके पूर्व इस षडयन्त्र का विवरण पढ चुके होंगे। यह विषय "सूर्य" ता० 21—6—35 के अङ्क में प्रकाशित है। श्री स्वामी जी ने स्वयं अपने पत्र में अपना अभिप्राय दिया है।

(3) श्री 108 जयेन्द्र पुरी महाराज मण्डलेश्वर——श्री स्वामी जी महाराज उन दिनों काशी में न थे और मालूम नहीं किस प्रकार उनका नाम संरक्षक - मण्डली के सदस्य होने को दिया गया। जब मैं श्री 108 श्री स्वरुपानन्द जी मण्डलेश्वर से मिला और उन्हें सब प्रामाणिक पुस्तकें दिखाई और कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की पुस्तकों को दिखाये, उन्होंने कहा कि श्री स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी की सम्मति केवल चार मठ होने की है। कुछ दिनों बाद जब मैं 1008 श्री मज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज गोवर्धन मठाधीश से, टेढीनीम काशी में मिला था, उन्होंने भी मुझसे कहा कि श्री स्वरुपानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर एवं श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज मण्डलेश्वर का भी सम्मति चार मठ की है। बाद में ने यह भी सुना कि श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी ने एक पत्र भी स्वागतकारिणि - समिति को लिख भेजा था कि उनको यह पदवी (संरक्षक - मण्डली के सदस्य) अस्वीकार है। इस पर भी स्वागतकारिणी - समिति ने इनका नाम प्रकाशित किया। पं सीताराम शास्त्री जी ने एक पत्र श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी मण्डलेश्वर को लिखकर कुम्भकोण मठ के भ्रामक व मिथ्या प्रचारों का विवरण दिया था। आपका अभिप्राय भी पूछा गया था। उत्तर में आप लिखते हैं :—

"श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित केवल चार आम्नाय मठ हैं और काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात् भगवान शंकराचार्य हिमालय के केदार सीमा से ही निजधाम पहुंचे। इसके विरुद्ध जो कुछ प्रचार होता है सो सब अप्रमाणिक और अग्राह्य हैं। कुम्भकोण मठ के प्रचारों को देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।"

(4) श्री 108 श्री स्वरूपानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर, टेढी नीम, काशी——श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज से जब मैं मिला और उन्हें सब प्रामाणिक पुस्तकें दिखाई और कुम्भकोणम् मठ के भ्रामक प्रचारों की पुस्तकों को भी दिखाये तब महाराज जी ने स्पष्ट मुझसे कहा कि आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार ही मठ हैं और अन्य कोई. पांचवां नहीं है। श्री स्वामी जी ने यह भी मुझसे कहा कि "पं० विघ्नस्वामी शास्त्री, कांची कामकोटि मठ के शिष्य, एक निर्णय पर हस्ताक्षर करने के लिये अनुरोध किये पर मैं ने हस्ताक्षर नहीं किया चूंकि उस व्यवस्था के निर्णय के आधार एवं प्रामाणिकता न थी।" श्री 1008 श्री गोवर्धन मठाधीश जगद्गुरु श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने भी मुझसे कहा कि श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज का अभिप्राय केवल चार मठ होने का है। जब मैं श्री स्वामी जी श्री भागवतानन्द जी से फरवरी 1936 में श्री काशी में मिला तो उन्होंने भी कहा कि वे श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी एवं श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी से मिले और इस विषय की चर्चा की और इन दोनों मण्डलेश्वरों का अभिप्राय चार मठ होने का है। तथापि इनका नाम 'संरक्षक - मण्डली' में था। श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर का पत्र ताः 15—2—36 में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने आम्नायानुसार चार मठ ही स्थापना की थी और आपका कैवल्यधाम केदार क्षेत्र था। श्री स्वामी जी महाराज ने कुम्भकोण मठ प्रचारों पर कडी आलोचना भी की है। यह पत्र मेरे पास अब भी उपलब्ध है।

(5) श्री 108 श्री स्वामी श्री भागवतानन्द महाराज मण्डलेश्वर, हरिद्वार —— पाठकगण इसके पूर्व ऊपर दिये हुए श्री स्वामी जी के पत्र ता० 24—2—36 का पढें तो मालूम होगा कि सत्य किस जगह है। श्री स्वामी जी संरक्षक-मण्डली के सदस्य थे। वे उन दिनों काशी में थे नहीं।

(6&7) पं० श्री महावीर प्रसाद त्रिपाठी जी — विश्वनाथ मन्दिराध्यक्ष एवं श्री गो० शिवनाथ पुरी महाराज अन्नपूर्णाध्यक्ष :— श्री अन्नपूर्णाध्यक्ष जी विहारीपुरी मठ की सभा में आये थे और पं० महावीर प्रसाद त्रिपाठी जी शरीर बाधा के कारण सभा में आ न सके पर इन दोनों ने स्वतन्त्र रूप से उस सभा के निर्णय पर हस्ताक्षर कर बाद नोटिस रूप में छपवा कर प्रकाशित किया। कुम्भकोण मठानुयायियों का यह कहना कि दोनों सभा में नहीं आये, यह बिलकुल झूठ है। सभा के मंत्री का रिपोर्ट मेरे पास है और इससे प्रतीत होता है कि श्री अन्नपूर्णाध्यक्ष सभा में आये थे। इसके अलावा इनदोनों अध्यक्षों ने एक नोटिस "भ्रमनिराकरण" शीर्षक लिखकर प्रकाशित किया। इन दोनों का अभिप्राय भी चार मठ होने का है। पर इन दोनों का नाम संरक्षक-मण्डली के सदस्यों में था।

श्री महाराजकुमार महोदय विजयनगर और रा० ब० कवीन्द्र नारायण सिंह, ये दोनों स्वागत कारिणी समिति के स्वागत सभा-उप सभापति होने की घोषणा की गयी थी। ये दोनों महानुभाव काशी में कितने ही दिनों से उपस्थित नहीं थे फिरभी इनका नाम देकर जनता को भ्रम में डाल रहे हैं। कुम्भकोण मठाधीश के काशीक्षेत्र छोड चले जाने के बाद ही ये दोनों माननीय सज्जन काशी पहुंचे। जब मैं इन दोनों महानुभावों से मिला तो मालूम हुआ कि वे बिलकुल इस विषय से अजान थे। और ज्यादा नाम क्या दें, इसीसे स्पष्ट मालूम होता है कि मिथ्या प्रचार कर लोगों को भ्रम में डालकर बिना अनुमति के कई एक महानुभावों का नाम देकर सार्वजनिकों को भ्रम में डालकर अपनी इष्ट सिद्धि प्राप्त कर काशी में खूब षडयन्त्र रचा गया।

इन्हीं दिनों में मैं ने श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री 1008 श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज, गोवर्धन मठाधीश से मुलाकात की। श्री चरणों ने मुझे दो प्रतियां "शिवरहस्य" नवांश 16 अध्याय को दिया। ये दोनों प्रतियों का लेखन काल 16 वीं शताब्दी के थे। इसमें 60 श्लोक थे। श्री चरणों ने कहा कि उन्होंने इन प्रतियों को मिर्जापुर एवं लाहौर से प्राप्त की है। इन शिवरहस्य को (हस्तलिखित) जिन्होंने लिखा है, वे स्पष्ट इसका मूल एवं लेखनी वर्ष बतलाया है। कुछ महिनों बाद मुझे और एक प्रति शिवरहस्य नवांश 16 अध्याय की नकल प्रति श्री चरणों ने भेजा। यह प्रति भी 60 श्लोक के थे। इसका लेखन काल 18 वीं शताब्दी है।

34. पण्डित श्री माधव शास्त्री भण्डारी से पत्र व्यवहार

म० म० पं० श्री माधव शास्त्री भन्डारी जी (लाहौर ओरियन्टल कालेज) ने अपना अभिप्राय 'शाङ्करपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक परिशिष्ठम में प्रकाशित किया है। पं. माधव शास्त्रीजी को मेरे पिताजी ने 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श' पुस्तक भेजी थी। आपने मेरे पिता को एक पत्र ता० 23—2—36 भेजा था। इस पत्र के उत्तर रूप में मेरे पिता ने 5/7 मार्च 1936 को एक बृहत् पत्र लिखा था। बम्बई के पं० श्री रमापति मिश्र जी को भेजा हुआ पत्र जो सूर्य पत्र ता० 12—4—1935 के अङ्क में प्रकाशित हुआ है एवं मेरा पत्र ता० 7—2—1936 का जो प० प० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री 108 श्री भागवतानन्द मण्डलेश्वर को भेजा गया था और जिसका नकल पाठकगण इसके पूर्व पढ चुके होंगे, इन दोनों पत्रों के समान ही श्री माधव शास्त्री को भेजा हुआ पत्र था। इस पत्र में अनेक प्रमाणों को उद्धृत कर सिद्ध किया गया कि कुम्भकोण मठ का प्रचार असत्य है। आपसे उत्तर प्राप्त न हुआ और दो पुनः स्मरण पत्र भी भेजा गया था। पाठकगण उक्त दो पत्रों के विषय जान गये होंगे अतः उसे दोहराने से निष्प्रयोजन होने के कारण श्रीमाधव शास्त्री पत्र का नकल यहां दिया नहीं जाता है। सत्य विषय को जानकर श्रीमाधव शास्त्री चुप होगये। श्रीमाधव शास्त्री का अभिप्राय जो 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' परिशिष्ट में छपी है उसका उत्तर मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तक में पायेंगे।

35. पन्डितप्रवर श्री विजयानन्द तिवारी महोदय का पत्र।

'श्री शांकरपीठतत्त्वदर्शन' पुस्तक श्री के. कुप्पुस्वामी अय्यर (नुङ्गम्बाकम्, मदरास) ने भेजी थी और वह 1—4—1940 को रजिस्टरी डाक द्वारा प्राप्त हुई। इस पुस्तक के 25 वें पृष्ठ में लिखा है—'पं० श्री विजयानन्द तिवारी महोदया अपि सश्रद्धा एवं स्वहस्ताक्षराणि कृत्वा श्रीचरणेषु प्रणतिपत्रमर्पयामासुः।' इसके उत्तर में श्री विजयानन्दजी 21—4—40 को लिखते हैं—

॥श्री॥ सर्वलोक नमस्कृतेभ्यः सन्यासिभ्यः प्रणति पत्रार्पणम् न कथमप्य साम्प्रतम् भवितुमर्हति, तथापि परमहंस परिव्राजकाचार्याणाम् श्री कुम्भकोण मठाधीश्वराणाम् दर्शनस्य सौभाग्यमपि मेऽद्यावधि न सञ्जातम्, का कथातेभ्यः प्रणति पत्रार्पणस्य। अतः श्री शांकरपीठतत्त्वदर्शनेऽस्य विषयस्योल्लेखो रज्जुवामहि बुद्धिरिव भ्रममूलक एवेति। प्रमाणी करोति। विजयानन्द त्रिपाठी।

इन पत्रों से पाठकगण अब समझ गये होंगे कि कुम्भकोण मठानुयायियों, शिष्यों, भक्तों, कर्मचारियों, तथा प्रचारकों का क्या सत्य निर्णय है। सत्य का गला घोंट कर ऐसे कल्पित भ्रामक प्रचारों से ऐसी इष्ट सिद्धि प्राप्त करना महापाप है। न जाने और क्या क्या गुप्त रीति से कुम्भकोण मठानुयायियों ने की है। इनके किये हुए अनेक मिथ्या प्रचारों का भन्डा फोड प्रमाण पत्रों सहित पाठकगण श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श नामक पुस्तक में पायेंगे। किसी ने कहा है "सदाकत छिप नहीं सकती बनावट के वसूलों से। कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से॥"

36. कुम्भकोण मठ को भेजा हुआ प्रार्थनापत्र—निवेदकों में से कुछ निवेदकों का उत्तर पत्र।

'गंगादि तीर्थ विजययात्रा' पुस्तक के परिशिष्टम् में एवं 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' के 'निवेदनम्' के पृष्ठ 2 में एक प्रार्थना पत्र प्रकाशित है। इसी पत्र का उत्तर अब नीचे दिया जाता है। उक्त प्रार्थना पत्र के कुछ निवेदकों ने यह पत्र लिख भेजा था।

प्रार्थनापत्र में हमलोगों ने हस्ताक्षर किया था पर उस समय हमलोगों को और ही कुछ कथा कही गयी और यह षडयन्त्र पंचम मठ सिद्ध करने का बिलकुल न मालूम था। हमलोगों ने तो उन्हें एक विद्वान, तपस्वी, योगी, सम्पत्तिशाली, अद्वैतमतावलम्बी एक मठ के मठाधीश परमहंस सन्यासी की दृष्टी से ही विचार कर प्रार्थना पत्र में हस्ताक्षर किया था। यदि हम लोगों को पूर्व ही से बता देते कि श्री स्वामी कुम्भकोण मठ के साक्षात् आद्यशङ्कराचार्य के परम्परा में हैं एवं इनका मठ शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित एवं अधिष्ठित मठ है तो कदापि हमलोग इस प्रार्थना पत्र में हस्ताक्षर नहीं करते। हमलोगों को मालूम है कि श्री आद्यशङ्कराचार्य ने केवल चार ही धर्मराजधानि चार वेदों का चार दिशाओं के लिये स्थापना की है और उन्होंने अपने लिये कहीं पर भी मठ की स्थापना न की। मालूम होता है कि इस प्रकार सबों को भ्रम में डालकर हस्ताक्षर लिया गया है। श्री कुम्भकोण मठाधीश काशीधाम आने के पूर्व ही से एक पुस्तक में अनेकों द्वारा हस्ताक्षर लिया गया – उस समय न प्रार्थना पत्र तैय्यार था और न प्रणति पत्र। हर एक हिन्दू के हृदय में काषाय वस्त्र और दन्ड धारण करनेवालों सन्यासियों के प्रति सहानुभूति होती है, इसलिये अनेकों से प्रथम हस्ताक्षर मिलगया। शास्त्र सिद्ध प्रमाण युक्त जो विषय "श्री मज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श" में है उस पर हम लोगों की पूर्ण सम्मति है। प्रताप सीताराम शास्त्री—(न्यायाचार्य)। छल्ला सुब्बराव। श्री पूर्णगिरि महन्त।

37. कुम्भकोण मठानुयायियों से प्राप्त पत्र।

श्री के. आर. कृष्णमूर्ति अय्यर, कुम्भकोणम् निवासी ने ललकार कर मेरे पिता जी को पत्र लिखा था। पत्र व्यवहार ता॰ 5—1—45 से प्रारम्भ होकर 5—9—46 तक जारी रहा। हर एक पत्र का उत्तर भेजा गया और अन्त में मेरे पिताजी ने 5—9—46 को एक रजिस्टरी पत्र भेजा जिसका उत्तर अभी तक आ रहा है। इन पत्रों में मठविषयक विवाद था।

दक्षिण भारत से अनेक पत्र प्राप्त हुए। उनमें से कुछ योग्य पत्र थे जो सत्यान्वेषण के हेतु लिखे गये थे। यद्यपि ये सब कुम्भकोण मठानुयायी थे तब भी उनका पत्र भाषा सौम्य एवं गम्भीर था। इन सब पत्रों का उत्तर शास्त्र प्रमाण व न्याय युक्त दिया गया। कुछ वितण्डावादी भी पत्र थे और उनका भी उत्तर भेजा गया। कुछ ऐसे पत्र तामिल भाषा में प्राप्त हुए जिनको पढने से लज्जा एवं घृणा होती है। इन पत्रों में गन्दी भाषा में गालियां देकर घर के कुल स्त्रीयों के ऊपर भी गन्दी गालियां देकर लिखा हुआ था। ऐसे पत्र मेरे पास कई हैं। "परमशिवावतार" कुम्भकोण मठाधीश के शिष्यों के कर्तूतों का नमूना ऐसे पत्रों में था और धन्य हो! ऐसे गुरु महाराज की! श्री स्वामी जी के काशी भाषण 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' के अनुसार शायद श्री स्वामीजी की सम्मति इन पत्रों पर भी है। श्री स्वामीजी को ऐसे तीन पत्रों का नकल भेजकर प्रार्थना किया गया कि श्री स्वामी जी अपने चेलों को ऐसे कर्म से बन्द करा दें। पत्र का उत्तर न मिला। शायद ऐसे कुकर्मों में स्वामी जी की अनुमति भी हो।

38. कुम्भकोण मठानुयायियों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें तथा आलोचना।

मेरे पिता एवं उनके मित्र पं० प्रताप सीताराम शास्त्री जी से प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' (1935 ई० में) के उत्तर रूप में कुछ पन्डितों एवं एक श्री स्वामीजी (कुल चार सम्पादकों द्वारा) एक पुस्तक "श्री शांकरपीठतत्वदर्शनम्" नामक प्रकाशित किया है। यह पुस्तक मेरे पिताजी को 1—4—40 को रजिस्टर द्वारा मदरास से प्राप्त हुई। हर्ष का विषय है कि कम से कम इस पुस्तक के प्रकाशन से मुझे इनके पान्डित्य का ज्ञान हुआ और यह स्पष्ट मालूम हुआ कि किन आधारों पर ये लोग अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं। एक और पुस्तक "गंगादितीर्थ विजय यात्रा" शीर्षक जो अप्रैल 1936 में प्रकाशित है। चूंकि इस पुस्तक में श्री स्वामी जी का काशीयात्रा वगैरह का विवरण एवं कार्यक्रम सूचीपत्र यथार्थ और सत्य रूप में नहीं दिया गया है इसलिये मैं ने इस पुस्तक में जो कुछ काशीधाम में घटी सो उसे सत्य रूप में लिख दिया है ताकि पाठकगण पढकर सत्य को अच्छी तरह से जान लें। 1939 में एक पुस्तक 'Shri Shankaracharya the great and his connection with Kanchipuram' बङ्गीय ब्राह्मण सभा द्वारा प्रकाशित प्राप्त हुई। इसमें म० म० पं० पञ्चानन् भट्टाचार्य तर्करत्न जी की लिखी हुई एक व्यवस्था भी छपी है। इसका उत्तर एवं विमर्श तथा 'शांकरपीठ-तत्त्वदर्शनम्' पुस्तक का उत्तर और कुम्भकोण मठ द्वारा किये गये 150 वर्षों का भ्रामक व मिथ्या प्रचारों का उत्तर मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक में पायेंगे। म० म० पं० अनन्त कृष्ण शास्त्री जी एवं म० म० पं० पञ्चानन भट्टाचार्य तर्करत्न, इन दोनों पन्डितों का कर्तूत शिवकुमार भवन, कलकत्ता, की सभा में पढें तो मालूम होगा कि किस प्रकार बङ्गीय ब्राह्मण सभा ने पं० पञ्चानन तर्करत्न की व्यवस्था के साथ प्रकाशित किया। इसके पूर्व आप पढ गये होंगे कि कौन कौन सी चालबाजियां इन दोनों पन्डितों ने कलकत्ते में खेली। श्री पञ्चानन तर्करत्न जी द्वारा प्रचारित एक व्यवस्था जो बङ्गीय ब्राह्मण सभा, कलकत्ता, के नाम से प्रकाशित है, इसके भूमिका में लिखा है कि कुम्भकोण मठ के श्रीमुख में "अधिष्ठित" पद उल्लेख है और इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर पीठारोहण कर अधिष्ठित भये न कि कोई नवीन पीठ का निर्माण किया था। आगे लिखते हैं कि यहां का पीठ भागवत, तंत्र आदि ग्रन्थों में जैसा उल्लेख है वैसा ही यह प्राचीन पीठ है। इसके उत्तर में यही कहा जाता है कि हमलोग यह नहीं कहते कि 'कामकोटिपीठ' नहीं है। यह पीठ अनादि काल का है। इस पीठ की अधीश्वरी केवल कामाक्षी हैं न कि मनुष्य। मनुष्य मठाधिपति बनता है न कि पीठाधिपति जहां देव योनि सदा वास करते हैं। प्रश्न यह है कि क्या आचार्य शङ्कर ने कांची में एक आम्नाय मठ की, जिसे धर्मराज्य केन्द्र भी कहा जाता है, प्रतिष्ठा की थी? मठ व पीठ का अन्तर न जानकर लोगों की आंखों में धूल फेंका जा रहा है। हमलोगों का कहना है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ का निर्माण नहीं किया था। बङ्गीय ब्राह्मण सभा वाले कहते हैं कि कामकोटि पीठ आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित नहीं है पर अधिष्ठित है। कुम्भकोण मठ का मुद्रा उल्लेख करता है "श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद प्रतिष्ठित श्री कामकोटि पीठ" और इससे यही प्रतीत होता है कि बङ्गीय कृपा भाजन विद्वान जिस मठाधीश के प्रचार को आमोदन करने चले वही मठ अपने कृपाभाजन विद्वानों के प्रति प्रचार भी करते हैं। कुम्भकोण मठ के अनुयायी द्वारा 1957 में प्रकाशित पुस्तक "कांची कामाक्षी अम्बाल स्थलपुराणम वरलार" में कहा गया है कि कामाक्षी पीठ अर्थात् श्रीचक्र अनादि काल का है और आचार्य शङ्कर ने केवल इस पीठ (श्रीचक्र) का जीर्णोद्धार किया था न कि नवीन पीठ की प्रतिष्ठा की थी। इससे तो यह प्रतित होता है कि कुम्भकोण मठ के मुद्रा में जो पद "प्रतिष्ठित" है सो भूल है चूंकि यह कामकोटि पीठ (श्रीचक्र) अनादिकाल का है। भागवत में भी "कामकोष्णीं पुरीं कांचीम्" ऐसा उल्लेख है न कि "कामकोटि पुरीं कांचीम्" जैसा कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। इसके आधार पर कैसे कहा जा सकता है कि आचार्य शङ्कर ने कामकोटि पीठ की प्रतिष्ठा की थी। पाठकगण यहां

एक विषय पर ध्यान दें कि पीठ व मठ दोनों भिन्न हैं और इसके तात्पर्य भी भिन्न हैं। पीठ होने मात्र से मठ होने की कोई आवश्यकता नहीं है। 50 पीठ हैं तो क्या 50 मठ भी हैं? इन दो पदों का अर्थ या तात्पर्य एक ही होने का भूल से मान कर कुछ स्वार्थी लोग इसके आधार पर भ्रामक प्रचार करते हैं। अगस्त माह 1937 ई० में एक पुस्तक 'विजयनगरम् विजययात्रा' शीर्षक प्राप्त हुई। इस पुस्तक में कुम्भकोण मठ के जितने कल्पित भ्रामक प्रचारों का विवरण हैं उन सब का खण्डन 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक में पायेंगे। कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन विद्वानों से तथा आपकी प्रेरणा व प्रभाव से प्राप्त 'स्वागतपत्र, अभिनन्दनपत्र' वास्तव में ये न स्वागत पत्र हैं या न अभिनन्दन पत्र हैं। इनमें कुम्भकोण मठ विषयक विवादों पर आलोचना एवं व्यवस्था रूप में निर्णय तथा कुम्भकोण मठ के मिथ्या प्रचारों की पुष्टी कर दिया गया था। यह प्रचार पुस्तक शहर में सिनिमा नोटिस की तरह बांटी गयी। एक और पुस्तक 'कांची कामकोटि मठ विषयक सम्वाद' शीर्षक जिसमें कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का संग्रह रूप में दिया गया था, सो भी प्रचार किया गया। इन सब प्रचारों पर आलोचना 'श्री मज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक में पायेंगे।

39. कलकत्ता कालीघाट में कुम्भकोण मठाधीश का भाषण

श्रीस्वामी जी ने कलकत्ता कालीघाट पर काली मन्दिर के निकट एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि पशुबली देना शास्त्र सम्मत है और आदि शङ्कर शैव होते हुए भी वे अपने भाव से शाक्त थे और पशुबली बन्द करना वर्णाश्रमीयों के विचारों का विरोध होगा। इसका पूर्ण विवरण "अमृतबाजारपत्रिका" कलकत्ता में दिया है। चूंकि काली मन्दिर के "शिवायत" लोगों ने अभिनन्दन पत्र दिये और उनमें बहुतेरे पशुबली के समर्थक भी थे तो श्री स्वामी जी कैसे उनके विरुद्ध भाषण दे सकते थे? उनकी सहायता के लिये श्री स्वामी जी कृतज्ञ थे। कलकत्ते के सनसनी में, इनके मठ के विवाद बीच में, पन्डितों एवं सन्यासीयों के सन्देहों तथा प्रश्नों के बीच, श्री स्वामी जी और क्या कह सकते थे। आपको तो अपने प्रचारों के समर्थकों की जरूरत थी। कुछ दिन बाद जब इस भाषण पर आक्षेप हुआ और टीका टिप्पणी शुरु हुई, बाद श्री शर्मा जी का अनशनव्रत काली मन्दिर में शुरु हुआ और कुम्भकोणम् स्वामी जी का भाषण उद्धृत कर प्रमाण रूप में प्रचार करने लगे, उस समय (सितम्बर 1935) श्री स्वामी जी ने पूर्व के अपने भाषण में कहेविषयों को निराकरण कर कहा कि उनका भाषण और कुछ था और पत्रों में और ही कुछ प्रकाशित हुआ। इस घटना का विवरण 'स्वदेशमित्रन्' मदरास ता० ६—9—35 के अङ्क में प्रकाशित हुआ है। इस घटना को उल्लेख करने का कारण यही है कि पाठकगण जान लें कि कुम्भकोण मठाधीश एवं अनुयायी अपने कार्य साधने के लिए सब कुछ करने को तैय्यार हैं चाहे वह अशास्त्रीय, दुराचार, भ्रामक, मिथ्या इत्यादि क्यों न हो। जब आक्षेप होता है और उनका पोल खुलता है तो पूर्व कार्यों का निराकरण कर देते हैं। इस विषय को लिखते समय अन्य घटनाओं की याद आती है जैसा कि वर्तमान मठाधीश ने कहा कि 'ॐ तत्सत्' महावाक्य नहीं है और जो पुस्तक इसे महावाक्य ठहराते हैं उन पुस्तकों के दायित्त्व आप नहीं हैं; श्रीरङ्गम के शङ्करगुरुकुलम में आपने श्रृङ्गेरी मठाधीश की मूर्ति कों दन्डनमस्कार की थी पर बाद आपने इसे निराकरण कर दी: मठ का प्रचार होते हुए भी पूछा जाय तो कहते हैं 'क्या ऐसा होता है?'; काशी में कहा कि श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करते पर मठ के मठाम्नायसेतु में स्पष्ट श्रेष्ठत्व का उल्लेख है जिसे मठाधीश प्रचार करते हैं। एक तरफ प्रचार और दूसरी तरफ निराकरण।

40. कुम्भकोण मठाधीश का आन्ध्रदेश भ्रमण एवं मठविषयक प्रचार

कुम्भकोण मठ के श्री स्वामी जी जब आन्ध्र देश की यात्रा कर रहे थे उनके मठ के वाद-विवाद की चर्चा हर एक जगह पर छिडी थी। इनमें से एक घटना "लीडर" पत्र ता: 25—6—36 के अङ्क में प्रकाशित है :—

Berhampur (Ganjam) June 13, 1936.

A piquant situation has arisen here owing to the action taken by His Holiness Sri Shankaracharya in accepting the invitation of a Nambi Brahmin of this place and dining at his residence with his (His Holiness,) retinue.

The Nambi Brahmins are a class among the Andhras treated as inferior in the Brahmin hierarchy and are forbidden inter-marriage and inter-dining with other Brahamin communities. For all practical purposes they are considered non-brahamins. His Holiness is thus considered to have taken an unorthodox step in going to a Nambi Brahamin's house for bhiksha.

This attitude of the Sankaracharya has created a sensation among the orthodox Brahmins of this place and it is learnt that some of those who staged a boycott yesterday have sent a petition to the head of the Sri Sringeri Peetha for a ruling on the subject.

यहां के कुछ पन्डितों ने श्री स्वामी जी से आपके मठ का विवरण पूछा और उन्हे प्रामाणिक रूप से आप अपनी प्रचारों की पुष्टी नहीं कर सकें। शहर के गण्यमान सज्जन व श्रेष्ठ वृद्ध जब आपके स्वागत से पीछे हट गये और तटस्थ हुए तो सुना जाता है कि कुम्भकोण मठाधीश ने निश्चय कर लिया कि जो आपको बुलावे वहीं जांय। किसी तरह आपको अपना व्यवहारिक गौरव बचाना ही था।

श्री स्वामी जी ने पं० नूरी रामाशास्त्री, पं० पुञ्जे उमामहेश शास्त्री, पं० वी० आर० शास्त्री, पं० डि० माधवराव आदियों द्वारा अपना मठ प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। कुम्भकोग मठ के मैनेजर श्री युत विश्वनाथय्या अपने पत्र ता: 24—10—38 में पं० नूरी रामा शास्त्री जी को लिखते हैं कि श्री स्वामी जी समत्व भाव वाले तथा समदर्शी हैं। वे अपने पत्र में 'लीडर' पत्र के 18—1—35 अङ्क के सम्पादकीय की पुष्टी करके लिखते हैं। उनका कहना है कि चूंकि महाराज श्री काशी नरेश व पन्डितगग तथा सन्यासियों ने व्यवस्था दी है, इससे यह सिद्ध होता है कि कांञ्ची कुम्भकोणमठ ही श्री गुरु मठ है। पर इनके भ्रामक प्रचारों से कैसे कहा जा सकता है कि श्री स्वामी जी समदर्शी एवं समत्वभाव रखनेवाले हैं? 'लीडर' पत्र के सम्पादकीय पर पूर्व ही अपना विचार दिया जा चुका है और पाठकगण जान गये होंगे कि किसप्रकार कुम्भकोण मठ का प्रचार किया जाता है। काशी नरेश जी की व्यवस्था एवं कृपा भाजन विद्वानों का व्यवस्था के विषय में पूर्व ही काफी कहा जा चुका है। प्रचार के निमित्त ऐसे पत्र लिखे और प्रचार किये जाते हैं। काशी में घटित घटनाओं का विवरग पढने पर पता लगता है कि कुम्भकोग मठाधीश कितने समत्वभाव व समदृष्टी रखने वाले हैं।

आन्ध्र देश के एक प्रकान्ड विद्वान एवं सर्वमाननीय मुदिकोन्डान् श्री वेंकटराम शास्त्री जी अपने पत्र ता० 9—12—37 को लिखते हैं कि पं. पुल्ले उमामहेश्वर शास्त्री जी कुम्भकोण मठ के परम अभिमानी तथा प्रचारक आपसे भेंट कर अनुरोध किया कि श्री वेंकटराम शास्त्री जो कुम्भकोण मठ के विरुद्ध कुछ न कहें और न करें। मार्च महीने 1938 में एक अखिल भारतीय विद्वत परिषद, मद्रास, में होनेवाला था। इस सभा में कुम्भकोण मठ की चर्चा हुई और अन्त में वाद विवाद के बाद यह निश्चय किया गया कि एक विद्वानों की छोटी कमिटी बनायी जाय तथा उनसे श्रृंगेरी, द्वारका आदि मठों से प्रामाणिक ग्रन्थों का संग्रह करके एक व्यवस्था कुम्भकोण मठ के बारे में बनाई जाय। प० पु. उमामहेश्वर शास्त्री जी ने भगीरथ प्रयत्न किया कि ब्रह्म श्री मु. वे. शास्त्री जी इन विषयों को हाथ में न लें। कुम्भकोण मठाधीश को समत्व भाव व समदर्शी रखनेवाला कहा जाता है। फिर भी आप क्यों ऐसे गुप्त रीति से प्रचार करते हैं? प० पु. उमामहेश्वर शास्त्री जी ने कुम्भकोण मठ की संस्कृत भाषा के अभिनन्दन पत्रों को तेलुगु भाषा में अनुवाद किया। इसके साथ "चतुर्दश प्रश्नावली" का भी तेलुगु में अनुवाद किया। ये दोनों 'चन्द्रिका प्रेस' में छपकर प्रकाशित किये गये थे। मार्के की बात तो यह है कि यह काम कुम्भकोण मठाधीश जी की आज्ञा से और मठ की अनुमति से किया गया। पर पुस्तक में कुम्भकोण मठ का नाम अथवा भूमिका भी नहीं दिया गया। इसलिये कि पाठकगण जब ऐसी पुस्तक को पढें तो वे जानेंगे की यह सब काम किसी एक स्वतंत्र विद्वान ने किया है और इस पुस्तक की मठ से कोई सम्बन्ध नहीं है तथा उसे प्रामाणिक भी माना जाय। जैसे अन्य भाषाओं में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उसी प्रकार यह भी प्रकाशित हुआ है। न मालूम क्यों ऐसा किया जा रहा है।

प० मु. वे. शास्त्री जी 12—9—38 के पत्र में लिखते हैं कि प० राजेश्वर शास्त्री जी आदि पन्डितों द्वारा दिया हुआ काशी धाम से स्वागत पत्र में प० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी का हस्ताक्षर भी होने का समाचार तेलुगु भाषा द्वारा आन्ध्र देश में प्रगटन किया गया है। यह सब को विदित है कि पन्डित हाराणचन्द्र भट्टाचार्य जी ने श्री काशी के स्वागत कारिणी समिति से इस्तिफा दे दी थी और आपका इस्तिफा पत्र समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ। श्री काशी के विहारीपुरी मठ की सभा में आपने सभापतित्व का आसन ग्रहण किया था और आपने निर्णय किया कि केवल चार ही मठ श्री आद्यशङ्कराचर्य द्वारा प्रतिष्ठित है और कुम्भकोण मठ आधुनिक काल का है। श्री काशी के प्रकान्ड विद्वानों तथा रईसों ने शक्ति अनुसार भगीरथ प्रयत्न किया कि आपको कुम्भकोण मठ की तरफ खींचा जाय। पर सब के सब असफल रहे। ऐसी स्थिति में क्यों लोगों के आंखों में धूल फेंका जा रहा है। ऐसे मिथ्या प्रचार करनेवाले कहते हैं कि ऐसे काम का विरोध न किया जाय। झूठे प्रचार का भी एक हद होता है पर आन्ध्र देश के प्रचार में इससे भी कुम्भकोण मठ अतीत हो गया।

कुम्भकोण मठाधीश तथा अनुयायियों ने एक नया प्रचार आन्ध्र देश में शुरु किया। "कल्पवल्ली" पत्र ता० 1—11—38 के अङ्क में कुम्भकोण मठ की आज्ञा तथा अनुमति से श्री युत वि० आर० शास्त्री जी तथा श्री डी० माधव राव जी ने लेख प्रकाशित किया है। इस लेख द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश की गई हैं कि माधवीय "शङ्करदिग्विजय" श्री विद्यारण्य द्वारा रचित नहीं है और किसी अन्य पन्डित ने आधुनिक काल में श्रृंगेरी की आज्ञा से लिखकर प्रकाशित की है। इस विषय की पूर्ण आलोचना श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श पुस्तक में पाठकगण पायेंगे। न केवल ऐसे लेख भी पत्रों में प्रकाशित कराये गये पर आन्ध्र पत्रिका ताः 17—12—1921 के अङ्क में प्रकाशित एक लेख को भी ट्रक्ट रुप में छपवाकर प्रचार किया गया। यह लेख माधवीय शंकरदिग्विजय के बारे में था। जिन्होंने यह लेख 17—12—21 को आन्ध्रपत्रिका में प्रकाशित किया है उन्होंने स्वयं अन्वेषण कर पश्चात् ताः 25—1—22 के "आन्ध्रपत्रिका" के अङ्क में एक लेख प्रकाशित किया है जिसमे वे प्रमाण रुप से सिद्ध करते हैं कि जो कुछ इन्होंने ताः 17—12—21 को प्रकाशित किया था वह सब गल्त एवं मिथ्या हैं। श्री कुम्भकोण

मठाधीश तथा अनुयायी सब अच्छी तरह से इस विषय को जानते हुए भी मिथ्या प्रचार करना शुरु कर दिये। मालूम नहीं क्यों धूल प्रक्षेपण किया जा रहा है। श्री कुम्भकोण मठाधीश के अनुयायी प्रचार करते हैं कि श्री स्वामी जी ने इस वादविवाद के विषय में कभी हिस्सा न लिया क्योंकि वे समत्वभाव के महान् पुरुष हैं। पर सत्य तो और ही कुछ कहता है।

दिसम्बर 1938 में पं० वेमूरी नरसिंह शास्त्री जी ब्रह्म श्री मु० वे० शास्त्री जी को लिखते हैं कि वे कुम्भकोण मठ के श्री स्वामी जी से गुन्टूर में मुलाकात की और आप द्वारा अपने संभाषन का सार लिख भेजा है। उसमें कुम्भकोण मठाधीश के प्रश्नों व उपप्रश्नों तथा डाट कर बातें आदि सबों का उल्लेख है। श्री स्वामी जो से एवं इस पन्डित से संभाषण विषय, विद्यारण्य कृत शङ्करदिग्विजय के बारे में था। उस समय पं० वेट्टूरी प्रभाकर शास्त्री जी तथा पन्डित भट्ट श्री नारायण शास्त्री जी के बारे में चर्चा उठी। अन्त में वेमूरी नरसिंह शास्त्री जी दुखित होकर लौट आये। क्या कारण है कि कुम्भकोण मठाधीश इतनी दिलचस्पी ऐसे विषयों से ले रहे हैं और पन्डितों से अलग-अलग मिलकर बातें करते हैं। यदि आपका इन भ्रामक प्रचारों से कोई सम्बन्ध न होता तो क्यों पं० वेमूरी नरसिंह शास्त्री जी से वाद विवाद करते। पाठकगण अच्छी तरह जान लें कि श्री स्वामी जी कहते कुछ हैं और करते कुछ। April 15—1939 को पं० चेरुकुपल्ली नरसिंह शास्त्री जी लिखते हैं कि जब जब श्री कुम्भकोण मठाधीश जी से प्रश्न मठ विषय तथा भ्रामक प्रचारों का पूछा जाता है तो मठानुयायी कह देते हैं कि तुम्हें वह विद्वत्ता नहीं है कि तुम श्री स्वामी जी से प्रश्न पूछ सको। पर जब प्रकान्ड पन्डित मु० वे० शास्त्री जी प्रभृति पूछते हैं तो क्यों नहीं श्री स्वामी जी उत्तर देते। क्या पं० मु० वे० शास्त्री जी पन्डित नहीं हैं? क्या समत्वभाव तथा समदृष्टि रखने वाले श्री स्वामी जी का यही कर्तूत है? शायद परमशिवावतार व सर्वज्ञ पीठारोहण करने के कारण अवतारी पुरुष ही उनसे प्रश्न कर सकता हो।

चिरुकुपल्ली श्री नरसिंह शास्त्री जी 1—6—39 को लिखते हैं कि यह सुना गया है कि कुम्भकोण के श्री स्वामी जी पुष्पगिरी मठ के सर्वाधिकारी से मुलाकात किया और मठ विषय पर आलोचना भी की। उन दिनों आन्ध्र देश में भ्रामक प्रचार किया गया कि बहु काल पूर्व श्री शृंगेरीमठ विच्छिन्न हो भंगावस्था में पडा था और उस समय कुम्भकोण के मठाधीश श्री विद्यातीर्थ ने श्री विद्यारण्य जी को शृंगेरी भेजकर परम्परा प्रारम्भ कराया और श्री विद्यारण्य द्वारा विरुपाक्षी व पुष्पगिरि दोनो शाखा मठ बनवाये, इत्यादि। शायद श्री कुम्भकोण मठाधीश सोचते होंगे कि इन भ्रामक प्रचारों तथा पुष्पगिरि मठ के सर्वाधिकारी से मिलकर एवं उनकी सहायता द्वारा श्री शृंगेरी का अपमान किया जाय। मालूम नहीं की श्री स्वामी जी को इन विषयों पर हस्तक्षेप करने का क्या कारण है? पुष्पगिरि मठवाले इन प्रचारों को अच्छी तरह जानते हैं और वे कभी इनके माया मोह जाल में पड नहीं सकते।

पं० चेरुकुपल्ली नरसिंह शास्त्री जुलाई 1939 में लिखते हैं कि कोई एक अपने को प्रकान्ड पन्डित कहने वाले, कुम्भकोण मठ के विवादों का उत्तर देने का दायित्व लेनेवाले, अपने को सर्वज्ञ समझने वाले, अनेक पत्रों में अपनी गर्जना को प्रकाशित करनेवाले ऐसे एक आन्ध्र पन्डित उसी देश में जिस समय कुम्भकोणम् श्री स्वामी जी यात्रा कर रहे थे, यह आन्ध्र पन्डित कुम्भकोण श्री स्वामी जी के सन्मेख अभिनन्दन पत्र देते हुए कहा कि 'कालटी अर्थात् चिदम्बर, विश्वजित अर्थात् शिवगुरु, विशिष्टा अर्थात् आर्याम्बा,' कहने में कोई आपत्ति नहीं है ये केवल नामान्तर हैं। ऐसे वाक्यों को कुम्भकोण मठाधीश सुनते ही चुप होकर ऐसे बैठे थे मानो उनका भी यही अभिप्राय है। अनुमानवाद का भी हद होता है और आनन्दगिरि शंकर विजय को प्रामाणिक ग्रन्थ बनाने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी जी की भी सम्मति है।

आन्ध्र देश में यह प्रचार किया गया था कि काशी के नैपाल राज्य प्रतिनिधि ने कुम्भकोण मठाधीश को स्वागत पत्र दिया था। यह विषय आन्ध्र देश के विद्वान ने मेरे पूज्य पिता को लिख पूछा था कि क्या यह सत्य है। काशी में नैपाल राज के प्रतिनिधि ने श्री कुम्भकोण मठाधीश को स्वागत पत्र देने से इन्कार कर दिया था यद्यपि कुम्भकोण मठ के अनुयायियों ने बहुप्रयत्न किया। कैसे और कहां से एक अभिनन्दन पत्र उनके नाम से प्रचार हुआ यह किसी को मालूम नहीं? नैपाल राज के काशी प्रतिनिधि ने पत्र द्वारा इस भ्रामक मिथ्या प्रचार का खन्डन किया है। पाठकगण जान लें कि इनके मिथ्या प्रचार का कोई हद नहीं है।

कुम्भकोण श्री स्वामी जी जब विजयनगर में थे, उन दिनों में विजयनगर की 'वेद विज्ञान-वर्धिनी सभा' ने अपना एक स्वागत पत्र पढकर सुनायी। इस पर विजयनगर के 'वैदिक धर्म सभा' वाले 'वेद-विज्ञान वर्धिनी सभा' के स्वागत पत्र देने का तात्पर्य तथा कारण पूछा, तब "वेद विज्ञान सभा" वालों ने विवरण दिया जिसका सारांश यह है :—

> "कुछ रईस और मठाभिमानियों के अनुरोध पर इस सभा ने एक स्वागत पत्र तैय्यार किया। क्योंकि कुम्भकोण मठ के सम्प्रदाय का उन्हें मालूम न था वे विजय नगर राज्य संस्थान के एक साधारण स्वागत पत्र द्वारा जो सब पीठों को दिया जाना है और जिसमें केवल प्रशंसनीय शब्दों का उल्लेख रहता है उसे उस पत्र के 'आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित' पद जो विजयनगर संस्थान के पत्र में था उसे निकाल दिया चूंकि यही पद विवादास्पद होने के कारण तथा हम लोगों द्वारा इस विषय को न स्वीकार करने के कारण सभा ने साधारण रुप से एक स्वागत पत्र पढ़ा। इसमे किसी को भी आपत्ति नहीं है चूं कि कुम्भकोण मठ के प्रचारों को हम लोगों ने स्वीकृत नहीं किया।"

'वैदिक धर्म सभा' से प्राप्त पत्र ता: 14—8—38 में, श्री चेरुकपल्ली नरसिंह शास्त्री जी के नाम पर, ऊपर लिखे विषयों का उल्लेख था। इससे मालूम होगा कि श्री स्वामी जी की विजयनगर यात्रा कैसी थी और श्री स्वामी जी कैसे ऐसे अनुमोदन पत्र, अभिनन्दन पत्र, स्वागत पत्र, प्रमाण पत्र, प्रार्थना पत्र आदि संग्रह किये। साधारण लोग ऐसे आडम्बर को देखकर मोहित हो जाते हैं पर सत्यान्वेषण विद्यार्थी व विद्वानों को यथार्थ मालूम है।

41. कुम्भकोण मठानुयायियों द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'श्रीशाङ्करपीठतत्वदर्शन'।

मेरे पूज्य पिता और उनके मित्र पं॰ सीताराम शास्त्री जी से प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' के उत्तर रूप में कुछ पन्डितों तथा एक श्री स्वामी जी द्वारा 'श्रीशाङ्करपीठ तत्त्वदर्शन' नामक पुस्तक प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तक का विमर्श मुझ से प्रकाशित पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' में पाठकगण पायेंगे। पुस्तक के प्रकाशक व संपादक अपने को प्रकान्ड विद्वान समझते हैं और अन्यों को जिन्होंने 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' (1935 ई॰) प्रकाशित किया है और जिन्होंने व्यवस्था दी है वे सब अनपढ, क्षुद्र, साधारण बुद्धिवाले, व यात्रावृत्तिवाले होने का प्रचार करते हैं। टिप्पणी करनेवालों को जानना चाहिये कि काशीधाम में आम्नाय मठ (धर्म राजधानी) की चर्चा उठी न कि पीठों की। 'शांकरमठविमर्श' का उत्तर क्या 'शांकरपीठतत्त्वदर्शन' ही है? यह गलती प्राय: सब लोग करते हैं। आप कभी मठ के लिये पीठ और कभी पीठ के लिये मठ शब्द का प्रयोग करते हैं। देवयोनि मूर्तियों का वैदिक प्राण प्रतिष्ठा पूर्वक प्रतिष्ठित स्थान होता है जिसे पीठ कहते हैं। पर व्यवहार में कभी पीठ शब्द आसन के जगह प्रयोग किया जाता है। मृत्युलोक के जीव को ठहरने के लिये पृथ्वी है और

ठने के लिये आसन है उसी प्रकार सूक्ष्म देवलोक वासी के ठहरने का स्थान पीठ है। हमारे यहां पर विभिन्न प्रकार के पीठों के अवलम्बन से उपासना की जाती है। चिरस्थायी पीठों में और विशिष्ठ तीर्थादि में पीठ देवता नित्यरूप से निवास करते हैं और उनके द्वारा बड़े बड़े कार्य सिद्ध होते हैं। पीठ अचल एवं स्थापित होता है। पीठ का स्थलान्तर होने से वह पूजार्ह नहीं होता। 'कलौस्थानानि पूज्यन्ते' उक्ति के अनुसार पीठ स्थान भ्रष्ट नहीं हो सकता है। कुछ पीठ सृष्टी से हैं और उनकी स्थापना किसी के द्वारा की नहीं गई है। काल क्रम से अथवा अन्य किसी कारणों से हम लोगों की दृष्टी से लोप हो जाने पर किसी महान् अवतारी पुरुषों से उस पीठ का उद्धार किया जाना हम लोग ने अपने ग्रन्थों में पढे हैं। इससे यह कहना कि महात्माओं द्वारा इन नये पीठों की स्थापना की गई है, यह भूल है। ललिता सहस्रनाम, त्रिशती, देवीमहात्म्य इत्यादि अति अनेक प्राचीन ग्रन्थ हैं। जब इसमें कामकोटि का वर्णन है तो सिद्ध हुआ कि कामकोटिपीठ अति प्राचीन है। वहां शाक्त मत के तांत्रिक का खन्डन करके वैदिक धर्म की स्थापना की गयी थी। इससे प्रतीत होता है कि शङ्कराचार्य के अवतार के पूर्व वहां पीठ था और वे वहां कोई नयी पीठ की स्थापना नहीं की। कुम्भकोण मठवाले जो भ्रम फैला रहे हैं कि शङ्कराचार्यजी ने कांची में एक पीठ की स्थापना किया, ऐसा कहना भूल है। मेरे कहने का आशय यह है कि कांची में स्थित कामकोटि पीठ शङ्कराचार्य के काल से अति प्राचीन है। जिस प्रकार श्री शङ्कराचार्य जी ने लोप हुए धर्मों का उद्धार करने के लिये अवतार लिए उसी प्रकार इस कामकोटि पीठ के अधिष्ठात्री श्री पराशक्ति कामाक्षी अति उग्र होने के कारण उनकी उग्रता शान्त करने के लिये श्री चक्र की स्थापना (सब शङ्करविजयों के आधार पर) की थी। अद्वैत एवं वैदिक मार्ग अनादि काल से है। कालवशात लोप (आचार विचार में) होने के कारण उसका उद्धार करने से यह कहना मूर्खता है कि उद्धारक ने एक नये धर्म की स्थापना किया है।

कुम्भकोण मठाधीश के कथनानुसार 'कांची कामकोटि पीठ अब कुम्भकोण आ गया है', इसलिये शांकरमठ विमर्श पुस्तक में पूछा गया है कि 'कथं पूजार्ह भवति' एवं 'स्थान भ्रष्ट'। यदि कुम्भकोण मठवाले यह न कहते कि कामकोटिपीठ अब कुम्भकोण आ गया तो ऊपर लिखे हुए निर्णय करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। सत्य के प्रकाश करने पर क्यों इतना चिढते हैं? कुम्भकोण मठ के ऐन्द्रजालिक विद्याविधान के पोल खोल देने पर कुम्भकोण मठवालों का मार्ग 'शेषम् कोपेन पूरयेत' का अवलम्बन किया है। मठ साधारण तौर पर इन सब किसी यति का आश्रम अथवा सन्यासियों का निवास स्थान समझते हैं। अमरकोष में "मठः छात्रादि निलयः" का उल्लेख है। वैदिक काल में कहीं भी विशेषतः मन्दिर या मठों का उल्लेख नहीं पाया जाता है। श्रीपरब्रह्म अपनी इच्छा से अनेक रूपों को धारण किये जैसे अग्नि, सूर्य, उषा, वायु, वरुण, अश्विन, आदि। इसके बाद अरण्यक, ब्राह्मण एवं उपनिषद काल में सगुण देव देवियों का उल्लेख हैं और भक्ति उपासना मार्ग का बीज बोया गया। ऋग्वेद में एक जगह यति पद का उपयोग किया गया है जिसका अर्थ कहा जाता है 'जो बलिदान, कर्म, आदि का खण्डन करता है।' पश्चात् यति पद का अर्थ सन्यासी हुआ। मेक्डोनल संस्कृत कोष में मठ व मठाधिपति का अर्थ पाते हैं 'यति, छात्रों का निवासस्थल।' आपटे जी का कोष एवं राजा राधाकान्त देव जी का 'शब्दकल्पद्रुम' में मठ का अर्थ यों उल्लेख है 'स्थान जहां छात्र निवास करते हैं।' ब्रह्मपुराण में उल्लेख है 'ब्रह्मघोषो भवेद यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। वेद प्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते।' श्री शङ्कराचार्य ने अपने से उद्धार किया हुआ अद्वैतवाद एवं वैदिक मार्ग को अक्षुण्ण रखने के निमित्त इस भारत वर्ष को एक यज्ञ भूमि का वेदि मानकर आम्नायानुसार चार वेद चार दृष्टिगोचर दिक् चार महावाक्यों के लिए पृथक पृथक चार धर्मराजधानी के रुप में एक एक केन्द्र उस उस सीमा के लिये आम्नायानुसार स्थापित किये। यह केन्द्र स्थलान्तर हो सकता है। इन धर्म राजधानियों के लिये उन्होंने पद्धति बनाई है जिसे हम सब मठाम्नाय में सविस्तार पाते हैं। शाक्त, तांत्रिक, आगम शास्त्र के अनुसार आम्नाय व पूजा विधि मठाम्नाय के आम्नाय विधि से भिन्न हैं और कुम्भकोण मठ प्रचारक इन विषयों द्वारा भ्रामक प्रचार भी करते हैं।

भारतवर्ष में मठ अनेक है पर क्या वे सब अधिकार संपन्न आम्नायानुसार धर्मराजधानियां हैं? श्री काशीधाम में कुम्भकोण मठाधीश से (मठ) धर्मराजधानी के विषय ही में चर्चा उठी न कि पीठ की। कांची क्षेत्र में कामकोटि पीठ नहीं है ऐसा कौन आस्तिक कह सकता है? उस पीठ की अधिष्ठात्री केवल 'कामाक्षी महादेवी हैं' न कि कुम्भकोण मठाधीश। लोगों की आंखों में पीठ का नाम लेकर क्यों धूल फेंका जा रहा है। आचार्य शंकर द्वारा रचित ललिता त्रिशती भाष्य में कामकोटि का अर्थ 'श्रीचक्र' बतलाया है न कि मठ या मठाधीश। कुम्भकोण मठानुयायीयों का भ्रामक प्रचार इस प्रकार से है—'कांची कामकोटि पीठ को सब मानते हैं और वह अनादि काल से है, जब कांची में पीठ है तो मठ है, यदि मठ न हो तब भी पीठ है अर्थात् मठ है, मठ से पीठ और पीठ से मठ परस्पर प्रतिष्ठित हुए।' इस तर्क के अनुसार जहां जहां श्री शङ्कराचार्य ने पीठोद्धारण की अथवा प्रतिष्ठा की वहां वहां पर भी मठ हैं। भारतवर्ष में 'पञ्चाशत पीठमण्डिता' के अनुसार 50 पीठ हैं। तंत्रशास्त्र ग्रन्थों के अनुसार 52 पीठ हैं। देवी माहात्म्य के अनुसार 108 पीठ नामों का भी उल्लेख हैं। इन पीठों में से अधिकांश पीठों में आचार्य शंकर गये थे तो क्या कहा जाय कि भारतवर्ष में 50 मठ हैं या 52 मठ हैं या 108 मठ हैं (कुम्भकोण मठ के प्रचारानुसार पीठ व मठ दोनों एक हैं)? जब मठ का विषय उठा तो मठ ही का उत्तर देना शास्त्रज्ञ पन्डितों का काम है। इसलिये पुस्तक के टाईटल "पीठतत्वदर्शन" ही गलत है। हम लोगों ने 'शांकरमठ विमर्श' पुस्तक प्रकाशित की थी न कि 'शांकरपीठ विमर्श'। आशा किया जाता है कि अब उक्त पुस्तक के सम्पादक पीठ एवं मठ का अन्तर जान गये होंगे।

याज्ञवल्क्य के अनुसार सन्यासी या यति का संपत्ति उसके शिष्य को जाता है। उपनिषद काल में सन्यास उपनिषद, परमहम्सोपनिषद, परिव्राजकोपनिषद, नारायणोपनिषद, गीता, आदि सन्यास के बारे में विवरण देते हैं। पराशर स्मृती में लिखा है कि यदि सन्यासी के द्रव्य को जानते हुए कोई उपभोग की इच्छा करेगा तो उसका वंशज 21 पीढी तक नरक में जायगा। कुटीचक वर्ग के साधु मठों की प्रबन्ध व्यवस्था का संचालन एक मठाधीश के नियंत्रण में रहकर करते हैं। बहुत से अन्य मतावलम्बी एक दूसरे पर आक्रमण करते थे अतः उत्तर भारत में एक वर्ग आक्रमण कारियों से रक्षा के लिये बनाया गया। साधुओं में भी सामाजिक व्यवस्था को समुचित रूप से चलाने के लिये चार विभाग कियें गये क्यों कि साधु ने भी अपने को एक अलग साधु वर्ग में विभक्त कर लिया। मठाधीश आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों दृष्टियों से संचालक हैं। मठों की स्थापना के पीछे तात्विक दृष्टि से उस सम्प्रदाय के सिद्धान्त तथा दर्शन प्रचार की जिम्मेदारी निहित है। इसलिये इनके चार विभाग किये गये – हंस, परमहंस, कुटीचक, बहूदक। मठों की वर्तमान स्वरूप प्रत्यक्षरूप से आदि गुरु शङ्कराचार्य के समय से देखने को मिलता है। स्मृतिकार मनु के सन्यास लक्ष्य तथा शङ्कराचार्य के सन्यास लक्ष्य में बड़ा अन्तर है। साधुओं ने अपनी व्यक्तिगत तपस्या, साधना तथा अपने शिष्यों के रहने के लिये मठ भी बनाये और आचार्य के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपका मठ नाम आम्नायानुसार एवं ताम्रशासन पत्रों द्वारा आधारित 'शारदा मठ' है और इस मठ का पीठ 'कामकोटि पीठ' है। पर अब यह प्रचार नहीं किया जाता है और 'शारदा मठ' के जगह कामकोटि पीठ का नाम प्रचार किया जाता है क्यों कि दक्षिणाम्नाय शारदा मठ शृंगेरी में ही है और अन्यत्र केन्द्र होना असम्भव है। अन्यों के ताम्रशासनों को स्वहस्त करके उन सबों को अपना होने के प्रमाण में कहा गया कि आपका मठ नाम शारदा मठ है पर जब राजकीय कर्मचारियों ने इस 'शारदा मठ' नाम होने का प्रमाण मांगा तो कुम्भकोण मठ प्रमाण दे न सके। इनका प्रमाण स्वेच्छावाद था। इन सब शंकाओं व विवादों से बचने के लिये अब कामकोटि पीठ का प्रचार होना है और कुम्भकोण मठ के लिये पीठ व मठ दोनों एक है।

'शांकरपीठतत्वदर्शनम्' के सम्पादकों का नाम — (1) श्री स्वामी रामानन्द सन्यासी, व्याकरणाचार्य। (2) पं॰ विद्याधर शर्मा, वेदान्ताचार्य। (3) पं॰ महादेव शास्त्री। (4) पं॰ पट्टाभिराम शास्त्री, मीमांसाचार्य।

श्री स्वामी रामानन्द सन्यासी सम्पादकों में से एक हैं। आप अवश्य वादविवाद के दोनों पक्षों के विषयों को जानते ही होंगे। हमारे 'मठविमर्श' छपने के उपरान्त ही आप दोनों पक्षों के विषयों को जानते हुए भी आपने "पन्डित पत्र" ता॰ 6—5—35 के अङ्क में 'भगवान श्री शंकराचार्य जी का जयन्ती' शीर्षक के लेख द्वारा आप स्पष्ट रुप से लिखते है :—

'भगवान ने चारों दिशाओं में वर्णाश्रम मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की इछा से सर्वदा सनातनधर्म के प्रचार के लिये चार मठ स्थापित किये थे और उन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार के लिये ही सन्यास धारण करके अपने शिष्यों को अनेक देशों मे भ्रमण करने की आज्ञा दी थी।'

श्री स्वामी रामानन्द जी ने क्यों नहीं पांचवें मठ कांची कुम्भकोण का उल्लेख किया? कुम्भकोण मठाधीश जो अपने को 'आदि शंकराचार्य गुरु महाराज के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परागत शंकराचार्य कांची कामकोटि पीठाधीश' कहते हैं और 'अन्यमठाधीश सब शिष्य परम्परा' के कहते हैं, ऐसे मठ का नाम क्यों नहीं उल्लेख किया? श्री रामानन्द सन्यासी जी बिना किसी के बलात्कार से या बिना मुख दिखावा, स्वेच्छा स्वतन्त्र रुप से, यथार्थ विषय को अपने लेख द्वारा प्रकाशित किया है। श्री शंकर जयन्ती आदि गुरु महाराज जी का पूजन व उत्सव दिन है और कहे जानेवाले उनसे प्रतिष्ठित मठ एवं अविच्छिन्न परम्परागत कांची मठाधीश जी का नामो निशान भी इस अपने लेख में न होने का क्या कारण है? "पन्डितपत्र" कुम्भकोण मठाधीश जी के प्रचारों की पुष्टी कर प्रचार करनेवाला पत्र इस विषय को किस प्रकार भूल गये? कुम्भकोण मठाधीश 20—3—35 के दिन काशीधाम छोड चले और हमारे श्री स्वामी रामानन्द जी भी उनका मठ भी भूल चले। जब तक कुम्भकोण स्वामी जी थे तब तक उनके मठ का प्रचार हुआ और उनके जाने के उपरान्त उनका मठ भी गया। मालूम नहीं अब किस प्रकार पांचवां मठ पुनः सिद्ध करने चलेंगे। समय समय तथा स्थान स्थान पर अपना अलग अलग निर्णय देनेवालों के निर्णय का क्या मूल्य है! जिस प्रकार दक्षिण भारत के ब्रह्म श्री तेव्यिूर सुब्रह्मणिय शास्त्री जी ने ललकार कर कहा कि कांची पांचवां मठ है, बाद पत्र द्वारा कहा कि यह तो व्यवहार रुप में वादविवाद है और सत्य तो कुछ ही और, वैसे ही श्री रामानन्द स्वामी जी उस टोली के मालूम होते हैं। पाठकगण स्वयं जान लें कि किस तरह इन लोगों का सहायता लिया गया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुख दिखावा के बाधा पर अपनी सम्मति इस पुस्तक के संपादक होने की दे दी थी।

श्री विद्याधर शर्मा जी तथा श्री महादेवशास्त्री—नं. 2 एवं नं. 3 सम्पादक - इनमें नम्बर दो विश्वविद्यालय के अध्यापक हैं और आप दोनों हमारे दक्षिण दिशा के सूत्रधार पं॰ चिन्नस्वामी शास्त्री जी जो विश्वविद्यालय के उन दिनों में अध्यापक थे बाद प्राच्य विभाग के प्रिन्सपल हुए, उनकी टोली के सदस्य हैं। उन दिनों पन्डित चिन्नस्वामी जी का विश्वविद्यालय प्राच्य विद्या विभाग में बडा प्रभाव था। उनके साथ काम करनेवाले पन्डित लोग उनकी कृपा के भाजन थे। इन दोनों का हस्ताक्षर पं॰ चिन्नस्वामी शास्त्री जी का हस्ताक्षर के समान है केवल नाम ही व्यवहार के लिये अलग है। यद्यपि श्री महादेव शास्त्री जी दूसरे कालेज के अध्यापक थे तिस पर भी उन पर पं॰ चिन्नस्वामी शास्त्री का प्रभाव था। पं॰ विद्याधर शर्मा जी साक्षी विनायक विहारीपुरी मठ की सभा में (30—9—34) उपस्थित थे और उन्होंने भी उस दिन अपनी सम्मति चार मठ होने की दी थी (सभा के मंत्री का रिपोर्ट देखियेगा) परन्तु लेख रुप से वे अपना मन्तव्य न देने के कारण आज संभवतः इसे असत्य ठहरायें। उस दिन उपस्थित अन्य लोगों के हस्ताक्षर सहित मेरे पास एक पत्र है जिसमें सबों ने यही कहा कि पं॰ विद्याधर शर्मा जी की राय चार मठ की है। सम्भवतः

पं० विद्याधर शर्मा जी इसे भी झूठ ठहरायें। मुझसे तथा पन्डित जी से उस समय बात हुई और आप (पं० विद्याधर शर्मा जी) ने कहा कि 'चूंकि मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक हूं और हमारी पं चिन्नस्वामी शास्त्री जी से परम मित्रता है, यद्यपि प्रामाण्य ग्रन्थ केवल चार ही मठ होने का प्रतिपादित करते हैं तथापि मैं खुल्लम खुल्ला इस विषय में भाग लेना नहीं चाहता चूंकि व्यवहार रूप में मुझसे एवं पन्डित चिन्नस्वामी शास्त्री में वैमनस्यता हो जाने की संभावना है।' सम्भवतः पन्डित जी इसे भी असत्य कह जायें चूंकि मेरे पास लिखित रुप में उनका कोई बयान नहीं है। जो कोई लिख भी दिये वे फिर बदल भी गये हैं, इससे सत्यता की पुष्टी नहीं होती। खेद का विषय है कि वे जिस प्रकार मुझसे कहे थे उस प्रकार से न चलकर उक्त पुस्तक के सम्पादक बन गये।

चौथे सम्पादक महोदय पं० पट्टाभिराम शास्त्री जी, जो कि कुम्भकोण मठाधीश के चेले हैं और यह आश्चर्य नहीं है कि वे मनगढन्त पुस्तकों का संपादन करें। उनके गुरु के कथनानुसार 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' अपना निर्णय मनगढन्त व्यवस्थारुप में संपादन कर, शिष्य द्वारा कर्त्तव्य की पूर्ति की है। मैं अपने बाल्यावस्था से पं० पट्टाभिराम शास्त्री जी को जानता हूं। यह भी जानता हूं कि जब वे मेरे पूज्य पिता जी के पास आकर नित्य हिन्दी भाषा पढने के लिये आते थे।

'शांकरपीठतत्वदर्शन' पढने से यही मालूम होता है कि इन सम्पादकों की दृष्टी में तो सारा संसार मूर्ख है केवल आप चार ही पन्डित हैं। दक्षिण से श्री कुम्भकोण स्वामी जी आये और दाक्षिणात्यों की सहायता द्वारा ऐन्द्रजाल विद्याविधान से काशी पन्डितों का हस्ताक्षर लेकर फिर दक्षिण लौट आये और दक्षिण में आप प्रचार उन आधारों पर प्रारम्भ कर दिया। काशी के पन्डित काशी में ही रह गये और दक्षिणात्य पन्डित भी चले गये। काशी में मेरे वंशज और ये बेचारे काशी पन्डित ही रह गये। चूंकि उक्त पुस्तक के सम्पादकों एक, दो, तीन काशी में ही रह गये, मैं समझता हूं आप तीनों ने दोनो पक्षों के विषय भली भांति जानते हुए अपना नाम सम्पादक रुप में दिया है। आप लोग क्या इस कुम्भकोण मठ को श्री आद्यशंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित तथा अविच्छिन्न साक्षात् गुरु परम्परा है, सिद्ध कर सकते हैं? मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' (1963 ई०) पुस्तक का उत्तर दे सकते हैं? क्या आपलोग दृढ प्रमाणों को अप्रामाणिक होने का सिद्ध करने तैय्यार हैं? मेरे पास आडम्बर तथा लक्ष्मी के अभाव के कारण मायाजाल फैला नहीं सकता। जो अभिमान को छोड सत्य एवं शास्त्र को शिरोधार्य मानकर अनुमानवाद तथा कीचड फेंकने की आदत को छोड दें उनसे वादविवाद करना ठीक समझता हूं।

इस पुस्तक में लिखा है कि कुछ शृंगेरी के शिष्य ही इस वादविवाद को यहां पर खडा किये। पर पाठकगण इसके पूर्व पृष्ठों को पढकर जान गये होंगे कि किसने इस विवाद को खडा किया और कौन कौन इसमें शामिल थे। जो व्यवहार श्रीकाशी में उठा वह शृंगेरी मठ से एवं कुम्भकोण मठ के बीच में न उठा पर आद्यशंकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों एवं कुम्भकोण मठ के बीच में उठा। पुरी, द्वारका एवं अन्य मठाधीशों ने अपनी अपनी राय कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों के विरुद्ध दी थी। क्या वे सब शृंगेरी के शिष्य थे? कुम्भकोण मठ के मठविषयक एवं आचार्य शंकर के चरित्र सम्बन्धी अन्य विषयक भ्रामक प्रचारों ने अद्वितीय महान् ऐतिहासिक व्यक्ति श्री आद्यशंकराचार्य के चरित्र को बदल कर एक नवीन चरित्र का परिचय प्रारम्भ करता है। व्यक्तिगत कोई चाहे कितना ही महान पुरुष हो पर यह व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है कि वह परम्परा प्राप्त ऐतिहासिक व्यक्ति की कथा जो अनेक दृढ़ प्रमाण ग्रन्थों से पुष्टी होती है एवं जो श्रेष्ठों को ग्राह्य है, उस प्रामाणिक कथा को अपने भ्रामक प्रचारों से बदल दें या उसे प्रमाणाभास स्वकल्पित स्वेच्छावाद एकाङ्गि प्रमाणों के आधार पर उक्त दृढ प्रमाणों पर पर्दा डालकर उसे अप्रमाणिक ठहराय। इतिहास व्यक्ति का चरित्र घटना चाहे वह भला हो या बुरा हो या अपने प्रचारों का पुष्टी

करता हो या न हो, उस चरित्र कथा को बदलने का प्रयत्न करना अन्याय है और यह अधिकार किसी को भी नहीं है। अतः आचार्य शंकर के चरित्र सम्बन्धी यथार्थ विषयों का प्रकाश करने का काशी में आवश्यकता हुआ और जो कोई स्वतंत्र विचार के माननीय विद्वान एवं आदरणीय परिव्राजकों ने काशीधाम में इस काम को हाथ में लिया उनको शृंगेरी मठ शिष्य कहना उचित नहीं है। काशी के दिग्गज विद्वानों ने 1886 ई० में जो व्यवस्था दी थी क्या वे सब शृंगेरी मठ के शिष्य थे? 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक के तृतीय खन्ड में जो सब अभिप्राय प्रकाशित हैं क्या वे सब शृंगेरी मठ के शिष्य हैं? 'शांकरपीठतत्वदर्शन' पुस्तक का यह भ्रामक प्रचार सर्वदा निर्मूल एवं असत्य है। इस पुस्तक में यह लिखा गया है कि भारतवर्ष के प्रस्तुत धर्म की स्थिति में ऐसा भेदभाव उठाना ठीक नहीं, यह सर्वदा सत्य है। पर यह तो उन्हीं को विचारना चाहिये जिन्होंने इस भेदभाव का बीजारोपन किया, कितना अच्छा होता यदि कुम्भकोण मठाधीश इसे अङ्कुर अवस्था में ही नष्ट कर देते पर वैसा न कर पेड उगने दिया। जब इस विषैले वृक्ष (भ्रामक प्रचारों) का नाश करने के लिये कुछ लोग तैय्यार हुए तो आप उन्हें रोकने चले। यह तो 'उलटे चोर कोतवाल को डाटे वाले' मुहावरा को चरितार्थ कर दिखा रहा है।

पं० अजबलाल झा शर्मा जी एक अजब ही जीव हैं। अपने नाम के अनुसार उन्होंने कार्य में भी चरितार्थ करके दिखाये हैं। आप रणवीर संस्कृत पाठशाला के अध्यापक हैं जो पाठशाला विश्वविद्यालय का एक अंग है। पं० चिन्नस्वामी शास्त्री जी विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग के अध्यापक होने के कारण रणवीर पाठशाला के पन्डित लोग आपके कृपा भाजन हैं। यदि ये पन्डित चिन्नस्वामी शास्त्री जी के विरुद्ध जांय तो व्यवहार रुप में इन सबों को तकलीफ उठानी पडेगी। पं० अजबलाल झा जी ने स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी को प्रथम अपनी अनुमति व्यवस्था में छपवाने की आज्ञा दी, फिर पलट गये। मैं दो बार आपके यहां गया था और दोनों बार आपने कहा कि आपका नाम सम्मति रुप से व्यवस्था में दे सकते हैं। मैं ने जब उनसे प्रार्थना की कि आप व्यवस्था में हस्ताक्षर कर दें तो आपने कहा कि "चाहे दुनिया उलट जाय पर मेरा बचन न उलटेगा।" विद्वान के वचन को सत्य मानकर और यह सोचकर कि आप पन्डित अपने वचन से नहीं टलेंगे मैं ने आपका नाम प्रकाशन करा दिया। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी को इस प्रकार धोका देना पन्डितों का कर्म नहीं है। इसमें आश्चर्य नहीं फिर "पीठतत्त्वदर्शन" के प्रकाशन का निराकरण कर दें यदि मैं द्राविणीमाया में फंसा देता पर मैं ऐसे कृत्य को घृणा की दृष्टी से देखता हूं।

काशी द्वारका शाखा. मठाधीश श्री स्वामी अच्युताश्रम जी ने विहारीपुरी मठ की सभा में आकर स्वयं कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों की कडी आलोचना की। उनके वक्तव्य का सारांश "मठ विमर्श" के 55 वें पृष्ठ में मुद्रित है। यह पुस्तक 1935 ई० में प्रकाशित हुआ है। मालूम नहीं कि वे किस प्रकार से फिर वहां जाकर अपनी सम्मति दी है। इनके व्यवहार से तो यही दीख पडता है कि ये भी पन्डित अजबलाल झा की टोली के सदस्य मालूम पडते हैं। ऐसे अभिप्राय वदलने वालों के निर्णय का क्या मूल्य है।

"शाङ्करपीठत्तत्वदर्शन" के अंग्रेजीभाग के 8 व 9 पृष्ठों में कहा गया है कि राय साहब एस. पी. सान्याल के लीडर पत्र के लेखों को "शांकरमठविमर्श" में उद्धृत करते समय दो नये शब्दों को एक वाक्य में जोड कर प्रकाशित किया गया है। वास्तव में स्थिति यही थी कि श्री एस० पी० सान्याल साहब ने अपने हस्तलिखित लेख जो मेरे पास अब भी है उसमें इन दोनो शब्दों (Parasites, Panderers) का उल्लेख है और गल्ती इस बात की थी कि मैंने "लीडर" पत्र के साथ अपने पास के हस्तलिखित लेख द्वारा मिलाया न था। "शांकरमठ विमर्श" तैय्यार करते समय इस हस्तलिखित लेख द्वारा नकल किया गया था। चाहे जो हो, श्री एस. पी. सान्याल साहब के ही ये दो शब्द थे। यद्यपि 'लीडर' पत्र न प्रकाशित किया हो।

42. कुम्भकोण मठाधीश को 'चिक्कुडैयार' पदवी–न्यायस्थल का निर्णय।

15 अगस्त, 1935 ई० के मदरास में मुद्रित तथा प्रकाशित 'स्वदेशमित्रन' दैनिक समाचार पत्र से उद्धृत एवं तामिल भाषा से हिन्दी में अनुवादित —

'शिक्कुडैयार स्वामी उपनामक श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के पक्ष से चेंगलपेट जिला मुन्सिफ न्यायस्थल में जो दावा चलती थी, जिसमे उपर्युक्त स्वामीजी को पल्लावरम्, आदमपाक्कम्, तिरुवान्मियूर वगैरह जमीन्दारी के काश्तकार लोग 'मेरै' नाम का 'कर' देने में बाध्यस्त हैं ऐसा जो जिला मुन्सिफ ने निर्णय किया था उसको चेंगलपेट के सब जज श्रीमान आर. वेम्बू अय्यर अपील में गत सोमवार को अभियोक्ता की दावा को, उपर्युक्त प्रमाण अभाव से खारिज कर फैसला सुनाया।

दावा का सारांश यह है कि वादी श्री शंकराचार्य जी को प्राचीन हिन्दू राजा लोगों ने उपर्युक्त ग्रामों के जमीन में से 'मेरै' नामक कर वसूल करने का अधिकार दिया है। वह अधिकार बाद आये हुए मुसलमानी राज्य में भी स्वीकृत होकर अनुभव में आया था। अंग्रेज सरकार ने जब जमीनों पर लगान नियुक्त किया था तब लगान के अतिरिक्त उपर्युक्त शिक्कुडैय्यार स्वामी जी को उपर्युक्त श्रोत्रियंदार लोग एक रुपये में दो पाई के गणना से "मेरै" देने की आज्ञा दे दी है। यह "मेरै" जमीन से उत्पन्न धान्य में से एक कलम् में $1\frac{1}{3}$ पडि के निर्ख से देना चाहिये। (48 पडि = 1 कलम, 1 सेर = $\frac{8}{3}$ पडि) प्रतिवादियों का उत्तर यह है कि उपर्युक्त 'मेरै' कर आप लोग वादी को देने के लिये बाध्यस्थ नहीं हैं। वे लोग उन ग्रामों में उस समय में भी वैसा नहीं दिया था।

न्यायाध्यक्ष के फैसलों का कुछ सारांश

शिक्कुडैयार स्वामी नाम कुम्भकोणम स्थित कांची कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी जी को दिया गया है। इन्होंने न कोई प्रामाणिक शासन या पत्र प्राचीन हिन्दु राजाओं का दिया हुआ अधिकार का, बाद मुसलमानी राज्य के स्वीकृत किये हुए इन अधिकारों का एवं ब्रिटिश राज्य का कोई शासन पत्र या अनुमति का भी कचहरी में पेश की। यदि होता तो पेश करते पर उनके पास था नहीं। पूर्व में कभी भी इन 'मेरै' कर वसूल करने का कोई प्रामाणिक पत्र या शासन वादी के पास न था। इन्होंने ग्रामों में कभी भी कर वसूल नहीं किया था। यदि अधिकार होता तो क्यों नहीं 1800 से लेकर 1930 तक 130 साल तक वसूल किया गया? इससे सिद्ध होता है कि इन्हें अधिकार नहीं था। शिक्कुडैय्यार स्वामी एक प्रभावशाली पुरुष हैं, तंजौर जिले के एक मठ के अधिपति हैं और यह विश्वास नहीं किया जाता कि इन्हें अधिकार होता तो पूर्व ही वसूल किये होते। आदम्बाकम का गांव 'शैव सिद्धान्त मठ' को दिया गया है, जिसका मत श्री शंकराचार्य के विरुद्ध है। इनके बहीखाते पर सन्देह होता है। यह मठ कर वसूलों के लिये 1817 से लड रहा है। मठ के सर्वाधिकारी इस 'मेरै' वसूलों को दूसरों ग्रामों में अपना अधिकार जमाने के लिये और वहां कर वसूल करने के हेतु से प्रमाण तैय्यार करने के लिये शायद ऐसा बहीखाता तैय्यार किया गया है। बिना कुछ विवरण दिये हिसाब खाते में इधर उधर कहीं कहीं उल्लेख करना कल्पित हिसाब तैय्यार करना है।

In the court of the Sub-ordinate Judge of Chingleput.

Present:

M. R. Ry. R. Vembu Iyer Avergal, B. A. B. L., Subordinate Judge.
Dated the 12th day of August 1935.

A. S. Nos. 158, 163 & 342 of 1930 (A. S. Nos. 178, 189 & 382 of 1929 on the file of District Court, Chingleput)

Between :— 18 Names — Appellants
and

Sri Kanchi Kamakoti Pithadhipati Sri Sikkudayar Swamigal and Jagatguru Sri Sankaracharya Swamigal by agent K. Kuppuswami Iyer, son of Krishnaswami Iyer, residing at Sagaji Naick street, Kumbakonam. — Respondent in all the appeals. (Plaintiff in all the suits)

JUDGMENT

(2) Sikkudayar is the name given to Sri Kanchi Kamakoti Peethadhipati Jagadguru Sri Sankaracharya Swamigal at Kumbakonam. He is the plaintiff in the suits which have given rise to these appeals. His case as presented to me was that ancient Hindu Rajas granted to him the merah right over all the villages in the suit and several other villages in this district .... He also says that the Mohammedan Government which succeeded the Hindu kings in this area confirmed the grant and continued it. He further says that when the British Government became the rulers of this country under the treaty with the Nawab about 1797, they recognized and continued the merah grant .... and this was the condition which the British Government attached to the shrotriem grant. This last is the part of this case strictly relevant to these appeals.

(3) I first take A. S. No. 163/30 which relates to Pallavaram shrotriem. At the outset, I may say that no grant has been produced from the ancient Hindu Kings or no confirmation thereof by the Mussalman Kings of the country has been produced. No grant of the British Government recognising or granting such a right in terms has been produced.

(10) .. .. Plaintiff has no other documents to show collection at any later time: inference is, he never collected. If the right existed, plaintiff would not have failed to collect all these 130 years since 1800. Inference of the fact which I draw from the circumstances is that the right itself never existed.

(13) ... ... The Sikkudayar Swami is a most powerful person and head of a mutt in the Tanjore District and it is hardly likely that if any claims was to be made on this shrotriem it would not have been made long ago ....

(31) I note here that this shrotriem village of Adambakkam has been granted to Shaiva Sidhanta Mutt, that is, for a mutt intended for the exposition of Shaiva Sidhanta ... ... Sankaracharya Swamigal teaches pure monoism which is utterly opposed.

(33) .... I have my doubts regarding this account. The mutt was fighting for the merai since 1817. The mutt agents must have been trying to extend the area of collection of this merai and with this view, it is not improbable that a mutt agent's entry like this — a ledger entry — a bald one — was made without any details at all .... The entry itself shows it was not made in the regular course of business ....

इस समाचार से बोध होता है कि श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी का
नाम शिक्कुडैयार स्वामी है। विदित नहीं और कितने नाम हैं या होंगे ? ऐसा सुनने में आता है कि यह शंकराचार्य
जी भी काशी यात्रा के व्याज से श्री विश्वनाथ नगरी पहुंचकर कतिपय प्रतिष्ठित पन्डितों से आद्य श्री शंकराचार्य के
साक्षात् परम्परागत आप ही और अन्य सब मठ शिष्यों के परम्परागत और अपना ही प्रथम पीठ और मठ होने
की व्यवस्था लेने के लिये आवेंगे। श्री काशी में कुम्भकोण मठाधीश सभा द्वारा प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर
शास्त्रार्थ करके निर्णय करने में असमर्थ होते हुए आपने पन्डितों को मोटर गाडी में अलग अलग बुलाकर दक्षिणा,
दुशाला इत्यादि से भूषित कर फिर उनको अपने अपने घर पहूंचाने की अपेक्षा स्वयं मोटर से उनके घरों पर उतारकर
द्वित्रिगुणित द्रविण माया से और वस्त्रादियों से विशेषतः भूषित कर और सन्तुष्ट करके अपना इष्ट सिद्धि प्राप्त किया।
इससे प्रतीत होता है कि ये लोग जो पुस्तकों में प्रचार करते हैं वह कहां तक सत्य माना जाय। पूर्व काल में इस
कांची कामकोटि कुम्भकोण मठाधीश को सर्वजन सामान्य रुप से खुल्लम खुल्ला "शिक्कुडैयार" नाम से पुकारते थे।
किसी भी शंकराचार्य ग्रन्थ में आचार्य का नाम "शिंक्कुडैयार" या 'दोद्दुडैयार' नहीं दिया गया है। अथवा
आचार्य परम्परा के किसी ग्रन्थ रचयिता ने भी "शिक्कुडैयार" या "दोड्डैयार" नहीं ली है। 'छोटे स्वामी'
(शिक्कुडैयार) केवल एक बडे स्वामी (दोड्डैयार) के शिष्य ही हो सकते हैं और यह नाम शाखा मठाधीश को दिया

जाता है। मार्के की बात तो यह है कि कुम्भकोण मठाधीश का नाम "शिक्कुडैयार" अर्थात "छोटे स्वामी" है। इससे प्रतीत होता है कि दूसरे कोई "दोड्डैयार" अर्थात् बडे स्वामी रहे होंगे। यह कर्नाटक भाषा का शब्द है। कुम्भकोण मठाधीश अपने मठ को शारदा मठ कहते है। कुछ पुरा काल के लेखन से भी प्रतीत होता है कि कांची में शाखा शारदा मठ था। पर दक्षिणाम्नाय शारदा मठ तो श्रृंगेरी मठ का नाम है जहां आद्यशंकराचार्य ने सरसवाणी शारदा की प्रतिष्ठा की है। इनका मठ का "सील" (मुद्रा) कर्नाटक भाषा में है। प्रायः सब मठाधीश कर्नाटक ब्राह्मण ही हैं। इन सब विषयों से यह विदित होता है कि एक समय कांची मठ श्रृंगेरी मठ का शाखा था और श्रृंगेरी मठ का अधिकार एवं संचालन कालान्तर में कम होता गया और ये स्वतंत्र बन गये। बाद तंजौर के राजाओं की सहायता द्वारा आप अपना पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित कर दी। तब से यह कुम्भकोण मठ अपने को आद्यशंकर द्वारा प्रतिष्ठित एवं अधिष्ठित कह कर प्रचार करना शुरु कर दिया। इस विषय पर और आन्वेषण की जरूरत है। ईस्ट-इन्डिया कम्पनी सरकार ने 5—11—1842 के सनद अनुसार 'कुम्भकोणम शंकरा – चारियार' को कांची कामाक्षी मन्दिर का प्रथम बार ट्रस्टी पदवी पर निुक्त किया। इन सब विषयों का विवरण 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक में पायेंगे। चार वंशजों के ब्राह्मण लोग कामाक्षी मन्दिर का पूजा पाठ करते थे। यदि आद्यशंकर द्वारा प्रतिष्ठित मठ होता तो क्यों नहीं कामाक्षी देवी के मन्दिर का अधिकार इसके पूर्व आप के पास था? कुम्भकोण मठवाले अपने प्रमाण पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि आपका मठ कामाक्षी मन्दिर के पास है पर कुम्भकोण मठ का कोई मठ मन्दिर के पास नहीं है। इनके मठ का कहे जानेवाला प्राचीन इमारत तो बिष्णु कांची में है। इसके अलावा अर्वाचीन काल में खरीदा मठ शिवकांची में भी है जो हाल ही में पुनः निर्माण कर एक सुन्दर मठ बना दिया गया है। म० म० पं० कोक्कन्ड वेंकटरत्न पन्तुलु अपने पुस्तक "शांकरमठतत्वप्रकाशिका", 1876 में प्रकाशित, लिखते हैं कि आधुनिक कांची मठ का इमारत एक शूद्र का मकान था और 40 या 50 वर्ष पूर्व खरीदा गया। चाहे जो हो, इन सबों से शंका और भी बढता है।

43. महाराजा सुधन्वा का ताम्रशासन

1935 ई० में काशी में जब कांची कुम्भकोण मठ विषयक विवाद छिडा और भ्रामक मिथ्या प्रचारों की भन्डाफोड हुई थी तब कुम्भकोण मठाभिमानी विद्वानों ने कहा कि महाराज सुधन्वा का ताम्र शासन की सत्यता अभीतक सिद्ध नहीं हुई है और अनेकों को यह स्वीकार भी नहीं है अतएव इसके आधार पर निर्णय करना भूल होगी। मठाभिमानी विद्वानों ने पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ एवं पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठ के विषय में अपनी दुष्प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। यदि मठाभिमानी विद्वानों के इस कुतर्क को एक क्षण मान भी लें तो यही कहना पडेगा कि जिस किसी समय में भी यह ताम्र शासन पत्र लिखा गया था उस समय में भी कांची में आम्नाय मठ न था, नहीं तो चार आम्नाय मठ की जगह (जो वह ताम्र शासन स्पष्ट उल्लेख करता है) पांच मठों का उल्लेख होता। कुम्भकोण मठ के मठाम्नायसेतु के अनुसार कांची मठ जो "सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः॥" ऐसे कांची मठ का नाम न लेना आचार्य के प्रति अपचार होने के भय से ही ताम्रशासन दाता कांची का नाम लिये होते। पर आपने कांची का नाम नहीं लिया चूंकि कांची में आम्नाय मठ न था। इस ताम्र पत्र में दिये हुए विषय सब अन्दर बाह्य प्रमाण एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ पुष्टी करते हैं। 'श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठविमर्श' पुस्तक में इस ताम्रशासन के बारे में आलोचना पायेंगे। पाठकगणों की जानकारी के लिये राजा सुधन्वा के ताम्रशासन का नकल नीचे दिया जाता है। न तो चार आम्नाय मठाधीशों ने कुम्भकोण मठ को गुरुमठ एवं आद्यशंकराचार्य जी का अविच्छिन्न गुरु परम्परा मठ माना है और न यह ताम्रशासन में भी कांची का उल्लेख है।

श्री सुरेश्वराचार्य जी को अन्य मठवाले भी अपने मठ के प्रथमाचार्य होने को बताते हैं, ऐसे प्रकान्ड सुप्रसिद्ध विद्वान एवं श्री शंकराचार्य के अतिप्रिय एवं गण्य शिष्यों में एक होने के कारण कुम्भकोण मठ भी अपने कल्पित गुरु परम्परा में उन्हें प्रथमाचार्य होने का उल्लेख करते हैं। महानों का नाम लेकर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोडकर अपने को अन्यों की दृष्टि में सर्वोत्तम बनाने की इच्छा से यह काम करना तो स्वाभाविक है। चूंकि अन्य मठवाले भी उनको अपना प्रथमाचार्य कहते हैं इसलिये कुम्भकोण मठवाले कहते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य अन्य चार शिष्य मठों के निगरानी के लिये संचालक रूप में रक्खे गये और वे कांची मठ में थे, इसलिये अन्य मठवाले भी उनका नाम प्रथमाचार्य होने का उल्लेख करते हैं। श्री द्वारका मठवाले महाराजा सुधन्वा के शासनानुसार कहते हैं कि श्री सुरेश्वराचार्य द्वारकाधीश थे। श्री द्वारकामठ का वेद सामवेद है और सामवेदी श्री हस्तामलकाचार्य ही प्रथमाचार्य होने का कुछ लोग बताते हैं। श्री पद्मपादाचार्य काश्यप गोत्रीय ऋग्वेदी होने का कथन भी सुना जाता है। कुछ अनुसन्धान विद्वानों का अभिप्राय है कि पद्मपाद सामवेदी थे और द्वारकाधीश बने। श्री सुरेश्वराचार्य शुक्लयजुर्वेदी थे। इसलिये यजुर्वेद का दक्षिणाम्नाय मठ श्री शृंगेरी के वे प्रथमाचार्य थे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं। श्री शंकराचार्य से प्रतिष्ठित श्री शृंगेरी मठ है जहां उन्होंने 12 वर्ष वास करने की कथा कही भी जाती है, उस जगद् व्याख्यान सिंहासनाधीश श्री सुरेश्वराचार्य जी को छोड कर ऐसा कौन अन्य बैठ सकता है? मठाम्नाय सेतु में प्रथम मठ का उल्लेख पश्चिमाम्नाय द्वारका मठ का है जहां की अधीषी कालिका एवं शारदा पीठ है, वहां श्रीशंकराचार्यजी का प्रथम शिष्य श्री सनन्दन उर्फ पद्मपादाचार्य ही को प्रथमाचार्य होने का अभिप्राय भी है। इन सब विषयों पर आलोचना "श्रीमज्जगद् गुरु शांकरमठ विमर्श" पुस्तक में पायेंगे। श्री सुरेश्वराचार्य जी चाहे पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीश रहे हों या चाहे दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठाधीश रहे हों और इसमें विवाद नहीं है पर प्रश्न तो यह है कि क्या श्री सुरेश्वराचार्य कल्पित कांचि मठ में थे? निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आप कांची मठ में न थे। यह विषय यहां इसलिये उल्लेख किया जाता है कि कुम्भकोण मठ विद्वानों ने काशी में अपने कुतर्क दुष्प्रचारों से लोगों में भ्रम पैदा कर दिया था।

— ताम्र शासनं सुधन्वनः सार्वभौमस्य —

श्री महाकालनाथाय नमः

श्री महाकाल्यै नमः

श्री मत्सदाशिवापरावतारमूर्ति चतुष्षष्टिकलाविलासविहारमूर्ति बौद्धातिसर्ववादिदानवनृसिंहमूर्ति वर्णाश्रम वैदिक सिद्धान्तोद्धारकमूर्ति मामकीन साम्राज्य व्यवस्थापनमूर्ति विश्वेश्वर विश्वगुरुपदजगजेगीयमान-मूर्ति निखिलयोगिचक्रवर्ति श्रीमच्छङ्करभगवत्पादपद्मयोः भ्रमरायमाणसुधन्वो मम सोमवंशचूडामणि युधिष्ठिरपारम्पर्य परिप्राप्त भारतवर्षस्याञ्जलिबन्ध पूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः।

भगवद्भिर्दिग्विजयोऽकारि। सर्वे वादिनः पराकृताः। सर्वे वर्णा आश्रमाश्च कृतयुगवत् पूर्णे वैदिकाध्वनि नियोजिताः सन्तो यथाशास्त्रमाचरन्ति हि धर्मम्। ब्रह्मविष्णुमहेश्वर महेश्वरी स्थानान्यशेष देशवर्तन्युद्धृतानि। सर्वं ब्रह्मकुलमुद्धारितम्। विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षिक्याद्यशेषराजतंत्र परिशीलनेनोन्नीतं भवति। ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुख निखिल विनेयलोकसंप्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ-बदरी-द्वारका -शृङ्गर्षिक्षेत्रेषु भोगवर्धनज्योतिश्शारदा शृंगेरीमठापरसंज्ञकाः संस्थापिताः। तत्रोत्तरदिशो योगिजन -शृङ्गर्ष्याश्रमे प्राधान्येन धर्म मर्यादा रक्षणं सुकरमेवेतिज्योतिर्मठे श्री तोटका परनाम्नः प्रतर्दनाचार्यनथ शृङ्गर्ष्याश्रमे ब्रह्म-शृङ्गर्षि समस्वभावान पृथ्वीधराभिधेय हस्तामलकाचार्यान् भोगवर्धने स्वत एवास्मितत्वेनात्यन्तोग्रब्रह्म-भावानपि सर्वज्ञकल्प पद्मपादापरनाम सनन्दनाचार्यानथ बौधकापालिकादि बकलवादि भूयिष्ठ

पश्चिमस्यांदिशि धादि दैत्यांकुरः मापुर्नभवत्विति शारदा पीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सादित वज्रनाभनिर्मित भगवदालयादि दुर्दशां दूरीकृत्य भगवांश्चित्रिलोक सुन्दरनाम्ना पुनस्सन्निवध्य भगवदालय श्री कृष्णादि सकलमर्यादा सुसंस्कृता या मब्गितताशेष लौकिक वैदिकतंत्र विश्वविख्यात कीर्ति सर्वज्ञानमयान् विश्वरुपा परनाम सुरेश्वराचार्यांश्चास्मत्सर्वलोकामिमति पूर्वक मर्भिषच्यैवं चतुर्म्य आचार्येभ्यश्चतस्रो दिश अदिष्टा भारतवर्षस्य। तएते तत्तत्पीठ प्रणाड्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तो वैदिकमार्गामुद्भासयन्तु। सर्वेवयं तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्मक्षत्रादयस्तत्तन्मण्डलस्यैवाचार्यस्याधिकाराधिकृता वर्तिष्यामहे च। महद्भिर्निर्णयप्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्या एवोक्तलक्षणतः सर्वत्रैव व्यवस्थापका भवन्तु भगवता मनुशासनाच्च। अस्मद्राजसत्तेव निरङ्कुशगुरुसत्ताप्युक्त मर्यादया जगत्यविचलं विचलतु। परिव्राजको हि महाकुलीनत्त्व वैदुष्यादि विशिष्टाचार्य लक्षणैरन्वित एव श्री भगवत्पाद पीठानामधिकारमर्हति न तु विनिमयेनेत्येवमादि नियमबन्धो भगवदाज्ञासमवबुद्धस्समस्तैरथास्मादादि ब्रह्मक्षत्रादि वंशोद्भवैः परमप्रेम्णो माङ्गेन ध्रियत इत्येतां विज्ञसिमङ्गीकुर्वन्तु भगवन्त इति स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः। युधिष्ठिर शके 2663 आश्विन शुक्ल 15।

सुधन्वा सार्वभौमः।

44. काञ्चीनगर एवं श्री कामाक्षीमन्दिर का कुम्भकोण मठ से सम्बन्ध—विमर्श तथा मठविषयक भ्रामक प्रचारों का सत्यान्वेषण।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों; कुम्भकोण मठाभिमानी प्रचारकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों; काशीधाम में प्रकाशित ट्रक्टों, पुस्तकों, व्यवस्थाएं और अभिनन्दन, स्वागत, प्रार्थना, प्रणति, प्रमाण आदि पत्रों को एक जगह एकत्रित करके उनमें दिये हुए विवादास्पद, भ्रामक, मिथ्या, कल्पित, क्षिप्त, विषयों को उद्धृत कर तथा इन सबों की एक समग्र सूची बनाकर, इन मुख्य विषयों का उत्तर, आलोचना एवं विमर्श मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक पुस्तक में दिया गया है। कुम्भकोण मठ का वास्तविक इतिहास इस पुस्तक में पायेंगे।

कुम्भकोण मठाभिमानियों एवं मठ से लगभग 125 साल से प्रकाशित द्वेष भरे भ्रामक एवं असत्य विषयों के प्रचार से; काशी के बिहारीपुरी मठ की सभा (30—9—1934) के निर्णयानुसार एवं काशी के कुछ विद्वानों व माननीय परिव्राजकों के आदेश से; 1935 ई० में प्रकाशित पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पर आसेतु हिमाचल के अनेक विद्वानों, मठाधीशों व परिव्राजकों की सम्मति प्राप्त होने से; दक्षिण व उत्तर भारत के कई गण्यमान सज्जनों के अनुरोध से; मेरे पूज्य पिता के मरण पूर्व दिये आदेश से; वास्तविक सत्य के प्रकाशन के लिये; मैं ने इस विषय को हाथ में लेकर एक अलग पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' नामक प्रकाशित किया हूं। पाठकगण अपने अपने अभिमान छोड़कर निस्पक्षपाती होकर सत्यान्वेषण की दृष्टि से इस पुस्तक को पढ़ें और यही मेरी प्रार्थना है। श्रीभगवत्पाद के कथनानुसार 'नहि मृषां कृत्वा कश्चित अजरामरो भवति' — सत्य की ही जय होगी और असत्य असत्य ही है चाहे उसे जिस प्रकार का रङ्ग रूप दिया जाय।

1934/35 ई० में काशीधाम में कुम्भकोण मठविषयक प्रचार खूब हुआ और यहां संग्रह रूप में उन प्रचारों पर आलोचना की जाती है।

(क) कांची में बहुकाल वास करते हुए आचार्य शङ्कर ने कामकोटिपीठ की प्रतिष्ठा की थी ऐसा जो प्रचार है सो बिलकुल निराधार एवं भूल है। माधवीय शङ्करविजय के डिण्डिम टीका में कहेजानेवाले प्राचीन

शङ्करविजय के उद्धरण ('तत्र कांचीस्थले मासमात्रं स्थित्वे') द्वारा मालूम होता है कि कांची में आचार्य शङ्कर ने माह ही वास किया था। आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी 'तस्मिन्स्थले मास मात्रं स्थित्वा' कहा है। कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य आ० शं. वि. में भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने बारह वर्ष शृंगेरी में वास किया था — 'तत्रैव परमगुरुः द्वादशाब्दकालं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैतविद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा...' कुम्भकोण मठ की प्रामाणिक पुस्तक गुरुरत्नमाला की व्याख्या "सुषमा" पुस्तक में भी आचार्य शङ्कर का शृंगेरी वास बारह वर्ष कहा गया है — 'अब्दान् द्वादश सोऽत्यवीवहदधि व्याख्यान सिंहासनं। शिष्यान् स्वान् विनयन् स्वभाष्य सरणौ श्री तुङ्गभद्रा तटे।' चिद्विलास शङ्करविजय विलास जो कुम्भकोण मठ का कथन है कि आपके मठाधीश चिद्विलास से रचित है, इस पुस्तक में भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने शृंगेरी में चौदह वर्ष वास किया था। आचार्य शङ्कर की आयू केवल 32 वर्ष था और अल्प वयस में नर्मदा नदी तीर स्थित ओंकारेश्वर मान्धाता (शिवमहापुराण IV–18 में उल्लेख है कि ओंकारेश्वर स्थल में महेश्वर शिव ने देव ऋषियों के अनुरोध पर विन्ध्य पर्वतराज को स्वस्वरूप प्रकट कर वहीं पर एक चिन्ह रुप में वास करने लगे) में गुरुगोविन्दभगवत्पाद से भेंट कर सन्यास दीक्षा व शिक्षा प्राप्तकर, 16 वीं वर्ष में बदरी सीमा व काशी में भाष्य रचना समाप्त कर, 17 वीं वर्ष में मण्डन विश्वरूप मिश्र से माहिष्मति में भेंट कर पश्चात् सन्यासाश्रम देकर, (नर्मदा नदी किनारे महेश्वर नाम का एक नगर जो ओंकारेश्वर क्षेत्र से 50 मील दूर पर स्थित है। अहल्याबाई होलकर रानी की राज्यकेन्द्र माहिष्मती था। गृह अब भी देखा जा सकता है। इस महेश्वर नगर में नर्मदा नदी किनारे एक उच्चस्थल है जिसे 'महिको' कहते हैं। वहां के वासिन्दे आज भी इसी स्थल को मण्डन विश्वरूप मिश्र जी का वासस्थल बतलाते हैं। इसी जगह का घाट को मण्डनमिश्र घाट के नाम से पुकारा जाता है। 'महिको' में एक भग्नावस्था मण्डप है जिसमें शिला के दो पाद प्रतिष्ठित हैं जिसे आचार्य शङ्कर का पाद कहा जाता है और खेद है कि किसी ने इसका जीर्णोद्धार नहीं किया है। वहां के लोग यह भी बतलाते हैं कि मण्डनमिश्र वासस्थल जब खोदा गया था तो वहां उनसे उपयोग की गई वस्तु भी प्राप्त हुआ और भस्म भी मिला। नर्मदा नदी किनारे और माहिष्मती से करीब 4 मील दूर पर 'सहस्रधारा' है जो देखने योग्य स्थल है।) सुरेश्वराचार्य व अन्य शिष्यों के साथ दक्षिण भारत लौटकर शृंगेरी में 12 वर्ष वास करके भारतवर्ष का एक बार भ्रमण दिग्विजय रूप में करने के पश्चात् अब कितना वर्ष बाकी रह जाता है कि आचार्य शङ्कर कांची में "बहुकाल वास" (कुम्भकोण मठ कथनानुसार) कर सकते थे? आचार्य शङ्कर की दिग्विजय यात्रा रामेश्वर से हिमालय, काश्मीर से कामरूप, द्वारका से पुरीजगन्नाथ आदि सीमा के अन्तर्गत अनेक मन्दिरों, क्षेत्रों, तीर्थों का जीर्णोद्धार एवं विपक्षी दलों के विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ बिवाद तथा चार आम्नाय मठों का निर्माण, आदि कार्य क्या कुछ दिनों में ही किया गया था ताकि आप बहुकाल कांची में वास कर पाते? आचार्य शङ्कर ने काञ्ची में वास उतना ही दिन किया होगा जितना आपने अन्यक्षेत्रों में किया था। श्री के. टि. तेलङ्ग, एक प्रकाण्ड विद्वान एवं आचार्य शङ्कर चरित्र सामग्री पर काफी अनुसन्धान किया था, आप लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर का कांचीवास बहुकाल का न था और उतना ही दिन था जितना आपने अन्य क्षेत्रों में वास किया था —'.... ... ... he went to Kanchi where he erected a temple and established the system of the adoration of the Devi.' प्रो० विल्सन 1855 ई० में 'ग्लासरी' में लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर कांची में अपनी यात्रा करते हुए अन्य तीर्थ स्थल चले गये और आपका कांचीवास शंकास्पद है—'........ Whether he (Sankara) was more than a passing pilgrim at Conjeevaram is doubtful? (Page 810). प. प- श्री 108 श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज (हरिद्वार) लिखते हैं — "He (Sankara) went to Conjeevaram, encountered Shaktas, purified the temples, and won over to his side the kings of Chola and Pandya kingdoms."

(Sringeri—Souvenir 1963). ऐसा अनेक प्रमाण दिया जा सकता है पर उपलब्ध सामग्री से जब दृढ़ निष्कर्ष निकलता है तो अन्यों की आवश्यकता नहीं है।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि आचार्य शङ्कर ने कामकोटिपीठ की प्रतिष्ठा की थी सो प्रचार भी भ्रामक है। कुम्भकोण मठके आचार्य अष्टोत्तरशत नामावली में 'कांची श्रीचक्रराजाख्य यंत्रस्थापन दीक्षित:' का उल्लेख है, अर्थात् आचार्य शंकर ने कांची की अधिष्ठात्री गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता को शान्त करके स्थूल रूप श्रीचक्रराज यंत्र का पुनः प्रतिष्ठा की जैसे आचार्य ने अन्यस्थलों के पीठों की भी की थी। 'पंचाशत पीठ मण्डिता' के अनुसार पचास पीठों में (देवी भागवत रीति) कांची में एक पीठ अनादिकाल से है और यहां 'ऐ'कार वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ। भागवत के दसवें स्कन्द में (79 अध्याय) 'कामकोष्णीं पुरीं कांचीं' का उल्लेख है। तोडल तंत्र में कांची को विश्वरूप महादेव का कटिदेश कहा है। बृहन्नीलतंत्र पांचवें पटल में कांची में कनक कांची देवी का उल्लेख है। देवी भागवत एवं मत्स्यपुराण में 108 शक्ति स्थान एवं भगवती के 108 नाम का उल्लेख करते हुए कहा है 'गन्धमादन पर्वतपर कामाक्षी रूप में स्थित' हैं। तंत्रचूडामणि में 51 पीठों का उल्लेख है और कांची में सति का कङ्काल (अस्थि) अङ्ग गिरने से यह शक्तिपीठ 'देवगर्भा' के नाम से प्रसिद्ध है। शिवकांची का वर्तमान कहेजानेवाला कालीमन्दिर ही पुरातन देवगर्भापीठ है। शिवचरित्र, दाक्षायणीतंत्र, योगिनिहृदयतंत्र आदि ग्रन्थों में 51 पीठों का उल्लेख है जिसमें कांची भी एक है। त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खंड में पराम्बा पार्वती का बारह देवी रूपों में स्थित होने का भी उल्लेख है जिसमें कांची का कामाक्षी एक है। नाभी की पतनभूमि जगह कामकोटि पीठ हुआ। उत्कल देश में याजपुर तीर्थ है जिसे नाभी गया क्षेत्र माना जाता है। यहां की विरजादेवी पीठ को तांत्रिक लोग नाभी पीठ मानते हैं– 'उत्कले नाभि देशस्तु विरजा क्षेत्र मुच्यते। विमला सा महादेवी जगन्नाथस्तु भैरवः।' (तंत्र चूडामणि) सौन्दर्यलहरी में भी अनादि काल से प्रचलित शक्ति पीठ का कांची में वर्णन है। ललिता त्रिशती में 'कामकोटि निलयायी नमः' का उल्लेख है जिसका अर्थ है 'षण्णवर्ता पीठेषु मध्ये कामकोटिः श्रीचक्रमित्यर्थः। निलयम् - गृहं यस्याः सा कामकोटि निलया"। कामकोटि का अर्थ श्री चक्र है। ललिता सहस्रनाम में भी कामकोटि पद का उल्लेख है — 'काम — परशिवएव, कोटिः एक देशो यस्याः।' प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने 'शाक्त संप्रदाय को वैदिक मार्ग में लाये' और ऐसा कहने से ही प्रतीत होता है कि कांची का पीठ आचार्य शङ्कर काल के पूर्व का है। अतः यह सिद्ध हुआ कि कांची में आचार्य शङ्कर के पूर्व काल से ही श्रीचक्र (कामकोटि) पीठ है। इस श्रीचक्र का 'सौम्यवपुषं' किया अर्थात् गुहावासिनी वायुरूपिणी कामाक्षी का स्थूल रूप श्रीचक्र उग्र व अशुद्ध होने से अशुद्धता निवारण करके उग्रता का शान्त किया था। अतः यह कहना ठीक है कि आचार्य शङ्कर ने जीर्णोद्धार करवाया। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में भी प्राचीन शङ्करविजय की पंक्तियां व श्लोक उद्धृत कर कहते हैं कि आचार्य ने उग्रता को शान्त किया था। आचार्य शङ्कर ने जम्बुकेश्वर, मूकाम्बिका, तिरुपदी, अहोबिलम, चिदम्बर, काशी (अन्नपूर्णा), कामरूप कामाक्षी (कामाख्या), गुह्येश्वरी (नैपाल) आदि स्थलों की देवियों की अशुद्धता व उग्रता शान्त किया था उसी प्रकार कांची में गुहावासिनी कामाक्षी की स्थूल रूप श्रीचक्र की उग्रता को शान्त कर और अशुद्धता की निवारण की थी। पर कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि "श्रीमद्भगवत्पाद प्रतिष्ठित कामकोटि पीठ" है अर्थात् आचार्य शङ्कर ने नवीन कामकोटि पीठ की प्रतिष्ठा की थी। यह प्रचार इसलिये किया जाता है कि जिस प्रकार आचार्य शङ्कर ने चार पीठों की प्रतिष्ठा चार आम्नाय मठों में की थी उसी प्रकार अनभिज्ञ पामरजनों में यह भ्रामक प्रचार करना चाहते हैं कि कांची में भी पांचवां नवीनपीठ का निर्माण हुआ था।

'कामाक्षी विलास' ग्रन्थ के अनुसार 'बिलाकाश' या 'महाबिलम' जहां से श्रीकामाक्षी निकल कर बाह्य आयी थी और भण्डकासुर को पराजित किया था, उसी बिलाकाश या महाबिलम को कामकोटि कहते हैं तथा इसे

'कामराजपीठम्' भी कहते हैं। कामाक्षी मन्दिर आचार्य शंकर काल के पूर्व का ही है और आदि काल में परमेश्वर ने स्वयं वहां श्रीचक्र की प्रतिष्ठा की थी जिसे अब आचार्य शंकर ने अशुद्धता निवारण कर जीर्णोद्धार किया था। कहा जाता है कि आचार्य शंकर ने राजा द्वारा शिव, विष्णु आदि मन्दिरों को पुनः बनवाये एवं नगर का निर्माण किया तथा पूजापाठ के लिये ब्राह्मणों को नियुक्त करके कांची से आगे बढे। कामाक्षी देवी की पूजा पाठ भी ब्राह्मणों के हाथ सौंप दिया। माधवीय टीकाकर लिखते हैं '... ... ... तस्मिन्काञ्ची नगरे मासमात्रं स्थित्वा शङ्करप्रतिष्ठापूर्वकं शिवकाञ्चीति पट्टनं निर्माय तत्प्रागाविर्भूत विष्णु वरदराजं समाश्रित्य तत्र विष्णुकांचीति पट्टनं निर्माय तत्सेवार्थं ब्राह्मणादीननेक भक्तजनान्संपाध्य तानपि शुद्धाद्वैतवृत्तीनेव सर्ववेदान्त तात्पर्य निष्ठांश्चकार।''

कांची पद का अर्थ 'मध्यपीठ' है। कामकोटि का अर्थ आचार्य शङ्कर के व्याख्यानुसार 'श्रीचक्र' है। 'कञ्चि' पद का अर्थ कञ्चीनगर का नाम है। प्राचीन काल में इस कञ्ची नगर का नाम 'कचिपेडु, कंची, कञ्चि, कञ्चिपुरम'' आदि था। अब इस नगर का नाम 'कञ्जीवरम' है। 'कञ्चि' नाम का नगर इस भारतवर्ष में पांच जगह होने का समाचार अब तक प्राप्त हुए हैं — (1) कश्मीर राजा नवसुरेन्द्रादित्य नन्दिदेव पटोलदेव के शासनकाल में 'कांचुडी' वर्ग के लोग जो कश्मीर के 'कञ्चि' नगर से आये थे वे प्रभावशाली थे; (2) मध्यभारत में कोंच या कञ्च नाम का नगर एक है; (3) आसाम प्रान्त में कांचीपाडा नगर का नाम उल्लेख है; (4) तुङ्गभद्रा नदी समीप कर्नाटक प्रान्त में कञ्चिपुर या कोंचपुर एक नगर था; (5) मदरास समीप एक कञ्चि है। आचार्य शङ्कर कश्मीर, मध्यभारत, आसाम, तुङ्गभद्रा नदी तट आदि सीमाओं में भ्रमण किये थे और अनुमान करना भूल न होगा कि आचार्य इन पांचों कञ्चि स्थलों में भी गये होंगे। इन सब पांचो कञ्चि नगरों में देवी का मन्दिर भी हैं। कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित शिवरहस्य नवमांश षोढशाध्याय का 44 श्लोक में कहा है 'तान्वै विजित्य तरसाऽक्षत शात्रवादैर्मिश्रान् स काञ्च्यामथ सिद्धिमाप॥ इस श्लोक का पाठान्तर भी प्रकाशित हुआ है। उक्त श्लोक के 'मिश्रान्' पद स्पष्ट बोध कराता है कि उत्तरीय भारत के प्रकान्ड गौड ब्राह्मण विद्वानों से आचार्य शङ्कर ने वादविवाद कर उन्हें पराजित किये। इससे यही कहा जा सकता है कि यह उत्तरीय भारत का प्रसङ्ग है न कि दक्षिण भारत कांची का वर्णन। अतः उत्तर भारत कांची नगर का ही यह संकेत करता है।

माधवीय मूल में या टीकाकार के अन्य ग्रन्थों से उद्धृत पंक्तियों में नहीं कहा है कि आचार्य ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी या आप वहां वास करते हुए देह त्याग किया था। 'गुरुपरम्परा चरित्र' ग्रन्थ में कांची में मठ स्थापना का विषय उल्लेख नहीं है। शिवरहस्य में 'काञ्च्यां तपः सिद्धि मवाप्य दण्डी' का उल्लेख है न कि तनुत्याग का। माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय, कहेजानेवाले नवीन व्यासाचलीय, अग्राह्य मूल आनन्दगिरि, गोविन्दनाथ, मठाम्नाय, आदि अनेक ग्रन्थों में नहीं कहा गया है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी।

पीठ की अधीशी देवयोनि होते हैं न कि मनुष्य। मनुष्य के लिये वासस्थल मठ है ('मठ छात्रादि निलय:,' 'ब्रह्मघोषो भवेद्यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः। देव प्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते॥')। लोक व्यवहार में साधारण तौर पर पीठ पद का अर्थ आसन भी होता है। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नाय में चार आम्नाय मठों का पीठ व मठ नाम भिन्न दिया गया है। पीठ व मठ का अर्थ व तात्पर्य भिन्न हैं और अनभिज्ञ जन इन दोनों को एक ही होने का मान लेते हैं चूंकि कुम्भकोण मठ अपने भ्रामक व मिथ्या प्रचारों से इस भ्रम की पुष्टी करते हैं। आचार्य शङ्कर ने अधिकार संपन्न आम्नाय मठ (धर्मराज्यकेन्द्र) की स्थापना कर उसे आम्नाय पद्धति, नियम, संप्रदाय व महानुशासन द्वारा बद्ध किया है। इस नियम, संप्रदाय, पद्धति, अनुशासन का परिपालन करनेवाले आचार्य ही

आम्नाय मठाधीश बनकर पीठ के देव व देवी की आराधना करते हुए, आचार्य शङ्करमत को अक्षुण्ण रखने के लिये धर्म प्रचार करते हुए एवं स्वयं परम्परा प्राप्त उपदेश लेकर परम्परा में आते हैं। इन चार आम्नाय मठ के अतिरिक्त सब मठ या तो शाखा मठ हैं या केवल यति व ब्रह्मचारी का निवास स्थल होता है। जहां जहां पीठ हैं वहां आम्नाय मठ होने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शङ्कर ने अनेक पीठों का उद्धार किया था तो क्या यह कहा जाय कि इन सब पीठों में अम्नाय मठ भी हैं? धर्मशास्त्र ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि आम्नाय सात हैं जिसमें तीन ज्ञान गोचर हैं 'अथोर्ध्वशेषेगौणायेतेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः' अर्थात् ऊर्ध्व, आत्मा, निष्कल ज्ञानगोचर हैं और शेष चार भूलोक के दृष्टि गोचर चार दिक हैं। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नायानुसार चार दृष्टि गोचर चार आम्नाय के चार मठ हैं और अन्य सब मठ इन चार मठों के अन्तर्गत ही हैं। कुम्भकोण मठ की पूजा कल्प में उल्लेख है 'चतुर्दिक्षु चतुराम्नाय प्रतिष्ठाता महामतिः' और आप भी चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख करते हैं।

(ख) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य में योगेश्वर पद का उल्लेख होने से, शिवरहस्य नवमांश शोडषोऽध्याय में पांच लिङ्ग का उल्लेख होने से, मार्कन्डेय संहिता एवं आनन्दगिरि शङ्करविजय में भी योगलिङ्ग का उल्लेख होने से, कांची में मठ होने का विषय निश्चित होता है। यह योग लिङ्ग सर्वोच्च सर्वोत्कृष्ठ है।

शिवरहस्य में उल्लेख है कि काशीधाम में परमेश्वर स्वयं विश्वेश्वर लिङ्ग से आविर्भाव होकर आचार्य शङ्कर को पांच लिंग दिया था 'एतत् प्रतिगृह्याण त्वं पञ्चलिङ्गं सुपूजय'। और इस पांच लिङ्ग को आचार्य शङ्कर ने चार आम्नाय मठों में पूजासेवादि के लिये देकर पांचवां लिङ्ग को चिदम्बर क्षेत्र में प्रतिष्ठा कर दी थी। शिवरहस्य में उल्लेख है 'यूयश्चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैस्साकं वसन्त्वित्युपदिश्य हर्षान्' अर्थात् चार आम्नाय मठों में चार लिङ्ग का बंटवारा हुआ था। शिवरहस्य नवमांश शोडषोध्याय का भिन्न पाठान्तर मिलते हैं। इसे ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत, स्कान्दपुराणान्तर्गत, शैव उपपुराणान्तर्गत, इतिहास, स्वतंत्र ग्रन्थ, द्वैत(मत प्रक्रिया) ग्रन्थ, आदि होने का भी भिन्न भिन्न अभिप्राय प्रचार किये गये हैं। यह 18 पुराणों में एक नहीं है। कुम्भकोण मठाधीश ने 1932 ई० भाषण में कहा कि यह शिवरहस्य इतिहास है और मतप्रक्रिया द्वैत ग्रन्थ है। इसमें अर्वाचीन काल के श्री हरदत्ताचार्य एवं श्री अप्पय्य दीक्षित का भी उल्लेख है। इसी शिवरहस्य के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर एवं सुरेश्वराचार्य स्वशरीर सहित कैलास जाकर वहां परमेश्वर महादेव की स्तुति करके पांचलिङ्ग एवं सौन्दर्यलहरी कुछ भाग प्राप्त कर भूलोक को लौट आये। एक प्रचार पुस्तक में 'शिवरहस्य' को भी कैलास से लाने की कथा कही गई है। इस कल्पित कथा के आधार पर आचार्य शङ्कर नामावली में 'कैलास यात्रा संप्राप्त चन्द्रमौलिप्रपूजकः'' भी जोड लिया गया है। पर शिवरहस्य स्पष्ठ कहता है कि परमेश्वर ने काशी में लिङ्ग दिया था। शिवरहस्य के निम्न श्लोक ''तद्योगभोग वरमुक्ति सुमोक्ष योग लिङ्गार्चनाप्राप्त जयः स्वकाश्रम। तान्वै विजित्य तरसाऽक्षत शास्त्रजालैः मिश्रान् सकाञ्चयामथ सिद्धिमाप'॥ से पांच लिङ्ग का नाम लेते हैं। इस श्लोक का पाठान्तर भी हैं यथा 'ततो नैजमवाप लोकम्,' 'ततोलोकमवापशैवम्' 'सकाञ्च्यामथसिद्धिमवापशैवम्।' कुम्भकोण मठ से प्रकाशित शिवरहस्य में करीब 20 श्लोक मूल से उडा दिया गया है। 18 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में लिखा गया एक प्रति में उक्त श्लोक मिलता नहीं है। उक्त श्लोक में दो बार योग पद का उल्लेख है और इसका क्या तात्पर्य है? प्रथम कहे हुए सब पांच लिङ्ग योग लिङ्ग हैं? अथवा क्या योग लिंग की पूजा सेवा से ये पांच (योग, भोग, वर, मुक्ति व मोक्ष) फल प्राप्त होते हैं? मुक्ति लिंग एवं मोक्ष लिंग में क्या भेद हैं?

आनन्दगिरि शंकरविजय में भी पांच लिंग का उल्लेख नहीं है। पर कुम्भकोण मठ की अनुमति से अर्वाचीन काल में प्रकाशित एक परिष्कृत्य आ. शं. वि. में एवं इसके अन्य नकल प्रतियों में इन लिंगों का नाम व कथा

भिन्न जगहों में जोड लिया गया है। पर कलकत्ता मुद्रित (1881 ई०) आ. शं. वि. एवं प्राचीन प्रति जो मूल प्रति का नकल है और जो अब भी आक्स्फोर्ड में उपलब्ध है उसमें पांच लिंग का नामो निशान नहीं है। 1828 ई० में प्रो. विल्सन द्वारा निर्देषित आ. शं. वि. में भी यह पांच लिंग की कथा कही नहीं गयी है। कोई भी अब प्राप्त होने वाले शङ्करविजय पुस्तकों में पांच लिंग की कथा उल्लेख नहीं है।

कुम्भकोण मठ द्वारा प्रचारित मार्कन्डेय संहिता जो 18 पुराणान्तर्गत नहीं है या न संपूर्ण पुस्तक उपलब्ध होती है (केवल दो जगह प्राप्त होते हैं सारे भारतवर्ष में) या न श्रेठों को प्राह्य है और इसमें कहेजानेवाले विषय अन्य प्रामाणिक ग्राह्य पुस्तकों में दिये विवरणों के विरुद्ध हैं, वैसे प्रमाणाभास पुस्तक के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि कांची में योग लिंग की प्रतिष्ठा की थी ('योगलिंग मनुत्तमम् प्रतिष्ठाप्य')।

श्रीहर्ष रचित नैषध काव्य जो नल दमयन्ती का चरित्र वर्णन है और जो पुस्तक राजा विजयचन्द्र व जयन्तचन्द्र के समय 12 वीं शताव्दी का रचित कहा जाता है उसमें 'यागेश्वर' पद जो कांची का मूलदेव का वर्णन है (आठ टीकाकारों का टीका देखागया और सबो ने 'यागेश्वर' पद का ही टीका की है) उस पद को बदल कर 'योगेश्वर' पद होने का प्रचार करते हुए लिखते हैं कि यह लिंग आचार्य शङ्कर द्वारा कैलास से लाया हुआ 'योग' लिंग का ही संकेत करता है। नैषध के टीकाकर श्री मल्लिनाथ, श्रीनारायण, श्री विद्याधर; श्री चन्डुपन्डित, श्री ईशानदेव, श्री जीनराज आदियों ने 'यागेश्वर' पद की टीका करते हुए कहीं भी योग लिंग का उल्लेख नहीं किया है। महाभारत युद्ध के पूर्व नलदमयन्ती चरित्र का वर्णन जो नैषध काव्य में है उसके साथ आज से करीब 1200 वर्ष पूर्व आचार्य शङ्कर द्वारा दिया गया योग लिंग का सम्बन्ध 'बादरायण सम्बन्ध' मालूम पडता है। नैषध एक तो कल्पनात्मक काव्य है, दूसरा चरित्र से असम्वन्धता है एवं तीसरा योगेश्वर या योग लिंग का उल्लेख न होने से इस पुस्तक को प्रमाण में दिखाना कि आचार्य शङ्कर ने कांची में आम्नाय मठ की स्थापना की थी सो मूर्खता है। स्कान्दपुराण में योगेश्वर लिंग का वर्णन प्रभास क्षेत्र में किया है। त्रिस्थलीसेतु में काशी विश्वनाथ को योगेश्वर कहा है। नैपाल इतिहास व स्थलपुराण में नैपाल में योग लिंग का वर्णन है।

यदि पांचलिंग की कथा मान भी लें तो इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि आम्नाय मठ की स्थापना भी हुई थी। आम्नाय मठ की पद्धति, नियम, संप्रदाय, अनुशासन आदि योग लिंग पर निर्भर नहीं करता है। आचार्य शङ्कर ने जहां कहीं भी मन्दिर निर्माण कराया था, नगर निर्माण कराया था, देव देवियों की प्रतिष्ठा की थी, देवी की उग्रता शान्त कर श्रीचक्र की प्रतिष्ठा या जीर्णोद्धार किया था, क्या ये सब आम्नाय मठ हैं? कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि उक्त पांच लिंग में से केदार व नीलकण्ठ में दो लिंग, चिदम्बर में एक लिंग और कांची व शृंगेरी में एक एक लिंग की प्रतिष्ठा की गयी थी। कुम्भकोण मठ के कथनानुसार कि लिंग होने से मठ होना आवश्यक है तो चिदम्बर, केदार व नीलकण्ठ में मठों का होना था पर वैसा तो दीखता नहीं है। क्या कांची का योगलिंग ही मठ में होने की योग्यता रखती है? क्या वर, मुक्ति व मोक्ष लिंग मठ में होने की योग्यता नहीं रखती? इसी प्रकार पश्चिमाम्नाय द्वारका, पूर्वाम्नाय गोवर्धन, उत्तराम्नाय जोशी मठ होते हुए भी लिंग प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं है। इन तीनों आम्नाय मठों के चन्द्रमौलीश्वर क्या आचार्य शङ्कर द्वारा प्राप्त न हुए थे? इससे प्रतीत होता है कि लिंग स्थापना से ही मठ स्थापना होना आवश्यक नहीं है। कुम्भकोण मठ के पतञ्जलिचरित्र एवं शंकराभ्युदय में लिंग कथा दी नहीं गयी है।

(ग) कुम्भकोण मठ प्रचार का विवरण यों है—आचार्य शङ्कर ने अपने निजाश्रम कांची में निजमठ की स्थापना करके, इस मठ में अधिष्ठिन होकर अपनी गुरुपरम्परा प्रारम्भ की थी और यह परम्परा आचार्य जी का साक्षात् अविच्छिन्न गुरु परम्परा है। इसलिये यह मठ "सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः॥", 'अन्ये मठास्तु चत्वारः आचार्य मत्पदेस्थितम्", "तान् सर्वान् शासयन्त्वेते आचार्याः मत्पदे स्थिताः:।", 'तैरन्यतो न गम्येत मन्मठ्याः सर्वतश्चराः।' आदि का प्रचार होने लगा।

शिवरहस्य में स्पष्ट उल्लेख है कि चार दिशा के चार पीठ व मठ हैं और इन चार मठों में चार मुख्य शिष्य बिठाये गये और आप मठाधीशों को लिंग के साथ संचार करने को कहा है—'यूयं चतुर्दिक्षु मठेषु लिङ्गैस्साकं वसन्त्वित्युपदिश्यहर्षात्'। शिवरहस्य नवमांश शोडषोध्याय का प्राचीन प्रति लन्डन नगर में है जिसका एक प्रति गोवर्धन मठाधीश जगद्गुरु श्री भारतीकृष्णतीर्थ जी महाराज ने मुझे काशी में दिया था। इसमें 60 श्लोक हैं। चिद्विलास शङ्करविजयविलास, माणिक्यविजय में दिया हुआ श्री शङ्कर प्रादुर्भाव भाग, गुरुपरम्परा चरित्र (वम्बई मुद्रित), यतिधर्म निर्णय, मठाम्नायोपनिषद, सदानन्द कृत शङ्करदिग्विजयसार, आदि प्रामाणिक ग्रन्थ एवं अनेक अर्वाचीन काल में प्रकाशित पुस्तकों में चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख है। माधवीय शङ्करविजय में मठ स्थापना का विवरण दिया नहीं गया है पर टीकाकार ने अन्य ग्रन्थों में से उद्धृत कर मठ का संकेत किया है पर कांची में मठ होने का उल्लेख किया नहीं है। कहेजानेवाले व्यासाचलीय में भी कांची का उल्लेख नहीं है।

माधवीय के टीकाकार शृंगेरी का प्रस्ताव करते हुए लिखते हैं—'अत्र प्राञ्चः। मठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्यं चकार। यस्त्वद्वैत मतेस्थित्वा भारतीपीठ निन्दकः। स याति नरकं घोरं यावदाभून संप्लवं। कंचिच्छिष्यं सुरेश्वराख्यं पीठाध्यक्षमकरोदिति।' आनन्दगिरि मूल प्रति में उल्लेख है—'ततः परं सरसवाणीं मन्त्रबद्धां कृत्वा गगनमार्गादेव शृंगपुर समीपे तुङ्गभद्रातीरे चक्रं निर्माय तदग्रे सरसवाणीं निधाय एवं आकल्पं स्थिराभव मदाश्रमे इति आज्ञाप्य निजमठं कृत्वा तत्र विद्यापीठ निर्माणं कृत्वा भारती संप्रदायं निजशिष्यं चकार।' 'तत्र परमगुरुः द्वादशाब्दं विद्यापीठे स्थित्वा बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैत विद्यायाः सम्यगुपदेशं कृत्वा ... ...'। 'निजशिष्यपरम्परां आकल्पं शृंगगिरि स्थानस्थां कृत्वा सकलशिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं कृत्वा ... ...।' आनन्दगिरि शंकरविजय जो हमलोगों का प्रधान प्रामाण्य ग्रन्थ नहीं है और इस पुस्तक में दिये हुए कुछ विषय अग्राह्य भी है, वह पुस्तक कुम्भकोण मठ का प्रधान प्रमाण ग्रन्थ है। इसमें भी शृंगेरी को 'मदाश्रमे', 'निजमठं', 'निजशिष्यपरम्परां', 'द्वादशाब्दंस्थित्वा' आदि कहा है। चिद्विलास में आचार्य शङ्कर का शृंगेरी वास 14 वर्ष का कहा है। आनन्दगिरि शंकरविजय का एक परिष्कृत्य प्रति 19 वीं शताब्दी पूर्वार्ध में कुंम्भकोण मठ में तैय्यार होकर और इसका प्रति अन्य स्थलों में भेज कर पश्चात् 1867 ई० में कुम्भकोण मठ की अनुमति से मुद्रित होकर यह प्रति प्रचार होने लगा। इस परिष्कृत्य प्रति में शृंगेरी पद को बदलकर कामकोटि मठ का नाम जोड दिया गया है। पर मूल ग्रन्थ की अन्य सब पंक्तियाँ इस परिष्कृत्य संस्करण में एक ही है। 17 वां शताब्दी में लिखा आ. शं. वि. का एक प्रति अब भी उपलब्ध है, आक्सफोर्ड की प्रति भी प्राचीन है, प्रो० विल्सन द्वारा निर्देषित 1828 ई० का प्रति भी प्राचीन है, कलकत्ता मुद्रित 1881 ई० का मूल हस्तलिपि प्रति सब प्राचीन काल के हैं, म. म. पं० कोकन्ड वेंकटरत्नम् पन्तुलु द्वारा रचित 1876 ई० के पुस्तक में आप अन्य प्राचीन प्रतियों का उल्लेख करते हैं, ये सब प्रतियों में शृंगेरी को निजमठ, निजाश्रम, निजशिष्यपरम्परा आदि उल्लेख पायेंगे पर कुम्भकोण मठ के परिष्कृत्य प्रति में ही शृंगेरी पद को निकाल दिया गया है। पाठकगण 'श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 147 से 184 तक पढें तो यथार्थ मालूम होगा। सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रन्थ केवल चार आम्नाय मठ का निश्चित रूप से कहता है। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'मठाम्नाय' में स्पष्ट दृग्गोचर चार आम्नाय मठों का ही उल्लेख है।

आचार्य शङ्कर ने कांची की गुहावासिनी कामाक्षी की उग्रता को शान्त कर, वहां के श्रीचक्र की अशुद्धता को निवारण कर, मन्दिर व नगर निर्माण का प्रबन्ध कर, वहां के तान्त्रिक पुजारियों को भगाकर वैदिक पूजाविधि की व्यवस्था कर, ब्राह्मणों को इस काम के लिये नियोजन कर, वहां से आगे बढे। माधवीय मूल ग्रन्थ एवं टीकाकर से कहा हुआ प्राचीन बृहच्छंकरविजय तथा अन्य सब प्रामाणिक ग्रन्थ उक्त विषय का समर्थन करता है। कहे जानेवाले प्राचीन शङ्करविजय में भी वरदराज मन्दिर का नवीकरण, विष्णु कांची नगर का निर्माण एवं शिवकांची नगर व मन्दिर का निर्माण कराने का भी उल्लेख है। कहीं भी कांची में आम्नाय मठ होने का उल्लेख नहीं है। डिण्डिम व्याख्या भी कांची में मठ का उल्लेख नहीं करता। मूल आनन्दगिरि कांची वृत्तान्त देते समय 65 प्रकरण में कहा है कि जो मुक्ति चाहते हैं वे श्रीचक्र की पूजा करें और श्रीचक्र की दर्शनमात्र से मोक्ष प्राप्त होता है। आ. शं. वि. का 64 व 65 प्रकरणों में श्रीचक्र प्रतिष्ठा एवं कामाक्षी का वर्णन है। शिवरहस्य में कांची में 'तपस्सिद्धि' का ही उल्लेख है न कि मठ प्रतिष्ठा की। गुरुपरम्परा चरित्र में कांची वृत्तान्त में कहा है कि आचार्य शङ्कर ने विद्वानों से विवादकर जय प्राप्त किया था। चिद्विलास में सर्वज्ञपीठारोहण का विषय कहा है पर यहां उपलक्षण न्याय ही कांची में जमता है। जब कांची में आम्नाय मठ की स्थापना ही नहीं हुई थी तब मठ में अधिष्ठित हुए कहना एक कल्पना ही है।

कुम्भकोणम् से प्रकाशित कांची मठ का मठाम्नाय सेतु में उल्लेख है—'इति परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कर भगवत् पूज्यपाद शिष्य श्रीसर्वज्ञचित्सुखाचार्य विरचिते बृहच्छङ्करविजये आम्नाय तद्भेद निर्वचननाम त्रयोदश प्रकरणं।' इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर के शिष्य श्रीचित्सुखाचार्य से रचित मठाम्नाय सेतु है और यह बृहच्छङ्कर विजय का एक भाग है। पर मठाम्नायसेतु एवं स्तोत्र जो आचार्य शङ्कर से प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में परम्परा रूढी से आचरण में चला आ रहा है, जो सबों को ग्राह्य है और जिसकी प्राचीन प्रति अब भी उपलब्ध हैं तथा जिसका प्रकाशन कलकत्ता, काशी, कामरूप, बम्बई, पूना में हुआ है और अर्वाचीन काल में मदरास अडयार से मठाम्नायोपनिषद् नाम से प्रकाशित हुआ है, इन सबों में स्पष्ट उल्लेख है कि मठाम्नाय श्रीमच्छङ्कराचार्य से विरचित है। कहेजानेवाले चित्सुखाचार्य विरचित मठाम्नाय में जो अधिक श्लोक कांची मठ के बारे में उल्लेख हैं सो सब मठाम्नायोपनिषद् में या अन्य किसी प्रकाशित व अप्रकाशित मठाम्नाय ग्रन्थों में नहीं है। इस नवीन कल्पित कांची मठ की मठाम्नाय पद्धति का विवरण धर्मशास्त्र ग्रन्थ, यति धर्मग्रन्थ, वेदान्तग्रन्थ और पुराण पुष्टि नहीं करते। अतएव यह कहना उचित होगा कि कांची मठ से स्वरचित कुछ श्लोकों को मूल मठाम्नायसेतु में जोड कर इस कल्पित पद्धति की प्रामाण्यता दिखाने के लिये श्रीचित्सुखाचार्य का नाम लेकर कुम्भकोण मठ भ्रामक मिथ्या प्रचार कर रहे हैं। संपूर्ण बृहच्छङ्करविजय कहीं उपलब्ध नहीं है और यह एक सुगम रास्ता है कि अनुपलब्ध पुस्तक का नाम लेकर मिथ्या प्रचार करना। कांची मठ की आम्नाय पद्धति यदि आचार्य शङ्कर रचित चार दृष्टिगोचर आम्नाय पद्धति में एक हो जाय तो कांची मठ चार आम्नाय मठों के किसी एक मठ के अन्तर्गत होना, शाखा या उपशाखा मठ रूप में, निश्चित होता है। एक ही आम्नाय में दो भिन्न भिन्न आम्नाय पद्धति नहीं हो सकता है। विवरण के लिये 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पृष्ठ 301 से 334 तक पढें। कुम्भकोण मठ का कोई अलग धर्मराज्यसीमा नहीं है (आचार्य शङ्कर रचित महानुशासन के अनुसार) और उस उस सीमा के शिष्य लोग उस उस आम्नाय मठ के शिष्य ही हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठ का कोई अधिकार भी इन सीमाओं में नहीं है। यहां ध्यान देने का विषय है कि अन्य चार आम्नाय मठों के आचार्य कांची मठ को गुरुमठ होने का या आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा होने का विषय स्वीकार नहीं करते।

मठ विषयक प्रामाणिक ग्राह्य ग्रन्थ "मठाम्नाय या मठाम्नायोपनिषद" है और कलकत्ता व पटना हाईकोर्ट में मठविषयक मुकद्दमें में 'मठाम्नाय' को ही प्रमाण माना गया है और इसे आठवीं शताब्दी का रचना काल कहा

गया है—"........ The scriptures which govern the fundamental doctrines and origin of the four Mutts are known as Mathamnaya but it is said that this document is really of the eighth century and not of an earlier date which is attributed to it by tradition. The Mathamnaya is, however, accepted as authoritative by Hindus ...."

(Patna High Court Judgement dated 19—11—1936.)

ऐसे प्रामाणिक मठाम्नाय या मठाम्नायोपनिषद में कांची का गन्ध भी नहीं है। यदि कुम्भकोण मठ आम्नाय पद्धति को नहीं मानते तो क्यों एक नवीन कांची मठ का आम्नाय पद्धति रचना कर प्रकाश किया है? कुम्भकोण मठ के वर्तमान मठाधीश ने काशी में कहा कि आप अन्य मठों पर अपना श्रेष्ठत्व का दावा नहीं करते (लीडर पत्र 18-1-35) पर मठ का आम्नाय पद्धति जिसे आचार्य शङ्कर के निज शिष्य श्री चित्सुखाचार्य रचित कहा जाता है वह श्रेष्ठत्व का दावा करता है। क्या कुम्भकोण मठाधीश चित्सुखाचार्य रचित ग्रन्थ को अब मानते नहीं हैं? क्या यह अप्रमाणिक पुस्तक है? यदि वर्तमान मठाधीश का कथन सत्य है तो कांची मठ का मठाम्नाय असत्य हो जाता है और यदि मठाम्नाय सत्य है तो वर्तमान मठाधीश का कथन असत्य है। समय समय पर भिन्न कल्पित प्रचार करने से ही यह परिस्थिति होती है।

श्रीरामानुजाचार्य कांची वासी थे और वेदान्ताध्ययन श्रीयादव प्रकाश के पास किया था पर आप इससे सन्तुष्ट न हुए। यदि कांची में आचार्य शङ्कर का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा का गुरु मठ होता जैसा कि कुम्भकोण मठ का कथन है तो श्री रामानुजाचार्य अवश्य अद्वैतवाद सिद्धान्तों को समझने व उस वाद का मर्म जानने अवश्य गये होते। इसी प्रकार यदि मठाधीश होते तो श्री यादवप्रकाश भी कांची मठाधीश से मिले होते। जब श्री रामानुजाचार्य दिग्विजय यात्रा के लिये चल पडे तो क्यों कांची के शङ्कराचार्य से आपने वादविवाद नहीं किया था? यदि अद्वैतमठ होता तो अवश्य श्री रामानुजाचार्य ने आपसे भेंट की होती।

आन्ध्रपूर्ण वडक नम्बी एक वैष्णव विद्वान थे। आपने 'सुकृत दीपिका' नामक ग्रन्थ रचा है जहां आप कहते हैं 'रामानुजाचार्य कृतं भाष्यं निर्जरसंम्मतं क॰ तत् शृंगशैलेन्द्रे शङ्कराचार्ये निर्मित पीठे वाणीमये विद्वत्संघ मध्येन्यचित् क्षिपत्।' इन पंक्तियों का विश्वास हो या नहीं और उक्त विषय मान्य न हो पर कुछ लोगों के लिये यह एक विश्वसनीय विषय है। यदि कांची में शङ्कराचार्य का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा मठ होता तो क्यों शृंगेरी का उल्लेख है? कांची में मठ न था।

शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु श्री विद्यारण्य महाराज ने चौदहवीं शताब्दी में अपने शिष्य विजयनगर महाराज श्रीहरिहर II से कांची कामाक्षी आलय विमान की मरम्मत एवं गोपुरम् का निर्माण आदि कार्य कराया था। आपके अनेक शिष्य (गृहस्थ व यति) कांची क्षेत्र व आसपास सीमा में भ्रमण करते हुए धर्मप्रचार करते थे। शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु श्री सच्चिदानन्द भारती I (1705-41 ई॰), जगद्गुरु श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (1741-66 ई॰), जगद्गुरु सच्चिदानन्द भारती III (1770-1814 ई॰) आदि आचार्य महापुरुष कांची क्षेत्र आकर यहां के शिष्य भक्तों को आशीष दी थी। 19 वीं शताब्दी में शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु नरसिंह भारती VIII कांची क्षेत्र पधारे थे। आप पुनः 1871 ई॰ में अपने शिष्य के साथ कांची पधारे थे। वर्तमान् शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज 1961 ई॰ में कांची पधारे।

वालाजा नवाब के राज्य में 1763 ई० में हिन्दू वैश्य जाति का वर्णाश्रमाचार विषय में एक झगडा छिडा जो नवाब के पास फैसला करने को आया। यह घटना कांची में घटी जो उनके राज्यान्तर्गत था। नवाब ने इस विषय पर निर्णय पाने के लिये 'लोकगुरु शङ्कराचार्य शृङ्गेरी' से प्रार्थना की कि आप इस विषय पर निर्णय दें। नवाब ने शृङ्गेरी शङ्कराचार्य से दिये हुए निर्णय के आधार पर अपना फैसला भी दिया था। 1763 ई० में 'इनायत्नामा' भी निकाला गया था। यदि कांची में शङ्कराचार्य का निजमठ होता तो अवश्य वालाजा के नवाब कुम्भकोण मठाधीश से निर्णय मांगते।

श्री एन्. वेंकटरमणय्या, एम्. ए., पि. एच. डि. मदराम विश्वविद्यालय, द्वारा रचित पुस्तक 'Studies in the History of the Third Dynasty of Vijayanagara' में लिखते हैं कि कांची कुम्भकोण मठ श्री शृंगेरी का शाखा मठ है—'... ... ... Branches of this Matha were established at Pushpagiri, Virupakshi and Kumbhakonam." आङ्गल भाषा मासिक पत्र 'दि लाइट आफ दि ईस्ट' जूलै माह, 1894 ई० के अङ्क में प्रकाशित है कि भारत के अन्य मठ सब आम्नाय चार मठ की शाखा व उपशाखा मठ हैं। पूना वृत्तान्त 'केसरी', एप्रल 1898 ई० के अङ्क में प्रकाशित है कि कुम्भकोण मठ श्री शृंगेरी मठ की एक शाखा मठ है। बम्बई मुद्रित पुस्तक "श्री शङ्करविजय चूर्णिका" (1898 ई० में प्रकाशित) में लिखा है कि कुम्भकोण मठ शृंगेरी शारदा मठ का शाखा मठ है। भट्ट श्री नारायण शास्त्री द्वारा रचित विमर्श एवं 1876 ई० में प्रकाशित 'शांकरमठतत्त्वप्रकाशिका' पुस्तकें सिद्ध करते हैं कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ है। तंजौर जिला न्यायाधीश डा० बर्नल भी इसी विषय की पुष्टि करते हैं जब आप लिखते हैं—'This seems to be quite a modern work written in the interests of the Mathas on the Coromandal Coast which have renounced obedience to the Sringeri Matha where Sankarachariar's legitimate successor resides." प्रो० विल्सन 1855 ई० में लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ एक शाखा मठ है—'A branch Mutt of Sankaracharya, founder of Advaitam Philosophy, is presided over by a chief gooroo of Smartha Brahmans' (Page 206). श्री प्रहलाद चन्द्रशेखर दिवान जी सिद्धान्त विन्दु' पुस्तक के भूमिका में लिखते हैं कि कांची अर्वाचीन काल का मठ है '.... .... Thus for instances there are newly founded Maths at Kolhapur, Belgaum and Nasik in the Deccan, Hampi and Kanchi (Conjeevaram) in Southern India, Prabhasapatnam, Dakor and Dholka in Gujarat and Banaras in the United Provinces." श्री सि. एन्. कृष्णस्वामी अय्यर, एम्. ए., 'Life and Times of Sankara' में लिखते हैं कि कुम्भकोण मठ अर्वाचीन काल का प्रतिष्ठित मठ है— '... ... ... this Kumbakonam Mutt is comparatively modern, appears to be probable ...." इलाका कचहरी, हैदराबाद, ताः 11—3—1845 को फैसला देता है कि कुम्भकोण मठ एक चिल्लर मठ है और इस फैसले के आधार पर हैदराबाद राज्य के प्राइम-मिनिस्टर ने एक घोषणा पत्र प्रकाश किया था जिसमें कुम्भकोण मठ को चिल्लर मठ कहा गया है। '.... ... . if other sanyasis belonging to other Mathas such as Kudalgi, Sivaganga, Avani, Pushpagiri, Virupakshi, Kumbhakonam etc., come and try to pass themselves off as entitled to such honours, no one should believe them or offer them worship." कुम्भकोण मठाधीश का यथार्थ पदवी 'चिन्नकुडयार' है अर्थात् छोटे स्वामी। आपके मठ की

मुद्रा कर्नाटक भाषा में थी तथा दो सौ वर्षों से कर्नाटक ब्राह्मण ही मठाधीश बनकर चले आ रहे हैं। पूर्व में सब होयसला कर्नाटकी ब्राह्मण मैसूर प्रान्त के दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के सब शिष्य थे। तंजौर राज्य के मंत्री श्री गोविन्द दीक्षित थे और आपके वंशज में से एक श्री वेंकटसुब्रह्मणिय दीक्षितर ने सन्यासाश्रम लेकर कुम्भकोण मठाधीश बने। तंजौर राजा का आश्रय प्राप्तकर, श्री गोविन्द दीक्षित का नाम द्वारा लाभ प्राप्त कर एक स्वतंत्र मठ तंजौर में पल्लवित होने लगा। इन्हीं के वंशज वतमान मठाधीश तक चले आ रहे हैं। 'अभिधान चिन्तामणी' पृष्ठ 1064 में कुम्भकोण मठ को शाखा मठ कहा है। 'श्री मज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श' के तृतीय खण्ड में अभिप्राय प्रकाशित हैं जो सब कांची मठ को आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अविछिन नहीं स्वीकार करते।

'कामकोटिप्रदीपम' मासिक पत्र में डा० बर्नेल, तंजौर न्यायाधीश, पर अपनी टीका टिप्पणी प्रकाशित की है क्यों कि आपने कांची मठ को शृंगेरी की शाखा मठ कहा है। प्रार्थना है कि टीका टिप्पणी करनेवाले व्यक्ति 'पुदियदुम् पळैयदुम' (புதியதும் பழையதும்) पुस्तक जो म. म. दाक्षिणात्य कलानिधि डा० उ. वे. स्वामिनाथ अय्यर द्वारा रचित है उसे पढें। यहां पुस्तक रचयिता ने डा० बर्नेल की प्रशंसा की है जो पठनीय है। डा० स्वामीनाथ अय्यर समान प्रकान्ड विद्वान पर द्वेष या अल्प बुद्धि या किसी के बहकावे में आने का दोषारोपण किया नहीं जा सकता है और आपकी अभिप्राय सर्वमान्य है। आपने डा० बर्नेल को एक विद्वान कहा है और जो संस्कृत व तमिल भाषा के विज्ञ कहा है। जो कोई व्यक्ति कुम्भकोण मठ के प्रचारों का पोल खोलते है वे सब व्यक्ति कुम्भकोण मठ के लिये मूर्ख एवं द्वेषी हैं। परमात्मा आपको सद्बुद्धि दें।

कुम्भकोण मठ अपने को आद्यशङ्कराचार्य जी के साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा होने का प्रचार करते हुए एक कल्पित वंशावली 508 क्रिस्त पूर्व से लेकर तैय्यार किया है। "श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" पुस्तक के पृष्ठ 335 से 426 तक में इस कल्पित वंशावली का विमर्श पायेंगे। कुम्भकोण मठ अपने वंशावली का आधार गुरुरत्नमाला, टीका सुषमा एवं पुण्यश्लोकमञ्जरी स्वरचित एकाङ्गि पुस्तकों को बतलाते हैं। इन पुस्तकों का विमर्श "श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श" पुस्तक के पृष्ठ 260 से 278 तक में पायेंगे। कुम्भकोण मठाभिमानी प्रचारकों ने अपने अपने प्रचार पुस्तकों में इस वंशावली को स्वीकार किया नहीं है। एक प्रचारक लिखते हैं कि गुरुरत्नमाला के रचयिता श्री आत्मबोध थे और कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि गुरुरत्नमाला के रचयिता श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र थे— '... ... ... one of the teachers, the third in apostolic descent from Sadasiva (1527 AD), composed a Guru-raja-ratna-mala-stava, of which the following are the closing stanzas.' (Ep. Ind. Vol. XIV). श्रीसदाशिव के तीसरे मठाधीश श्री आत्मबोध थे पर गुरुरत्नमाला के अन्त में उल्लेख है—'इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीसदाशिव ब्रह्मेन्द्र कृतिषु गुरुराजरत्नमाला स्वतः संपूर्ण।" इन दोनों भिन्न कथनों में कौन सत्य है? कुम्भकोण मठ के ताम्रशासन संपादक श्री टि. ए. जी. राव गुरुरत्नमाला के बारे में लिखते हैं कि गुरुरत्नमाला रचयिता का काल के पूर्व दूरकाल की गुरुवंशावली प्रमाण में नहीं लिया जा सकता है—'... ... ... The author cannot be regarded as an authority regarding the generations of the Gurus remote to that from his time, but the tradition embodied by him in relation to epoch may be treated with some consideration." एक प्रचार पुस्तक जो वर्तमान मठाधीश की अनुमति से रचित एवं आपको अर्पित है उसमें उल्लेख है कि गुरुवंशावली का प्रारम्भ से अधिकांश भाग अविश्वसनीय है। आप लिखते हैं—'When I say that the accuracy of the chronology cannot

be questioned, it applies only to the later part of it. We cannot say at present how far the older verses are genuine and of contemporary origin.' कुम्भकोण समीप नडुकावेरी ग्रामवासी प्रकान्ड विद्वान भट्ट श्री नारायण शास्त्री जिनको कुम्भकोण मठ इतिहास पूर्णरूप से मालूम था आप कुम्भकोण मठ विषय में लिखते हैं—'अपूर्वम्, अश्रुतम्, अज्ञातम्, अदृष्टम्।' एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि श्री सुरेश्वराचार्य कांची मठ में थे ही नहीं—'Thus leaving out Sureshwaracharya, who did not occupy the Kanchi Pitha at all, ...' अन्य प्रचार पुस्तकों में श्री सुरेश्वराचार्य को प्रथमाचार्य माना है। कुम्भकोण मठ प्रचारक श्री एन्. वि. लिखते हैं कि यह सन्देह है कि बालक ब्रह्मचारियों को ही सन्यासाश्रम दिया गया था—'But it is doubtful if the practice of early ordination prevailed from the very begining.' एक प्रचारक इस वंशावली में अनेक शंकास्पद विषयों को देखकर और वंशावली का प्रारम्भ काल जो 508 क्रिस्त पूर्व का था उसे अब प्रथम शताब्दी क्रिस्त पश्चात् का होना सिद्ध करने के निमित्त अपने मनोभावानुसार हर एक मठाधीशों का मठनिर्वाह काल जो पूर्व में निर्धारित हुआ था (गुरुरत्नमाला एवं पुण्यश्लोक मंजरी के अनुसार) अब उसे मिथ्या ठहरा कर मनचाहे मठनिर्वाह काल देते हैं। अर्थात् आपका वंशावली समय समय पर परिवर्तनशील है। आप लिखते हैं—'Thus leaving out Sureshvaracharya who did not occupy the Kanchi-pitha at all, we have 12 Acharyas between Sankara and Gangadhara I; and on an average of 20 years for each, we get a total of 240 years for them. If we deduct this from 239 S. E. or A.D. 317, given as the date of Vidyaghana's death, we get A.D. 77, or the third quarter of the first century A. D., roughly for Sri Sankara's Niryana.'

गुरुरत्नमाला पुस्तक के रचयिता श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र का नाम देकर प्रचार करते हैं पर वास्तव में यह पुस्तक श्री सदाशिवब्रह्म रचित नहीं है। मदरास के एक प्रसिद्ध विद्वान डा॰ टि. एम. पि. महादेवन 'गौडपाद' पुस्तक में लिखते हैं कि गुरुरत्नमाला के रचयिता श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र नहीं हैं——'... .... it is to be doubted if it (Gururatnamala) is a genuine work of Sadasiva Brahmendra—Atmabodha in his commentary on the stanza cites as authorities for the story Harimisra's Goudapadollasa and the Patanjali Carita. The former work is not to be traced. And in the Patanjali Carita (which is the same as Vijaya) of Ramabhadradikshita, there is no mention made of the Appollongus episode. कुम्भकोण मठ वंशावली में श्री विद्यातीर्थ को भी जोड लिया गया है। श्री आर. रामा राव, Indian Historical Quarterly, vol. 6 and 7, में लिखते हैं कि कांची वंशावली अविश्वसनीय है और कोई प्रमाण नहीं है कि श्री विद्यातीर्थ कांची मठ में थे——'The Kanchi tradition cannot be relied upon except for contemporary events .... There is no proof that Vidyatirtha belonged to the Kanchi mutt. The Vagisvari—Ganapathi temple inscription of 1356 refers to the visit of King Bukka to Sringeri to pay his respects to Vidyathirtha .... Copper plates that eulogise Vidyathirtha and

his relations with Bukka are found to belong to Sringeri or places not far from Sringeri. Neither Kanchi nor its neighbourhood has produced so far any inscription on stone or copper relating to Vidyatirtha. The list of the pontiffs of this mutt prior to Vidyatirtha given in the Punya-slokamanjari and other records of the mutt appear to contain the names of many of the rulers or ministers of Kashmir taken from Kalhana's Rajatarangini (12th century). It is too much to believe that the pontiffs of the mutt were connected with the rulers of Kashmir or their influence extended so far off. .... As for Sushama, it merely exaggerates the importance of Kanchi Mutt at the expense of Sringeri and other mutts in south India. Naturally the writer's statements are full of inaccuracies and errors. The writer of Sushama says in one place that it is wrong to identify Vidyatirtha with Vidya Sankara; elsewhere, while attributing to Vidyatirtha the connection with the seal of Vidya Sankara found in the Sringeri Mutt, he is ready to say that Vidya Sankara, Vidyatirtha and Vidyanatha are one and the same."

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपके बारह आचार्य लगातार उत्तरी भारत में 276 वर्ष भ्रमण करते थे और इस बीच काल में कोई भी आचार्य कांची आये ही नहीं। यह भी प्रचार करते हैं कि करीब 1100 वर्ष आपके मठाधीश कांची के बाहर ही वास करते हुए निर्याण भी हुए। इन बारह आचार्य किस प्रकार कांची के कामकोटि पीठ की पूजा सेवन की थी? आपके बदले कौन कांची में पूजासेवादि कार्य करता था? मठ का निर्वाह किसके हाथ में था? आपके भक्त शिष्य 276 वर्ष लगातार तक किस प्रकार आचार्यों के अनुपस्थिति पर चुप मार बैठे थे? उत्तरी भारत में किस वर्ग ने आपको 'कामकोटि पीठ के शारदा मठाधीश' होने का स्वीकार किया था? इन आचार्यों का पीठाभिषेक कहां और कब हुआ? क्रिस्त पूर्व 508 से 1704 ई० तक के काल से करीब 1100 वर्ष आपके मठाधीश कांची छोडकर बाहर वास करने की कथा कही जाती है और आप लोगों का निर्याण स्थल का भी कोई निर्देषित खास स्थल बताया नहीं गया है। क्या कारण था कि दक्षिणाम्नाय छोडकर आपके आचार्य सब अन्य तीन आम्नायों में भ्रमण करते थे? 1704 ई० तक आपके वंशावली में 60 आचार्यों का नाम दिया गया है। क्या आप किसी एक का भी समाधि दिखा सकते हैं? 17 वीं शताब्दी अन्त तक का वंशावली एक कल्पित वंशावली है।

प्रसिद्ध तपस्वी, ग्रन्थ रचयिता, भाष्य रचयिता, वेदान्ताचार्य, टीकाकार, प्रकान्ड विद्वान आदियों का नाम कथासरितसागर, बृहतकथामञ्जरी, विक्रमाङ्कदेव चरित्र, भोज चरित्र, राजतरङ्गिनी, इन्डयन क्रानलाजी, काव्य नाटक चम्पू ग्रन्थों में पाये जाते हैं और इन नामों को लेकर एक सूची बनालेना कोई कठिन कार्य नहीं है। उक्त पुस्तकों में अनेक घटनायें वर्णित हैं और इन घटनाओं के बीच में अपना कल्पित मठाधीश का नाम भी जोडकर अपनी कथा भी इसी में मिलाकर और पुष्टी के लिये उन ग्रन्थों का नाम भी लिया जाता है ताकि पामरजन इसे पढकर सत्य

कथा समझें। पुराकाल घटना पर कौन अन्वेषण करता है और जब ये सब कल्पित कथा यति के मठ से प्रचारित होता है तो पाठकगण यति के प्रति आदर भक्तिभाव होने से उसे सत्य होने का स्वीकार कर लेते हैं। इनका वंशावली चार भागों में बांटा जा सकता है—(1) 508 क्रिस्त पूर्व से 788 A. D. तक; (2) 788 ई० से 1385 ई० तक; (3) 1385 ई० से 1704 ई० तक; (4) 1704 ई० से वर्तमान काल तक। आचार्य शङ्कर का जन्म काल 7 वीं 8 वीं शताब्दी होने से प्रथम भाग 508 क्रिस्तपूर्व से 788 A. D. तक का एक कल्पित वंशावलि है। द्वितीय व तृतीय भाग के दिये आचार्यों का जीवन गाथा पर काफी शोध किया गया है और यह भी प्रमाण सहित सिद्ध होता है कि वंशावली एक कल्पित है। विवरण के लिये 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पढिये। आपका मठ इतिहास आज से 200 वर्ष करीब का ही है जिसे विश्वास किया जा सकता है। इसके पूर्व काल का इतिहास सब कल्पित है। एक प्रचारक लिखते हैं—'We find often that the successor belongs to the District or Country where the previous Guru happens to die.' वंशावली में अविच्छिन्न परम्परा दिखाने के लिये यह एक सुगम रास्ता है। कुम्भकोण मठ वंशावली में सब से आश्चर्य विषय है कि आचार्य शङ्कर के चरित्र घटनाओं में से पांच घटनाओं को लेकर अपनी वंशावली में पांच बार आचार्य शङ्कर का अवतार दिखाकर पांच शंकर का नाम दिया गया है। प्रथम शंकर 508 क्रिस्त पूर्व और पांचवां शंकर 788 ई० का कहा जाता है। विद्यातीर्थ के पूर्व 1385 ई० सब आचार्य उत्तरी भारत में थे और आपके पश्चात् अचानक सब दक्षिण भारत के साथ सम्बन्ध रखने लगे और उत्तर भारत का कई शताब्दी के पूर्व सम्बन्ध तोड दिये। इसमें क्या रहस्य है? उत्तर भारत में कहीं भी कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे मठ प्रचार की पुष्टि की जाय।

कुम्भकोण मठ वंशावली में आचार्यों का अनेक उर्फ नाम दिया गया है। पुण्यश्लोक मंजरी, गुरुरत्नमाला, सुषमा (कुम्भकोण मठ की स्वरचित एकाङ्गि प्रचार पुस्तकें) में दिये नाम जो अन्य कथा, नाटक, चम्पू पुस्तकों से लेकर सूची बनाई गई है वह प्रथम नाम दिया गया है, इसकी पुष्टी के लिये जिस काव्य, चम्पू, नाटक, चरित्र आदियों का नाम लेते हैं उनमें दिये हुए नाम दूसरा नाम होता है और इन भिन्न नामों का समन्वय भी कर देते हैं, मठ ताम्र शासनों में (जो सब शासन अन्यों का है और अब कुम्भकोण मठ का होना प्रचार करते हैं) दिये हुए नाम जो इन दोनों उक्त नामों से मिलते नहीं हैं उसे भी उर्फ नाम में जोड लिया गया है और जब जब प्रश्न इन भिन्न नामों के आधार पर उठे थे उसके समाधान में जो नया नाम दिया गया है उसे भी उर्फ नामों में सूची में जोड लिया गया है। सन्यासाश्रम लेते समय दीक्षा नाम एक ही दिया जाता है। शिष्य, भक्त, अनुयायी अभिमान व प्रेम व भक्ति से व्यवहारिक नाम देते हैं पर ये सब दीक्षा नाम नहीं होते। वंशावली यतार्थ होता तो नाम भी एक ही होता पर कल्पित वंशावली को सत्य रूप देने के प्रयत्न में इन नामों को जोडा गया है।

जब दृढ प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कांची में मठ ही न था तो वहां के मठ में आचार्य शङ्कर अधिष्ठित भये कहना मिथ्या प्रचार करना है। श्रीसुरेश्वराचार्य कांची कल्पित मठ में थे ही नहीं। 'संक्षेप शारीरक' के रचयिता श्री सर्वज्ञात्म का गुरु देवेश्वरपाद थे जो देवानन्दपाद के शिष्य थे और आप श्रेष्ठानन्दपाद के शिष्य थे। सर्वज्ञात्मा का सम्बन्ध किसी भी शांकर मठ से बिलकुल न था। एक ब्राह्मण गृहस्थ ज्ञानोत्तम ने नैष्कर्म्यसिद्धि पर टीका लिखी है और आपने अपने ग्रन्थ में श्री सत्यबोध का उल्लेख किया है। इस नाम को मठवालों ने जोड लिया यद्यपि आपका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से न था। उक्त ब्राह्मण गृहस्थ श्री ज्ञानोत्तम को ज्ञानानन्द का नाम देकर वंशावली में जोड लिया गया है। जब सत्यबोध का नाम लिया गया तो आपका भी नाम जोड लेना

सुगम ही था। भाष्यों के प्रसिद्ध टीकाकार आनन्दगिरि का नाम भी जोड लिया गया यद्यपि आपका सम्बन्ध कुम्भकोण मठ से न था। आपके गुरु श्री शुद्धानन्द भी इस वंशावली सूची में जगह पाते हैं। इसी प्रकार आचार्य शङ्कर के पांच बार अवतार लेने की कथा सुनाते हुए पांच नाम दिये गये हैं। श्रीमूकपञ्चशति के रचयिता श्रीमूककवि जिनका सम्बन्ध कांचीमठ से न था उनको भी मठाधीश बना दिया गया है। इतिहास प्रसिद्ध मातृगुप्त को भी मठाधीश बनाया गया है। कथामंजरी में उपलब्ध नाम व कथा को लेकर अपनी मठ सूची में मिला लेने से प्रमाण नहीं होता। 'राजतरङ्गिनी' एवं 'इन्डियन् क्रानलाजी' में दिये नामों व घटनाओं को लेकर अपने कल्पित सूची में जोडने मात्र से प्रमाण में लिया नहीं जा सकता है। आनन्दगिरि शङ्करविजय में दिया हुआ आचार्य चरित्र समान व्यक्ति ही कुम्भकोण मठ के 38 वां मठाधीश एवं आद्यशङ्कराचार्य के पांचवें अवतारी पुरुष 'शङ्कर V' हैं। 'कथासरितसागर' के रचयिता सोमदेव को भी मठाधीश बनाया गया है। 'ब्रह्मविद्याभरण' के रचयिता श्री अद्वैतानन्द एक विद्वान यति का नाम वंशावली में जोड कर प्रचार करते हैं पर आपका सन्यासदीक्षा गुरु श्री भूमानन्द सरस्वती थे और आपने श्री रामानन्दतीर्थ के पास सूत्रभाष्य पढा था। ताम्रशासन व शिलाशासनों द्वारा सिद्ध है कि श्रीविद्यातीर्थ दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के अधीश थे पर उनका नाम भी कांची वंशावली में जोड लिया गया है। शङ्करानन्द एक उत्कृष्ठ वेदान्ती थे और आपसे रचित सब ग्रन्थ आदरणीय हैं, इसलिये कुम्भकोण मठ ने आपका नाम भी जोड लिया है। श्री सदाशिवब्रह्म के गुरु श्री परमशिवेन्द्र थे और आपका नाम वंशावली सूची में जोड लिया गया। पर श्रीपरमशिवेन्द्र स्पष्ठ कहते हैं कि आप अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध कांची मठ से न था। रुद्रभाष्य रचयिता श्री अभिनव शङ्कर का नाम बदलकर आत्मबोध उर्फ विश्वाधिक इनको मठाधीश बनाया गया है। अभिनव शङ्कर का दीक्षा नाम रामब्रह्मानन्द तीर्थ था और आप श्री वेंकटनाथ के गुरु थे। आपका सम्बन्ध कांची मठ से न था। परम भागवत भक्त शिरोमणि बोधेन्द्र जिन्होंने नामसंकीर्तन की महिमा बढ़ाई है, आपको भी वंशावली में जोड लिया गया है। आप स्वतंत्र पुरुष थे और आपका सम्बन्ध किसी मठ के साथ न था। 18 वीं शताब्दी में तंजौर राजा का आश्रय एवं प्रभुत्व पाकर तंजौर में एक नया मठ स्थापना कर पश्चात् परम्परा प्रारम्भ किया था। इस नवीन कल्पित मठ को जीवित रखते हुए चले आ रहे हैं।

कुम्भकोण मठ अपनी परम्परा के पुष्टी में 10 ताम्र शासन दिखाते हैं जो 13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक काल का प्रचार करते हैं। इन 10 ताम्र शासनों पर विमर्श 'श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठविमर्श' पुस्तक में पृष्ठ 427 से 465 तक में पायेंगे। इन ताम्र शासनों में कुछ 'शारदामठ' का उल्लेख करता है न कि कामकोटि मठ या कांची का। दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ ही 'शारदामठ' है और कांची मठाधीश 'चिक्कुडैयार' (छोटे स्वामी) पदवी धारण करने वाले शाखा मठाधीश थे। ताम्र शासनों में दिये काल विवरणों के साथ एवं पंचाङ्ग के अनुसार काल विवरण ठीक जमता नहीं है। शासन पत्र में दिये हुए कुछ साधारण विशेषण पद जो अन्यों को भी लागू हो सकता है उसके आधार पर कांचीमठ का द्योतक कहना ठीक नहीं है। 'द्विजन्मने' पद से एवं घराना नाम 'पोप्पिळ्ळि' से सिद्ध होता है कि यह ताम्र शासन यति को दिया नहीं गया है। दान देनेवाले का नाम, विवरण व इतिहास सब विवादास्पद एवं शंकास्पद हैं। शासन की भाषा, व्याकरण, शैली, लिपि आदियों में त्रुटि हैं और उस काल के अन्यत्र प्राप्त शासनों से तुलना किया जाय तो यह शासन उससे मिलता जुलता नहीं है। वंशावली एवं ताम्र शासन में दिये नाम भिन्न होने से सर्फ नाम होने का जो समाधान दिया जाता है सो ग्राह्य नहीं है। ताम्रशासनों में दीक्षा नाम देना ही रूढी है। एक शासन के दाता दान देते समय जीवित न थे। दान देते समय जो जमीन दान दिया गया था सो जमीन दानदाता के कब्जे में न था या उसके मालिक आप न थे। शासन में दिया विवरण इतिहास पुष्टी नहीं करता। ऐसे अप्रामाणिक ताम्रशासनों पर आधार कर विषयों की निर्णय करना उचित नहीं है।

(घ) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने कांची में पूर्वकाल से स्थित सर्वज्ञपीठ पर पीठारोहण किया था। एक प्रचार पुस्तक में लिखा है कि आचार्य ने एक नवीन सर्वज्ञपीठ का निर्माण कर उस पर आरोहण किया था। कांची काश्मीर मन्डल के अन्तर्गत होने से कांची में सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय होता है।

काश्मीर देश की प्रारम्भिक कथा राजतरङ्गिनी 1-25/28 में उल्लेख है—'पुरासतीसरः कल्पारम्भात्प्रभृति भूरभूत। कुक्षौहिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णामन्वन्तराणिषट्॥ अथ वैवस्वनीयेस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरेसुरान्। द्रुहिणो पेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा। कश्यपेन तदन्तः स्थं घातयित्वा जलोद्भवम्। निर्ममे तत्सरो भूमौ काश्मीर इति मण्डलम्। उद्यद्वैतस्तिनिः ष्यन्द दण्डकुण्डात पत्रिणा। यत्सर्वनागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते।' काश्मीर मन्डल ऋषि मुनियों का निवास स्थल था इसलिये 'ऋषिमण्डल' भी कहा जाता है। अन्यत्र एक जगह एक श्लोक पाया गया—'शारदामठ-मारभ्य कुंकुमाद्रितटान्तकः। तावत्काश्मीर देशः स्यात् पञ्चाशत्योजनात्मकः।' उत्तर में शारदामठ, दक्षिण में कुंकम पर्वत तक करीव 50 योजन विस्तीर्ण भूमि था। कश्मीर मण्डल में ऐसा कोई स्थल नहीं है जो पुण्य क्षेत्र या तीर्थ न हो—'चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते। तिलांशोपिन यत्रास्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्बहिष्कृतः।' (1-38) काश्मीर सरस्वती शारदा देश है—'देवी भेडगिरेः श्रृङ्गेगङ्गोद्भेदशुचौस्वयम्। सरौन्तदृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती। नन्दिक्षेत्रे हरावास प्रसादे शुचरार्पिताः। अद्यापि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दनविन्दवः। आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात्। तरङ्गिणी मधुमतिवाणी च कविसेविता॥' (1-35/37) पुराकाल में काश्मीरविद्यास्थान भी था 'विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुंकुमं सहिमं पयः। द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्तित्रिदिवदुर्लभम्।' (1-42) शारदा माता का निवास स्थल होने से 'शारदा मण्डल' या 'शारदा पीठ' भी कहा जाता है। आर्य जाति का लीला क्षेत्र काश्मीर था। पुराकाल में उत्तर दिक् वाक् के लिये प्रसिद्ध था। शारदा द्वारा प्रसादलाभ व आशीर्वाद लेने के लिये लोग उनकी शरण में जाते थे। विनायक भट्ट की युक्ति से सुना जाता है कि पुराकाल के लोग उत्तर दिक् भाषा सीखने व विवाद करने जाते थे—'प्रज्ञान्ततरावागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कीर्त्यते। बदरिकाश्रमे वेदघोषः श्रूयते। वाचं शिक्षुतं सरस्वती प्रसादार्थं उदञ्चै। (शाङ्ख्यायन भाष्य)। देवी भागवत एवं मत्स्यपुराण में कहा है कि काश्मीर में 'मेधा (शारदा)' रहती हैं 'मेधा काश्मीर मण्डले।' काश्मीर का प्राचीन ग्रन्थ 'शारदा माहात्म्य' है। शारदा इस देश की अधिष्ठात्री देवी है। सती का अ गिरने से कश्मीर का उपनाम शारदापीठ भी है। महाकवि बिल्हण की युक्ति के पीछे इतिहास विद्यमान है। 'सहोदराः कुंकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः। न शारदा देशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।' शारदा देश को छोडकर कविता और केसर के अंकुर अन्यत्र नहीं उगते, यह बात सर्वथा सत्य है।

महाभारत के समय में भी कश्मीर एक तीर्थ के समान प्रसिद्ध था—'काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च। वितस्ताख्यमिति ख्यात सर्वपाप प्रमोचनं॥' (वन. 62 अ.) 'गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वयेश्रियम्।' यह वेद श्रुति काश्मीर शारदा पराशक्ति को दिव्य मंत्रों से वर्णन करती है। 'अष्टोत्तरशतोपनिषद' के अन्तर्गत 'श्री सरस्वतीरहस्योपनिषद' में ऐसा उल्लेख है—'नमस्ते शारदा देवी काश्मीर पुरवासिनी। त्वामहं प्रार्थयेनित्यं विद्यादानं च देहिमे।' अनादि काल से शारदा पीठ कश्मीर में ही है। वेद में कहा हुआ 'मरुदवृध' नदी काश्मीर में बहती है। ऐतरीय ब्राह्मण में कहा हुआ 'उत्तरकुरु' एवं 'देव क्षेत्र' ही काश्मीर है। 'ब्रह्मणोत्पत्तिमार्तान्ड' से प्रतीत होता है कि गौड ब्राह्मण सब पूर्वकाल में काश्मीर से ही भारत वर्ष के अन्य भागों में जा बसे। बिल्हण कहते हैं कि काश्मीर की नारी संस्कृत भाषा में बोलते थे। श्रीहर्ष कहते हैं कि चौदह विद्या का अध्ययन कश्मीर के लोग करते थे। स्टीन के कथनानुसार मुसलमानों की कुछ कब्रों पर संस्कृत भाषा का शिलाशासन भी पाया गया था। शैव सिद्धान्त, शैव वेदान्त, वीरशैव आदि मत का मूल स्थान काश्मीर ही कहा जाता

है। नवीं शताब्दी में कश्मीर के श्री वासुगुप्त से रचित 'स्पन्दकारिका' के आधार पर ही बाद शैवमत का प्रचार हुआ। 'स्पन्दसर्वस्व' एक टीका है। शैवमत की एक और शाखा जिसे 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' कहते हैं सो काश्मीर में ही जन्म लिया। रुद्रठ, लल्लठ, शंकुक, आनन्दवर्धन, भट्ट नायक, भट्ट था, भट्टेन्दुराजा, अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिम भट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मत, अल्लत, तिलक, रुय्यक, आदि कुछ प्रसिद्ध काव्य विद्वान काश्मीर में जन्म लिये थे। भमह का अलङ्कार, वामन की रीती, आनन्दवर्धन की ध्वनी, कुन्तल की वक्रोति, महिम भट्ट का अनुमान, क्षेमेन्द्र का औचित्य, आदि काव्य सिद्धान्त सब काश्मीर में ही जन्म लिया। काश्मीर का नीलमत पुराण छटवीं/सातवीं शताब्दी का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कल्हण का राजतरङ्गिनी (12 वीं शताब्दी) एक प्रसिद्ध इतिहास पुस्तक है। व्याकरण सूत्र की टीका वामन एवं जयादित्य (सातवीं शताब्दी) से रचित थे। वैय्याकरणी श्रीक्षीरस्वामी काश्मीर के थे। चन्द्रगोमिन का चन्द्रव्याकरण काश्मीर का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आचार्य शङ्कर काल के पूर्व से ही काश्मीर में 'शारदा पीठ' होने की श्रुति प्रमाण व ग्रन्थ एवं कश्मीर से आये हुए प्रकान्ड विद्वानों के चरित्रों से सिद्ध होता है। प्रकान्ड कवि, विद्वान, इतिहास पुराणादि ग्रन्थ कर्ता एवं अद्वितीय व्यक्ति उत्तर देश में ही जन्म लिया था। काश्मीर एक समय दर्शन, साहित्य, तन्त्र, व्याकरण का क्रीडा स्थल था। इतिहास व पुराण द्वारा प्रतीत होता है कि कश्मीर प्रदेश के शारदा पीठ में प्रकान्ड विद्वानों, ऋषियों व मुनियों का आगमन बराबर था। कश्मीर इतिहास एवं अन्य ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि आचार्य शंकर के समान दिग्गज सर्वज्ञ पन्डित काश्मीर में वास करते थे और ऐसे स्थल में ही सर्वज्ञपीठ होने का निश्चित होता है। काश्मीर समान स्थल ही सर्वज्ञपीठ होने की योग्यता रखती है। अन्य क्षेत्र या तीर्थस्थल में सर्वज्ञपीठ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि काश्मीर में सर्वज्ञपीठ न था और आचार्य ने कांची के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किये सो प्रचार निराधार, अप्रमाणिक एवं मिथ्या है।

कल्हण काश्मीर में शारदा पीठ का उल्लेख करते हैं—'गङ्गोत्पत्ति स्थान जो मेदगिरि है उसके एक शिखर में एक रम्य सरोवर है जिसमें क्रीडा करनेवाली हंस ही शारदा देवी हैं।' इस तीर्थ को अब 'बुदूवार' कहते हैं। मदुमती में एक छोटी नदी सरस्वती मिलती है। यह मदुमति नदी कृष्णगङ्गा से मिलती है। इसी सङ्गम समीप शारदापीठ है। कश्मीर का श्रीनगर के दूर उत्तरी पहाडी सीमा को पारकर नदी व घाटी पारकर जाने से 'गोषपुरी' पहुंचते हैं। यहीं शरदा मन्दिर के पुजारी वास करते हैं। इसके पश्चात् 'हयग्रीवआश्रम' पडता है जिसे 'हेहोम' शहर कहते हैं। यहां एक छोटा पहांड श्रीगणेश रूप में है। इसी के समीप 'शान्डिल्य ऋषी' का तपोवन है। इसी तपोवन को 'शारदावन' भी कहते हैं। इसी वन में एक ग्राम है जिसे 'शार्दी' कहते हैं। मदुमति नदी किनारे पहाड हैं जहां शिवलिंग मूर्तियां हैं। इसके समीप 'अमरकुण्ड' एक तालाव है। इसी तालाब के समीप में देवी का मन्दिर है जो करीब 11,000 फुट समुद्र से ऊंचे स्थान पर है। इसी मन्दिर के मूलस्थान में देवी शारदा शान्डिल्यमुनी को दर्शन दी थी। अल्बिरुनी 1030 ई॰ में कहते हैं कि यहां एक काष्ठ का मूर्ति था। इससे निश्चय होता है कि आचार्य शंकर जब आप यहां आये थे तब भी शरदा माता की काष्ठ मूर्ति रहा होगा। यहां अब भी श्रीचक्र एवं सर्वज्ञपीठ पूजित होता आ रहा है। चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमनों से यह मन्दिर जीर्ण होगया। चौदहवीं शताब्दी में सिकन्दर ने सौ से भी अधिक मन्दिरों का ध्वंस किया था। बाद 19 वीं शताब्दी में जब डोगरा राज्य करने लगे तो इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ। शारदा मन्दिर जाने का मार्ग कठिन होने से एवं कष्टप्रद होने से श्रीनगर के पास एक गांव है जिसे 'खुह्योम्' कहते हैं वहां शारदा मन्दिर निर्माण कर देवी प्रतिष्ठा की गई है। प्राचीन 'प्रवरसेन' नगर जो अब श्रीनगर कहा जाता है वहां श्रीचक्र के साथ 'शारिका' देवी की प्रतिष्ठा की गई थी। यही आचार्य शंकर से प्रतिष्ठित 'प्रद्युम्न पीठ' है—'काश्मीरप्रवरेश मध्यनगरे प्रद्युम्नपीठे स्थिता। देवी सप्तक संयुता भगवती श्री शारिका पातु नः।'

श्रीनगर काश्मीर का केन्द्र है। नीलमत पुराण में इसका उल्लेख है। पूर्वकाल का 'पुराणाऽधिष्ठान' एवं 'प्रवरपुर' अब श्रीनगर कहा जाता है। श्रीनगर के दक्षिण पूर्व दिशा में एक छोटा पहाड करीब 1000 फुट ऊंचा है जो 7000 फुट समुद्र से ऊंचे स्थल में है। इस पहाड को 'शङ्कराचार्य पर्वत' कहते हैं। राजा अशोक का पुत्र जलोक ने 220 क्रिस्त पूर्व यहां एक मन्दिर बनवाया था। इसीलिये इस पहाड को 'गोपाद्रि' भी कहते हैं। गोपादित्य ने 'ज्येष्ठेश्वर' की प्रतिष्ठा की थी। इस पहाड के समीप एक गांव है जिसे 'गोपाग्रहार' भी कहते हैं। यहां प्रकान्ड विद्वान वास करते थे—'ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्य देशजाः। गोपाग्रहारान् कृतिना येन स्वीकारिता द्विजाः।' आद्यशङ्कराचार्य ने इस मन्दिर में एक 'महालिंग' की प्रतिष्ठा की थी। यह मूर्ति अब भी देखा जा सकता है। यह कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने शारदा मन्दिर में सर्वज्ञपीठारोहण करके पश्चात् यहां महालिंग की प्रतिष्ठा की थी मानो आपका सर्वज्ञत्व का एवं आपके प्रभाव का यह संकेत करता हो। इसे मुसलमान 'तख्त-ई-सुलीमन' के नाम से पुकारते थे।

Prof. H. H. Wilson, Asiatic Researches, 1828/32, ई० में लिखते हैं कि सर्वज्ञपीठ काश्मीर में था जो स्थल आज भी वहां दिखाया जाता है——' ... . and the pitha or throne of Sarasvati on which Sankara sat is still shown in Kashmir.' Asiatic Researches, 1825 ई० में, उल्लेख है —' ... . he (Gopaditya) built a temple, or the mound near the capital of Kashmir, called the 'Takht-i-Suliman,' it was destroyed with other places of Hindu worship by Sikandar, one of the fiirst mohammedan Kings of Kashmir and who, on account of bigoted assiduity with which he demolished the vestiges of Hindu Superstitions.' Sri V. V. Iyer, 'The Sunday Standard' 24-9-1961 के अङ्क में लिखते हैं—'The Shankaracharya Temple, built by Jaloka, son of the great Buddhist Emperor Asoka about 220 B. C. stands on a bare, arid hillock 'Takht-i-Suliman,' which is more than 1000 feet in height."

सातवीं शताब्दी में काश्मीर में 5000 भिक्षु थे और 100 बौद्ध विहार थे। सौ वर्ष पश्चात् 'ओऊ-कोंङ्ग' ने यहां कश्मीर में 300 विहार पाया। कुलु व चम्बा घाटी में 20 विहार एवं 1000 भिक्षु थे। महायान संप्रदाय का प्रभाव था। मुक्तापीड ललितादित्य ने बौद्धों का आदर किया था और ये ही बौद्ध विद्वान आचार्य शङ्कर से वादविवाद किये थे। काश्मीर का प्राचीन सम्प्रदाय 'शैव' था। आचार्य शङ्कर के पश्चात् 9 वीं/11 वीं शताब्दी तक महायान की अवनति होने लगा और पुनः 'शैव' मत प्रचार हुआ जिसे 'त्रिक शास्त्र,' 'रहस्य' या 'त्र्यम्बक संप्रदाय,' 'स्पन्दशास्त्र,' 'प्रत्यभिज्ञा' के विविध नामों से ख्याती को प्राप्त किया। इनके ग्रंथ—शिवदृष्टि, प्रत्यभिज्ञासूत्र, प्रत्यभिज्ञाविमर्शनी, बृहद्वृत्ति, परमार्थसार, तंत्रसार, प्रत्यभिज्ञाहृदयम आदि थे। इन सब पुस्तकों में शङ्कर के प्रचारों का कुछ प्रभाव भी दीख पडता है —'The system is distinctly more monistic than the teachings of the Agamas. The activities of the great Sankara fall in the first half of the nineth century; and we may be sure that the traditions are right when they say he visited Kashmir during one of his controversial tours. It is thus most probable that he influenced the Saiva leaders very deeply, and was the source of the stimulus which created the Saiva Sutras

and the movement which followed.' (J. N. Farquhar) आचार्य शङ्कर काश्मीर गये थे और आपका प्रभाव अत्यधिक था। 'अस्य (प्रत्यभिज्ञा) दर्शनस्य तत्त्वज्ञाने आद्यशङ्कराचार्याणां अद्वैततत्त्वज्ञानस्य प्रभावः दृश्यते। श्री शङ्कराचार्यैः काश्मीरं गत्वा तत्रस्थं पुरातनं शैवं मतं किञ्चिदिव परिवर्तितम् ... ...।' 'काश्मीर देशे एव श्री शंकराचार्य भगवत्पादैः श्रीचक्रोपरि श्रीशारदापि प्रथमं प्रतिष्ठापिता, तत्रैव च तैः जगद्विख्यात तन्त्रशास्त्राधारभूत सौन्दर्यलहर्यापि विरचितेति ज्ञायते।' कुछ लोगों का विश्वास है कि आचार्य शङ्कर ने काश्मीर में ही सौन्दर्यलहरी ग्रंथ की रचना की थी।

आचार्य शङ्कर द्वारा रचित 'प्रपञ्चसार' जो 'प्रपञ्चागम' (प्राचीन तंत्र का ग्रंथ है) का सार ग्रंथ है इसका टीका श्री पद्मपाद ने 'विवरण' नामक लिखा है। अमरप्रकाश के शिष्य उत्तमबोधाचार्य ने 'प्रपञ्चसार-सम्बन्ध-दीपिका' टीका में कहा है कि 'प्रपञ्चागम' प्राचीन ग्रंथ का निचोड़ ही 'प्रपञ्चसार' है। 'प्रपञ्चसार-विवरण' की व्याख्या 'प्रयोग क्रमदीपिका' है। प्रपञ्चसार का मङ्गल श्लोक शारदा की स्तुति में है। दीपिका के रचयिता का कहना है कि आचार्य शङ्कर ने इस ग्रंथ की रचना काश्मीर में रहते समय की थी और काश्मीर की अधिष्ठात्री देवी शारदा हैं, अतः आचार्य शंकर ने शारदा की स्तुति ग्रंथ के आरम्भ में किया है। आगे आप लिखते हैं कि यह प्रसिद्ध बात है कि आचार्य शंकर ने इस देवी के मन्दिर में सर्वज्ञपीठ पर अधिरोहण किया था अतएव इस ग्रंथ का प्रारम्भिक श्लोक भगवती शारदा का ही है। 'शारदा तिलक' के टीकाकार श्री राघवभट्ट, 'षट्चक्र निरुपण' के टीकाकार श्री कालीचरण आदि तंत्रनिष्णात् विद्वानों की सम्मति भी उपर्युक्त 'प्रयोग क्रम दीपिका' के रचयिता के मत से बिलकुल मिलता जुलता है। 'प्रपञ्चसारविवरण' एवं 'प्रयोगक्रमदीपिका' दोनों एक साथ कलकत्ते से प्रकाशित है जिसमें कहा है—'काश्मीर मण्डले प्रसिद्धेयं देवता। तत्र निवसता आचार्येण अयं ग्रन्थः कृतः इति तदनुस्मरणौत्पत्तिः सकलागमानामधिदेवतेयमिति' (पृ० 382)। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर काश्मीर के अधिष्ठात्री भगवती शारदा का दर्शन कर, वहां के सर्वज्ञपीठपर अरोहण कर, इस पुस्तक की रचना भी काश्मीर में ही की थी।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि कांची के सर्वज्ञपीठ पर आचार्य ने पीठारोहण किया था। कांची एक पुण्यक्षेत्र है पर आचार्य शंकर के पूर्वकाल में या समकाल में दिग्गज सर्वज्ञ पण्डितों का कांची में होने का कोई प्रमाण नहीं है। विद्वान रहें होंगे पर प्रश्न है कि क्या ये सब विद्वान दिग्गज या सर्वज्ञ थे जैसा उत्तर देश में पाया जाता था। शङ्करदिग्विजयों में कहा है कि ताम्रपर्णी तीर से कांची में आये हुए पन्डितों के साथ आचार्य ने विवाद किया था। सर्वज्ञपीठ होने का कुछ लक्षण भी प्रतीत होना चाहिये और कांची में ऐसे लक्षण प्रतीत नहीं होते। कांची में आचार्य ने वहां के विद्वानों से एवं अन्यस्थल से वहां आये हुए विद्वानों से विवाद अवश्य किया था जैसा कि आचार्य ने अन्य अनेक स्थलों में वहां के विद्वानों से विवाद किया था। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ जिसे 'व्याख्यान सिंहासन पीठ' कहते हैं ऐसे शृङ्गेरी के समीप कांची में सर्वज्ञपीठ होने का विषय असम्भव दीखता है। 'सर्वज्ञपीठ' कहने मात्र से यह सिद्ध होता है कि ऐसा पीठ एक ही हो सकता है न कि एक से अधिक। शारदा मण्डल काश्मीर का सर्वज्ञपीठ प्रमाणयुक्त सिद्ध है। केवल यही कह सकते हैं कि कांची स्थल सर्वज्ञपीठ सदृश था जहां शंकराचार्य ने विरोधियों को वाद में पराजित किया था। यहां उपलक्षण न्याय ठीक जमता है। अतः कांची में दूसरा सर्वज्ञपीठ होना असम्भव है। श्री चिद्विलास ने 'शङ्करविजयविलास' में कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करने का उल्लेख किया है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि कांची में एक और सर्वज्ञपीठ था। काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करने के पश्चात् एवं वहां के दिग्गज विद्वानों से आचार्य शंकर को सर्वज्ञ होने की घोषणा के पश्चात द्वितीय बार दक्षिण में सर्वज्ञपीठारोहण करना असम्भव है चूंकि सर्वज्ञपीठ एक ही हो सकता है। इसलिये चिद्विलास का उल्लेख करने से यही प्रतीत होता है कि आचार्य का कांची विजय 'विजित्य द्वैतवादिनः' काश्मीर के 'सर्वज्ञपीठं संस्थानं' के सदृश था। डिण्डिम व्याख्या में भी टीकाकार

ने काश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ होने का निश्चय किया है। माधवीय, कहेजानेवाले नवीन व्यासाचलीय, सदानन्दीय आदि सब ग्रंथ काश्मीर में ही सर्वज्ञपीठ होने का उल्लेख करता है। सर्वज्ञपीठारोहण करना और आम्नायानुसार मठ की स्थापना करना यह दोनों कार्य भिन्न हैं और उद्देश्य एवं विधि भी भिन्न हैं। अतएव कांची में आम्नाय मठ की स्थापना नहीं हुई थी। चिद्विलास भी स्पष्ट रुप से केवल चार मठ का ही उल्लेख करते हैं। आचार्य शंकर कहीं भी सर्वज्ञपीठ की प्रतिष्ठा नहीं की थी। पूर्वस्थित पीठ पर ही आरोहण किया था और दिग्गज विद्वानों ने आपको सर्वज्ञ होने का विषय स्वीकार किया था। क्या आचार्य अहंकारी पुरुष थे कि स्वयं सर्वज्ञपीठ का निर्माण कर स्वयं उस पर आरोहण किया था? श्री गोविन्दनाथ विरचित श्री शङ्कराचार्य चरित्र के नवमाध्याय में आपने कहा है कि काश्मीर देश का एक नगर कांचीपुर है न कि आपने दक्षिग भारत का एक अलग कांचो का उल्लेख किया है जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। काश्मीर इतिहास से एवं एक प्राचीन शिलालेखन से मालूम होता है कि काश्मीर में एक कांची नगर था। अतः गोविन्दनाथ से निर्देषित काश्मीर देश का कांची कश्मीर में होने का प्रमाण मिलते हैं। अब प्रचार शुरू हुआ है कि कांची ही कश्मीर है और ये दोनों अभिन्न हैं। इस बकवास पर आलोचना करना ही व्यर्थ है। काश्मीर देश का सम्बन्ध दक्षिण भारत से केवल संस्कृति व विद्या का ही सम्बन्ध था न कि दक्षिण भारत किसी काल में काश्मीर मन्डलान्तर्गत था या शासनाधीन में था। दक्षिण से विद्वान काश्मीर गये और काश्मीर के विद्वान दक्षिण आये। यदि कांची में सर्वज्ञपीठ होता जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है तो श्री रामानुजाचार्य कांची में सर्वज्ञपीठारोहण करते? पर श्री रामानुजाचार्य भी काश्मीर की शारदा पीठ पहुंचे थे। श्री टि. ए. जि. राव, राजकीय पुरातत्त्वविभाग का कर्मचारी, का अभिप्राय है कि मदरास समीप कांची नगर का अब कहेजानेवाले कामाक्षीमन्दिर पूर्व में श्रीतारादेवी का मन्दिर था। इस कांची में 'देवगर्भा' पीठ थी। कहीं भी शारदा या सरस्वती का उल्लेख नहीं है।

(ड·) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची में हुआ था और आपकी समाधि भी कांची कामाक्षी मन्दिर में है। निर्याण विवरण–'स्थूलशरीरं सूक्ष्मेऽन्तर्धायतद्रूपोभूत्वा सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा चिन्मात्रो भूत्वा अङ्गुष्ठमात्रपुरुष स्तदुपरि पूर्णमखण्डलाकारमानन्दं प्राप्य सर्वजगद्व्यापक चैतन्यमभवत्।' 1957 ई॰ में अब प्रचार हो रहा है 'आचार्य शङ्कर कैलास जाने की इच्छा से कांची के बिलाकाश कामकोटि गुफा में उतर कर पश्चात् अन्तर्द्धान भये।'

आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल दृढ़ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि हिमालय का केदार सीमा ही था। प्रथमतः पाठकगणों की जानकारी के लिये हिमालय सीमा के कुछ मुख्य तीर्थ क्षेत्रों व देव देवी स्थलों का उल्लेख कर पश्चात् कुम्भकोण मठ प्रचार पर आलोचना की जायगी।

हिमालय के उत्तर में माना नामक गांव से घाटी पारकर जाने से तिब्बत पहूंचते हैं। इस घाटी के दक्षिण में अलकनन्दा की एक शाखा है जिसे वसुधारा पुण्य तीर्थ कहते हैं सो 400 फुट से झरना रूप में गिरती है। इसी के समीप सरस्वती नदी अलकनन्दा से मिलती है। यहां से दक्षिणपश्चिम ओर 3 मील दूर पर नीलकण्ठ पर्वत है। इसी के समीप दो पर्वत हैं–नर और नारायण। इन दोनों के मध्य सीमा में बदरी नगर है। सरस्वती नदी किनारे एक गुफा में व्यास रहते थे जिसे व्यास गुफा कहा जाता है। यहीं वेद व्यवस्थापक व्यास ने वेद को चतुर्वेद रूप में भाग किया था–'स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि। विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले।......... व्यदधात् यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्॥' व्यासगुफा समीप गणेश गुफा है जहां व्यास के कहने पर गणेश महाभारत लिखते गये। व्यास ने यहीं ब्रह्मसूत्र भी लिखा था। अपने शिष्य पडल, वैशम्पायन, जैमिनी, सुमन्तु को चार वेद पढाया था। व्यास के पुत्र शुक यहीं सर्वात्मभाव प्राप्तकर शुकब्रह्म कहलाने लगे। बदरी के उत्तर में एक मील दूर पर

अलकनन्दा नदी तीर पर एक पर्वत है जहां शुक के शिष्य गौडपाद निष्ठा में तपस कर रहे थे। आपने यहीं माण्डूक्य उपनिषद पर कारिका भी लिखा था। आचार्य शङ्कर अपने परमगुरु गौडपाद से यहीं भेंट की थी और आपने कारिका पर टीका लिखी है। गौडपाद के शिष्य श्री गोविन्द भगवत्पाद नर्मदा तीर ओंकारेश्वर में तपस्या कर रहें थे जहां आचार्य शङ्कर आपसे भेंट की, दीक्षा व शिक्षा प्राप्त की थी। पश्चात् आप भी बदरी सीमा पहुंचकर अपने गुरु गौडपाद से जा मिले।

उत्तरकाशी से गङ्गोत्तरी जाने के रास्ते में पराशर आश्रम है। यहीं उनके पिता शक्ति भी रहा करते थे। महाभारत वन पर्व में कहा है कि शक्ति के पिता वशिष्ठ का आश्रम 'निर्वीरा' नदी के गङ्गा सङ्गम समीप था। यह स्थल कोल्लु नगर के उत्तर में है। यह सब क्षेत्र उत्तराखण्ड सीमा में है। वर्तमान टेहरीगढवाल व कुमाऊं सीमा में उत्तराखण्ड सीमा हैं। श्री रामचन्द्र भी यहां आये थे। पाण्डव का चरित्र से भी यह सीमा सम्बन्धित है। नचिकेतस, अगस्त्य, गौतम (न्यायसूत्रकर्ता), मार्कन्डेय, कण्व आदि यहीं वास करने की कथा कही जाती है।

आचार्यशङ्कर ने हरिद्वार के माया देवी मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर पूजा पद्धति की व्यवस्था की थी। दक्षयज्ञ भूमि पर शिवलिङ्ग का प्रतिष्ठा करायी थी। हरिद्वार के उत्तर पश्चिम दिशा में शहरानपूर नगर से 26 मील पर शाकम्भरी देवी का मन्दिर है। यहीं भीमा, भ्रामरी, शताक्षी देवी भी प्रतिष्ठित हैं। कहा जाता है कि आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित हैं। दुर्गासप्तशती में इन देवियों का वर्णन हैं।

देवप्रयाग में भागीरथी एवं अलकनन्दा का सङ्गम है। भागीरथी नदी किनारे से आगे बढ़ें तो गङ्गोत्री पहुंचते हैं। गङ्गोत्री में आचार्य शङ्कर की मूर्ति व मन्दिर भी है। आचार्य शङ्कर इस सीमा में भ्रमण किये थे। देवप्रयाग से अलकनन्दा नदी की दाहिने किनारे पार कर आगे बढें तो श्रीनगर पहुंचते हैं। यह काश्मीर का श्रीनगर नहीं है पर कुमाऊं सीमा का श्रीनगर है जो आचार्य शङ्कर के आज्ञा पर निर्माण किया गया था। आचार्य शङ्कर के समय में यहां 'कत्यूरी' वंश के राजा राज्य करते थे। 'कार्तिकेयपुर' से 'कत्यूरी' नाम प्राप्त हुआ और यह उसी पद का अपभ्रंश है। यहां के लोक गीत, स्थल पुराण व कथा द्वारा शङ्कराचार्य का प्रभाव व महिमा ज्ञात होता है। इससे यह अनुमान करना भूल न होगी कि आचार्य शङ्कर की आज्ञा पर पद्मपाद के सहायता प्राप्त कर यहां के राजा ने श्रीचक्र रूप में श्रीनगर का निर्माण किया हो। इस नगर का इष्ट आराध्य देवता श्रीनरसिंह मूर्ति हैं जो श्रीपद्मपाद के उपासना इष्ट देव थे। यहां के आलय में कमलेश्वर लिङ्ग एवं देवी मूर्ति भी हैं जो मन्दिर दक्षिण भारत से आये हुए दण्डी सन्यासी के परिचालन एवं पूजा सेवादि निर्वाह में छोड रखा था। यहां के दण्डी सन्यासी एक मठ का भी निर्माण किये। 17 वीं शताब्दी के राजा श्री फतेहपत शाह ने इस शङ्करमठ को दान भी दिया है।

मन्दाकिनी व अलकनन्दा सङ्गम पर रुद्रप्रयाग है। मन्दाकिनी किनारे से आगे बढें तो गुप्तकाशी पहुंचते हैं। यहां शिवशक्ति की ऐक्य रूप में 'अर्धनारीश्वर' मूर्ति की प्रतिष्ठा शङ्कराचार्य ने किया था। इसी मन्दिर के सामने नदी के उस पार में ऊखी मठ है। केदार के पुजारी जाडों में यहीं ऊखी मठ में वास करते हैं। यहां दण्डी सन्यासियों के लिये एक शङ्करमठ है। यहीं से कुछ मील दूर पर त्रियुगी नारायण क्षेत्र है। इसके समीप कालीस्थान है। यहां आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित महिषमर्दिनी योगिनियों के साथ एक मूर्ति विद्यमान है। इस सीमा के पश्चात् जो मार्ग है उसी मार्ग को पाण्डवों का 'महाप्रस्थान यात्रा मार्ग' कहा जाता है। यहां पहुंचने के लिये केदार क्षेत्र मार्ग द्वारा जाना पडता है। इसी के समीप केदार क्षेत्र है। यहां का पुजारी दाक्षिणात्य है। इस केदार मन्दिर के पीछे एक स्थल है जहांपर शङ्कराचार्य के भौतिक शरीर का अन्तिम दर्शन हुए थे और जिस स्थल को कैवल्यधाम कहते हैं। उत्तर प्रदेश सरकार यहीं पर शङ्कराचार्य का एक स्मारक बनवा रहे हैं। यही आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल था। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने गढवाल के महाराजा श्री कनकपाल की सहायता द्वारा बदरी व केदार मन्दिरों का

फ
३५८

जीर्णोद्धार किया था। यह दोनों मन्दिर गढवाल राज्य के अधिकार व संचालन में था। 1915 ई० में यह बदरी-केदार सीमा ब्रिटिश इन्डिया राज्य के अधिकार व संचालन में आया। 'कत्यूरी' राजाओं व गढवाल राज्य के महाराजाओं जो 'गुंथ' के नाम से प्रख्यात थे उन्होंने केदार मन्दिर को भू दान आदि दिया था। ग्यारहवीं शताब्दी का दान प्रमाण सामग्री अब तक उपलब्ध हुए हैं।

अलकनन्दा के किनारे किनारे होते हुए आगे बढें तो जोशीमठ (उत्तराम्नाय ज्योर्तिमठ) पहूंचते हैं। यहां पर ज्योतीश्वर व भक्तवत्सल दो शिव मूर्ति हैं। नवदुर्गा भगवती देवी, शालिग्राम शिला से बनाया हुआ नरसिंह मूर्ति आदि सब उक्त मठ में विद्यमान हैं। जाडे में बदरी मन्दिर के पुजारी यहीं वास करते हैं। बदरीनारायण मन्दिर में नर नारायण जो अलकनन्दा से आचार्य शङ्कर ने निकाल कर प्रतिष्ठा की थी उस मन्दिर के पुजारी नम्बूदरी हैं। हिमालय सीमा में पांच बदरी और पांच केदार हैं। जिनमें कुछ मन्दिरों में दक्षिण देश के ब्राह्मण ही पुजारी हैं। कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने हिमालय सीमा के भिन्न स्थलों में जागेश्वर, मृत्युञ्जय, दण्डेश्वर, पाकेश्वर आदि मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी की थी। जागेश्वर ज्योति लिंग है। एक स्थल में सत्यनाथ—राजराजेश्वरी मन्दिर भी है और कहा जाता है कि यह मूर्ति आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित थी। आचार्य शङ्कर नेपाल पशुपतिनाथ मन्दिर भी पहुंचे जहां आपने पूजा पद्धति की व्यवस्था कर दाक्षिणात्य ब्राह्मण को पूजा के लिये नियोजित किया। यहां के सिद्धेश्वरी की दर्शन कर आचार्य शङ्कर कुछ दिन के लिये दत्तात्रेय गुफा में वास किये थे। काटमण्डू के समीप एक मन्दिर में दत्तात्रेय व शङ्कर की मूर्तियां हैं। सरयू-गोमती संङ्गम समीप मार्कन्डेय शिला है और कहा जाता है कि यहीं ऋषी मार्कन्डेय ने देवी माहात्म्य एवं दुर्गासप्तशती की रचना की थी। आचार्य शङ्कर यहां भी पधारे थे। पूर्णागिरि देवी एक गिरि सम्पूर्ण को माना जाता है और यहां देवी मन्दिर है। वह उत्तराम्नाय मठ का देवी पीठ है।

रामायण उत्तर काण्ड में 'कैलास धरणीधरन्' कहा है। महाभारत वन पर्व अध्याय 138 (श्री काली प्रसन्न सिन्हा द्वारा प्रकाशित) में कहा है कि कैलास छः योजन ऊंचा है। कैलास उत्तर कुरु के पश्चात् स्थित् होने का भी वन पर्व में कहा गया है। अनुशासन पर्व में उल्लेख है कि अलकापुरी (कुबेर का स्थल वैश्रवणो राजा तिष्ठत्यमित विक्रम।) व हिमालय के उत्तर कैलास स्थित है। यहां महेश्वर माता पार्वती के साथ वास करते हैं ('मायाशक्तियुक तमोगुणावेश,' 'हरः सक्रीडमानश्च उमयासह')। कैलास का मनोरम दृश्य व महिमा का वर्णन करना कठिन काम है। जिस कैलास से मन्दाकिनी उद्भव होकर बहती है और जहां गन्धर्व, अप्सरस आदि किन्नरों के साथ अपनी अपनी क्रीडा दिखाते हैं वही कैलास महेश्वर का वास स्थल है। रामायण उत्तर काण्ड में कैलास का अति मनोरञ्जित वर्णन किया गया है। यहां परमशिव सिद्ध, चारण, प्रमथ व पिशाचों के साथ आनन्दनिमग्न होकर तान्डव करते हैं और अपने परिवारों के साथ वास करते हैं। भीष्म पर्व में कैलास को हेमकूट कहा है 'हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः।'. कैलास को उग्र भी कहा गया है क्यों कि यहीं से भद्रकाली एवं वीरभद्र दोनों श्रीदक्ष के अश्वमेध यज्ञ में बाधा देने के लिये भेजे गये थे। कैलास का एक एक अणु उमा व महेश्वर का प्रतिबिम्ब ही है—'गिरिराज-सुतान्वित -वामतनूं; तनु-निन्दित-राजित-कोटिविधुम्।' यही पर्वत कैलास है जहां महेश्वर की प्रीति के लिये एवं अभीष्ट प्राप्त करने के लिये भगीरथ, सागर, नहुष, महाराज श्वेतकी, महऋषि भृगु, सुरभि, शुकदेव, आदि साधक व साधिकाओं ने तपस्या की थी। कालिदास ने मेघदूत में कहा है 'कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।' काव्यों में कैलास को श्वेतवर्ण, श्वेत अश्व, श्वेतमाला, ऐरावत्त, कैलासशिखरोपमाम्, आदि उपमाओं द्वारा वर्णन किया है। ऐसे हिमाच्छादित पुण्यक्षेत्र कैलास सीमा व ऋषि, मुनि, देव, देवियों का क्रीडा स्थल हिमालय सीमा को छोडकर एक साधारण क्षेत्र दक्षिण का कांची को आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल कहना केवल बकवास है। परमशिव के अवतार आचार्य शङ्कर का निजधाम कैलास है और आप वहीं जा पहुंचे।

सब ग्राह्य प्रामाणिक ग्रंथ एवं प्रबला जनश्रुति सिद्ध करता है कि आचार्य शङ्कर ने हिमालय की केदार सीमा से ही कैलास गमन किये थे। शिवरहस्य ('तान्वैर्विजित्य तरसाक्षत शास्त्रजालैः मिश्रांस्ततो नैजमवाप लोकम्') के कहा है कि आचार्य शङ्कर उत्तर भारत के गौडों को वादविवाद में पराजित कर काश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण कर हिमालय प्रदेश से कैलास गये। शिवरहस्य ('द्वात्रिंशत्परमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस') के अनुसार आचार्य शङ्कर की आयू 32 थी और आपको कैलास आने का आदेश होने से आपकी आयू 32 ही माना जाता है। इस श्लोक के पूर्व शिवरहस्य में 'नैजमवापलोकम्' है और इसका पुष्टी 'शीघ्रं कैलासमावस' पद करता है। शिवरहस्य में 'जगाम परमं पदं' का अर्थ पूर्वापर संदर्भ को ध्यान में रख कर 'कैलास आने की आज्ञा' ही प्रतीत होता है न कि मोक्ष जैसा कि कुम्भकोण मठ का प्रचार है। इसी शिवरहस्य में आगे लिखा है—'विवेश पृष्ठ वृषभस्य हस्तं संगृह्य वैरिञ्चमथास्य दत्तं। सर्वैश्च देवैरभिनन्द्यमानस्सशङ्करस्तन्निजधाम देवः॥' इससे स्पष्ट मालूम होता है कि आचार्य शङ्कर ने कैलास गमन हिमालय सीमा से ही किया था। शिवरहस्य में एक पाठान्तर 'काञ्च्यामथ सिद्धिमाप' है और इसका अर्थ शङ्कर का निर्याण स्थल कांची होने का कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं। इस श्लोक का पाठान्तर भी है 'ततो नैजमवाप लोकम्,' 'ततोलोकमवापशैवम्,' 'सकाञ्च्यामथसिद्धिमवाप शैवम्' आदि हैं। 'सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप' में सिद्धि शब्द का अर्थ तनुत्याग नहीं है। इसकी व्याख्या में लिखा है—'सिद्धिशब्दो न मोक्षवाचकः कुतः शक्तेर्भानाभावात्, न लक्षणामुख्यार्थ बाधाभावात्। न व्यञ्जना मूलाभावात्। अतः साधनार्थः मनोरथस्य सिद्धिमवाप इत्यर्थः।' और एक व्याख्या में लिखा है—"मिश्रान्सकाञ्च्यामथसिद्धिमापेति अनन्तरं तत्रैव काञ्च्यां तपः सिद्धिमवापदण्डीत्यादयस्त्रयोदश श्लोका अपि उपलभ्यन्ते। सिद्धि पदं न तनुत्यागमाचष्टे। अपि तु तपः सिद्धि बोधयति। सिद्धि पदस्य प्रसिद्धिश्च फल निष्पत्तौ वर्तते न तु प्राणत्यागे।" आचार्य ने कांची में तपस्सिद्धि प्राप्त की थी।

आनन्दगिरि शङ्करविजय के आधार पर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांची था। आनन्दगिरि शङ्कर विजय श्रेष्ठों को ग्राह्य नहीं है और यह एक अनादरणीय पुस्तक है। कुम्भकोण मठ ने मूल आनन्दगिरि शङ्कर विजय में कुछ अदलबदल कर एक परिष्कृत्य संस्करण तैय्यार कर प्रमाण में दिखाते हैं पर दोनों पुस्तक—मूल व परिष्कृत्य—एक ही है। 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठविमर्श' नामक के पृष्ठ 147 से 184 तक में आनन्दगिरि शङ्कर विजय पर विमर्श पायेंगे। आनन्दगिरि शङ्कर विजय में निर्याण विवरण दिया है 'स्वयं स्वेच्छया स्वलोकं गन्तुमिच्छुः कांचीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूल शरीरं सूक्ष्मेन्तर्धाय सद्रूपोभूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा चिन्मात्रो भूत्वांऽगुंष्ठ पुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्ड मण्डलाकारानन्दं ईश्वर सन्निधौ प्राप्य सर्वजगद् व्यापकम् चैतन्यमभवत्।' अद्वैत मतावलम्बियों के दृष्टी से कारण में विलीन होने के बाद अंगुष्ट पुरुष होना असम्भव है। सर्वचैतन्य को ईश्वर सन्निधी पहुंचना भी असम्भव है। क्या आचार्य शङ्कर को सामीप्य मुक्ति ही मिली? क्या सर्वव्यापक चैतन्य को स्वलोक परलोक भी होता है? द्वैत से रचित यह पुस्तक जो द्वैत मत का प्रतिपादन करता है और जिस पुस्तक में आचार्य शङ्कर को गोळक पुत्र कहा है, चिदम्बर वास स्थल कहा है, पिता माता का नाम विश्वजित विशिष्ठा का नाम दिया है, आचार्य ने व्यास के गालों पर तमाचा मार कर उन्हें बाहर फेंक देने की आज्ञा दी थी ऐसा उल्लेख है तथा यह भी उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर ने अपने शिष्यों द्वारा द्वैत मत का प्रचार करने की अज्ञा दी थी, ऐसी पुस्तक को प्रमाण में दिखाना न केवल आचार्य का अपचार करना होगा पर यह एक महापाप कर्म भी होगा।

रामभद्र दीक्षित द्वारा रचित पतञ्जली चरित्र का श्लोक जिसमें 'काञ्चीपुरे स्थितिमवाप स शङ्करार्यः' उल्लेख है, कुम्भकोण मठ इसके आधार पर कहते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण कांचीपुर में ही था। कुम्भकोणमठ विद्वान 'स्थितिमवाप' का अर्थ 'तनुत्याग' कहते हैं पर न्याय व उचित अर्थ 'शङ्कर कांची में वास किये' होगा न कि तनुत्याग। स्वकल्पित टिप्पणी को यथार्थ अर्थ के साथ जोड़कर प्रचार करने से विषय की पुष्टी नहीं होती पर इसे भ्रामक मिथ्या दुष्प्रचार ही कहा जायगा।

श्री राजचूडामणि दीक्षित द्वारा रचित शङ्कराभ्युदय का एक श्लोक जिसमें 'कामेश्वरीमर्चयन् ब्रह्मानन्द मविन्ददत्र जगतां क्षेमंकरः शङ्करः।' ऐसा एक पंक्ति है। कुम्भकोण मठ कहते हैं कि इस श्लोक द्वारा निर्याण का अर्थ बोध होता है। पर वास्तविक अर्थ है कि आचार्य शंकर ने देवी की पूजासेवादि से ब्रह्मानन्द अनुभव किये या प्राप्त किये न कि कांची में निर्याण भये। कुम्भकोण मठ की सर्वज्ञत्व की यह एक प्रदर्शनी है। 'अभद्रं पठित्वा अन्ते कुयोध्यं कुरुते बुधः' के अनुसार कुम्भकोण मठ का प्रचार है।

कुम्भकोण मठ के आत्मबोधेन्द्र ने सुषमा में (पृ० 25) कुछ श्लोक केरलीय शङ्करविजय (III-5) से उद्धृत किया है और यह उद्धरण ठीक है परन्तु सुषमा पृ० 39 में जहां आपने शङ्कर का निर्याण स्थल कांची कामाक्षी समीप होने का एवं सर्वज्ञात्म को मठाधीश बनाने का तथा श्री सुरेश्वर को योगलिङ्ग की पूजा करने का आदेश, आदि विषयों का वर्णन किया है, यहां आत्मबोध ने केरलीय शङ्करविजय का नाम लेकर प्रमाण रूप में कुछ श्लोक उद्धरण किया है। यह सब उद्धरित श्लोक केरलीय शङ्कर विजय में बिलकुल पाया नहीं जाता है (1926 ई० में प्रकाशित पुस्तक या तंजौरमहाल पुस्तकालय की हस्तलिपि प्रति)। प्रमाणाभास स्वकल्पित श्लोकों को केरलीय शङ्कर विजय का नाम लेकर आत्मबोध ने प्रचार किया है। केरलीय शङ्करविजय में आचार्य का निर्याण स्थल तिरुचूर का उल्लेख है। ऐसे अनेक प्रमाणाभास स्वकल्पित श्लोकों के आधार पर अपने मिथ्या भ्रामक प्रचारों से कुम्भकोण मठ की नीवं अठारहवीं शताब्दी में डाली गयी, तंजौर राज्य के राजाओं का आश्रय एवं प्रभुत्व प्राप्त कर, दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के प्रति द्वेष व घृणा भाव से मठ का निर्माण कर (तंजौर न्यायाधीश डा० बर्नल का अभिप्राय), भ्रामक व मिथ्या प्रचारों की सामग्री 19 वीं शताब्दी मध्य काल तक तैय्यार होते हुए शताब्दी अन्त तक में पूर्ण किया गया और अब बीसवीं शताब्दी में मिथ्या, भ्रामक व घृणा का प्याला अपने प्रचारों से भरी जा रही है।

श्रीमाणिक्यविजय (ब्रह्माण्डपुराणसार)—हिमालय सीमा को ही निर्याण स्थल बतलाता है न कि कांची— 'आब्दात्रिंशद्वर्षं मुर्व्यां स्थित्वागाद्गिरिशालयम्।' माधवीय शङ्करदिग्विजय भी हिमालय सीमा को ही निर्याण स्थल बतलाता है। डिण्डिम टीकाकार 'कैलासगिरि शृङ्ग' का ही उल्लेख करते हैं। टीकाकार ने उक्त श्लोक के पूर्व श्लोक में आचार्य शङ्कर को 'केदारकं प्राप' कहा है। मूल माधवीय श्लोक में 'इति कृत सुरकार्यंनेतुमाजग्मुरेनं रजतशिखरि शृङ्गतुङ्गमीशावतारम्।' के 'ईशावतारम्' शब्द की टीका में टीकाकार ने शिवरहस्य नवमांश षोडशाध्याय से 46 श्लोक उद्धृत कर ईश्वरावतार की पुष्टी की है। शिवरहस्य 46 वां श्लोक का अन्तिम पद 'काञ्च्यामथसिद्धिमाप' दिया है। कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि डिण्डिम टीकाकार ने भी स्वीकार किया है कि कांची ही निर्याण स्थल है। यह प्रचार भ्रामक है। माधवीय मूल श्लोक की टीका में टीकाकार ने निर्याण स्थल कैलासगिरि शृङ्ग को ही कहा है और यदि इसके विरुद्ध टीकाकार का अभिप्राय होता या शिवरहस्य पद का अर्थ तनुत्याग (सिद्धि शब्द) स्वीकार किये होते तो टीकाकार कांची का उल्लेख कर शिवरहस्य के श्लोक को प्रमाण में देते। पर आपने 'ईशावतारम्' पद की टीका में शिवरहस्य के श्लोकों को उद्धृत किया है न कि कांची नगर को आचार्य शंकर का निर्याण स्थल की पुष्टी में।

माधवीय शङ्करविजय की एक परिष्कृत्य प्रति जिसे व्यासाचलीय के नाम से पुकारा जाता है इसमें भी हिमगिरि को निर्याण स्थल कहा है। चिद्विलासीय शङ्करविजयविलास में भी हिमालय का दत्तात्रेय गुहा से कैलास गमन का उल्लेख है। सदानन्दीय शङ्करविजय में भी हिमालय को ही कहा है। उपर्युक्त ग्रंथों में किसी में भी कांची नगर का नाम नहीं लिया है। महानुभाव संप्रदाय का ग्रन्थ 'दर्शन प्रकाश' जो 1638 ई० में लिखा गया था, इसमें एक प्राचीन पुस्तक 'शंकरपद्धति' नाम का उल्लेख करते हुए इससे कुछ उद्धरण किया गया है जिससे सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने हिमालय सीमा की गुफा में प्रवेश कर निजधाम पहुंचे। यहां कांची का नामो निशान नहीं है।

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठापित चार आम्नाय मठो में प्रस्तुत तीन मठ जो आज पर्य्यन्त परम्परागत चला आ रहा है, इन तीन आम्नाय मठाधीशों का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय की केदार सीमा ही है। 'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श' नामक पुस्तक में ये सब प्रकाशित पायेंगे। वहां एक सौ अभिप्राय प्रकाशित पायेंगे।

अट्किन्सन् गजटियर में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर काश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण कर पश्चात् बदरी आकर वहां नारायण मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पश्चात् केदार सीमा से अपने बत्तीसवें वयस में निजधाम पहुंचे। Atkinson Gazetteer of the Himalayan Districts of the North West provinces of India—Vol. II—Edited a little earlier than 1882/3—'Shankara towards the close of his life visited Kashmir where he overcame his opponents and was enthroned in the chair of Saraswati, the goddess of eloquence. He next visited Badri where he restored the ruined temples of Narayana and finally proceeded to Kedar where he died at the early age of thirty-two.' प्रो॰ विल्सन् 1846 ई॰ में लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर केदार सीमा में अपने बत्तीसवें वयस में निर्याण भये—'He next went to Badarikasrama and finally to Kedarnath in the Himalayas where he died at the early age of thirty-two. The events of his last days are confirmed by local traditions ....' प्रो॰ विल्सन् 'ग्लासरी' में 1855 ई॰ में लिखते हैं—'Whether he (Sankara) was more than a passing pilgrim at Conjeevaram is doubtful.'

केदार मन्दिर समीप यह पुण्य निर्याण स्थल है जहां से आचार्य शङ्कर कैलास गमन किये और जिसे 'कैवल्यधाम' कहा जाता है। बदरी–केदार सीमा के वासी यात्रियों को यह स्थल दिखाते हैं और यात्री यहां श्रद्धाञ्जली भेंट करते हैं। गढवाली और नैपाली लोकगीत एवं एक प्राचीन नैपाली कथा भी है जिसमें श्रीशङ्कर का निर्याण स्थल केदार मन्दिर सीमा ही का वर्णन किया गया है। डा॰ सम्पूर्णानन्द जी (उत्तर प्रदेश मुख्य मंत्री एवं वर्तमान राजस्थान राज्यपाल) के संचालन में एवं आपके सहायता से बदरी केदारनाथ मन्दिर कमीटि ने इस पुण्यस्थल पर स्मारक मन्दिर निर्माण कराने का पुण्य कार्य अपने हाथ में लिया है। पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु द्वारका मठाधीश लिखते हैं 'Whatever it be, there can be no doubt that the ultimate disappearance was at Kedar Kshetra. Even to this day, the people there point out a particular place as the spot wherefrom the great Acharya disappeared and the pilgrims visiting the spot are made to worship there; while so, it is idle to say that He attained Sidhi in some place in the south and that there is a place there where His mortal remains were interned. We cannot accept such contentions nor will the sishyas throughout the land of Bharata countenance them." प॰ प॰ श्री स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी महाराज, गीतासत्सङ्ग कैलास क्षेत्र, नैनीताल से लिखते हैं कि आपने आचार्य के निर्याण स्थल के विषय पर काफी शोध किया है और दृढ प्रमाण सिद्ध करते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदार सीमा ही है न कि कहेजानेवाले दक्षिण का कांची नगर—'I have made special study of the History of Uttarakand i. e., the Garhwal and Kumaon districts of U. P., particularly from the beginning of the eighth century

to the present day. In my researches, I have often had recourse to Government records and other authentic sources; and all the sources collaborate admirably, to establish the important fact that, the Adi Shankaracharya 'shed his mortal coil' and attained immortality at Kedarnath itself. The Government records and folk songs reiterate the incident as a hallowed and cherished memory; and history-both searched and secular—clearly establishes the position of Kedarnath— as the place where the great sage and rishi attained 'Nirvana.' The most convincing and unchallengeable fact, however, is that at Kedarnath itself there is an old structure, which has been for centuries past, and is to the present day, the Samadhi of Sri Adi Sankaracharya .... Those that claim and seek to establish the Samadhi at Tamilnad (Kanchi), let us hope, realise that they are acting from ignorance and without the possession of facts and historical records and associations.' भारतरत्न डा॰ एस्. राधाकृष्णन् (वर्तमान राष्ट्रपति—भारत सरकार) का अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय का केदारनाथ सीमा है—'He died at Kedarnath in the Himalayas at the age of thirty-two, according to the tradition' (The Vedanta according to Sankara and Ramanuja). कल्याण पत्र जनवरी 1957 अङ्क में उल्लेख है—'केदारनाथ ... . यहीं उन्होंने देहत्याग किया था।' डा॰ पि. नरसिंहय्या लिखते हैं कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल हिमालय का केदारनाथ सीमा ही है—'Before his thirty-second year of age, the master passed away from earthly existence, at Kedarnath in the Himalayas.' (Bhavan's Journal, April 26, 1962). 'तिरुक्केदार—वदरीनाथ यात्तिरै' पुस्तक जो चिदम्बरवासी श्री आर. कृष्णस्वामी अय्यर से 1957 में रचित व कुम्भकोणम में मुद्रित एवं वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के श्रीमुख सम्मति पत्र सहित प्रकाशित है इसमें स्पष्ठ उल्लेख है कि आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल केदारनाथ सीमा ही है और वहां आज भी वह समाधिस्थल सुरक्षित दीख पडता है। पूर्वीय व पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वान हन्टर, रईस, टील, मेक्समुलर, डफ़, तेलङ्ग, तिलक, जे. सरकार, आर. के. मुकर्जी, आर. सी. मजुम्दार, पाठक, नेहरू, सि. पि. रामस्वामी अय्यर आदियों का भी अभिप्राय है कि आचार्य शङ्कर का निर्याणस्थल हिमालय सीमा के केदारनाथ ही है।

कुम्भकोण मठ प्रचारकों से अब एक नवीन प्रचार प्रारम्भ हुआ है कि आचार्य शङ्कर कांची कामाक्षी मन्दिर की गुफा में उतर कर अन्तरध्यान भये। यदि इसे मान लें तो कुम्भकोण मठ की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक आनन्दगिरि शङ्करविजय का दिया निर्याण विवरण से उक्त कथन भिन्न दीखता है। तो क्या अब द्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाला आनन्दगिरि शङ्करविजय का निर्याण विवरण कुम्भकोण मठवाले स्वीकार नहीं करते?

(च) कुम्भकोण मठ व आपके भक्तों का प्रचार है कि कांची कामाक्षी मन्दिर में ही आचार्य शङ्कर का निर्याण हुआ था और जो शङ्कराचार्य जी की मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में है वह समाधि होने का निश्चय करता है—'श्री काञ्च्यामेव श्रीकामाक्षीदेवी मन्दिर सविधे तेषां तनुत्याग आसीत्। अद्याऽपि तेषां तत्र समाधि स्थानमस्ति।' 'In the mandir of Shri Kamakshi there is a temple of Shankaracharya with his life size murthi which is his Samadhistan.'

आगम शास्त्र व धर्म शास्त्र दोनों स्पष्ठ कहता है कि स्मार्थ वैदिक रीति द्वारा प्रतिष्ठित देव व देवी मन्दिर में समाधि न होनी चाहिये। यह शास्त्र निषेध है। समाधि का मन्दिर अलग जगह हो सकता है पर कभी देव देवी प्रतिष्ठित मूर्ति के पास समाधि न होनी चाहिये। दक्षिण भारत में परम्परा रूढी है कि मन्दिर के पास यदि कोई शव हो और वह शव वहां से हटाये जाने तक मन्दिर की पूजा नहीं की जाती है और पश्चात् वैदिक प्रोक्षण करके पूजा सेवादि कार्य होती है। ऐसी रूढी होते हुए भी न मालूम कैसे कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर की समाधि कामाक्षी मन्दिर के प्राङ्गन में है। हमारे धर्मनिष्ठ पूर्वज कभी भी शव को मन्दिर के भीतर आङ्गन में गाडे न होंगे और वह भी प्रतिष्ठित कामाक्षी देवी के समीप। मुसलमान व क्रिस्तान भले से ही समाधि मसजिद या गिरजाघर में बना सकते हैं पर वैदिक आगम शास्त्र विधि के अनुसार समाधि का होना निषेध है। अवतारी पुरुषों की समाधि या अद्वितीय महानों की समाधि देव देवी प्रतिष्ठित मन्दिर के बाहर ही हो सकता है न कि मन्दिर के भीतर प्राकार में। महानों की समाधि कालान्तर में मन्दिर बन जानते हैं और ऐसी समाधि या मन्दिर अलग स्थल में हो या किसी निवास स्थल मठ में हो। आचार्य शङ्कर की मूर्ति होने से समाधि कहना भी भूल है। आचार्य की मूर्ति अनेक जगह हैं और इन मूर्तियों में कुछ मूर्तियां कांची की मूर्ति से भी प्राचीन हैं, यथा–दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ की मूर्ति, तिरुचूर की मूर्ति, हिमालय के गङ्गोत्री मन्दिर की मूर्ति व ऊगिमठग्राम की मूर्ति, आदि। क्या यह कहना न्याय है कि उक्त स्थल में जहां जहां आचार्य की मूर्तियां हैं वे सब निर्याण स्थल हैं? कांची की मूर्ति अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित मूर्ति है। इस कथन की पुष्टी में प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। कृपया 'श्री मज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक के पृ॰ 506/507 पढ़ें। समाधि विषय में मैं ने मदरास राज्य को लिखकर पूछा था कि उनका अभिप्राय क्या है? उत्तर पत्र में कहते हैं कि शङ्कराचार्य मूर्ति 'सन्नधि' है न कि 'समाधि'। दक्षिण भारत में आलय या मन्दिर को 'सन्नधि' कहते हैं। 'I note that you have since been apprised of the fact that the word used in the board in the temple is 'Sannadhi' (H.R.C.E. Adm. Dept. L. Dis. No. 38630/60, dated 4—11—1960)

वास्तविक विषय तो यह है कि कांची की मूर्ति आचार्य शङ्कर की मूर्ति नहीं है और प्राचीन काल में एक समय यह बुद्ध मूर्ति थी और इसे अब शङ्कराचार्य की मूर्ति बना लिया गया है। मैं ने प्रो॰ ए. अय्यप्पन जो व्यक्ति राजकीय म्यूजियम के सुपरिन्टेन्डन्ट थे आपको उक्त विषय पर सप्रमाण विस्तारपूर्वक विवरण व अपना अभिप्राय देकर पूछा था कि आपका अभिप्राय लिख भेजने की कृपा करें। आप 18—10—1960 को लिखते हैं—'Your hypothesis is quite plausible." मैं ने श्री पि. आर. श्रीनिवासन, राजकीय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी, को लिखकर उनका अभिप्राय लिख भेजने की प्रार्थना की थी। आप 21—10—1960 के पत्र में लिखते हैं—'............ the contents of your letter are interesting. But I am unable to know why you are interested in this obscure subject. Anyway as regards the Kamakshi Amman temple of Kanchi, Sri T. A. Gopinatha Rao has surmised that it was associated with Buddhism. It seems to be reasonable. .... So, I am not able to agree or disagree with the contention it was originally a Buddha image. In fact, I have not had an opportunity to investigate these matters more deeply. .... If an opportunity arises, I shall examine it deeply." उक्त दोनों पत्र मेरे अभिप्राय का खण्डन नहीं करता है पर समर्थन ही करता है यद्यपि आपलोगों ने इस विषय को स्पष्ठ लिखा नहीं है। यह मूर्ति शङ्कराचार्य की समाधि नहीं है और आचार्य शङ्कर से कोई सम्बन्ध भी नहीं रखता है। इन सब विषयों का विवरण व प्रमाण मुझसे प्रकाशित 'श्री मज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 498 से 508 तक में पायेंगे।

प्रसिद्ध इतिहास विद्वान श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी लिकते हैं कि कांची का एक भाग का नाम बुद्धकांची था और यहां के एक बुद्ध विहार का भिक्षु ने चौदहवीं शताब्दी में पुर्वी जावा के एक हिन्दू राजा का यशोगान किया था—'One section of Kanchipuram bore the name of Buddha Kanchi to a relatively late date, and a Buddhist monk from one of the monasteries there sang the praises of a Hindu ruler of eastern Java in the fourteenth century.' चीनी यात्री हुवन-च्वाङ्ग ने सातवीं शताब्दी पूर्वार्ध में भारत भ्रमण किया था और आप कांची भी आये। आप लिखते हैं कि एक सौ सं भी ज्यादा बुद्ध विहार कांची में था जहां करीब 10,000 भिक्षु वास करते थे और 80 देव मन्दिर भी था जिसमें अधिकांश दिगम्बरों का ही मन्दिर था। सातवां शताब्दी के शैवाचार्य श्रीतिरुज्ञान सम्बन्धर अपने रचित ग्रन्थों में 'बोदियार' व 'तेरस' का उल्लेख किया है जो भिक्षु व बौद्ध धर्म का संकेत करता है। आठवीं शताब्दी में आचार्य शङ्कर कांची आये और अवैदिकों व तान्त्रिकों को यहां पराजित किया था। जैनमत ग्रन्थों में उल्लेख है कि आपके अकलङ्क ने बौद्धों को विवाद में कांची में पराजित किया था। इन सब आधारों द्वारा निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कांची में सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक बौद्धों का प्रभाव अधिक था। कांची में बुद्ध मूर्तियां अनेक जगह पाया गया है। कांची में एकाम्रेश्वर मन्दिर के पास अनेक छोटे बुद्ध मन्दिर भी थे। राजकीय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी श्री पि. आर. श्रीनिवासन लिखते हैं—'That there was definitely one in the vicinity of Ekamreswara temple is proved by the existance of of number of Buddhist images there.' शिवकांची में ग्यारहवीं शताब्दी की बुद्ध मूर्ति प्राप्त हुई थी। 13 वीं शताब्दी की बुद्ध मूर्ति कांची के करुक्किलमरुद अम्मन मन्दिर से प्राप्त हुआ है। भिन्न ढङ्ग में चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी की बुद्ध मूर्तियां एकाम्रेश्वर मन्दिर में प्राप्त हुआ है।

राजकीय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी श्री टि. ए. जी. राव लिखते हैं कि आपको कांची कामाक्षी मन्दिर में और इसके समीप पांच बुद्ध मूर्तियां मिला था और आपने कामाक्षी मन्दिर के बगल वाले बगीचे में भी दो मूर्तियां होने का विषय भी सुना था। इसमें एक बुद्ध मूर्ति जो सात फुट दस इन्च की मूर्ति थी उसे अपने कामाक्षी मन्दिर के भीतर आंगन में पाया था। यह मूर्ति अब मदरास म्यूजियम में है। श्री टि. ए. जी. राव लिखते हैं—'I came upon no less than five images of Budha within a radius of half a mile from the famous temple of Kamakshi Devi. I was also told that two other megalithic images of Buddha lie buried in a garden adjoining the same temple.' पुरातत्त्व विभाग के श्री पि. आर. श्रीनिवासन लिखते हैं कि कामाक्षी मन्दिर में प्राप्त बुद्ध मूर्ति सातवीं शताब्दी की है—'Hence it will not be wide off the mark if this figure is attributed to the beginning of the 7th century A. D.' श्री राव आगे लिखते हैं कि यह आठ फुट की मूर्ति जो कामाक्षी मन्दिर के भीतर प्राकार में पायी गयी थी सो मूर्ति कामाक्षी मन्दिर में ही मुख्य स्थान प्राप्तकर मन्दिर की मुख्य मूर्ति रही होगी अथवा इस मूर्ति को किसी अन्य एक व्यक्ति ने सुरक्षित रखने के लिये कहीं बाहर से मन्दिर में लाया होगा। यहां एक विषय ध्यान देने का है कि कामाक्षी मन्दिर का दर्वाजा प्राचीन काल में छोटा था और मन्दिर का घेरा दिवाल बहुत ऊंचा था। अतएव वजनदार शिला मूर्ति को बाहर से ले आना या ले जाना भी असम्भव दीखता है। इस मूर्ति को बचाने या सुरक्षित रखने का क्या कारण था कि इसे और एक जगह से कामाक्षी मन्दिर लाया गया था? क्या कहेजानेवाला कामाक्षी मन्दिर बुद्ध मन्दिर था? या वैदिक विन्दिर में ब्राह्मणों ने क्यों इसे वहां लाने दिया था? इन कारणों से कहा जा सकता है कि यह मूर्ति कामाक्षी मन्दिर का ही एक

मुख्य मूर्ति थी और यह मूर्ति कहीं बाहर से नहीं लायी गयी थी। श्री राव लिखते हैं—'The present position of the image with respect to the temple of Kamakshi can be explained by two plausible hypotheses, namely (1) that the image did certainly occupy some important place in the very temple itself; or (2) that it was brought in there by some one for safe custody.' 'The image was in some place very near its present position and was removed from its original seat and just set down where it is at present.' श्री टि. ए. जी. राव इस विषय पर पूर्ण अन्वेषण कर दृढ प्रमाणों के आधार पर लिखते हैं कि यह कामाक्षी मन्दिर प्राचीन काल में तारादेवी की मन्दिर था और इसे पश्चात् वैदिक मन्दिर में बदला गया था— 'The temple of Kamakshi was, in all probability, originally a temple of Tara Devi and, as with many other temples of alien faith, converted into a Hindu temple in later times." राजकीय पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारी श्री पि. आर. श्रीनिवासन लिखते हैं कि 600 ई० के पूर्व काल में यहां बुद्ध मन्दिर था—'... ... . discovered in the innermost prakara of the Kamakshi temple in the town raises the question whether originally this temple was dedicated to this Buddha itself. Perhaps there was a Buddhist temple here dating from a period earlier than 600 A. D........... " श्री टि. ए. जी. राव ने पांच बुद्ध मूर्तियों का उल्लेख किया है जिसमें एक का विवरण ऊपर दिया गया है। दूसरी योगमुद्रा स्थित मुर्ति (बुद्धपद्मासन युक्त बैठा हुआ) जो 3½ फुट ऊंचा था सो कामाक्षी मन्दिर के दूसरे प्राकार में मिला था। योगासन व योगमुद्रा सहित 5½ फुट ऊंचा मूर्ति कामाक्षी मन्दिर बगीचे में मिला। चौथा व पांचवां मूर्ति विष्णु कांची में मिला।

कांची कामाक्षी मन्दिर में बाहर प्राकार का ध्वजस्तम्भ के समीप एक मन्डप है। इस मन्डप के खम्भों में ध्यानी बुद्धदेव व तारादेवी की मूर्तियां खुदी हुई है। कुछ खम्भों को मन्डप से निकालकर तोड दिया गया है। टूटा हुआ भाग अब भी दीख पडता है। इन टूटे हुए भागों में भी बुद्धदेव व तारादेवी की मूर्ति देखा जा सकता है। अतएव सिद्ध होता है कि यह तारादेवी मन्दिर था।

1960 ई० में मैं तीन वार कांची कामाक्षी मन्दिर गया था और कामाक्षी मन्दिर का वाहर प्राकार के उत्तरी तरफ एक भग्न बुद्ध मूर्ति (पद्मासन स्थित नीचे का आधा भाग) अनेक अन्य पत्थर ढोकों के साथ मिला हुआ पाया। कामाक्षी मन्दिर का कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति के नीचे अर्ध भाग के साथ इस भग्न मूर्ति की तुलना की तो दोनों को समान ही पाया। वही पत्थर, रङ्ग, ढांच, नाप था। मैं ने काशी समीप सारनाथ में कुछ बुद्ध भिक्षुओं से इस विषय पर चर्चा की थी और आप लोगों का अभिप्राय है कि कांची कामाक्षी मन्दिर प्राचीन काल में बुद्ध मन्दिर था और वहां मैं ने यह भी सुना कि बौद्ध आगम व मन्दिर निर्माण विधि अनुसार बौद्ध मन्दिरों में जहां श्रीबुद्ध देव की मूर्ति (खड़ा हुआ) प्रतिष्ठित हैं वहां एक पद्मासनस्थित श्रीबुद्धदेव की मूर्ति होना आवश्यक है। इससे सिद्ध होता है कि इस कामाक्षी मन्दिर में बुद्ध मूर्तियां अनेक थी और कालान्तर में यह सब नाश कर दिये गये।

बृहत्-संहिता-प्रतिमा लक्षण में बुद्ध मूर्ति लक्षण का उल्लेख है। मानसार, अध्याय 56, बौद्ध लक्षण विधान, में भी बुद्ध मूर्ति का लक्षण दिया गया है। इन लक्षणों को ध्यान में रखकर यदि कामाक्षी मन्दिर का अब कहेजानेवाले श्री शङ्कराचार्य की मूर्ति के साथ तुलना की जाय तो यह निस्सन्देह सिद्ध होगा कि यह मूर्ति प्रथमतः

बुद्धमूर्ति थी। लम्बाचौडा मुख या गोल मुख, विशाल माथा, उष्णीषा, लम्बा विशाल नेत्र, मोटा आकृष्ट ओंट, दीर्घ नोकीला नाक, लम्बा लटकता हुआ कान, लटकता कान में बडा छेद, मुख का ढांचा, लम्बा बांह, पूर्ण मांसयुक्त मोटा ताजा शरीर अङ्ग, सुन्दर विशाल छाती, शरीर पर वस्त्र का चिन्ह, माला की तरह उपनीत, पद्मासन स्थित या समपाद रक्खा हुआ, छः शिष्य, चिन्मुद्रा या अभयमुद्रा, पीठ या सिंहासन पर स्थित, आदि लक्षणों को ध्यान में रखकर इस मूर्ति के साथ तुलना करें तो यह निस्सन्देह सिद्ध होगा कि यह मूर्ति बुद्ध मूर्ति है। बुद्धदेव का बांया हाथ समपाद बुद्धपद्मासनस्थित पाद के ऊपर ही अंगुलियां खुली होती है और दाहिना हाथ मुद्रा का होता है।

अनेक जगह बुद्धमूर्तियों को हिन्दू वैदिक देव में परिवर्तन किये गये थे। कुछ मूर्तियों पर विभूति चिन्ह, कुछ पर वैष्णव संप्रदाय चिन्ह, कुछ पर मध्व संप्रदाय चिन्ह आदि देकर वैदिक मत का देव बना दिये गये हैं। मङ्गलूर, कदरी, अमरावती, कोल्हापुर, कांची आदि स्थलों में ऐसे परिवर्तन हुए हैं। आचार्य शङ्कर के पश्चात् काल में महायान मत विष्णु को 'अवलोकितेश्वर' बोधिसत्व रूप में स्वीकार किया। हिन्दुओं ने बुद्धदेव को विष्णु का अवतार स्वीकार करने लगे। हीनयान मत ब्रह्म विष्णु महेश को बुद्ध का परिवार स्वीकार किया। बौद्धों ने बदरी नारायण की सेवा की थी। पश्चिम तिब्बत के थुलिङ्ग का बुद्ध मूर्ति ही बदरीनारायण होने का वहां के लामा लोग कहते हैं। हिमालय का चन्द्रभागा नदी किनारे स्थित त्रिलोकीनाथ के बुद्धमूर्ति को हिन्दू लोग विष्णु मानते हैं और लामाओं के साथ मिलकर नामसंकीर्तन भी करते हैं। श्री के. ए. नीलकण्ठशास्त्री जी लिखते हैं–'The renascent Hinduism of the period began the worship of the Buddha at Amravati as an incarnation of Vishnu and seems likewise to have converted many other Buddhist centers into Hindu shrines.' (Page 425). आचार्य शङ्करमूर्ति जो अन्यत्र प्रतिष्ठित हैं वह सब योग पद्मासनस्थित, दक्षिणहस्त चिन्मुद्रा, वामहस्त अभय मुद्रा एवं चार शिष्यों के साथ ही दीखता है। यह लक्षण कांची मूर्ति में दिखाई नहीं पडता है।

कांची कामाक्षी मन्दिर में जैनमानस्तम्भ अब भी देखा जाता है। इस स्तम्भ के ऊर्ध्व में ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है जो जैन मत का मन्दिर होने का प्रमाण है। कामाक्षी मन्दिर के जैन मानस्तम्भ की यक्षी अम्बिका है। जिनकांची या पक्षितीर्थ जो कांची समीप है और जहां जैनों का मन्दिर है, यहां के चन्द्रप्रभा मन्दिर का वर्धमान् मूर्ति को कांची के कामाक्षी मन्दिर से 1922 ई॰ में उक्त मन्दिर के भक्तो ने ले जाकर अपने यहां प्रतिष्ठा की है। इसी प्रकार यहां का वर्धमान मन्दिर का 'धर्मदेवी' मूर्ति भी कांची कामाक्षी मन्दिर से लगभग तेरहवीं शताब्दी में ले जा कर अपने यहां प्रतिष्ठा की थी। धर्मदेवी को अम्बिका भी कहते हैं। कुछ लोगों का अभिप्राय है कि प्रथमतः यह धर्मदेवी का मन्दिर था। कांची के स्वर्ण कामाक्षी को भी धर्मदेवी नाम से पुकारा जाता था। जैन व बौद्ध मन्दिर पश्चात् वैदिक शाक्त मन्दिर में परिवर्तन हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि अब कहेजानेवाला कामाक्षी मन्दिर वैदिक देवी पीठ न था तो किस मन्दिर में आचार्य शङ्कर ने श्रीचक्र की अशुद्धता निवारण कर, उग्ररूप को शान्त कर, वैदिक मार्ग पूजा की व्यवस्था की थी ? कांची में और एक मन्दिर है जो अब कहेजानेवाले कामाक्षी मन्दिर के समीप है जिसे 'आदिपीठ–परमेश्वरी' मन्दिर कहा जाता है। यही मन्दिर प्राचीन काल में कांची का शक्तिपीठ था जिसे आचार्य शङ्कर ने जीर्णोद्धार कर वहां श्रीचक्र की पुनः प्रतिष्ठा कर देवी को सौम्य बनाया था। पुरातत्त्वविभाग का कर्मचारी एवं मदरास राज्यान्तर्गत मन्दिरों के सुपरिन्टेन्डन्ट श्री के. आर. श्रीनिवासन का अभिप्राय भी वही है जो ऊपर दिया गया है। विवरण के लिये पढिये— Journal of the Madras University, Vol. XXXII and Sankara Parvati Endowment lectures.)

इतिहास से स्पष्ठ मालूम होता है कि दक्षिण भारत में सातवीं शताब्दी के पूर्व प्रायः सब मूर्तियां काष्ठ का ही बनता था। श्रृङ्गेरी की माता शारदा मूर्ति पूर्वकाल में काष्ठ की ही मूर्ति थी। सातवीं शताब्दी से ही पत्थर मूर्तियां कुछ जगहों में बनने लगी। उपर्युक्त दिये हुये प्रामाणों द्वारा सिद्ध होता है कि कांची कामाक्षी मन्दिर का कहेजानेवाले शङ्कराचार्य मूर्ति अर्वाचीन काल की ही है और यह समाधि भी नहीं है, अतः कुम्भकोण मठ का प्रचार सब असत्य है।

(छ) कांची नगर में कामकोटि मठ तीन जगहों में हैं–कामाक्षी मन्दिर समीप, शिवकांची, विष्णुकांची और ये मठ अनादि काल से कांची कुम्भकोण मठ के आधीन में होने का प्रचार भी करते हैं। कुम्भकोण मठ का और एक मठ जम्बुकेश्वर-अखिलान्डेश्वरी मन्दिर (तिरुची जिला) के समीप होने का कहते हैं और यह मठ अनादि काल से आपके आधीन में होने का भी प्रचार करते हैं।

कुम्भकोणमठ प्रचारकों का कहना है कि 'कामकोटि' शब्द 'कामकोट्टम्' या 'कामगोष्टम्' से आया है और यह पद कामाक्षी कोट्टम् का दूसरा नाम है। अर्थात् कांची नगर का वह भाग जहां मठ है। अतएव आपका प्रचार है कि कांची में मठ होना निश्चित होता है। कोट्टम या गोष्टम् का अर्थ है–देश या नगर का कुछ भाग। कुम्भकोण मठ का प्रचार–'For the name Kama-koti indicates that from the earliest times, the matha was situated near the Kamakshi temple.'–सो भूल है। आचार्य शङ्कर ललिता त्रिशती भाष्य में कामकोटि का अर्थ श्रीचक्र बतलाया है (षण्णवर्ता पीठेषु मध्ये कामकोटि: श्रीचक्र मित्यर्थः।')। ग्यारहवीं शताब्दी श्री राजेन्द्रचोळ I के समय से ही अलग देवी मन्दिर बनने लगे थे जिसे 'तिरुकामकोट्टम्' कहा जाता था। बारहवीं शताब्दी में ऐसे मन्दिरों को कामकोट्टम् कहा गया था। श्री अप्पर ने 'कामकोडि' पद का उपयोग किया है अर्थात् कामलता (पुराण का उमादेवी की कथा)। कामकोडि पद का उपयोग 'कामाक्षी' या 'कामकन्नी' के बदले किया गया है। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कामकोटि पद का अर्थ 'मठ जो कामाक्षी मन्दिर समीप है' जैसा कि कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं वह अर्थ ठीक नहीं है पर यह देवी का नाम ही है। कांची में मैं ने सुना कि कांची कामाक्षी मन्दिर के सामने की कामाक्षी सन्निधि वीथी में एक मकान है जो स्थानीकर श्री वांचीनाथ शास्त्री का था और आपकी बहू ने इस मकान को दान में कुम्भकोण मठ को दिया है। यह चार या पांच साल पूर्व ही दिया गया था। कुम्भकोण मठ का अन्य कोई मठ या मकान इस दान प्राप्त मकान के अलावा नहीं है। किसी समय में भी कांची कुम्भकोण मठ का मठ कामाक्षी मन्दिर समीप न था। सम्भवतः कुछ वर्षों के पश्चात् यह मकान जो अब दान में मिला है वही पुराकाल का मठ होने का प्रचार भी कर सकते हैं। कामाक्षी मन्दिर समीप खुली जमीन है जहां प्राचीन काल का मकान व मन्दिर का कुछ शिथिल भग्नावस्था भाग अब भी दीख पडता है। इसके अलावा कामाक्षी मन्दिर समीप और कोई मकान नहीं है। यह सुना जाता है कि कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर (स्वर्गीय) नीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्री ने अपना मकान व विनायक मन्दिर और एक छः खम्भा मन्डप श्रीकामाक्षी को दान दिया था और जब जनवरी माह 1843 ई० में प्रथमबार कुम्भकोण मठाधीश को ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार ने कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियोजन किया था तब आपने इन मकान व मन्दिर को भी अपना बना लिया था। इस मकान पर कुछ मुकद्दमा भी चला। यह उक्त मकान व मन्दिर कामाक्षी मन्दिर समीप व काली मन्दिर एवं कुमरकोट्टम के पीछे तथा तटाक के बगल में है। जनवरी 1843 में कुम्भकोण मठाधीश कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी बने और 5-2-1843 ई० में कुम्भकोणमठ का एक वेंकटसुब्बा शास्त्री ने एक रुपये स्टाम्प कागज पर श्रीनीलकण्ठ अरुणाचल शास्त्री को एवं उनके सन्तती को ऊपर कहे विनायक मन्दिर की पूजा सेवा के लिये कामाक्षी मन्दिर के आय से चार फी सदी दी जायगी ऐसा पत्र लिखकर दिया था। चूंकि शास्त्री जी ने अपनी सारा संपत्ती को कामाक्षी मन्दिर के लिये दे दिया था और चूंकि कुम्भकोण मठाधीश जनवरी 1843 ई० में प्रथम बार

मन्दिर का निर्वाह अपने हाथ में लिया था इसलिये यह प्रबन्ध पूजासेवादि के लिये किया गया था। यह सब विवरण देने का यही उद्देश्य है कि कामाक्षी मन्दिर समीप में कोई मकान या मठ कुम्भकोण मठ का नहीं है और जो कुछ आसपास की जमीन थी वह भी आपको अर्वाचीन काल में मन्दिर द्वारा प्राप्त हुआ था।

विष्णु कांची का मठ जो वरदराज मन्दिर के पश्चिम भाग में है और जिसका म्युनिसिपल दर्वाजा नम्बर 8 A और B एवं 9, A, B, C है और अब यह आनैकट्टि वीथि में है। इसका टाउन सर्वे नम्बर (1912 ई०) 1047, 1047/1, 1044, 1044/1, एवं 1044/2 है। पुराना सर्वे नम्बर 620-4/Y है। यह मकान शंकराचार्य के नाम पर है। मैं ने एक रिकार्ड में देखा था कि यह जमीन प्राचीन काल में 'गवरमेन्ट पुरम्बोक्कु जमीन' था और इस जमीन को 'विलेज साइट' भी कहा गया है। अर्थात् प्राचीन काल में इस जमीन का कोई पट्टेदार न था और राज्य सरकार के आधीन में था। पश्चात् सरकार ने इस जमीन को टुकडों में विभाजित कर निवास के लिये आम पबलिक को बेचा गया था जिसे 'विलेज साइट' कहते हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन काल में यह जमीन जहां अब मठ है सो कांची मठ का न था और अर्वाचीन काल में प्राप्त किया गया था। रिकार्ड का विवरण—'Ward No. I; Revised survey No. and Sub-division-1025/1 to 1048; Old survey No. 620-4/Y; Government Purrambokku land; Extent 1-82; Assessment-Nil; Registry—Village site.' कुम्भकोण मठ का कथन है कि विष्णु कांची का मठ 1111 ई० या 1291 ई० के पूर्व का ही है (ताम्रपत्र शासनानुसार) सो कथन असत्य दीख पडता है। कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तक (1957 ई० में प्रकाशित) में लिखा है कि यह वास स्थल मकान है और मठ रूप में दीखता नहीं है–'The appearance of the Mutt may be disappointing for it is a very small building, more like a house and with no pretentions of any kind.'

शिव कांची साले वीथी में नम्बर एक मकान ही वर्तमान कांची मठ है और यही आपका केन्द्र है। इसका टाउन सर्वे नम्बर (1912 ई०) 2377 है और प्राचीन सर्वे नं० 925 है। 1876 ई० में प्रकाशित 'शांकरमठतत्त्वप्रकाशिका' पुस्तक में लिखा है कि आज से 40 या 50 वर्ष पूर्व कुम्भकोण मठ ने इस मकान को खरीदकर मठ बनाया था और पूर्व काल में यह मकान एक अब्राह्मण का था। एक पुराने रिकार्ड में उल्लेख है–'Ward No. IV; Revised survey No. and sub-division—2377; old survey No. 925; Inam dry lands; extent 0-01 cent; Assessment 0-1; Registry–Manager Sankaracharya Mattam.' यह इनाम सूखी जमीन थी और केवल एक सेन्ट (100 सेन्ट जमीन–4840 वर्ग गज) शंकराचार्य के नाम पर है। क्या एक सेन्ट जमीन पर मठ निर्माण किया जा सकता है? बाकी जमीन का विवरण यहां पाया नहीं जाता है। मैं ने मदरास सरकार को लिख कर पूछा था कि आप पुराना सेटलमेन्ट रजिस्टर या पैमायिष रजिस्टर से इस जमीन के पट्टादार का नाम लिख भेजें। उत्तर पत्र 23—12—1960 का प्राप्त हुआ और सरकार लिखते हैं कि पुराना सेटलमेन्ट रजिस्टर व पैमायिष रेजिस्टर आपके यहां उपलब्ध नहीं है या न मदरास रिकार्ड आफीस में। चाहे जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह साले वीथि का मठ भी अर्वाचीन काल में निर्माणित मठ है।

तिरुचि जिला में तिरुवानकावल में एक मठ है जो अनादि काल से कुम्भकोण मठ के आधीन में होने का प्रचार करते हैं. मैं ने पुरातत्त्वविभाग के रिकार्डों की खोज किया। कुलोत्तुङ्ग I (1088 ई०) का राज्य शासन

काल के सोलहवें वर्ष में कुछ शासन पत्र तिरुवानैकावल से प्राप्त होता है जिससे यह प्रतीत होता है कि 'नारपत्तेण्णायरम् मठ' जो श्री 'अवुडैयान सोलकन' द्वारा निर्माणित था सो मन्दिर की उत्तर तरफ था। 'नारपत्तेण्णायरम' ही को 'तिरुज्ञानसम्बन्दर मठ' भी कहा जाता है। यहां का मठ पाशुपत आचार्य श्री नमशिवाय देवर के परम्परा व शिष्य भक्तों का मठ है। 'पोन्वसिकोन्डान' में यह जो मठ है उसका दूसरा नाम भी 'तिरुज्ञानसम्बन्दर' है। और पता चला कि तेरहवीं शताब्दी से तिरुवानकावल में अनेक शैवमठ थे जिनमें एक सङ्गमदेवमठ था जो मन्दिर के समीप था। इसके अलावा दूसरा एक मठ जो लक्षाध्यायी गोलकी सन्तान का विश्वेश्वर शिवाचार्य मठ था। श्री सद्भव शम्भू ने इसे स्थापन किया था। यह मठ परम्परा बहु काल चलती हुई आयी। लगभग 1240 ई० में तिरुज्ञानसम्बन्दर मठ में एक ही परम्परा के दो वंशावली आचार्य दो मठ में रहते थे-(1) 'अखिलनायकीतिरुमठम'. (2) 'नडुविलमठम्'। पुदुकोट्टै राज्य शासन नं० 196, 1240 ई० में, इस उक्त मठ का उल्लेख है—'तिरुवानैक्का लक्षाध्यायी गोलक भिक्षा मठम्'। होयसला राजा श्री रामनाथ (1258/59 ई०) ने श्री स्वामीदेव शिवाचार्य के शिष्य श्री तत्पुरुष शिवाचार्य को ('शैवसिद्धान्त विख्यात') एक मठ निर्माण कराकर दान दिया था। राजा ने इस मठ को जमीन भी दान में दिया है (शासन नं० 125 वार्षिक रिपोर्ट 37/38 ई०)। 1506 ई० से इस मठ परम्परा में एक विलक्षण पाया जाता है। परम्परा में यदि सन्यासी दीक्षा लेकर परम्परा चलाने के लिये कोई न मिले तो गृहस्थ को इस मठ का मठाधीश बनाया जा सकता है ऐसा उल्लेख है शासन नं० 135 में (1936/37 ई०)। इस शासन में विवरण भी दिया है। यहां यह भी उल्लेख है कि पाशुपत मत का सन्यासी न मिले तो किसी ब्राह्मण को नियोजन किया जाय चाहे वह गृहस्थ भी हो। एक विद्वान गृहस्थ 'चन्द्रशेखर गुरु' को पाशुपत लक्षाध्यायी सम्प्रदाय के मठ में मन्दिर पूजा सेवादि कार्य के लिये आपको मठ का निर्वाहक रूप में नियोजित किया गया था। आपके पश्चात् इस मठ में सब गृहस्थ ही परम्परा में आते थे। श्री चन्द्रशेखर गुरु का निर्याण 1605 ई० में हुआ और शासन पत्र नं. 130 of 1936/37 में 1714 ई० तक इस मठ के महन्तों का नाम दिया है। इस प्रकार आखिलान्डेश्वरी मन्दिर के पुजारी इस मठ में 18 वी शताब्दी तक वास करने लगे। यह मठ प्रथमतः शैवाचार्यों का था पश्चात् गृहस्थ मठाधीश बने और कुछ समय बाद ब्राह्मण गृहस्थों के हाथ में आया। अब इसी मठ को कुम्भकोण मठ अपना प्राचीन मठ कहकर प्रचार करते हैं। कुम्भकोण मठ एक ताम्रशासन का प्रचार कर कहते हैं कि उक्त मठ में ही आपके परम्परा एक मठाधीश 1708 ई० में रहते थे और आपको यहां दान प्राप्त हुआ था। यह असत्य प्रचार है क्यों कि शासन नं. 130 of 1936/37 में उक्त मठ के महन्तों का नाम 1714 ई० तक का दिया है और आप सब शैव आचार्य थे। 1708 ई० में उक्त मठ कुम्भकोण मठ के अधीन में न था।

कांची में और एक स्वतंत्र मठ है जिसे 'उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र मठ' कहते हैं और इस मठ का इतिहास लगभग 300 वर्षों का है। 1378 ई० के शिलाशासन से प्रतीत होता है कि विष्णु कांची में 'वेदमठ' था जो अब कहीं दीखता नहीं है। इन्डियन एपिग्राफी 1954/55 व 55/56 से प्रतीत होता है कि कांची में कुछ महान यति मठ में वास करते थे। शैवमत का ज्ञानप्रकाश मठ भी है। जब तक प्रमाणयुक्त रिकार्डों द्वारा कुम्भकोण मठ यह सिद्ध न कर सके कि आपका कांची मठ अनादि काल से आपके निर्वाह में आ रहा है जैसा कि अन्य चार आम्नाय मठ दिखाते हैं तब तक यही कहा जायगा कि कांचीमठ अर्वाचीन काल में स्थापित मठ है।

(ज) कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि कांची में मण्डनमिश्र अग्रहार है जो सुरेश्वराचार्य का कांची में वास करने का संकेत करता है। कांची में श्री कच्पेश्वर मन्दिर है और इस मन्दिर के 'माड वीथी' को केवल कुम्भकोण मठ मण्डन मिश्र अग्रहारम होने की कल्पित कथा सुनाते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में उक्त माड वीथी में शबैय्यार वडमा वर्ग के ब्राह्मण जिनका पेशा पौरोहित्य था, यहां वास करते थे। इनमें से कुछ पुरोहितों को

कामाक्षी मन्दिर के ' नित्यवासि ' का अधिकार भी था। कुम्भकोण मठ का कथन है कि ये सब पुरोहित मन्डनमिश्र की परम्परा के हैं। प्राचीन प्रामाणिक पुस्तकों से एवं प्राचीन रिकार्डों से सिद्ध होता है कि कांची मठ अर्वाचीन काल में प्रतिष्ठित है और आपको कांची में ' नवागन्तुक ' एवं कांची से ' अपरिचित ' भी होने का सिद्ध होता है। अर्थात् प्रथम बार कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर 5—11—1842 में ईस्ट इन्डिया कम्पनी सरकार ने आपको नियोजित किया और पश्चात् ही आपने इन शवैय्यार वडमा वर्ग ब्राह्मणों के साथ अपना सम्बन्ध जोडकर उक्त काल्पनिक कथा का प्रचार किया होगा। मण्डन विश्वरूप मिश्र गौड ब्राह्मण एवं शुक्ल यजुर्वेदी थे और माड वीथी वासी पुरोहित वर्ग सब द्राविड तामिल शवैय्यार वडमा वर्ग ब्राह्मण एवं कृष्णयजुर्वेदी थे। मैं ने यहां वृद्ध श्रेष्ठों से मण्डनमिश्र अग्रहार का परिचय पूछा तो सब के सब इस नाम से अपरिचित हैं। यह नाम कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में एवं उनके काल्पनिक जगतमें ही पाया जाता है और अन्यत्र नहीं। यहां मैं ने श्रीसुरेश्वराचार्य का न धृन्दावन या न बगीचा या न समाधि या न मन्दिर देखा और कुम्भकोण मठ प्रचार पुस्तकों में दिये हुए विवरण सब मिथ्या है। मैं कांची म्युनिसिपल आफीस भी गया था और वहां भी प्राचीन रिकार्डों की खोज की तो पता चला कि कांची में मण्डनमिश्र अग्रहारम का नामो निशान नहीं है। कांची नगरवासी इस नाम को सुना भी नहीं है। यहां ' पुण्यरस ' का नामो निशान नहीं है।

(झ) कांची मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर के काल से कामाक्षी मन्दिर जो कांची मठ का कामकोटि पीठ है सो आपके आधीन में है एवं पूजा सेवादि कार्य आपके प्रबन्ध व परिचालन में होता हुआ चला आ रहा है। यह प्रचार मिथ्या है।

दक्षिण भारत में ग्यारहवीं शताब्दी से ही अलग देवी (अम्मन) मन्दिर बनने लगा था जिसे तिरुक्कामकोट्टम कहा जाता था ('The term Kottam in the latter silpa works denotes a rectangular shrine with a wagon top or S' ala roof which is invariably a feature of Devi shrines-' M. U. Journal Vol. XXXII-1960) और ऐसे मन्दिर शिव व विष्णु मन्दिरों के साथ निर्माण किये गये थे या पूर्व स्थित मन्दिरों के साथ जोडे गये थे। श्री राजेन्द्रचोळ I के समय से ही यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी। मूर्तियां सातवीं शताब्दी के पूर्व प्रायः सब काष्ठ का ही बनता था। सातवीं शताब्दी से ही शिला मूर्तियां बनने लगे। पुराकाल में दक्षिण भारत में ' कल एडुप्पु ' का तात्पर्य मरण होने से पत्थर मूर्तियां भी अमङ्गल समझा जाता था और शिला मूर्तियां नहीं बनते थे। अन्य मतावलम्बियों का प्रभाव द्वारा यह विचार भी सातवीं शताब्दी से परिवर्तन होगया और अब पत्थर मूर्तियां बनने लगी। देवी मन्दिर का नाम कामकोट्टम था। दक्षिण भारत के तीन माननीय नायनमारों ने—श्री अप्पर (तेवारम 6285), श्री सुन्दर (तेवारम 7271), श्री सम्बन्दर (तेवारम 1855)—कामकोट्टम का उल्लेख किया है। कांची का यह शक्ति पीठ आचार्य शङ्कर के पूर्व काल का ही पीठ है। आचार्य शङ्कर ने इस कांची मन्दिर का जीर्णोद्धार करके श्रीचक्र का पुनः प्रतिष्ठा करने से ही इस मन्दिर की ख्याती बढ गयी थी। नेल्लूर जिला गोंटलगट्ट शिलालेख नं 16 (जिसका काल मालूम नहीं पडता है) में कांची कामकोटि का उल्लेख है। कर्नूल जिला त्रिपुरान्तकम् का एक और लेखन 1259 ई॰ का है जिसमें ' कामकोट्याम्बिका ' के एक भक्त का भी नाम उल्लेख है। कांची कामाक्षी मन्दिर का शिलालेखन चौदहवीं शताब्दी का ही अब तक मिले हैं। सेलम जिला धर्मपुरी का कामाक्षी मन्दिर का काल ग्यारहवीं शताब्दी का निश्चित होता है, इसलिये कांची का कामाक्षी मन्दिर का काल अवश्य ही धर्मपुरी मन्दिर के काल के पूर्व का ही होना निश्चित होता है। कामाक्षी मन्दिर का श्रीचक्र अर्धगर्भगृह में है न कि मूलविग्रह कामाक्षी के समीप गर्भगृह में जैसा कि आगम शास्त्रानुसार होना चाहिये था। अर्धगर्भगृह वह स्थान है जहां से पूजापाठ किया जाता है। सोलहवीं शताब्दी

में वेल्लूर के लिङ्गभूपन लिङ्गप्पा नायक के काल में एक महान् 'तन्दमंजी शलमणि' श्री नरसिंहाध्वरी थे जो यागादि पुण्य कर्म करते थे। आपने कांची कामाक्षी मन्दिर में कामकोटि श्रीचक्र की प्रतिष्ठा की थी (शिलालेखन नं 349-54/55)। प्रस्तुत कामाक्षी मन्दिर का श्रीचक्र सोलहवीं शताब्दी का ही है। कामाक्षी मन्दिर के पूर्व व पश्चिम द्वार समीप एक मूर्ति शिला पर खुदा है जिसे कुम्भकोण मठ आचार्य शङ्कर की मूर्ति होने का प्रचार करते हैं सो प्रचार भी मिथ्या है। इन्डियन एपिग्राफी 55/56ई० में दिये विवरण से सिद्ध होता है कि उक्त मूर्ति एक 'कामाक्षीश्वर भारती श्री पादङ्गळ' का ही है। कुम्भकोण मठ का इन्द्रसरस्वती यहां उल्लेख नहीं है ताकि कुम्भकोण मठ कल्पना कर अपना सम्बन्ध जोड सकें। दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ का योगपट्टों में एक अङ्कितनाम 'भारती' है। यह निस्सन्देह कहा नहीं जा सकता है कि वर्तमान कांची कामाक्षी मन्दिर प्रथमतः कामकोटि पीठ था। कांची का 'आदिपीठ परमेश्वरी' मन्दिर ही कामकोटि (श्रीचक्र) पीठ रहा हो। परमेश्वरवर्मन I ने प्रथम बार पत्थरों का मन्दिर निर्माण कराया था और राजसिंह ने इस कला की वृद्धी की थी। आपका मन्दिर निर्माण महाबलिपुरम्, कांची, पनमलै आदि स्थलों में मशहूर है।

चौदहवीं शताब्दी के शिलाशासन व उपलब्ध होने वाले अन्य प्रमाणों द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कांची कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह व परिचालन 'स्थानत्तार' (स्थानीकरधर्मकर्ता) का वर्ग करता था और यह वर्ग कामाक्षी मन्दिर की संपत्ति के ट्रस्टी एवं संचालक थे। श्री अच्युतराय (1542 ई०), श्रीसदाशिवराय (1543 ई०), श्रीकम्पन्ना(16 वीं शताब्दी), श्रीरङ्गराय (1584 ई०), श्री कृष्णदेवराय आदि कुछ व्यक्तियों द्वारा दिये हुए शासनों से भी उक्त कथन की पुष्टी ही होती है। दानदाताओं ने 'स्थानत्तार' को ही धर्मकर्ता माना है। कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह 'स्थलत्तार व स्थानीकर' (धर्मकर्ता) के हाथ में ही था (दक्षिण भारत एपिग्राफी—वार्षिक रिपोर्ट-1954/55 नं 321, 322, 327, 331, 335, 341, 342, 344 etc.,और दक्षिण भारत मन्दिर शासन-चिङ्गलपेट जिला)। एक व्यापारी ने इस कामाक्षी मन्दिर के एक स्थलत्तार धर्मकर्ता को सम्मानित कर अपना गुरु स्वीकार किया है। इन सब रिकार्डों में कहीं भी कांची मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता या मालिक नहीं कहा है। श्री चार्लस स्टुवर्ट कोल अपने से प्रकाशित चिङ्गलपेट मानुवल में कहते हैं (1876 ई०) कि इस मन्दिर का परिचालन हिन्दू राजाओं ने अपने हाथ में लिया था और वे मन्दिर के रक्षक थे। इस कार्य को कुछ अंश में कुछ मुसलमान राजाओं ने भी किया था और पश्चात् ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया था। 1817 ई० के धारा के अनुसार सब मन्दिरों का संचालन बोर्ड आफ रेवन्यू को दिया गया था और जिला कलक्टरों ने उक्त धारा के अनुसार संचालक बन गये थे। इस समय कांची मठाधीश कहां थे? क्या यथार्थ में मन्दिर का निर्वाह आपके हाथ में था?

उदयारपालयम जमीन्दार श्रीमुत्तु विजयरङ्गप्पा उडयार ने एक ताम्र शासन पत्र 30—8—1784 के दिन, श्री बङ्गारय्या के पोता, शेषय्यर के पुत्र श्री दक्षिणामूर्ति (कौशिक गोत्र, बोधायन सूत्र, यजुशाखा) जो कांची कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता थे, आपको भूदान दिया है। इस भूमि के वार्षिक आय से कांची कामाक्षी मन्दिर की पूजा सेवा एवं 'अर्धयामपूजा' के खर्च के लिये उपयोग किया जाय, ऐसा उल्लेख है। क्या उदयारपालयम के जमीन्दार यह नहीं जानते थे कि (1784 ई० में)कांची कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता कौन हैं? क्यों आपने कुम्भकोण मठाधीश को यह दान नहीं दिया? प्राचीन रिकार्डों से मालूम होता है कि उदयारपालयम के जमीन्दार ने कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ता एवं अन्य ब्राह्मण जो स्वर्णकामाक्षी को कांची से उदयारपालयम लाये थे उन सबों को पुरस्कार भी दिया था। उक्त दक्षिणामूर्ति शास्त्री के दो पुत्र थे—श्री रामस्वामी शास्त्री व श्री अय्या शास्त्री। आप दोनों ने 5—11—1830 ई० में कुटुम्ब संपत्ति का विभाग शासन किया था और इस शासन से प्रतीत होता है कि आपके पूर्वज परम्परागत कामाक्षी

मन्दिर के धर्मकर्ता थे। श्री अय्या शास्त्री कामाक्षी स्वर्ण प्रतिमा की पूजा सेवादि के लिये तंजौर चले गये थे और रामस्वामी कांची लौट आये। कामाक्षी मन्दिर के एक शिला शासन में तिरुवेगम भट्टर का नाम उल्लेख है और आप बङ्गारय्या के पूर्वज थे। अन्यत्र उपलब्ध शिलाशासन में श्री चिन्तामणि भट्टर का नाम भी उल्लेख है और आप तिरुवेगम भट्टर के वशंज थे। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 16 वीं से 18 वीं शताब्दी में कांची मठ का सम्बन्ध इस मन्दिर के साथ न था।

ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार ने अपने से घोषित "रेगुलेषन सात ई० 1817 मदरास" धारा के अनुसार दान दिया धर्मस्व संपत्ति व मन्दिरों का संचालन व रक्षा अधिकार अपने हाथों में लेकर बोर्ड-आफ़-रेवन्यू को यह कार्य सुपुर्द कर दिया था। दक्षिण भारत के जिला कलक्टरों ने इस धारा के अनुसार मन्दिरों का संचालन अधिकार अपने अपने हाथों में ले लिया था। कांची का कामाक्षी मन्दिर व अन्य मन्दिरों का संचालन कार्य चिंगलपेट कलक्टर के आधीन में था। इसी प्रकार 'रेगुलेषन 19—1810—बंगाल' एवं 'रेगुलेषन 17—1827—बम्बई' सीमाओं के लिये भी घोषित किया गया था। लार्ड एलनबरा ने सोमनाथ मन्दिर का दर्वाजा जो उस समय गज़नी में था जब लौटा लाया तब इस विषय पर बहस ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में हुई और तब यह निश्चय हुआ कि सरकार धार्मिक विषयों पर हस्तक्षेप न करें। इसी बहस का फलाभून भारत में 1841/42 ई से बोर्ड-आफ-रेवन्यू को कहा गया कि मन्दिरों का संचालन कार्य छोड दें और मन्दिरों के लिये ट्रस्टी या संचालक बोर्ड का नियोजन करें। यद्यपि 1817 ई० का रेगुलेषन सात रद नहीं किया गया था तथापि इस धारा के अनुसार कारवाईयां नहीं की गयी। 1863 ई० का एक्ट 20 के अनुसार सरकार ने मन्दिर निर्वाह अधिकार कार्य छोड दिया। 1842 ई० से लेकर 1863 ई० तक दक्षिण भारत के मन्दिरों में जितने ट्रस्टी नियोजन किये गये थे उनमें अधिकतर ट्रस्टी परम्परा प्राप्त या कुटुम्ब पीढी प्राप्त ट्रस्टी न थे और अर्वाचीन काल में ही व्यक्तिगतरूप में ट्रस्टी चुने गये थे। ऐसे नवीन नियोजित ट्रस्टी सब पश्चात काल में परम्परा प्राप्त या कुटुम्ब पीढ़ी प्राप्त ट्रस्टी होने की मिथ्या घोषणा भी की और एक्ट 20 ने उनको वैसा ही स्वीकार भी किया था। एक्ट 20 का यही दोष व कमी थी कि अनधिकारियों को परम्परा अधिकारी बना दिया था। कुम्भकोण नगर के "कुम्भकोणम् शङ्करा–चारियार" को प्रथम बार व्यक्तिगत रूप में नवीन ट्रस्टी पदवी पर कांची कामाक्षी मन्दिर संचालन के लिये 5—11—1842 ई० में नियोजित किया गया था। पश्चात् आपने इस नवीन प्राप्त ट्रस्टी पदवी को परम्परा प्राप्त होने का घोषणा भी कर दी थी। इस विषय की पुष्टी के लिये हिन्दू धर्मस्व आयोग के प्रतिवेदन से कुछ पंक्तिया उद्धृत करता हूं—'It (Act 20 of 1863) made no provision for the exercise of supervision over an important and large class of temples of which the trustees, though not originally hereditary, became hereditary between the years 1842 to 1863. Such trustees were treated as if all temples had been under the management of the hereditary trustees from the very commencement.'

चिङ्गलपेट कलक्टर ने कांचीपुर तहसीलदार श्री श्रीनिवासराव को एक पत्र ता: 29—7—1841 का भेजा था जिससे प्रतीत होता है कि इन दिनों में कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह सरकार के हाथ में था न कि कांची मठ। इस पत्र में उल्लेख है कि चूंकि सरकार ने मन्दिरों पर अपना निर्वाह अधिकार को छोड देने का निश्चय किया है और निर्वाह के लिये नवीन व्यक्ति का नियोजन करना चाहते हैं, इसलिये कांची के तीन मन्दिरों के स्थानीकरों व स्थलत्तारों से इस विषय पर जांच शुरू कर दिया जाय। यदि कांचीमठ के अधीन में यह मन्दिर होता तो कलक्टर को यह पत्र लिखने की कोई आवश्यकता न थी। चिङ्गलपेट कलक्टर का पत्र नं 20, एवं रेफरन्स नं 37A/37B, ता: 3-3-1842,

में कलक्टर लिखते हैं कि मन्दिर का परिचालन कब व किन कारणों से सरकार के हाथ आया सो आपको मालूम नहीं पड़ता है—'The time and cause of the Pagoda (Camatchy Umman) having been brought under circar management are not known.' इसके पूर्व काल में या किसी समय में भी यह मन्दिर यदि कांची मठ के आधीन में होता तो कलक्टर इस विषय को भी उल्लेख करते।

कांची मठाधीश ने एक अर्जी पेश की कि आपको कामाक्षी मन्दिर की ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त किया जाय। चिंगलपट कलक्टर ए.फ्रीज़ ने वरदराज मन्दिर एवं एकाम्रनाथ मन्दिर के पुराने धर्मकर्ताओं के हाथ उस उस मन्दिर का निर्वाह सौंप दिया और कामाक्षी मन्दिर के लिये 'कुम्भकोणम् शङ्कराचार्य' को नियोजित किया। कलक्टर ए. फ्रीज़ ने कांची तहसीलदार श्रीनिवासराव को एक ताकीद ताः 5—11—1842 का, बुक नं 42, ताकीद नं 28, भेजा था जिसमें कुम्भकोण शङ्कराचार्य को कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी पदवी पर नियोजित करने की आज्ञा दी थी। उक्त पत्र में लिखा था कि जब मन्दिर का ट्रस्टी को निर्वाह कार्य सौंपा जाय तब इस नवीन ट्रस्टी का स्वीकृति हस्ताक्षर के साथ मन्दिर का स्थलत्तारों का भी स्वीकृति हस्ताक्षर प्राप्त किया जाय। कामाक्षी मन्दिर के धर्मकर्ताओं से मदरास राज्यपाल को एक अर्जी 16—12—1842 का भेजा गया था और इसमें उल्लेख है—'.... .... and without due enquiry wrote to the Revenue Board and one Sankaracharíar was appointed to take the management—this individual is in no way connected with this church, is an entire stranger to the country, an inhabitant of Cumbaconam in the Tanjore zillah ... . and has nothing to recommend him but his wealth ...." कांची मठाधीश को कांचा का "नवागन्तुक" एवं "अपरिचित" होने का उल्लेख है। अन्यत्र उपलब्ध रिकार्डों द्वारा प्रतीत होता है कि एक श्रं. नीलकण्ठ रायर जो हेडशिरसदार थे एवं श्री नारायण अय्यर जो नायब शिरस्तदार थे, ये दोनों व्यक्ति तथा कांची तहसीलदार श्री श्रीनिवासराव आदियों ने कांची मठ के अर्जी पर अपनी अपनी सहायता प्रदान कर मदरास दफ्तर द्वारा शिफारिस कराकर कुम्भकोण मठाधीश को ट्रस्टी पदवी पर नियोजित करा दिया था। उक्त पत्र का उत्तर 19—4—1843 को प्राप्त हुआ था जिसमें कहा गया है कि चिंगलपेट कलक्टर ने बोर्ड आफ रेवन्यू को अर्जी में दिये हुए कई विषय उल्लेख नहीं किया है—"It does not appear from the papers relative to the Religious Institutions in Chingleput, that the subject matter referred in the petition was even specially brought to the notice of the Board of Revenue by the Collector." इन सब कर्तूतों का तात्पर्य पाठकगण स्वयं जान लें। बोर्ड आफ रेवन्यू पत्र नं 24, 1842 ई० में लिखा है—'Claiming to be appointed Dharmakartas of the Pagoda which they held before it was assumed by circar' और 17—2—1842 को आज्ञा देते हैं—'the petition should be addressed to the Collector of Chingleput.' पर कलक्टर ने कुम्भकोण मठाधीश को ट्रस्टी पदवी पर नियुक्त कर दिया था। कुम्भकोण मठाधीश एवं मदरास राज्य के बीच में जूलै 1841 ई० से अक्टोबर 1842 तक क्या क्या घटनायें घटी, क्या क्या पत्र व्यवहार हुए, क्या षड्यंत्र रचा गया था सो सब का विवरण रिकार्डों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

कांची के तहसीलदार श्री श्रीनिवास राव अपने पत्र नं 76 ताः 18—2—1839 में कलक्टर ए. फ्रीज़ को लिखते हैं कि कुम्भकोण के स्वामी कुम्भकोण से कांची आ रहे हैं और आप कामाक्षी मन्दिर का कुम्भाभिषेक करने वाले हैं और आप 10,000 रु० का खर्च बजट बनाया है जिसमें से कुछ खर्च सरकारी ट्रेजरी से दिया जायगा। यदि

कामाक्षी मन्दिर आपके आधीन होता तो क्यों आप मन्दिर मूर्ति का कुम्भाभिषेक के लिये सरकार से अनुमति मांगते हैं ? उक्त तहसीलदार का पत्र ता: 18—2—39 के उत्तर में कलक्टर फ्रीस अपने पत्र नं 97 ता: 25—2—1839 में लिखते हैं कि सरकार 5000 रू० दे नहीं सकता है और इसके बदले 3500 रू० ही दिया जायगा। जब कुम्भकोण मठाधीश को कम्पनी सरकार ने 'कुम्भकोणम् शङ्करा-चारियार' के नाम से ही संबोधित किया था तो क्यों उस समय सरकार से आप इस विषय पर आक्षेप न किया था और क्यों नहीं साबित किया कि आप 'कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य' हैं ? कलक्टर फ्रीज का पत्र नं 119 ता: 25—4—1839 में कुम्भकोण स्वामी जीके कांची आने पर आपको जो मर्य्यादा दिखानी होगी उसका विवरण दिया है। यह पत्र तहसीलदार श्रीनिवास राव का प्रार्थना पत्र नं 95 ता: 17—4—1839 के उत्तर रूप में कलक्टर ने लिखा है। क्यों अपने केन्द्र स्थान कांची आते समय भी आपके मर्य्यादा आदि करने के लिये स्वयं अन्यों से प्रार्थना करके प्रबन्ध करने की नौबत आपको आयी थी ? पश्चात् कुम्भाभिषेक समाप्त कर शालीशक 1761 में एक शिला शासन भी मन्दिर में गाड दिया था ताकि आगामी काल में प्रमाण में दिखाया जाय। उक्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित होता है कि कुम्भकोण मठाधीश का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर से अर्वाचीन काल का ही था और मठ का प्रचार असत्य है।

कुम्भकोण मठाधीश को कामाक्षी मन्दिर का ट्रस्टी नियोजन करते समय एक सनद दिया गया था जिसका प्रारम्भिक वाक्य यों है-'You are hereby appointed Dharmakarta or Trustee for the superintendence of the Camatchy Umman Pagoda which office you shall hold for life or so long as you may de desirous, if from which you shall not be removed except by the sentence of a Court of Justice.' कामाक्षी मन्दिर रिकार्डों से प्रतीत होता है कि इस मन्दिर में सात वर्ग की परम्परा कार्यदर्शी थे और यहां भी कांची मठ का नाम नहीं है—(1) अर्चक-कार्य: मन्दिर निर्वाह, पूजा, दिन में मन्दिर निगरानी, नैवेद्य व पकवान तैय्यार करना, तिरुमञ्जन, स्वयंपाकी, निर्सन्दी, आदि। (2) पुरोहित (3) मालैकट्टि (4) वेळान्—(जमाबन्दी, हिसाब किताब लिखना) (5) निमन्दन् (पालकी उठाना, रात निगरानी, मन्डप व पन्डाल तैय्यार करना) (6) मेळम् (गवैया, ढोल बजाना) (7) दासी (गान व नृत्य)।

उक्त विवरण द्वारा प्रतीत होता है कि कुम्भकोण मठ ने कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की सहायता प्राप्त कर अपने प्रयत्नों द्वारा एवं आपके मठविषयक प्रचारों पर आधारित प्रथम बार कुछ स्थलों में आपने अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया एवं प्रथम बार सन्मान व आदर भी प्राप्त किया। यद्यपि आपने अपनी अर्जी पेश कर ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी सरकार से अनुमति प्राप्त कर कामाक्षी देवी की कुम्भाभिषेक 1839 ई० में किया था और अपनी अर्जी पेशकर कामाक्षी मन्दिर का धर्मकर्ता व ट्रस्टी पदवी भी 5—11—1842 को प्राप्त किया था तथापि प्रचार होता है कि प्राचीन काल से यह सब अधिकार आपको परम्परागत रूढी में चली आ रही है।

कुम्भकोण मठ के एक प्रचार पुस्तक श्री वेङ्कटेशम द्वारा रचित में उल्लेख है कि श्री सुदर्शन महादेवेन्द्र सरस्वती VII (1851–91 ई०) को पुदुकोट्टै राजा ने कुछ द्रव्य गुरु दक्षिणा रूप में अर्पण किया था। इसमें एक रहस्य है। सर शेषय्या शास्त्री जो व्यक्ति पुदुकोट्टै राज्य में प्रथम दिवान थे पश्चात् 'Dewan Regent' बने आपका राज्यनिर्वाह काल 1878-1894 ई० का था। कहा जाता है कि आप कुम्भकोण नगरवासी थे और आपका स्नेह व भक्ति आपके मठ के प्रति अत्यधिक था। यह स्वाभाविक ही है। आप दिवान ने पुदुकोट्टै राज्य में यह सब सन्मान व आदर भाव प्रथम बार आपके मठाधीश को दिलाया था। सर शेषय्या शास्त्री पुदुकोट्टै राज्य कार्यनिर्वाह छोड

चले जाने के पश्चात् भी आपने कुम्भकोण मठविषयक विषयों में स्नेह भाव दिखाया था और सहायता भी प्रदान किया था। आपका प्रभाव अधिक था। अद्वैतसभा कार्यों में आपने अपनी सहायता भी प्रदान किया था। पुदुकोट्टै राज्य में ऐसा कोई रिकार्ड श्री शेषय्या शास्त्री जी काल के पूर्व काल का प्राप्त नहीं होता जो कुम्भकोण मठ को दान या सन्मान प्रदान करने का उल्लेख करता हो। जो ताम्रशासन पुदुकोट्टै राज्य से प्राप्त होने का कथा सुनाया जा रहा है सो भी प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है कि यह सब प्रचार मिथ्या है ('श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक देखिये)। विख्यात प्रभावशाली एवं कृपाभाजन व्यक्तियों द्वारा सहायता प्राप्त कर ऐसे आदर, दान, सन्मान आदि भी प्रथम बार प्राप्त कर पश्चात् प्रचार होता है कि ये सब आदर, सन्मान, दान आदि आपको प्राचीन काल से परम्परागत आ रहा है। ये सब भ्रामक प्रचार हैं।

एक और दृष्टान्त यहां याद आ रही है। 1928 ई० में कुम्भकोण मठ ने मैसूर राज्य को एक अर्जी पेश की थी कि कुम्भकोण मठाधीश का जुलूस जब निकले आपको मैसूर राज्य सीमा में 'हाथी पर सप्तकलश अम्बारी' एवं 'अड्डपल्लाकि' ले जाने का अधिकार दिया जाय। मैसूर राज्य ने अपने पत्र क्रमाङ्क Pol-109-MF 351-27 dated July 27, 1928-में उक्त अर्जी को नामंजूर करते हुए कुम्भकोणमठ को अनुमति नहीं दी। उक्त दोनों सन्मान तथा 21 सलामी तोप केवल दक्षिणाम्नाय शृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज जी को ही है। यदि मैसूर राज्य से कुम्भकोण मठ का प्रार्थना स्वीकार किया गया होता तो अवश्य यह भी प्रचार होता कि यह सन्मान आपको प्राचीन काल से ही आ रहा है। जिस प्रकार कुम्भकोण मठाधीश जी ने उत्तर भारत यात्रा में स्वागत, अनुमोदन, प्रार्थना, प्रणति, व्यवस्था आदि पत्रों का संग्रह किया था ताकि आपके मठानुयायी आगामी काल में इन सब पत्रों को प्रमाण रूप में दिखायें, उसी प्रकार यह कार्य भी उक्त आयोजन के अन्तर्गत एक था।

स्वतंत्र नैपाल राज्य एवं स्वदेश तिरवाङ्कूर राज्य और कोचिन राज्य आदियों द्वारा कांची मठाधीश को आद्यशङ्कराचार्य जी का साक्षात् परम्परा एवं गुरु स्वीकार करने का जो प्रचार पुस्तकों द्वारा कुम्भकोण मठवाले करते हैं, वे सब भी मिथ्या प्रचार हैं। इसका विवरण तथा उन राज्यों से प्राप्त निराकरण पत्रों का विवरण पाठकगण इसी पुस्तक में आगे नं 45 के नीचे दिया हुआ पायेंगे।

कुछ प्रचार पुस्तकों में प्रचार किया गया है कि रामनाथपुरम राज्य ने न केवल कुम्भकोण मठाधीश को ही एकमात्र आद्यशङ्कराचार्य जी के अविच्छिन्न परम्परा होने का स्वीकार किया है पर आपको कांची शिरोमणि मठ का एकमात्र जगद्गुरु भी स्वीकार किया है। रामनाथपुरम राज्य का दिवान श्री एस. वि. राघवेन्द्र राव जी ने गुरुभक्तरत्न श्री एम्. आर. बालसुब्रह्मणिय अय्यर को एक पत्र ताः 28—1—1963 को लिखा है जिसमें से कुछ विषय नीचे उद्धरण किया जाता है ताकि पाठकगण यथार्थ विषय जान लें। दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य को आपने 'कुल गुरु' होने का स्वीकार किया है और यह भी उल्लेख है कि एक समय सारा रामनाथपुरम राज्य शृंगेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी के चरण कमलों में अर्पण किया गया था जिसे आपने स्वीकार कर पुनः राजा को लौटा दिया था। रामनाथपुरम राज्य का सम्बन्ध श्री शृंगेरी मठ के साथ जो था और है उसका भी विवरण इस पत्र में दिया गया है।

रामनाथपुरम राज्य से प्राप्त पत्र।

"The Sethupathis are regarded as demigods for several hundred years past and no pilgrimage to Rameswaram is held as complete without the pilgrim paying homage to Sethupathi in Ramanathapuram. The religious heads with their paraphernalia are received in a fitting manner

by the Sethupathis and are helped in all possible ways in the fulfilment of their pilgrimage to Rameswaram. Sree Saradha Peetam (Sringeri) has particularly very long connection with the Ramnad Samasthanam and Acharyas of Sringeri Mutt are regarded by Sethupathis as their 'Kula Guru.'

This gold Idol of Sri Raja Rajeswari installed at the palace temple at Ramanathapuram is stated to have been received from Vellore some 400 years back during the regime of Naicks. It is stated that the Deity was formerly known as Durga and Mahakali by name and that the form of Puja done was Vama Marga puja (involving animal sacrifice). When the Jagadguru Sri Sachidananda Sivabhinava Narasimha Bharathi Swamigal visited Ramanathapuram in the year 1894, Sri Bhaskara Sethupathi is stated to have approached His Holiness with the suggestion to alter the form of puja in view of the Ugra and ferocious aspect of the Deity. It is stated that the same thought was then simultaneously working in the mind of His Holiness also. Sri Bhaskara Sethupathi was informed by His Holiness that the final decision would be given the following day. That night special pujas and prayers were performed and it is stated that the Deity appeared in the dream of His Holiness first in the form of Mahakali and subsequently as Raja Rajeshwari and gave Her approval to the change. Accordingly, Sri Chakra was installed, the Ugra Kala of Sri Raja Rajeshwari Amman was withdrawn and the Vaidic form of puja was introduced in the temple to Sri Raja Rajeshwari Amman as Shanthamurthi from the following day. This greatly subdued the ferocious (ugra) aspect of Mahakali. The pujas continue to be performed in the temple now, according to the Vaidic rituals by archakas deputed by Sri Sringeri Mutt from time to time specially for this purpose.

To mark the occasion, Sri Sringeri Mutt Asthana Vidwan, Brahmasri Vaidyanatha Sastrigal praised Sri Raja Rajeshwari in five stotrams, one of which is reproduced below :—

पुराजमहिषामिषासवनिषेवणे लालसां इहाद्भुतमिदम्महन्महितपञ्चङ्ग्यप्रियाम् ।
महेश्वरविलासिनीं मुनिजनस्समुल्लासिनीं महात्रिपुरसुन्दरीं भजतराजराजेश्वरीम् ॥

The bungalow in which Sri Narasimha Bharathi Swamigal stayed and special poojas were performed by him and which was formerly

known as Colonel Bungalow, was since named as 'Sankara Vilas' from the day of the special puja.

His Holiness Sri Narasimha Bharathi Swamigal observed Vyasa Poojah and performed Navarathri pooja also in that year (1894) at Ramanathapuram. Bhaskara Sethupathi endowed Pullangudi etc. five villages to Sri Sringeri Mutt on this memorable occassion. After the establishment of the Vaidhica puja in the temple, Sri Bhaskara Sethupathi gave away the entire Samasthanam as a gift or daanam to His Holiness, as a token of the great veneration he had for His Holiness, who in turn handed it back to Raja Rajeswara Sethupathi Bhaskara, Sethupathi's son.

In the 1908 year, the Samasthanam building at Ramanathapuram near Nochivayal tank where religious Pathasalas were conducted, was given away as gift by Raja Rajeswara Sethupathi, making it possible for Sringeri Mutt to establish a branch at Ramanathapuram. The Sethupathis are greatly indebted to Sri Sharada Peetam Sringeri. The successive Acharyas who have been visiting Ramanathapuram and Rameswaram are received in a fitting manner and with great veneration and respect. The present Acharya Swamigal, Sri Abhinava Vidhyateertha Swamigal, was received at Ramanathapuram in an appropriate manner on the first occasion of the visit on 3—11—1957 and again on 14—11—1957 after return from Rameswaram when His Holiness was then taken out in a grand procession in the streets of Ramanathapuram."

(Sd.) M. V. Raghavendra Rao,
Dewan and Administrator.

उपर्युक्त दृष्टान्त के समान अनेक दृष्टान्त दिया जा सकता है। कुम्भकोण मठवाले अपनी मठ प्रतिष्ठा एवं प्रख्याती के प्रयत्न में क्या क्या नहीं कर सकते हैं।

(ऋ) कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि कांची सीमा में मुसलमान, अंग्रेज, फ्रेंच के बराबर आक्रमणों से कांची मठ कांची छोड चले गये और जाते समय कामाक्षी मन्दिर की स्वर्ण कामाक्षी को भी साथ लेते गये। आप प्रथम उदयारपालयम पहुंचे और वहां से राजा प्रताप सिंह के बुलावे पर तंजौर पहुंचे जहां स्वर्ण कामाक्षी अब भी है। कांची छोड जाने का समय भिन्न काल का प्रचार होता है, यथा—(1) कुम्भकोण मठ के मैनेजर श्री एन्. गणेश अय्यर कैम्प नागपट्टिनम् से अपने पत्र नं G. 1444/40-41 ता: 25—7—41 को श्री पि. एस. वि. शास्त्री जी को लिखते हैं—" During the uncertain times of the Carnatic Wars (1743-63) Conjeevaram was inside the danger zone of Mohemmedan oppression and war conditions, and as such when the then head of the Kamakoti

Peetha was thinking of a southern move, the chieftain of the orthodox Hindu principality of Udayarpalayam extended invitation to the Acharya to go over to Udayarpalayam. Accordingly, the Acharya came to Udayarpalayam. When he was staying there, the then Maharaja of Tanjore, having heard of the arrival of the Acharya at the capital of Udayarpalayam principality, in his state, went in person to Udayarpaḷayam and took the Acharya with him to Tanjore." (2) दिवान बहादूर श्री के. एस. रामस्वामी शास्त्री जी अपने प्रकाशित लेख में, "हिन्दू" ताः 4—1—36 के अङ्क में लिखते हैं—' It is that Mutt that is now at Kumbakonam, having been removed to Tanjore at the request of Raja Pratap Simha of Tanjore (1740–63) and then shifted to Kumbakonam. (3) श्री के. वेंकटेशम पन्तुलु अपने रचित पुस्तक 'Sri Sankaracharya and His Kamakoti Peetha' में लिखते हैं—' The sixty-second Guru on the Kamakoti Peetha was Chandrasekharendra Saraswathi, who ascended the seat in 1729 A. D. In that year the fight between the English and the Moslems in parts around Madras caused considerable trouble to the Hindus. Then the local chief of Oodayarpalayam requested the guru to go over to his place and stay there. The mutt accordingly went over to Oodayarpalayam. The golden image of Sri Kamakoti was also taken over to the place with the mutt. The then king of Tanjore Pratap Simha, coming to know of this, desired that the mutt should remain permanently at Tanjore. The guru then removed the mutt to Tanjore and golden image of Sri Kamakshi was also placed in a temple ...." (4) श्री वेंकटरामन् अपनी पुस्तक में लिखते हैं—' 60—Chandra—Sekhara IV : It must have been in the time of this Acharya that the Kamakoti Peetha was permanently removed from Kanchipuram to Kumbakonam. ... ... The gold image of Kamakshi had been removed first to Oodayarpalayam; and then to Tanjore where it has since been permanently located. And, on the invitation of Raja Pratap Simha 1740—1763 of Tanjore, the mutt was permanently removed to Tanjore. (5) आनन्दविकटन मद्रास साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित है कि आक्रमणों के कारण जब कांचीपुर अरक्षित था तथा वहां के लोग अनेक कष्टों को झेलते थे, प्राय: 1686 ई॰ में तंजौर महाराजा प्रतापसिंह ने कांची पीठाधिपति को अपने राज्य में आने की प्रार्थना की। स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति के साथ वे वहां पहुंचे। (6) श्री वि. विश्वनाथन् एपिग्राफिका इन्डिका ' XIV में लिखते हैं—" The tradition of the Matha tells us that it was at the invitation of King Sarabhoji of Tanjore that the Acharya removed to Kumbhaghonam." (1821 A.D.) (7) श्री एम् के. श्रीनिवासन 'कांची मन्दिरों' पुस्तक जो 1957 में प्रकाशित है उसमें उल्लेख है कि स्वर्ण कामाक्षी कांची से तंजौर को 1767 A.D. में ले गये जब हैदर अली ने इस नगर पर धावा किया था।

इतिहास द्वारा प्रतीत होता है कि महराठा सेना के प्रधान हरजी महराज की सेना ने गोलकोण्डा राज्य के शहरों में आक्रमण कर लूटमार किया था और अपना प्रभुत्व भी जमा लिया था। हरजी महराज की सेना ने कांचिपुर में अपनी डेरा डाली और शहर को लूटा। औरङ्गजेब ने इन घटनाओं को सुनकर चार सेना प्रधानों को अपने पल्टन के साथ भेजा और यह सेना कांचीपुर 25—2—1688 के दिन आकर वहां अपनी डेरा डाली। महराठा सेना कांचीपुर से पीछे हट गई। पश्चात् मुसलमानों ने कांचीपुर लूटना शुरु कर दिया था। कहा जाता है कि एक साल के लिये यह लूटमार बराबर जारी था। "Madras Diary and Consultation Book" पुस्तक की पृष्ठ 203 में उल्लेख है—'Having advice from the Maratha camp that Maratha forces in the Gingee country under the command of Harji Maharaj were upon their march with 2000 horses and 5000 foot, with great number of pioneers and scaling ladders, that they had plundered and taken several towns belonging to lately to the kingdom of Golconda and committed various other atrocities that most of the inhabitants left Conjeevaram and other places to secure their persons and estates." इससे प्रतीत होता है कि 1688/90 ई० में कांचीपुर में सनसनी व अशान्ती फैल गयी थी और कांचीवासी कांची छोड़ चले गये थे। जनवरी 1698 ई० में जिन्जी का गढ मुगल जनरल जुलफिकार खान के हाथ में पड़ा। आक्रमण कुछ काल तक जारी रहा। कर्नाटक का शासन नायब पदवी में दाउत खान काम करते थे। इन आक्रमियों व लुटेरों का लालसा कांचीपुर के संपत्तिशाली मन्दिरों ने आकर्षित किया। न केवल मुगल इस शहर को लूटे पर अन्य लुटेरों ने भी लूटा। इसी अरक्षित समय में कांची की वरदराज मूर्ति व संपत्ति आभूषण आदि, एकाम्रेश्वर मूर्ति व आभूण आदि, कामाक्षी मन्दिर की स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति व आभूषण आदि, को उस उस मन्दिर के स्थानीकर अर्चकों वा धर्मकर्ताओं ने कांची से उदयारपालयम ले गये। कहा जाता है कि इन मूर्तियों को शव की तरह सजा कर मुर्दा रूप में कांची के बाहर उठा ले गये थे। Mr. Charles Stewart Crole, Madras Civil Service, 'A Manual-The Chingleput' (1879 ई०) में इस विषय का विवरण दिया है और आप लिखते हैं—'... ... ... The authorities of the three pagodas noticed above, determined to protect the idols from their apprehended desecretion by the fanatical zeal of the invader. They were accordingly conveyed away, disguised as Corpses, and followed by funeral processions and were carried off to the Udaiyarpalaiyam jungles in the Trichinopoly District. The image of Kamakshi was of gold and is said to have been taken possession of by the Rajah of Tanjore." इसी कथा का समर्थन मदरास राज्य का G. O. No. 985 Home (Education) Dated 31—8—1920 भी करता है। यहां कांची मठाधीश या मठ या कुम्भकोण शङ्कराचार्य या कुम्भकोण मंठ का नामो निशान नहीं है। यदि कांची मठ स्वर्ण कामाक्षी को स्वयं ले जाते और इसका प्रमाण होता तो अवश्य आपका नाम उल्लेख करते या कामाक्षी मन्दिर 'जगत विख्यात सार्वभौम' कांची मठ के आधीन में होता तो अवश्य विख्यात मठ का नाम लेते। इसी प्रकार G. O. No. 985 में भी मठ का नाम दिया नहीं है। इन तीनों मन्दिरों के स्थानीकर अर्चकों व धर्मकर्ताओं ने कांचीपुरवासियों की सहायता से इन तीन मूर्तियों को आभूषणों के साथ कांची से निकाल ले गये थे। इस कार्य का श्रेय जो अन्यों को है उसमें अपना नाम भी जोडकर कुम्भकोण मठ प्रचार करते हैं कि आपही ने स्वर्णकामाक्षी को उदयारपालयम ले गये

थे। उदयारपालयम के जमीन्दार ने 1784 ई० में कुछ भूदान कामाक्षी मन्दिर के लिये इस मन्दिर के धर्मकर्ता श्री दक्षिणामूर्ति को दिया है न कि कांची मठ को। श्रीदक्षिणामूर्ति के द्वितीय पुत्र तंजौर गये और स्वर्ण कामाक्षी की पूजा सेवादि कार्य में लग गये।

कांची वरदराज मन्दिर का माता मन्दिर के बाहर एक शिलालेखन है जो इस घटना का उल्लेख करता है और जिससे प्रतीत होता है कि अत्तान तिरुवेंकड रामानुज जीयर की आज्ञापर श्री लाला तोडरमल ने शक 1632 (अनुरूप 1709/1710 ई०) में वरदराज मूर्ति को कांची लौटा ले आया और मन्दिर में मूर्ति पहुंचा दी थी। शिलालेख का आंगल भाषा अनुवाद—" May blessings attend, In the 1632nd of the era of Salivahana Saka named Virodhi, in the month of Palguna, on the 30th day, on Saturday, instructed by Srinivasa, Lalla Taudra Mallji, disciple of Attanjeer, caused the idol Varadaraja to be brought back from Udeiyarpalaiyam to Vishnu Kanchi." A. R. E. 639 of 19 says "in compliance with the order of Srinivasa alias Attan Tiruvengada Ramanuja Jiyar, his pupil the chieftain Raja Sri Lala Todarmalla brought back the images of Varadaraja and his consorts from Udayarpalayam and set them up in the temple at Kanchi." Mr. Charles Stewart Crole further says—' The idol of Siva temple was restored to its place by a Brahmin called Sellambattu." श्री चेल्लमभट्टु ब्राह्मण ने एकाम्रेश्वर मूर्ति को कांची लौटा ले आया।

अब रहा तीसरा मूर्ति स्वर्ण कामाक्षी जो उदयारपालयम से तिरुवारूर ले जाकर पश्चात् तंजौर पहुंचा। कुछ वर्ष पश्चात् उदयारपालयम में भी अशान्ती फैली और यह स्वर्ण मूर्ति यहां से तिरुवारूर पहुंची। कहा जाता है कि यह मूर्ति तिरुवारूर में बीस वर्ष से भी अधिक पूजित होकर वहीं रही। तिरुवारूर में इस मूर्ति की पूजा अधिकार श्री विश्वनाथ अय्यर के हाथ था। आपही का पुत्र श्री श्यामा शास्त्री का जन्म यहीं हुआ। श्री श्यामा शास्त्री को दक्षिण भारत के गायनविद्या त्रिमूर्ति में एक गिना जाता है। यह सुना जाता है कि जब श्यामा शास्त्री जी की आयू 18 थी तब यह स्वर्ण कामाक्षी मूर्ति तिरुवारूर से तंजौर पहुंचा। कहा जाता है कि उक्त श्री विश्वनाथ अय्यर ने तंजौर राजा श्री तुलजा जी (1763—1787 ई०) से भेंट कर इस मूर्ति को एक सुरक्षित स्थल पर रखने व एक मन्दिर बनवाने का प्रबन्ध भी किया था। 1781 ई० में इस मूर्ति को तंजौर लाया गया और श्री विश्वनाथ अय्यर का कुटुम्ब भी तंजौर पहुंचा। तंजौर राजा शरभोजी II (1798—1833 ई०) ने 1806 ई० में तंजौर मन्दिर का गोपुरम बनवाया और मन्दिर का मरम्मत भी कराया था। वर्तमान काल में इस मन्दिर का निर्वाह कार्य 'बोर्ड आफ़ ट्रस्टी' के हाथ में है और यह 'बोर्ड आफ ट्रस्टी' मदरास राजकीय एच. आर. सि. इ. डिपार्टमेन्ट के संचालन व अधिकार में अपना काम करते हैं। इस मूर्ति को कांचीमठ वालों ने न कांची से उदयारपालयम ले गये थे या न उदयारपालयम से तंजौर ले गये। आज भी तंजौर स्वर्ण कामाक्षी मन्दिर पर अधिकार या निर्वाह या परिचालन कुम्भकोण मठ पर नहीं है। पूर्व में कामाक्षी मन्दिर के तीन धर्मकर्ता थे और इनमें से दो धर्मकर्ताओं के वंशज ही इस मूर्ति को तंजौर ले गये थे और यह मन्दिर उस समय उक्त इन दोनों धर्मकर्ता के वंशजों के निर्वाह में था। कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकरों ने जनवरी 1840 ई० में एक पत्र, बोर्ड आफ रेवन्यू, मदरास, को भेजा था और इस पत्र द्वारा यह सिद्ध होता है कि कांची मठाधीश स्वर्णकामाक्षी को उदयारपालयम न ले गये थे और कांचीमठ का सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ कुछ भी न था। इस पत्र से कुछ पंक्तियां नीचे दिया जाता है—'... ... . And in the year 1820

Mr. A. Crawley, the then Head Assistant Collector, having in his enquiry found out if such a takeed that the sthaneeks of this temple should not go and attend in Tanjore and that those of Tanjore should not serve here and received to that effect written documents from their hands and as the jewels and goddess are not inserted in the accounts of the circar, we and the inhabitants of Conjeevaram have addressed to Mr. A. Maclean in 1834 and Mr. Maclean in his takeed No. 13 of 24th September of the same year to the Tahsildar of Conjeevaram ordered him to search fully into the matter and inform and that the Tahsildar delayed to execute the command, on which we have petitioned to Mr. A. Freese at three different times for which he answered that he would not enter in this affair, we therefore, humbly request your board to look into Mr. Maclean's takeed and to the documents mentioned above and to order the goddess from Tanjore with the jewels to be brought to the original place. We also enclose Mr. Maclean's takeed together with the endorsement of the present collector." ए. क्राली के समय (1820 ई०) में यह निर्णय हुआ था कि कांची कामाक्षी मन्दिर के स्थानीकर तंजौर न जायेंगे और तंजौर के स्थानीकर कांची मन्दिर न आयेंगे। यहां भी कांची मठ का उल्लेख नहीं है।

वरदराज एवं एकाम्रेश्वर मूर्ति जब 1710 ई० में कांची लौट आया और जब तीन मूर्तियां कांची से उठा ले गये थे तो निश्चित् होता है कि यह तीनों मूर्तियां 1710 ई० के पूर्व ही कांची से हटाया गया होगा। अतः यह कहना ठीक है कि 1688 ई० से 1698 ई० तक जब कांचीपुर में अशान्ती, लूटमार व आक्रमण हुए थे तब यहां के स्थानीकरों ने इन तीन मूर्तियों को ले गये और कांची के अनेक वासिन्दे शहर छोड भाग गये। कुम्भकोण मठ का प्रचार कि आप 1743—63 ई०, 1729 ई०, 1686 ई०, 1767 ई०, 1821 ई० (भिन्न कथन) में कांची छोड चले सो सब कथन असत्य दीखता है। कुम्भकोणमठ के कल्पित वंशावली में बोध उर्फ योगेन्द्र उर्फ भगवन्नाम का काल 1638—1692 ई० है। आप तीर्थ यात्रा एवं नाम संकीर्तन में मग्न थे और आपकी समाधि कुम्भकोणम समीप है। कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आप कांची मठाधीश बने। आप स्वतंत्र पुरुष थे। आपकी समाधि भी कुम्भकोण मठ से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। आपके पश्चात् श्री अद्वयात्म प्रकाश 1692—1704 का मठाधीश होना प्रचार करते हैं। आप कांची न आये और न मठाधीश भये। तंजौर के राजा प्रताप सिंह का राज्य शासन काल 1739—63 ई० तक का था और यह कहना कि 1729 ई० में राजा प्रताप सिंह के बुलावे में गये सो कथन असत्य है। समयानुसार भिन्न कथनों से ही सिद्ध होता है कि आपका सम्बन्ध कामाक्षी मन्दिर के साथ बिलकुल न था। 1915 ई० में कुम्भकोण मठ के एजन्ट राज्य सरकार को एक पत्र में 1729 ई० का उल्लेख करते हैं। 1941 ई० में मठ के मैनेजर अपने पत्र ताः 25—7—41 में 1743—63 का कहते हैं। मठ का दो भिन्न बयान में कौनसा बयान यथार्थ है ! कल्पित विषय को सत्य का रूप देने की कोशिश हो रही है।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आपलोग आक्रमणों से डरकर स्वरक्षा के लिये कांची छोड तंजौर गये। श्रृंगेरी जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (1741—66 ई०) जी उसी कर्नाटक युद्ध काल में कर्नाटक सीमा में भ्रमण कर रहे थे और आप कांची भी गये थे एवं आपको कुछ आपत्ति या हानी न हुई और

व आप यात्रा छोड कर श्रृंगेरी लौट गये। कर्नाटक नवाब का पुत्र ने एवं ईस्ट-इन्डिया कम्पनी सरकार ने आपका स्वागत किया था। श्रृंगेरी जगद्गुरु शंकराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती I (1705—41 ई०) कांची क्षेत्र आकर यहां के भक्त शिष्यों को आशीष दी थी और आपको कोई आपत्ति न हुई। इसके पश्चात् 1792 ई० में श्री श्रृङ्गेरी जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770—1814 ई०) को कांची विजय यात्र करने की प्रार्थना टीपू ने की थी और कांची के एकाम्रेश्वर मन्दिर की शुद्धि व निर्माण आदि कार्य आपको सौंपा था। यह सब मार्के की बात है। यदि कांची मठ साक्षात् आद्यशंकराचार्य के अविच्छिन्न गुरु परम्परा के होते या इनका मठ कांची में होता तो अवश्य टीपू आपको भी बुलावा भेजता या इन विषयों को आपके पास सौंप देता। कांची मठ यदि तंजौर में भी होता तो क्यों टीपू ने आपको निमन्त्रण नहीं भेजा? बालाजा नवाब राज्य में कांची अन्तर्गत था और यहां 1763 ई० में हिन्दू वैश्य जाति वर्णाश्रमाचार के विषय में एक झगडा उठ खडा हुआ। नवाब ने इस विषय पर निर्णय पाने के लिये 'लोकगुरु शंकराचार्य श्रृंगेरी' से प्रार्थना की कि आप अपना निर्णय दें। पश्चात् नवाब ने श्रृङ्गेरी शंकराचार्य के निर्णय को अमूल भी किया। 1763 ई० का इनायतनामा जो नवाब ने दिया था सो अब भी उपलब्ध है। यदि कांची में 'सर्वोत्तर सर्वसेव्य सार्वभौम जगद्गुरु कांची मठ' होता तो अवश्य नवाब कांची मठाधीश से निर्णय मांगते। बालाजा या कांची से बहुदूर श्रृङ्गेरी को क्यों पत्र लिखा गया था? इस प्रकार के अनेक शंकायें उठती हैं जिनका उत्तर न्याय युक्त देना कठिन है।

45. कुम्भकोणमठ का भ्रामक तथा मिथ्या प्रचारों के कुछ नमूने

कुम्भकोण मठ का डेढ़सौ वर्ष मठवृत्तान्त विषयों और प्रचारों को छानबीन किया गया और इस शोध कार्य में बहुत से ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए जो आपके मठ प्रचार को भ्रामक व मिथ्या ठहराता है। ऐसे अनेक भ्रामक व मिथ्या प्रचारों की एक सूची बनायी गयी है जो करीब 60 पृष्ठ की है। इस सूची में से कुछ विवरण निम्न दिया जाता है ताकि पाठकगण जानलें कि आपके मठविषयक प्रचारों में कितनी सत्यता है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश 1934/35 ई० में जब आप काशी पधारे थे तब आपके मठानुयायीयों, शिष्यों तथा आपसे जो कुछ मठविषयक प्रचार काशीधाम में हुआ था उन्हीं विषयों का यथार्थता यहां दिया जाता है।

(1) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश का काशी में (1934 ई०) स्वागतार्थ एक स्वागतकारिणी समीति कुछ दाक्षिणात्य विद्वानों के प्रभाव द्वारा स्थापित किया गया था। इस समीति के कुछ सदस्य जो विद्वान, आदरणीय परिव्राजक, शाखा मठ के अधीश, ब्रह्मनिष्ठ मण्डलेश्वर व महन्त थे, आप सबों ने अपनी अपनी अस्वीकृति पत्र भेजे थे, तथापि आपलोगों का नाम प्रकाशित किया गया था ताकि काशी के सार्वजनिकों में यह भाव उत्पन्न हो कि आप सब मठ कार्य में सहयोग देते हैं। स्वागत समीति ने कुछ गण्यमान सज्जनों, धनाढ्य एवं ब्रह्मनिष्ठ मण्डलेश्वरों का नाम भी प्रकाशित किया था जो सब व्यक्ति उस समय काशी में न थे और वे सब न आपसे परिचित थे। इनमें से कुछ अपनी अस्वीकृति पत्र एवं मिथ्या प्रचार पर टिप्पणी लिख भेजी थी तथापि समीति ने इन लोगों का नाम प्रकाश किया। इस आयोजन के प्रचारक व व्यवस्थापक तीन द्रविड विद्वानों का कार्य ऐसा था जो आपको शोभता नहीं।

(2) काशी समीप कुम्भकोण मठ का कुछ मूल्य वस्तु एवं देवदेवी मूर्तियां चोरी हो गयी थी। कुम्भकोण मठानुयायीयों ने पुलीस, अन्य विभाग राज्यकर्मचारियों तथा रायसाहबों की सहायता से एवं द्वेषभाव से एक निरपराधि बालक को बहुत चोट व कष्ट पहुंचाया और तीनबार इस बालक पर गहरी चोट पहुंचाने की इच्छा से

बार भी किया गया था। बालक पर चोरी का जुल्म भी आरोप किया गया था और घर की तलाशी भी ली थी। तथापि मठ के भक्तों व विद्वानों से रचित पुस्तक 'श्रीशङ्करपीठतत्त्वदर्शन' में देवमूर्ति की चोरी न होने की खबर भी लिखकर प्रकाशित किया गया।

(3) वर्तमान मठाधीश ने काशी में कहा कि 'ॐतत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य नहीं है ('पन्डितपत्र' 15—10—34; 'लीडर' 21—10—34)। पर आपके मठ विद्वानों एवं कृपाभाजन पन्डितों ने स्वेच्छावाद प्रमाणों द्वारा व्यवस्था दी कि 'ॐतत्सत्' कुम्भकोण मठ का महावाक्य है ('शांकरपीठतत्त्वदर्शन' एवं 'व्यवस्था' देखिये)। कुम्भकोणमठ के श्री आत्मबोध द्वारा रचित 'सुषमा' में (कुम्भकोण मठ का प्रथम प्रामाणिक पुस्तक 'गुरुरत्नमाला स्तव' पर टीका) 'ॐतत्सत्' को उपदेष्टव्य महावाक्य कहा गया है।'

(4) वर्तमान मठाधीश ने काशी में कहा कि 'मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं किसी पीठ के ऊपर अपने श्रेष्ठत्व का दावा करूं' ('लीडर' 18—1—35, 'पन्डितपत्र' 21--1—35)। आपके विद्वानों ने प्रमाणाभास व्यवस्था दिया कि आपका मठ भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ गुरु मठ है ('शांकरपीठतत्वदर्शन') और आपके प्रचार पुस्तकों में भी यही उल्लेख है (पुस्तकों की सूची के लिये पृष्ठ 2/3 देखिये)। वर्तमान मठाधीश ने यह भी कहा कि 'शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है' ('पन्डितपत्र' 15—10—34) अर्थात् आपने अपने शिष्यों द्वारा दिये हुए व्यवस्था एवं प्रकाशित प्रचार पुस्तकों का समर्थन भी किया था। कुम्भकोण मठ का कल्पित मठाम्नायसेतु में श्रेष्ठत्व का दावा किया गया है (कृपया पृष्ठ 6 देखिये)। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि आचार्य शङ्कर का अनुक्षण साथी एवं परमनिकट शिष्य श्री चित्सुखाचार्य द्वारा रचित एवं बृहच्छङ्करविजय से उद्धृत कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय सेतु है। क्या वर्तमान मठाधीश अपने पूर्व मठाधीशों द्वारा या भक्तों द्वारा प्रचारित पुस्तकों को निराकरण करने तैय्यार हैं? यदि कुम्भकोण मठाधीश का कथन सत्य है तो मठाम्नायसेतु (कुम्भकोण मठ कथनानुसार श्री चित्सुखाचार्य रचित—1894 प्रकाशित पुस्तक) असत्य ठहरता है। मुकद्दमा नं 95/1844 ई०, जिला अदालत तिरुचिनापली, में कुम्भकोणमठाधीश ने एक बयान अपने प्रतिनिधि द्वारा दिया था कि कामाक्षी ऊंची श्रेणी की देवी हैं और आचार्य शङ्कर ने नीचि श्रेणि सरस्वती (शारदा) मन्दिर में श्रीचक्र प्रतिष्ठा नहीं की थी (मठ से प्रकाशित मुकद्दमे का फैसला पुस्तक रूप में)। इसी प्रकार यह भी प्रचार करते हैं कि कांची का योग लिङ्ग 'सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ' है।

(5) 'पन्डितपत्र' ताः 1—10—34 के अङ्क में प्रकाशित हुआ था कि श्री विश्वेश्वर मन्दिर के अध्यक्ष एवं श्री अन्नपूर्णा मन्दिर के महन्त दोनों देवदेत्री प्रसाद लेकर स्वयं कुम्भकोण मठ के श्री स्वामी जी को सिगरा चौमुहानी पर अर्पण करेंगे। इस मिथ्या प्रचार का भंडा फोडना नोटिस द्वारा हुआ था जिस नोटिस का नकल पृष्ठ 28 में प्रकाशित है।

(6) कुम्भकोण मठ के कृपाभाजन द्रविड देश विद्वान एवं आपके शिष्यभक्त ने अपने कुम्भकोण मठ के भ्रामक प्रचारों का समर्थन करने के प्रयत्न में एवं काशी के विद्वानों व आदरणीय परिव्राजकों द्वारा पूछे प्रश्नों व आक्षेपों का उत्तर न देकर, आपने ऐसा कुछ कार्य किया जो आपको शोभता नहीं है। इन सब का विवरण 'सूर्य' पत्र ताः 21—6—35 के अङ्क में 'पंचम पीठ सिद्ध करने का षडयंत्र पत्र व्यवहार से भण्डाफोड' शीर्षक लेख में पायेंगे (कृपया पृष्ठ 68 देखिये)। पं० राजेश्वर शास्त्री जी ने रामतारक मठ के महन्त को दूसरी ही कथा सुना कर अपना कार्य सिद्धि प्राप्त करने के लिये क्या क्या प्रपंच रचा सो सब विवरण भी पायेंगे।

(7) काशी में प्रचार हुआ कि कलकत्ता के शिवकुमार भवन में जो सभा हुई उस सभा के निर्णयानुसार कुम्भकोण मठाधीश को सभा की तरफ से स्वागत हुआ और एक व्यवस्था भी दी गयी थी। पं० पंचानन तर्करत्न एवं आपकी टोली और अन्य कृपाभाजन विद्वानों द्वारा दिये हुए व्यवस्था को ही शिवकुमार भवन का सार्वजनिक सभा की व्यवस्था होने का प्रचार भी हुआ ('Shri Shankaracharya—The Great and his Connection with Kanchipuri' पुस्तक देखिये)। पर वास्तविक विषय और ही कुछ था। उक्त सभा का विवरण, जो कुछ कलकत्ते में आपकी दुर्दशा भई, सभा में आपके वारे में जो कुछ भंडाफोड हुई थी, पं० पंचानन तर्करत्न एवं पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री पर उक्त सभा में जो घटी, सो सब विषय 'सूर्य' पत्र ताः 12—3—1935 में प्रकाशित है (पृष्ठ 83—85 देखिये)।

(8) कुम्भकोण मठ द्वारा निर्देषित प्रमाण पुस्तकों एवं उनसे उद्धृत पंक्तियां व श्लोक प्रायः सब स्वरचित अर्वाचीन काल के हैं और अश्रुत व अनुपलब्ध पुस्तकों का नाम लेकर उन पुस्तकों में से उद्धरण की कथा भी सुनायी जाती है। पर वास्तव में यह सब कहेजानेवाले उद्धरित श्लोक स्वकल्पित प्रमाणाभास हैं। कुम्भकोण मठ के प्रमाण पुस्तक सूची में 90 फी सदी पुस्तकें 'अश्रुतम्, अदृष्टम् व अज्ञातम्' कोटि के हैं और वाकि पुस्तक जो उपलब्ध हैं यातो उसमें आपके उद्धरण प्रमाण पाये नहीं जाते या परिष्कृत्य प्रति ही में प्रचार किये जाते हैं। इन विषयों का सविस्तार विवरण और कुम्भकोण मठ के प्रमाणाभास पुस्तकों पर विमर्श मुझसे प्रकाशित पुस्तक 'श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श' पृष्ठ 100 से 300 तक में पायेंगे।

(9) कुम्भकोण मठ के कल्पित मठाम्नायसेतु में दिये हुए आम्नाय पद्धति जो धर्मशास्त्र ग्रंथों, यतिधर्मग्रंथों, आर्ष ग्रंथों एवं अन्य प्रामाणिक पुस्तकों के विरुद्ध हैं उस आम्नाय पद्धति का विमर्श 'श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 301 से 334 में पायेंगे।

(10) कुम्भकोण मठ द्वारा स्वरचित व कल्पित एक वंशावली सूची जो 508 क्रिस्त पूर्व से प्रारम्भ होकर आजतक की पीढी दिखायी जाती है और जिसके आधार पर यह प्रचार होता है कि आपका मठ 'आद्यशङ्कराचार्य का साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा है,' इस वंशावली में दिये हुए हर एक नाम कहां से लिये गये, आपका सम्बन्ध कांचीमठ से क्या था, आपका जीवनगाथा, आदि सब विषय देकर यह सिद्ध किया गया है कि कुम्भकोणमठ से कहेजानेवाले इन यतिश्रेष्ठों का सम्बन्ध कांचीमठ से न था और आपकी सूची सत्तरहवीं शताब्दी अन्त तक का एक कल्पित सूची है। 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 335 से 426 तक में उक्त विषय पायेंगे।

(11) कुम्भकोण मठ अपनी कल्पित वंशावली की पुष्टी में 10 ताम्रशासनों का प्रचार करते हुए कहते हैं कि इन शासनों द्वारा आपका मठ तेरहवीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक कांची में होने का सिद्ध होता है। यथार्थ विषय तो यह है कि इनमें अधिकांश ताम्रशासन कुम्भकोण मठ का नहीं है और राजकीय पुरातत्त्वविभाग के कर्मचारियो ने इन सबों को "शंकास्पद" एवं 'अविश्वसनीय' कहा है। इन सब विषयों का विवरण 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 427 से 465 तक में पायेंगे।

कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि एक ताम्रपत्र शासन जिसका एक ही ताम्र चद्दर उपलब्ध होता है और जिसे 'विजयगन्डगोपालदेवन' ने 'शङ्करार्यगुरवे' जो व्यक्ति 'एक मठ हस्तिशैलनाथ मन्दिर समीप है' वास करते हैं, उनको 'वत्सरे खर संज्ञिते, प्राप्ते कर्काटके पुण्यराशिं कमल बान्धवे मित्रदैवत नक्षत्र युक्तायां, शुक्र पक्षे, इंदोवारेण]कायां दशम्याम् सुमुहुत्तके' के दिन दान दिया था, सो ताम्रशासन उपलब्ध होने वाले सब ताम्रशासनों से प्राचीन है

और इसका काल 9—7—1291 ई० का है। पुरातत्त्वविभाग के राज्यकर्मचारियों ने इस ताम्रपत्र पर काफी शोध किया है और आपलोगों का अभिप्राय है कि यह ताम्रशासन कांचीमठ का नहीं है और कांची मठाधीश इस ताम्रशासन के मालिक भी नहीं हैं (Ref. G. O. No. 1260 Public 25—8—1915) एवं इस ताम्र पत्र का काल 1291 ई० का नहीं है पर 4—7—1351 ई० का होना प्रतीत होता है (ताम्रशासन-में दिये हुए विवरणों के आधार पर) (Ref. Ep. Ind. Vol. XIII)। कुम्भकोण मठ उक्त ताम्रशासन पत्र का और एक भाग (ताम्र चद्दर) अचानक मिलने का समाचार भी प्रचार करते हैं और इसका विवरण प्रथम वार नवम्बर 1961 ई० में प्रकाशित किया गया है। पूर्व कहे हुए ताम्रशासम पर जितने आक्षेप उठाये गये थे उन आक्षेपों के उत्तर रूप में अब यह नवीन ताम्र चद्दर प्रकाशित कर अपने स्वकल्पित टिप्पणी के साथ प्रचार किया जा रहा है कि विजयगन्डगोपालदेवन् का दिया ताम्र-शासम कुम्भकोण मठ का ही है और इसका काल 17—7—1111 ई० का है न कि 1291/92 ई० या 1351 ई०। इन सब विषयों पर पुनः पूर्ण शोध किया गया है और पाठकगण 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 432 से 443 तक में पूर्ण विवरण पायेंगे। कुम्भकोण मठ का प्रचार सब मिथ्या प्रचार हैं।

'श्री कामकोटिप्रदीपम' पत्रिका जो कुम्भकोण मठ का मठविषयक प्रचारों का प्रचार करता है, इस पत्रिका ताः 14—4—1963 के अङ्क में प्रो० के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी से भेजा हुआ एक पत्र ताः 13—4—1963 का प्रकाशित था और यहां इस पत्र का कुछ भाग दिया जाता है—'I have long been familiar with the Gandagopala Copper plate published years ago by late T. A. Gopinath Rao among the copper plates of the 'Kumbakonam Mutt', and have never found any reason to doubt its genuineness.' इस पत्र को पढकर शङ्कायें उठी और आश्चर्य हुआ कि क्या एक विज्ञ व प्रसिद्ध इतिहास विद्वान श्री के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी भी ऐसा भ्रमात्मक पत्र लिखकर भ्रामक प्रचार कर सकते हैं? मैं ने उक्त शास्त्री जी को एक पत्र ताः 27—4—1963 को लिख भेजा था और आपसे पूछा था कि क्या आप उक्त ताम्रशासन को कांची कामकोटि मठ का ताम्रशासन होना स्वीकार करते हैं? क्या इस ताम्रशासन में दिये हुए विवरण कांची मठाधीश को ही ताम्रशासन का मालिक होने का सिद्ध करता है? क्या अन्यों के ताम्रशासन को अपने स्वहस्थ करलेना या स्वाधीन कर लेने मात्र से या कुम्भकोण मठ में उपलब्ध होने से ही ताम्रशासन में दिया हुआ विवरण, अधिकार आदि कुम्भकोण मठ को लागू हो सकता है? क्या कुम्भकोण मठ इस ताम्रशासन के स्वामी हैं? श्री नीलकण्ठ शास्त्री जी अपने पत्र 11—6—1963 में लिखते हैं कि जो कुछ भ्रम व शङ्कायें मेरे मन में उठी थी और जिनका विवरण मेरे पत्र ताः 27—4—63 में दिया गया था सो सब गलत है। आप स्पष्ट यह नहीं कहते कि विजय-गन्डगोपालदेवन् का ताम्रशासन कुम्भकोण मठ का नहीं है पर जो सब आक्षेप एवं शङ्कायें मैं ने अपने पत्र ताः 27—4—63 में दिया था उसे श्री शास्त्री जी अब निराकरण करते हैं। अर्थात् आपका अभिप्राय भी वही है जो मैं ने पत्र में दिया था। भ्रामक मिथ्या प्रचार करना तो कुम्भकोण मठाभिमानियों व कुम्भकोण मठ का स्वभाव ही है पर दुःख तो इस विषय का है कि विज्ञ विद्वान भी इनके प्रचार मायाजाल में फंसकर अपनी स्वतंत्र अभिप्राय को त्याग कर नवीन कल्पित व्यवस्था व अभिप्राय आदि देते हैं और कुम्भकोण मठ के मिथ्या प्रचारों का समर्थन करते हैं। जब आक्षेप किया जाता है तो झठ से निराकरण भी कर देते हैं।

प्रो० के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी को भेजा हुआ बृहत पत्र दिनाङ्क 27—4—1963 में से कुछ भाग नीचे दिया जाता है ताकि पाठकगण यथार्थ विषय जान लें।

'............ I quote below an extract from your letter dated 13—4—63 published in 'SRI KAMAKOTI PRADEEPAM' of Chittirai month, dated

14—4—1963, on page 159, reading as under :—' .... I have long been familiar with the Gandagopala Copper plate published years ago by late T. A. Gopinath Rao among the copper plates of the 'Kumbakonam Mutt,' and have never found any reason to doubt its genuineness.' The subject matter of this letter is your opinion published in the said journal in a letter form.'

'It may be true that the Gandagopala copper plate is genuine. The question is whether the said copper plate refers or gives the title or ownership to Kumbakonam Mutt or Kanchi Mutt. You are aware that mere physical possession of a copper plate—genuine or ungenuine—does not give the physical owner of the plate the title or ownership of the plate. Your above referred letter is not very clear and permit me to say that it is confusing and a lay reader would infer that your goodself had given the certificate that the Kanchi Kumbakonam Mutt is the title owner of the copper plate. Pardon me to say that I am surprised to see a letter like this from a pen of an eminent scholar and widely respected historian like you. Do you really believe that the C. Plate of Gandagopala refers and belongs to Kanchi Mutt and that they are the title owners of the plate? If you are in possession of facts to prove that it refers and belongs to Kanchi Mutt, would you be kind enough to enlighten me those facts ? It shall clear my doubts ?'

'... ... ... Your inferences are untenable against facts as disclosed by other research scholars. The cause of truth must not be jeopardised by any feelings of false delicacy. However great a person may be, he is not entitled to twist historical facts and truths, however unpalatable it may be or may be irksome and inconvenient to substantiate their false claims and propaganda or to suit their own whims and fancies. History may be good or bad and it should be left as it is and should not be tampered with. Every endeavour should be made to examine the materials on which such fanciful and fantastic claims are made and to enquire whether they have any justification behind them. If such fanciful claims are left uncontradicted, it would result as if a 'PSEUDO' is being given a free licence to declare himself 'GENUINE' and this would result in misrepresentation and misdirection to the coming generation. Already enough mutilations have crept in in our texts and scriptures and let us not add a few more. It is in the spirit of a truth seeker I approach you for your valued opinion. Truth must not be allowed to be shrowded or smothered by persistent and baseless intensive propaganda intended to confuse and mislead the minds of the half thinking and unthinking credulous public.'

'The Gandagopala plate may be genuine but the issue now is whether it refers to Kanchi Mutt or is the Kanchi Mutt Swamiji the title owner of the plate? I emphatically say that the plate does not refer to Kanchi Sankaracharya Mutt

(Kumbakonam Mutt) and it does not belong to Kumbakonam Mutt. As you are an eminent scholar and in know of true facts, I shall not deal in detail with this matter and wish only to draw your kind attention to the following points, so as to enable you to arrive at a final and true decision.'

1. 'The above referred copper plate was granted by one 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल देव श्री गण्डगोपाल' to one recipient 'शङ्करार्यगुरवे' residing in a mutt near the Hastishailanatha temple and who is addressed also as 'नित्यान्नदान, विधिसन्तर्पितात्म, द्विजन्मने, निगमान्तररहस्यार्थ. शिष्येभ्यस्सुविश्रृण्वते, तपोधनाय, शिवध्यान रतात्मने, स्वात्मारामाय विदुषे, पोप्पिळि प्रथितात्मने', and on 'वत्सरे खरसंज्ञिते, प्राप्ते कर्काटकं पुण्यराशिं कमल बान्धवे, मित्रदैवत नक्षत्र युक्तायां शुक्ल पक्षे इन्दो वारेण युक्तायां दशम्याम् सुमुहुर्त्तके' date, granting Ambikapuram village to enable feeding daily of 108 brahmins. It is in grantha script and the granter's signature is in Tamil script. Late Sri T. A. G. Rao had published the last sheet of the complete plate and he was informed at that time that the balance sheets of the complete plate were not available and were lost. Sri T. A. G. Rao had fixed the date as 9—7—1291 equivalent to the date given in the plate. Mr. Ramesham had published in Kalki (Deepavali Number 1961) an article on the balance part of the plate that he received recently from Kumbakonam Mutt and he had tried to fix the date of the plate as July 17th, 1111 A. D. Mr. Ramesham or the Mutt has not cared to give details as to where this new found plate was lying all these years, when was it obtained, from where was it obtained and why was it not given to Sri T. A. G. Rao for editing along with others, if it had been with them for all these years? Why not these copper plates are sent to epigraphists and historians and to the Arch. Dept, to get them verified? Why is this hesitancy on the part of the Kanchi Mutt?

2. 'Kanchi Mutt own a small house in Vishnu Kanchi and they claim this mutt as their own from Sri Adi Sankara's time *(508 B. C.)*. They claim this plate as their own since the plate mentions the recipient living in 'a mutt near Hasthishailanatha temple.' I do not go into detail and I have enough old records to show that this plot or the house never belonged to Kumbakonam Mutt in the past. The Government records show that the old survey number of this Kanchi Mutt was 620—4/Y and was once 'Government Purrambokku land.' At a later period this land was converted and broken to pieces as 'village sites' for use as residential purposes. The Paimaish register of the Nawab's time and the revenue records of the East India Company clearly confirm that the plot never belonged to the Kumbakonam Mutt.

S. I. Temple Inscription No. 350 indicates that there was in Vishnu Kanchi a Mutt named as 'Veda Mutt' and a grant of a village had been made to one 'Sri P. P. Vedendrasagara Sripada' in 1378 A. D. It means that there was a mutt

near the Hasthishailanatha temple in 14th century and its past history would reveal that it had a past life also. May be that this Gandagopala plate refers to the 'Veda Mutt.' There were a number of other Sanyasins and scholars living in Mutts in Vishnu Kanchi and Shiva Kanchi during the period 13th to 16th century (Ref: S. I. Inscription 432, I. E. of 55/56 App. 286 and 346 etc). This Gandagopala plate might refer to one of those mutts near the Vishnu Kanchi temple. It is not clearly stated in the plate that the presiding person of the mutt is identical with Sankaracharya mutt at Conjeevaram.'

3. 'The recipient of the grant is 'शङ्करार्यगुरवे' and not 'शङ्कराचार्य गुरवे' as is being now published and propagated. Shankararya (Shankara Arya) and Shankaracharya are two different names and each might even be of different Ashrama. The copper plate does not mention by name the Sankaracharya to whom it was given. Kumbakonam Mutt claim for their Mutt in their Mathamnaya reading as under, गर्वं न्नारः मर्वेभ्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः।' and it is inconcievable (if the claim be true) that the granter would not have known the name of the Shankaracharya who was a 'Sarwabhowma Jagadguru' and would forget to mention his name in the plate. Mr. H. K. Sastri (Arch. Dept.) while commenting on the claims made by Kanchi Mutt says 'This explanation is far fetched. To the holy guru Shankararya would be the plain interpretation of the phrase 'Sri Sankararya Guraveh.' In G. O. No. 1260 dated 25—8—1915, it is mentioned 'It is not clearly stated in the record if the matha presided over by the Sankararya herein referred. to was identical with the Sankaracharya mutt at Conjeevaram.' Some qualifications and adjectives addressed to the recipient in the plate such as 'नित्यान्नदान, निगमान्तर रहस्यार्थ, तपोधनाय, शिवध्यानरतात्मने, द्विजन्मने' do not establish the fact that the plate refers exclusively to Kanchi Mutt only. These phrases could also be addressed to a Grihastha or to a yati. Unless it is proved beyond doubt that there was no other mutt in Vishnu Kanchi except Kanchi Sankaracharya Mutt, this plate cannot be said to belong to the Kanchi Mutt. Various other inscriptions as shown above go to prove that there were other mutts in Kanchi during 12th to 16th century.'

'You are aware of the fact that Sri GovindaDixita (Minister of Tanjore state) was addressed as 'पद्वाक्य प्रमाण, पारावार प्रवीण, अद्वैताचार्य, विद्याचार्य, कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठाचार्य.' Because he was addressed as Advaitacharya, Vidyacharya, could you conclude that he was a Mathadhipathi of a Mutt or a Sankaracharya or a yati? He was a Grihastha. In the same manner the adjectives in the copper plate referred above may be applicable to any Grihastha or Vanaprastha and not necessarily and exclusively to a Mathadhipati. The copper plate does not give the name of the Acharya or the mutt's name.'

4. 'Mr. H. Krishna Sastry (Arch. Dept.) writes in Ep. Ind. Vol. XIII— 'The details of the date given in lines 4 to 7 do not work correctly either for A. D. 1291 or for A. D. 1292; but in the cyclic year Khara which occurred 60 years after i. e. in A.D. 1351, Monday, the tenth tithi of the bright half of karkataka correspond to 4th July 1351, when the Nakshtra Visakha ended at 16 hours 20 minutes after mean sunrise and Anuradha commenced consequently in the last quarter of the day.' Hence the date as given by late Sri T. A. G. Rao is incorrect.'

'To rectify this mistake, now Mr. Ramesham has tried in vain to fix the date as 17th July, 1111 A. D. It is needless to impress on you of the fact that a Gandagopala of a feudatory vassal state would have used the title of 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल' during 11th century in the period of Rajendra Chola who is said to have gone upto the banks of Ganges in North India. During 12th century first half Kulottunga I who invaded Kalinga twice and who was a powerful king, a vassal state Chief Gandagopala, could not have used 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल.' It was only in the second half of 12th century, after the death of Kulottunga I, the feudatory states raised their heads. In the second half of the 12th century the Velanadu Chola became independent for a brief period. The Telugu Chola of Nellore also became independent (Vikrama Chola 1135 A. D.). But during Kulottunga III (1178—1218) period Nalla Sidhi and his brother Tammu Sidhi once again came under the influence and rule of Kulottunga 1187 A. D. Under these circumstances it can be clearly said that a feudatory chief Gandagopala in 1111 A. D. could not have used the title of 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल'

'The copper plate mentions that this had been given in the 16th year of the reign of Gandagopala i. e. in the year 1095 A. D. (if 1111 A. D. is taken as the date of the grant as per Mr. Ramesham). This was Kulottunga's I (1070—1122) period and it is beyond conception that a minor vassal or feudatory chief Gandagopala would have used the title of 'त्रिभुवन चक्रवर्ति महाबल.' If Gandagopala's date as fixed by Sri Ramesham is 1095 A. D. then how his son Tammu Sidhi ascended the throne in 1205 (as per inscriptions found in Vishnu Kanchi Temple)? Look at the big gap between father and son. Many such doubts are to be cleared before we accept the date of the copper plate as 1111 A. D. The date is not correct.'

5. 'As regards Gandagopala's identity, I am not dealing with this matter in this letter, as I am afraid it would run to pages if I do so. I reserve it for some other occasion. I do agree that the copper plate was given by one Gandagopala and I do not agree that it was given to Kanchi Sankaracharya Mutt Swami. Please note that the copper plate gives the granter's name as 'देवश्री गण्डगोपाल' and the signature in the tamil script is done as 'विजयगण्ड गोपाल.' Why is this difference? Do

you expect a Telugu Chola Vijayagandagopala to sign his name in Tamil script? In other plates he had signed in Telugu script. Why is this difference? As regards the formation of letters, style and usual prashasthi they differ from other plates of the 12th century (early) and I have made a thorough study on this point. Why is this difference?'

6. 'Please note the qualifying word of the recipient found in the plate— 'द्विजन्मने.' द्विजन्मने confirms that the recipient is either a Brahmachari, Grihastha or a Vanaprastha and certainly not a Sanyasin. Sanyasins are not addressed as 'Dwija'. Our yati Dharmashastra does not permit. Likely the manufactured new Dharmashastra of Kanchi Mutt might allow the Kanchi Mutt Sanyasins only to use the title of 'Dwija'. Sanyasins are जन्मजातिरहिताः। The recipient's name is 'शङ्करार्यगुरवे' (to the sreshtha guru Shankar) and not Shankaracharya as published by the Kanchi Mutt. This shreshtha guru Shankar who was a 'Dvija', was living in a mutt near Hasthishailanatha temple in Vishnu Kanchi. He was certainly not a sanyasin. To confirm this inference there is another word found in the copper plate as 'पोप्पिळि प्रथितात्मने.' 'Poppilli' is the house or vamsa name. The practice of giving vamsa or house name was prevelent among Keralites and Telugus to their three ashramas- Brahmachari, Grihastha, Vanaprastha—and certainly not to their Sanyasins. Yati is never addressed by his house or vamsa name. If Sri Adi Sankara was of 'Kaippilli' vamsa, it was in his poorvaashrama and certainly not after taking Sanyasa Deeksha from Sri Govindapada. Hence the recipient of the grant was the holy guru Shankar who was a 'Dwija' and belonged to 'Poppilli' vamsa and not Kanchi Mathadhipati.'

7. 'Gururatnamala which is said to give the chronology of Kanchi Mutt from 508 B. C. is unreliable even in respect of its professed authorship. I have written a book on Kanchi Mutt chronology based on searched materials and I have conclusively proved therein that upto 17th century end the chronology is not correct and it is only a list of known and unknown yatis taken from various books and compiled. I do not deal with this subject here as it would entail some more pages of writing. To identify the 'Sankararya' of the plate, there are five Shankaras shown in the Kanchi Mutt chronology. It begins from 508 B. C. to Shankara V of 788/840 A. D. Copper plate does not refer to any of these names. In the chronology one Chandrachuda II alias Gangeshar name is given – 1247/1297 A. D. On what evidence would you say that this Chandrachooda II was the same as 'Sankararya' of the plate?'

'Sri S.V.V. of Kumbakonam writes in Ep.Ind.Vol.XIV regarding Gururatnamala 'The author cannot be regarded as authority regarding the generations of the

gurus remote from his time.' Kumbhakona Mutt's propagandist Sri N. V. Writes- 'When I say that the accuracy of the chronology cannot be questioned, it applies only to the later part of it. We cannot say at present how for the older verses are genuine and of contemporary origin.' Sri S. V. V. had tried to bring down the period from 508 B. C. on arbitary basis by giving 13½ years for a generation. How could this be possible when Kanchi Mutts' main authority books like 'Punyaslokamanjari' and 'Gururatnamala' clearly give the calendar Year, Month, Paksha, Tithi, etc. for each Mathadhipati. Does he agree that Gururatnamala and Punyaslokamanjiri are unreliable works? Sri T. M. P. Mahadevan is of opinion that Sri Sadasiva Brahmendra was not the author of this book (See Gauda pada). I can quote a dozen more authority to prove its unreliability. I have dealt with this matter in a separate book. Can you prove beyond doubt that this copper plate refers or belongs or gives the title or ownership to Kanchi Mutt Swami?'

'......... If you do not agree with my views based on facts revealed above, would you please take the trouble of giving me your facts to establish the right of ownership or the title to Kanchi Mutt.'

P. S.: 'In your book 'History of South India' you have mentioned that Sri Adi Sankara had established five Mutts. Amnaya mutts and Upasana Peethas are different. Kamakoti is an Upasana Peetha and not an Amnaya Mutta. I shall send you a book of 750 pages where I have dealt with each propaganda stunts of Kanchi Mutt and beyond doubts I have proved that this Kumbakonam Mutt was established long after Sri Sankara's time. It is so unfortunate that an eminent scholar and widely respected person like you should lend a helping hand to substantiate the Kumbakonam Mutt's fantastic, fanciful and baseless claims.'

प्रो॰ के ए. नीलकण्ठ शास्त्री जी का उत्तर पत्र. दिनाङ्क 11—6—1963. 'I have had your letters registered and ordinary. Being in Madras I should have very much appreciated it if you had chosen to come to me in person for it would have been possible for me to explain to you that your presumptions about my stand with regard to the Gandagopala copper plate are not correct.'

(12) कुम्भकोणमठ का सम्बन्ध काञ्चीनगर से जो 508 क्रिस्त पूर्व से होने का प्रचार करते हैं; आचार्य शङ्कर कांची में वहुकाल वास करते हुए अपने निजाश्रम कांची में निजमठ की (सार्वभौम जगद्गुरु मठ) स्थापना कर वहीं कांची में निर्याण भये ; कुम्भकोण मठाधीश से पूजित 'योगलिंग' द्वारा सिद्ध होता है कि कांची में मठ था ; आचार्य शङ्कर काश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण न करके कांची सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करने से ही कांची में मठ का होना सिद्ध होता है तथा कांची काश्मीर मन्डलान्तर्गत है एवं कांची ही काश्मीर है ; कांची कामाक्षी मन्दिर में जो आचार्य शङ्कर की मूर्ति है सो आचार्य शङ्कर का समाधि स्थल है और यह मूर्ति भारतवर्ष का प्राचीन मूर्ति है ; कांची नगर में तीन जगह मठ होने से सिद्ध होता है कि यह सब मठ आद्यशङ्कराचार्य काल से अविच्छिन्न रूप में परम्परा चली आ रही

फ
३८८

है ; कांची में श्री सुरेश्वराचार्य जी की समाधि भी होने से कांची मठ में श्री सुरेश्वराचार्य थे ; कांची कामाक्षी मन्दिर जो कांचीमठ का 'कामकोटिपीठ' है सो आपके अधीन में है एवं पूजा सेवादि कार्य आपके प्रवन्ध या परिचालन में होता हुआ चला आ रहा है; कांची कामाक्षी मन्दिर का 'स्वर्ण कामाक्षी' मूर्ति को आपके मठाधीश ने 17 वीं/18 वीं शताब्दी में कांची से उदयारपालयम ले जाकर पश्चात् तंजौर राजा प्रताप सिंह के बुलावे पर आप 'स्वर्ण कामाक्षी' मूर्ति के साथ तंजौर पहुंचे थे ; आदि विषयों का जो प्रचार कुम्भकोण मठ करते हैं सो सब भ्रामक व मिथ्या प्रचार हैं। इन सब विषयों पर काफी शोध किया गया है। राजकीय रिकार्डों, इतिहास में दिये घटनाओं, शिलाशासनों व ताम्रशासनों, कामाक्षी मन्दिर का इतिहास व शिलाशासनों, प्रामाणिक ग्रन्थो, आदियों द्वारा सिद्ध होता है कि उक्त प्रचार सब मिथ्या हैं। इन सब विषयों का विवरण 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श' पुस्तक के पृष्ठ 466 से 542 तक में पायेंगे तथा इस पुस्तक के पृष्ठ 130 और आगे के अन्य पृष्ठों में भी संक्षेप विवरण पायेंगे।

(13) कुम्भकोण मठानुयायियों ने अपने मठ का यथार्थ रूप को छिपाकर, प्रचार करने का उद्देश्य को न कहकर, अपनी प्रचार सामग्रियों को न देकर, आपके विरुद्ध प्रकाशित पुस्तकों को न दिखाकर, कुछ स्वतंत्र अभिप्राय रखनेवाले विद्वानों एवं आदरणीय मठाधीशों व परिव्राजकों का अभिप्रायों को छिपाकर, अन्य ही एक समयोचित कल्पित कथा सुनाकर कुम्भकोण मठाभिमानियों ने श्री 108 श्री प. प. महास्वामी ब्रह्मनिष्ठ श्री भागवतानन्द मण्डलेश्वर जी से एक व्यवस्था प्राप्त किया था। जब उक्त मन्डलेश्वर जी को वास्तविक विषय मालूम हुआ तो आप दुःखित होकर (चूंकि आप कुछ स्वार्थियों पर विश्वास कर एवं उनके बहकावे में आकर यह काम किया था) एक पत्र ता: 14—2—36 को भेजा था जिसमें आपने कुम्भकोणमठ के भ्रामक प्रचारों का खण्डन किया है। कुम्भकोण मठानुयायि अपने प्रचारों द्वारा किस प्रकार सत्यता पर पर्दा डालकर विज्ञ विद्वानों व परिव्राजकों से व्यवस्था लेते हैं ; इसका एक नमूना उक्त घटना है। ब्रह्मनिष्ठ मण्डलेश्वर जी का पत्र पृष्ठ 103 में पायेंगे।

(14) शांकरपीठतत्वदर्शन पुस्तक जो कुम्भकोणमठाभिमानियों द्वारा प्रकाशित है उसमें उल्लेख है कि श्री विजयानन्द तिवारी जी ने सविनय अपने हस्ताक्षर सहित एक प्रणतिपत्र कुम्भकोण मठाधीश को अर्पण किया था। इसे पढकर इसके उत्तर में श्री विजयानन्द तिवारी जी 21—4—40 के पत्र में लिखते हैं कि मैं ने कुम्भकोण मठाधीश का दर्शन आज पर्य्यन्त न किया और मुझे प्रणतिपत्र अर्पण करने का विषय बिल्कुल मिथ्या और भ्रामक प्रचार है। विवरण के लिये पृष्ठ 112 पढिये।

(15) श्री आत्रेय कृष्ण शास्त्री द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जगद्गुरु श्री शङ्कर गुरुपरम्परा' जिसका बंटवारा कुम्भकोणमठ द्वारा होता था उसमें उल्लेख है—'केरळ आदि स्वदेश राज्यों में राज्यशासन करनेवाले राजा सब एकत्र मिलकर श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति को न केवल अपना अपना आदर सत्कार एवं यशोगान किया है पर यह भी निर्णय दिया है कि कांची मठ परम्परा ही आद्यशंकराचार्य से प्रारम्भ होकर साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही हैं।' जब यह विषय कोच्चिन राज्य का महाराजा को जो एक प्रकान्ड विद्वान भी हैं मालूम हुआ तो आप अपने पत्र ता: 24—6—1960 में लिखते हैं कि उक्त कथन आपको स्वीकार नहीं है और कोचिन राज्य में न कोई ऐसा रिकार्ड है अथवा परम्परा रूढी नही है कि उक्त कथनों का पुष्टी हो।—'As to the portion written in Tamil in your letter, we have here no record or tradition to corroborate"

(16) उक्त 15 में दिये विषय को तिरुवांकूर महाराजा को भी लिखकर माननीय महाराजा से प्रार्थना की कि आप इन प्रश्नों का उत्तर देने की कृपाकरें। आपका उत्तर पत्र ता: 11-9-1960 का प्राप्त हुआ और आपने भी कुम्भकोणमठ प्रचारों का निराकरण कर कहा कि आपके राज्य में कोई ऐसा रिकार्ड नहीं है कि कुम्भकोण मठ

प्रचारों की पुष्टि हो—'With reference to your letter dated 30th May, 1960 and subsequent reminders dated 9th August and 27th August, 1960, regarding the claims of Kumbhakonam mutt as the direct descendents of Sri Adi Sankara and the establishment of their Mutt by Sri Adi Sankara at Kanchi, I write to inform you that there are no authentic records here to prove the above."

(17) श्री आत्रेय कृष्णशास्त्री द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जगद्गुरु श्री शङ्कर गुरु परम्परा' जिसका एक प्रति कुम्भकोण मठ से काशी में 1934 ई० में प्राप्त हुआ, इसमें उल्लेख है—'न कि केवल स्वतंत्र नैपाल साम्राज्य जो हिमालय सीमा में हमारे देश के उत्तर दिशा में स्थित है, वे नैपाल महाराजा कांची कामकोटि पीठाधीश को अपने घुरु स्वीकार किया है, पर हर वर्ष अपने राज्य की आमदनी का एक भाग भेंट रूप में देते हैं।' नैपाल राज्य से प्राप्त उत्तर पत्र ताः 13—5—1940 में उक्त कथन का विरोध कर कहा है कि नैपाल राज्य न कांची कामकोटि पीठाधीश को अपना गुरु होने का कभी भी स्वीकार नहीं किया है और न अपने राज्य की आमदनी का कोई भाग भेंट रूप में देते हैं अर्थात् उक्तकथन सब मिथ्या है—'In reply to your letter dated 5th April 1940 enclosing a copy of another dated 7th February 1936, addressed to His Highness, I write to inform you that the Government of Nepal have never acknowledged the Head of the Kanchi Kamakoti Peetha as their Guru nor do they pay annually as tribute any portion of their income as alleged by Pandit Atreya Krishna Sastri in the book entitled 'Jagadguru Sri Sankara Guru Parampara', extract of which you have kindly translated into English."

(18) श्री सभापति उपाध्याय ने 1935 ई० में 'कांची कामकोटि मठविषयक संवाद' नामक पुस्तक प्रकाशित किया है जिसमें वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश के साथ मठविषयक प्रचारों का वार्तालाप को संग्रह रूप में वहां दिया है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश ने अपने मठप्रचारों की पुष्टि की है। कुम्भकोण मठाधीश ने कहा—'मदरास की तरफ तीन तहसीलों में सनातनधर्मी राजाओं के राज्यकाल से लगाकर यह नियम चला आ रहा है कि समस्त किसान अपनी अपनी जमा करने वाली सरकारी लगान का छानबेवां हिस्सा (1/96) इस पीठ के अधिष्ठित श्रीशङ्कराचार्य चरणों को दें—वह नियम मुसलिम शासकों से भी परिरक्षित रहकर प्रस्तुत अंग्रेजी शासन में भी वर्तमान है। यदि इस नियम का कभी कोई उल्लंघन करता है तो राजकीय-अधिकारी लोग अदालत के द्वारा उसे इस नियम के पालनार्थ बाध्य करते एवं उससे वह धन दिला देते हैं।' उक्त विषय का वास्तविकता जानने के लिये मदरास राज्य सरकार के तंजौर कलक्टर को ताः 8—2—1936 के दिन एक पत्र लिख भेजा था। आपका उत्तर ताः 4—3—36 का बतलाता है कि श्रीशर्माजी स्वयं अपना प्रबन्ध करें और मठ के कथनों की सत्यता को जांच करलें—'Mr. Sarma should make his own arrangements to get the statements in question verified.' पश्चात् ताः 11—8—60 का पत्र मदरास राज्य के मुख्य सचिव को भेजा गया था जिसके उत्तर में मदरास राज्य रेवन्यू विभाग (बोर्ड आफ रेवन्यू) ताः 19—9—60 का पत्र बतलाता है कि मदरास राज्य का एच. आर. सी. ई. बोर्ड के यहां से उक्त विषय पर उत्तर प्राप्त होगा—'Sri Rajagopala Sarma is informed that his petition dated 11—8—1960 has been transferred to the Commissioner Hindu Religious and Charitable Endowments, Madras, for disposal." एच. आर. सी. ई. का पत्र ताः 4—11—60 का प्राप्त हुआ जिसमें आपने इत्तिला किया है कि जो जांच करने का विषय पूछा गया था सो आपके यहां उपलब्ध नहीं है और आगे कहा गया कि बोर्ड आफ रेवन्यू या कांची मठ से इस विषय को प्राप्त करें—

'The information required by you is not available in this department. You may contact the Board of Revenue or the agent of the Matha.' सम्भवतः सरकार यह नहीं चाहती कि कुम्भकोण मठाधीश पर मिथ्यावादी का दोषारोपण कर आप पर कोई धब्बा न लगे या सरकार विषय की सत्यता को जानते हुए भी छिपाने की. कोशिश करता हो।

यहां एक विषय ध्यान देनें योग्य है। कुम्भकोण मठ ने चिङ्गलपेट जिला में भी यह लगान 'मे रै" वसूल करने की कोंशिश की थी। कांचीपुर चिङ्गलपेट जिला में है। चिङ्गलपेट के सबार्डिनेट जज अदालत में मुकद्दमा नं 158, 163 एवं 324, 1930 ई० का, फैसला 12—8—1935 को सुनाया गया। इस मुकद्दमे के फैसला से निम्न विषय निश्चित होता है—(1) कांची मठाधीश का नाम 'चिक्कुडयार' (छोटेस्वामी) है अर्थात् आप किसी एक 'दोड्ड उडयार' की श्रेणी से नीचे ही थे। (2) कांची मठाधीश को 'मे रै' (कृषि उपज का 1/96 वां हिस्सा) वसूलकरने का अधिकार नहीं है। (3) कांची मठ के पास कहेजानेवाले हिन्दू राजाओं से दिये हुए 'मे रै' शासन का प्रमाण नहीं है, इस मे रै वसूल अधिकार को मुसलमान राजाओं से परिरक्षित करने का प्रमाण पत्र भी नहीं है, कांची मठ को इस मे रै वसूल अधिकार ब्रिटिश राज्य से स्वीकार किये जाने का प्रमाण पत्र भी नहीं है। सम्भवतः मदरास राज्य इस विषय को जानते हुए भी उत्तर न देने का कारण समझ में नहीं आता। कुम्भकोण मठ की प्रचार पुस्तक जो उक्त मुकद्दमे का फैसला सुनाने के पश्चात् ही प्रकाशित हुआ है उसमें आप लिखते हैं कि 'मे रै' लगान वसूल करने का अधिकार आपको है—'Among the rights conferred by the Chola Kings of yore the one surviving is that of legal collection of a portion of the Government Kist in some taluks near Kanchi. This is called the Merai right and is recognised by successive Civil Courts.' पर अदालत आपको यह अधिकार न होने का स्पष्ट कहता है। इस मिथ्या प्रचार के साथ यह भी प्रचार होता है कि अदालत ने यह अधिकार होने का निश्चित किया है। जानकारी के लिये उक्त अदालत फैसला में से कुछ भाग दिया जाता है—'His case as presented to me was that ancient Hindu Rajas granted to him the merah right over all the villages in the suit and several other villages in this district .... He also says that the Mohammedan Govt. which succeeded the Hindu Kings in this area confirmed the grant and continued it. He further says that when the British Government became the rulers of this country under the treaty with the Nawab about 1797, they recognized and continued the merah grant ... ... At the outset, I may say that no grant has been produced from the ancient Hindu Kings or no confirmation thereof by the Mussalman kings of the country has been produced. No grant of the British Government recognising or granting such a right in terms has been produced ... ... Plaintiff has no other document to show collection at any later time: inference is, he never collected. If the right existed, plaintiff would not have failed to collect all these 130 years since 1800: Inference of the fact which I draw from the circumstance is that the right itself never existed ... . The Sikkudayarswami is the most powerful person and head of a mutt in the Tanjore District and it is hardly likely that if any claims was to be made on this shrotriem it would not have been made long ago .... I note here that this shrotriem village of Adambakkam has been granted to Shaiva Sidhanta Mutt, that is, for a mutt intended for the

exposition of Shaiva Sidhanta ... ... Sankaracharya Swamigal teaches pure monoism which is utterly opposed ... — I have my doubts regarding this account ... ... The entry itself shows it was not made in the regular course of business ... ... '

(19) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश का कथन है कि भोंसला कुलोद्भव छत्रपति शिवाजी के वंशजों द्वारा प्रतिवर्ष दियेजानेवाला सात हजार रुपया आज भी भारत के ब्रिटिश राज्य श्रीमठ को दिया करते हैं। कुम्भकोण मठ प्रचारकों का भावना है कि 'भोंससा कुलोद्भव छत्रपति शिवाजी के वंशजों द्वारा' ऐसा कहकर प्रचार करने से पाठकगण मूलपुरुष छत्रपति शिवाजी ने ही आपको 7000 दिया था ऐसा विश्वास कर लेंगे। मठप्रचारक स्पष्टरूप से किसी विषय का उल्लेख नहीं करते पर भ्रम उत्पन्न होनेवाले शब्दों का ही उपयोग करते हैं। वास्तव तो यह है कि तंजौर राजा (महाराठा राजा) ने आपको एक बार 7000 दिया था। प्रचार में यदि तंजौर का नाम लेते तो आपको 'तंजौर मठ के अधीश जो तंजौर राजा के आश्रय में थे' ऐसा भाव कहीं न उत्पन्न हो इसीलिये मूल पुरुष का नाम लिया गया है।

तंजौर महाराठा राजवंश के अन्तिम राजा शिवाजी का काल 1833—1855 ई० का है और ब्रिटिश इन्डिया सरकार ने 1855 ई० में तंजौर सीमा को ब्रिटिश भारत राज्य में मिला लिया। इस समय कुम्भकोण मठाधीश चन्द्रशेखर V (1814—1851 ई०) और आपके पश्चात् श्री सुदर्शन महादेव (1851—1891 ई०) मठाधीश बने। चन्द्रशेखर V ने 1839 ई० में ईस्ट-इन्डिया कम्पनी सरकार से अनुमति प्राप्त कर (कांची कामाक्षी मन्दिर का निर्वाह सरकार के हाथ में था) कांची कामाक्षी मन्दिर का कुम्भाभिषेक समाप्त कर पश्चात् तिरुची जिला में अखिलान्डेश्वरी की ताटङ्क प्रतिष्ठा भी करके तंजौर लौटे आये। कुम्भकोण मठ का प्रचार है कि तंजौर राजा शिवाजी ने श्री चन्द्रशेखर V को जब आप ताटङ्क प्रतिष्ठा करके तंजौर लौट आये आपको 7000 अर्पण किया था और इसी धन से मठ सर्वाधिकारी श्री गणपतिशास्त्री ने 'चालीस वेली' जमीन करुप्पूर गांव में मठ के लिये खरीदा था। सम्भवतः यही रकम सालाना प्राप्त होने की कल्पित कथा सुनायी जा रही हो।

कुम्भकोण मठ का कथन है कि ब्रिटिश इन्डिया सरकार ने भी सालाना 7000 श्री मठ को दिया करते थे। अर्थात् यह रकम आपको आगस्ट माह 15 ताः (1947) तक मिला करता था। यदि मदरास राज्य से यह 7000 सालाना प्राप्त होने का विषय सत्य है तो राजकीय हिसाब किताबों में उल्लेख होना आवश्यक है। सरकार के आय-व्यय(वजट) विवरण में भी उल्लेख किया जाता है। मैं ने मदरास राज्य का वजट विवरण 1940, 43, 45 को छानबीन कर देखा और कहीं उल्लेख न पाया। मदरास राज्य को लिखकर पूछा तो आप कहते हैं कि आपके यहां यह विवरण प्राप्त नहीं होता–'The information required by you is not available in this department' 7000 देनेवाले विभाग के पास (रेवन्यु विभाग एवं एच. आर सी. ई. बोर्ड) देने का कोई सबूत नहीं है।

(20) वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश ने कलकत्ता कालीघाट पर काली मन्दिर के निकट एक भाषण दिया जिसमें उन्होने कहा कि पशुवली देना शास्त्र सम्मत है और श्री आद्यशङ्कराचार्य शैव होते हुए भी आप अपने भाव से शाक्त थे और पशुवली बन्द कराना वर्णाश्रमियों के विचारों का विरोध होगा। इसका पूर्ण विवरण 'अमृतबाजार पत्रिका' कलकत्ता में दिया है। चूंकि काली मन्दिर के शिवायात लोगों ने कुम्भकोण मठाधीश को अभिनन्दन पत्र दिया था और उनमें बहुतेरे पशुवली के समर्थक भी थे तो श्री स्वामी जी कैसे उनके विरुद्ध भाषण दे सकते थे? जब आप मठाधीश कलकत्ता पहुंचे तो यहां के मठविषयक सनसनी में, पन्डितों एवं सन्यासियों के मठ विषयक प्रश्नों व विवादों के बीच में, आपके मठ प्रचारों के विरुद्ध में लोगों का आपके मठ प्रति तिरस्कार, ऐसी स्थिति में श्री स्वामी जी

और क्या कह सकते थे ? कुछ दिन बाद जब इस भाषण पर आक्षेप हुआ और विद्वानों ने टिप्पणी की तथा श्री शर्मा जी का अनशन व्रत काली मन्दिर में शुरु हुआ तो पशुबलि समर्थन में कुम्भकोण मठाधीश का भाषण प्रमाण रूप में प्रचार हुआ। सितम्बर 1935 ई॰ में श्री स्वामी जी ने अपने पूर्व भाषण में कहे विषयों को निराकरण कर कहा कि उनका भाषण और कुछ था और पत्रों में असत्य प्रचार हुआ। इस घटना का विवरण 'स्वदेशमित्रन्' मदरास पत्र ता: 6-9-1935 के अङ्क में प्रकाशित पायेंगे। जब जब आपके प्रचारों का पोल खुलता है एवं आक्षेप होता है तो अपने द्वारा किये पूर्व प्रचारों का निराकरण कर देते हैं। समयानुसार एक तरफ प्रचार करते हैं और दूसरी तरफ निराकरण कर देते हैं।

मदरास का 'हिन्दू' दैनिक आंगल भाषा समाचार पत्र ता: 13—4—1963 में कांची कुम्भकोण मठाधीश जी का तंजौर में दिये भाषण का सारांश प्रकाशित है, जहां आपने लोगों को आदेश दिया कि लोग चोरी न करें व धोखा न दें, असत्य वचन न कहें और धर्म पथ छोड न जांय चाहे परिस्थिति जो भी हो—'exhorted people not to practise deceit, nor utter falsehood and not to swerve from the path of righteousness under any circumstances.' आपका उपदेश श्लाघनीय है पर दुःख तो इस बात का है कि उक्त कुछ भ्रामक व मिथ्या प्रचारों को पढने पर प्रतीत होता है कि उपदेश अन्यों के लिये है और अपना पंथा और ही कुछ है। स्व आचरण का प्रभाव उपदेश से भी ज्यादा होता है।

46. (क) आचार्य चरितम्–श्री नारायण शास्त्रिभिः प्रणीतम्।
(ख) श्रीनारायणशास्त्रिणा कृत आचार्यचरित्रे विमर्शनाख्यो नाम द्वितीयो भागः।

कुम्भकोण नगर समीप नडुकावेरी ग्रामवासी विख्यात कीर्तिशेषित भट्ट श्री नारायण शास्त्री जी द्वारा रचित 'आचार्य चरितम्' एवं 'आचार्यचरितविमर्शनम्' दोनों पुस्तकों को 1935 ई॰ में काशीधाम में प्रकाशित किया गया था। अनेकों ने इस पुस्तक की एक एक प्रति मांगी थी पर मुद्रित पुस्तक के अभाव से बहुतों को भेज न सके। उस समय द्वितीय संस्करण छपवाकर प्रकाश भी न कर सके। प्रस्तुत पुस्तक तैय्यार करते समय मेरे पूज्य पिता के कुछ गण्यमान मित्रों ने आदेश दिया कि मैं इसे पुनः छपवा दूं। अतः यहां 'आचार्य चरितम्' एवं 'आचार्यचरित विमर्शनम्' दोनों पुनः प्रकाश किया जाता है।

॥ श्रीमदाचार्यचरितम् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ इयमियमत्र विज्ञापना ॥

इह खलु निखिलमहामंत्रसवित्र्या गायत्र्याः प्रदानादानयोः प्रधानाधिकारितया, प्रजापतिमुखकमलसंभूततया, प्रसिद्धयजनयाजनादिकर्मषट्काहतया [षड्कर्मकाहतया] सर्वेषुपर्वस्वरूपतया च "भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीवनाः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः॥" इत्यादिभिः ब्राह्मणानां अखिलोत्कृष्टत्वात्, तेषां च "स्वाध्यायोध्येतव्यः" इति वेदस्य नियताध्यंतव्यत्वात्, ततोपि "अधीत्य वेदं न विजानाति

योर्थं'' "स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्" "योर्थवित्सकलं भद्रमश्नुते" इत्याद्युक्तिरीत्या तदर्थस्य वेदितव्यत्वात्, तस्य च वेदस्य विविधपुराणेतिहासाद्युपबृंहणोपबृंहितत्वात्, तेषामप्युपबृंहणानां अभिधादिविविधविधाभिधानदुरवगमार्थसार्थत्वात्, तेषामप्यर्थानां अतुलप्रतिभावदेकगम्यत्वात्, तस्याश्च प्रतिभायाः बहुविधशास्त्रपरिशीलनजन्यत्वात्, तेषां च शास्त्राणां अनन्तहायनाध्ययनसाध्यत्वात्, तस्य चाध्ययनस्य जन्मान्तरशतनिचितचिरसुचरितभरसुलभत्वात्, तत्वस्य च नियतिवशंवदत्वात्, तद्वतामतद्वतां, विदुषामविदुषां, सामान्यतः "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्" इत्यनेन सद्गुरुसमाश्रयणस्य उक्तत्वात्, तेषां च सद्गुरूणां कालवशात् दुर्ज्ञेयत्वात्, तेन च तद्विमर्शस्य अवश्यकार्यत्वात्, ततश्च गुरोस्सदसत्वयोः अवश्यविमृश्यत्वाच्च पूज्यैरिदमिदमाचार्यचरितमाकर्णनीयम् ॥

अपिच अधुनैव कलिराकलितसमग्रसामग्रिरवनिमवतीर्णः परिपूर्णतामवगाहते। तथा हि—अस्य बीजावापः श्रुतिशिरोवैमुख्योत्पत्तिः, अंकुरः सुधीसुभाषितविरतिः, अंघ्रिराचार्यनिराकृतिः, आदिपल्लवः स्वैरमतिः, अग्रकाण्डः परमतपरिचितिः प्रकाण्डः परिपन्थितन्त्रविस्तृतिः, प्रतानः स्वजातिसमयधिक्कृतिः, प्ररोहः परलोकभयच्युतिः, पलाशमनार्यसत्कृतिः, प्रथमकोरकः पारदार्यपरद्रव्यापहरणरतिः, प्रसूनमास्तिक्यक्षतिः, फलमवार्यनास्तिक्यानुरक्तिश्च, कलितरोरभवत्। हा हा, महैन्द्रजालिकेन निखिल-दर्शनान्धङ्करणौषधेन विमूढमनसस्तेन कलिना प्रायशः प्राणिनः प्रकृतेः, पीना इव पद्धतेर्जातूलेन, गाव इव मेधेराभीलेन, शशा इव शाद्वलभुवश्शशादनेन, पौरा इव पुरः प्रतीपभूपेन, [illegible]नुपनीताः, श्मशानवद्यामहृद्यामसेव्यामवेद्यामनिवेश्यां च काञ्चन काञ्चनीमिवाकिंचनीं दशामनुभवन्ति ॥

तथा हि कतिपये प्रभवो न केवलं पण्डितान्नाभिनन्दन्ति। अपि तान्निन्दन्ति। अपि तान्भर्त्सयन्ति। अपि तानभिगर्जन्ति। अपि तानवमन्यन्ते। अपि तानप्यनुप्रभुतामभिनयन्ति। स्वयमपि यथातथं न जानन्ति। स्वतः स्वरूपविदोपि तिरस्कुर्वन्ति। स्वैरमाचार्यान्विवर्जयन्ति, स्वच्छन्दमन्यानार्जयन्ति। न श्रुतिः, नापि स्मृतिः, न पुराणं, नेतिहासः, नागमः, नाप्तवादः, न वेदांगानि, न मीमांसा, न नयविस्तरः, न धर्मशास्त्रम्, न समयः, न मतं, न जातिः, न वर्णः, नाश्रमः, न नियमः, न दैवतं, न गुरवः, न वृद्धाः, न सुहृदः, नात्माप्यन्ततः, प्रमाणममीषाम्। एषु कतिचन मनोगतमीदृगाविष्कुर्वन्ति। परे तु सुचरितमाचरन्त इव, सूनृतमुदाहरन्त इव, सर्वधर्ममावहन्त इव, शर्वमुपचरन्त इव, शर्वाणीमपगच्छन्त इव, तदा यतनानि गच्छन्त इव, तदर्चां कारयन्त इव, विप्रान्मानयन्त इव, गुरूनुपचिन्वन्त इव, केवलं प्रभुताप्रदर्शनायैवमाचारमभिनयन्ति। अपि च तेषामग्रजन्मावमाननमेव नियमविधिः, अनार्यानुशासनमेव निगमवचः अर्थकामावेव पुरुषार्थौ, अतिकुहका एवाभिमताः, अभिजाता एवाभियातयः, अभिज्ञा एवानभिनन्द्याः, अङ्गना एव देवताः, आम्नाया एवाश्लीलसंल्लापाश्चेति नियमेनानुमीयन्ते। किमेभिराहतजलूकावृत्तिभिरब्रह्मण्यैर्ब्राह्मणब्रुवैः ॥

ते हि केचन ये च कलहंसा इव कङ्केषु, कलकण्ठा इव काकेषु, कलरवा इव कुक्कुटेषु, कपिला इव कासरेषु, कृष्णमृगा इव कौलेयकेषु, वाजिन इव वालेयकेषु, शशा इव शरारुषु, कथमपि तेषु परितस्तस्थिवत्स्वपि, स्वकीयानि न वर्जयन्तो मतानि, नाधिक्षिपन्तो गुरुजातानि, नोत्सृजन्तः शीलानि, न निन्दन्तः शास्त्राणि, न भिन्दन्तः श्रुति-शिरांसि, न छिन्दन्तः सुचरितानि, नाचरन्तो दुश्चरितानि, नोच्चरन्तो गुरुदेवद्विजादिदूषणाद्यश्लीलवचनानि, मूर्तिमन्त इव धर्मपुरुषाः प्रश्रितस्वभावाः प्रभवः, सांप्रतमस्मामिस्स्माणीयाः, तदेभ्यः साञ्जाय, तेभ्योपि दौश्शील्याद्यनाविष्करणाय, कृतनमस्क्रियः किंचिदिवाचार्यचरितं यथाचरितमिह वच्मि। सत्कर्मप्रवृत्तानां सत्यवादिनां च विशेषतः परस्सहस्रं पण्डितास्सहायतां प्रपद्येरन्निति मनसिकृत्य कृतकृत्योहमत्र। "यदि दोषा दूष्यन्तां, यदि गुणा गण्यन्तां" इति किशोरचापलेन किंचिदिव सधीरमिदमुदाहर्तुमुद्यतोस्मि ॥

सहृदयविधेयः,

कुम्भघोणम् नारायणशास्त्री

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरितम् ॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय सदात्माद्वैतवेदिने ।
श्रीमते शंकरार्याय वेदान्तगुरवे नमः ॥

पुरा किल पराक्रममाणे पृथिवीमखिलसुवरितकालमृत्यौ कलौ, दुरासदेषु सूनृतवादिषु, दुरभिभवेषु दुर्मतेषु, दूरमुत्सारितेष्वभिजातेषु, दूषितेषु महादर्शनेषु, दुर्लभेषु महाहवेषु, तथागतपथागतहृदयेषु आनृपालमाचण्डालमखिलेष्ववनिजुषां निवहेषु, दुरापेष्वसंकीर्णेषु, दुर्विभजेषु विप्रेषु, दुरालोकधरणिदुर्दशानिशामनदूयमानमानसा दिवौकसो दिवस्पतिबृहस्पतिप्राग्रहाराः हरासनपरिपूतमतिललितगणयुवतिवैलासधामानं कैलासनामानमचलमाप्नुवन्तः समतीतवाङ्मनससरणिं आहतऋक्सामघोषं अपगतपुरुषायुषपरिमेयभावं आहितब्रह्मवर्चसोपचयं अत्युल्लसदनादिस्त्रीपुंसगार्हपत्यं अनधिगम्यनक्तंदिवमस्य शिखरमधिरूढाः शशिशकलशेखरमाम्नायशिरोभिरुपश्लोकयांचक्रिरे ॥

तदनु तदनुश्रवोद्धूतनवनवनवनारवमुखरितहरिन्मुखान् ऋभुक्षिमुखानमरप्रमुखानखिलानवलोक्य, करुणार्द्रचेता भगवान् भवानीपतिर्भुवनभावितमखिलमुदन्तजातमधिगम्य, निरुपधिस्नेहदयाविस्फारितेन विकसितसिताम्भोजपलाशशोभिना, वर्षतेव सत्वसंचयं, विभावयतेवाद्वैतवर्षं, वितरतेव हर्षं, विसृजतेव सकलभुवनपावनीममरधुनीं, वितन्वतेव श्रितजनमनश्चकोरनिकराह्लादिकां कौमुदिकां, अमृतमयूखेन चक्षुषैकेन, निकटस्थितं, 'अयि, परमानन्दपारावारमधितिष्ठन् न जानासि दुर्दशामवनेः' इति संधुक्षयन्निव रजतवेत्रलतया, कुमारमवलोकयन्, "अवतरतु भवानवनीं; आतनोतु जैमिनीयतन्त्रमखिलजनादरणीयं; आस्थापयतु कर्ममार्गनैरत्यमखिलजनानां; आचरतु स्वयं च यथास्थापितं वत्सोऽपि" इत्यादिशन्, अन्यतः स्थितमखिलभुवनपालनबद्धदीक्षमधोक्षजं, "अयि त्वयि भुवनभरणनियुक्तेऽप्येवमुपप्लवो भुवः इति परिहासास्पदमिदम्" इति दर्शयतेव हसितेन, सजवमवनिमवतरितुमाज्ञापयन्, "अहमपि महीमवतीर्णस्तूर्णमर्णवमिव कलानिधिरद्वैतमुद्वेलयिष्यामि" इति घनाघनस्तनितगभीरया गिरा सुरानाश्वासयन्, तानपि प्राचीनबर्हिर्मुखान् बर्हिर्मुखानात्मकार्यसाहचर्याय प्रथममेव पृथिवीमवगाढुमाज्ञापयन्, आर्यया सह सुपर्ववर्यकृतसपर्यस्तिरोदधे ॥

तदनन्तरमनन्तरमनन्तरञ्जनमजन्तादिषु वचनमिदमाम्नायलम्बमालम्ब्य यथायथमवनिमवतीर्णेषु, तरुणशशिशकलशेखरस्स भूनभावनो भगवान्हरः, केरळेषु शशलाग्रहारे चिरात्तपस्यतः सुत्युः सत्यपरस्य स्वपदपद्मपंजरराजहंसीकृतमानसस्य सततात्मानुसंधाननिरस्तजीवब्रह्मभेदस्य ब्रह्मण्यस्य ब्रह्मणः शिवगुरोरार्यासमानायामार्याभिधानायामतिसाध्व्यामबलायां आम्नाय इव मूर्तिमानर्थ्यसंज्ञः शंकरनामा प्रादुरासीत्। स च शंकरः स्वयमनपायनित्यसंस्कारोऽपि तानवीं मानवीं सरणिमनुसरन्नाजातकर्मोपनयनमम्बकाहितमखिलमपि संस्कारजातमभ्युपेत्य, विद्येश्वरोऽपि गुरुमुखादिव समादाय समुपस्कृतत्रयीपद्यास्सदन्तर्वाणिहृद्या निरवद्याश्च विद्याः, प्रबोध इव वपुष्मानाचार्यः, तदनुशिष्टोऽपि विसृष्टगार्हस्थ्याभिलाषः, सवित्र्याः सनीडमतिसुखमासामास। ततश्च जातु तस्मिन्नवतीर्णे चूर्णीसलिलमवगाहाय, चरणमवलम्बितवति च दुष्परिहारे कर्हिंश्चिदवहारे, "मातः, इतोऽपि वा मामनुजानीहि संयमाय" इति स्ववचनपरवशहृदयजनितदयया मरणादप्यात्मजन्यस्य संयमो वरीयान् इति विचारयुतया तया वितीर्णाभ्यनुज्ञे सद्यः प्रैषोच्चारणपरायणे च, साक्षादिव भवितव्यताग्रहेण दुर्ग्रहग्राहकरग्रहेण विसस्रजे तत्कमलमृदुलं चरणयुगळम् ॥

पश्चात् स एष विपश्चिदग्रणीरधिष्ठितबदरिकाश्रमानामश्रमोचितानामिव तुरीयाश्रममहिम्नां श्रीगोविन्दभगवत्पादानामनुग्रहेण गृहीतयथाक्रमसंन्यासः समधीतसकलाम्नायशिरश्शेखरस्ततः प्राप्ताभ्यनुज्ञः तत्रभवद्भ्यः परमगुरुभ्यः परिव्राजकपरिवृढेभ्यः श्रीगौडपादाचार्यपादेभ्यः समुपलब्धाधिकारः, कृष्णद्वैपायनवदनारविन्दमकरन्दबिन्दुसन्दोहस्यन्दायि-

तस्य ब्रह्मसूत्रप्रपञ्चस्य कृतकेतराणामप्युपनिषदामनुशिष्य भाष्याणि, आरचय्य चोपदेशसहस्रप्रमुखान् अतिसुखावगम्यमृदुलपदनिबन्धान् प्रबन्धान्, अमीषां च जगति वितिस्तारयिषया विश्वंभरांशावतीर्णपद्मपादमुखानामन्तेवासिनां आहितशान्तिपूर्वरचनप्रवचनः चिरमतिसुखमविमुक्तमध्यमध्यासामास। अत्रान्तरे परावरज्ञः प्रपिपंचयिषुरिवास्य महिमसरणिं, अधिजिगमिषुरस्य मनीषां, अतिजरठवाडवभूमिकस्समुपसृत्य, संशयित इव क्वचित्क्वचित्कठिनीयसामात्मसूत्राणामाशयमपि विस्तरितुमनुयुज्य, तदर्पितैरमृतलवैरिव प्रतिवचोभिराह्लादितहृदयः शंकराचार्येति तमामन्त्र्य, "विद्वन्, इतोऽपि शरद्षोडश भुवि भूयाः; भाष्यमेतदनुशिष्यानशिष्यानुशिष्याः; दुर्जयो दिशो दश जीयाः; परममुना परिव्रज्यापरिशुद्धेन वपुषैव गिरीशगिरिं व्रज्याः" इति च वितीर्य वरान् विरिंचनेन सहैव प्रतस्थे भगवान् वेदव्यासः॥

तदनु बादरायणचोदनादेव समाचिचरिषति दिक्चक्रवालविजयमाचार्यचक्रवर्तिनि, पुरैव कुमारांशावतीर्णः कुमारिलः कलितनिखिलदुर्मतमर्मनिर्मथनः, सौगतानामपि दुर्गतानि वितीर्य, प्रायश्चित्तकाण्डप्रामाण्यप्रदर्शनाय गुरुमतप्रत्यादेशप्रबद्धमात्मनः पाप्मानमपनुनोदयिषुः, उज्ज्वलतुषज्वलनमध्यमध्यास्त इति कर्णाकर्णिकयाऽऽकर्ण्य तूर्णं तस्याभ्यर्णमभ्युपेत्य तं "आर्यं तुर्याश्रमस्थापनार्थमागतोऽहम्" इति धीरमुदाहरति, तेन च "कुकूलानलस्थितस्य मम पच्यन्त इवाङ्गानि, क्वथ्यन्त इव मर्माणि, दह्यत इव हृदयम्, प्लुष्यत इव विलोचनम्, उज्ज्वाल्यत इव वपुः, तदक्षरायापि जिह्वामुत्क्षेप्तुमनलमहं, तद्विवदतु भवान् मदन्तेवासिनामधिकेन मीमांसामदाधिकेन मण्डनमिश्रेण; जीयतां यथाकामं; अद्य परमनुगृह्यतां, उद्ध्रियतां विपन्नोऽयं जनः" इति विलोकनमात्रोत्पन्नविज्ञानेन विज्ञेन तेन प्रार्थ्यमाने दयार्द्रचेतसि, तस्य तत्त्वो देशमाधाय प्रस्थितवति मण्डनस्थानभूतं प्रथमलक्ष्यतामयासीत्प्रथितं विद्यालयनगरम्॥

ततः स मस्करिमहेन्द्रः, शारदावतारजातया सरसवाणीनामधेयया जायया सह सांयम्यमनवरतमकारणमकरुगमाक्षिपता मण्डनेन विवदिष्यन्, अदूष्यमपि दूष्यशतनिचितं, अतुलमपि दृश्यमानवहुतुलं, अनुतरकलिप्रपंचितदर्शनमपि आदृतकृतत्रेतानुबन्धबन्धुरं, सिन्धुर इव गम्भीरमम्भः पूरमगारममुष्य प्रविश्य विवदितुमवश्यं, 'अवश्यममुना विवादः कार्यः, तदार्या च तव भार्या युवयोस्तटस्थमर्यादामुररीकुर्यात्" इति कृतस्थैर्यमभिनिमन्त्रितेन पाराशर्येण "जेतुराश्रममन्योऽप्यनुप्रविशेदावयोः" इति प्रकटितपथेऽपि शपथे, तमहार्यधैर्यमहार्यवर्यमिव कदर्थयितुमना मनागिवाधरं विधुन्वन् इयतैव दवदहन इव तस्मिन्नमिव्यक्तच्छटच्छटारवाटोपे पटुतरम द्वैतमतमाक्रन्दकन्दममन्दमसन्दमभिदिधक्षति कर्मनयमर्ममण्डने मण्डने तदमृष्यन्नतिरुष्यन्नतिविकटपटुनटनजटाटनजटाटनपरामरकल्लोलिनीसमुल्लोलकल्लोलहल्लोहलया जृम्भितयेव झंझावातलेखया वितीर्णा द्वैतवर्षप्रकर्षया गिरा निराचकार तन्त्रमेघानुबन्धगन्धबन्धुरमस्य गन्धसिन्धुरं। तदा तदभिषङ्गजडे शपथपथविगाहनाभिमुखे संयियांसति सकलतन्त्रवल्लभे स्ववल्लभे, स्वयमपि स्वयंभुवः पदमवगाढुमनसि दिवमुच्चलन्त्यामुभयभारत्यां, एव परिव्राट्सम्राट् स्वेनैव "भद्रे! विवद विस्रब्धमिह स्थाने पत्युः। अपिच मामत्ययन्ती वल्लभमास्थापय सुस्थमत्र गार्हस्थ्ये पुनः' इति सन्धुक्षितायां अतितितिक्षया द्रक्ष्यामीत्यभिधाय विविधदर्शनप्रसंगमुत्पाद्य विवदन्त्यां सलीलममुया विवदितुमुपचक्रमे॥

अनन्तरमनितरधृष्यमेनमाकलय्य कलातन्त्रावतारभाजि भारत्याम्, आचार्यचरणा विहस्य, "प्रशस्ये! दास्यसि यदि मह्यमणीयसीं कालकलामस्यापि पारमधिगन्ताऽस्मि विवदनवनस्य" इत्यभिधाय, विधूय विवदनं, विनिष्क्रम्य विश्वरूपसदनात्, निशम्य च पञ्चतामुपयान्तं, अतुलितप्रपञ्चवैभवं, अबलाशतसहस्रवल्लभमनुत्तमामिकं, अमरुकं, अविरतकन्दलदमन्दानन्दकन्दलोऽपि तत्कालमभिनवमभिनन्द्य भृशं, आहूय शिष्यान्, "इदमिदं वपुः अपि स्यादस्य विपदविलम्बमासूचयत मह्यम्" इत्यादिश्य सत्वरमवनिपालवपुरपरपुरप्रवेशविद्यया चतुरमविशत्। अथ धराधिपोऽपि मूर्छितदेहयमुदस्थात्। ततः प्रीत्या प्रत्युद्गम्यमानो मन्त्रिभिः, प्रश्लिष्यमाणः प्रियाभिः, प्रसाद्यमानो राजकैः, प्रस्तूयमानो वन्दिभिः, प्रगीयमानो गाथकैः, प्रशस्यमानः पौरैः, प्रसृश्यमानो वृद्धैः, प्रणम्यमानः किङ्करैः, कुतूहलिजनसंकुलवीथीवरं पुरमवाप्य, मृतोत्थिततया नवनवमनुरागमादर्शयता वनिताजनेन रममाणस्सततमनुरहसमवगम्यमखिलमप्यधीयानः किंचिदिव रक्षामपि वीक्षमाणः, कृतकृत्यः, कलाकलासु नृपालतन्त्रेषु च निपुणतिलकः समभूत्॥

ततस्तथास्मिन्नत्यमरुकमन्तः पुरं पुरमपि परितोषयति, परस्परमुदितशंकास्तदमात्यावरोधाः ' अयि! कोऽप्ययमदृष्टचरो महापुरुषः। तदन्यदेवास्य कौशलं कामन्दकीये, पुनरन्यदेवास्य नैपुणं कोकककलायां, क नाम परेतः पुनरुत्तिष्ठति? तदखिलं अस्य माहात्म्यम्। अतः स एव स्थिरीकरणीयश्शरीरेऽस्मिन्" इत्याद्यालापैराहितमन्त्रा त्रिभुवनभयंकरान् किंकरानामन्त्र्य, "भो भटाः! भुवि विचिनुत, विचारयत, वीक्षितमखिलमपि कुणपमनुपद-मुज्वालयत, यदि कोऽप्यवशिष्टः शवः स वः स्वसारूप्यमर्पयेदिति निश्चिनुत" इति परुषमादिश्य विसर्जयांबभूवुः॥ अथ यथादिष्टमनुतिष्ठत्सु तेषु शांकरमपि वपुरवस्कन्द्य शिष्येभ्यस्तदाशुशुक्षणिभक्ष्यतामुपनिनीषत्सु, पद्मपादमुखा यतिशेखर-शिष्यास्तमर्थमाचार्यायान्यापदेशतस्सूचयामासुः। तदनु तदभिधानप्रबोधितः प्रभुरनुपदं प्रभोर्वपुर्विहाय विहायसाधिगम्य स्वमनलसात्क्रियमाणमनुग्रहेण लक्ष्मीनृसिंहस्य यथापुरमाधाय पुरमतिलघु मण्डनपुरमवाप्य विद्यालयमात्मनः पुनरागमं प्रतिपालयन्तीमुभयभारतीमधिवात्स्यायनतन्त्रमुज्जृम्भितैरनुपमवचोगुम्भैरचिरादजैषीत॥

अथ सन्तुष्टान्तरङ्गां सरसवाणीं, "अयि मातर्वसतु भवती नियतमाश्रमे मम" इत्यभ्यर्थ्य परिपूर्ण-मनोरथस्सुरेश्वरमपि संयमिनमारचय्य ताभ्यामात्मीयैरन्तेवसद्भिश्चमत्क्रियमाणसन्निधिः, वैभाण्डकेरत्रभवतो महर्षेः ऋष्यशृङ्गस्याश्रमोपशल्यमुत्तुङ्गतुङ्गातरंगिणी तरङ्गवातशीतल पर्यन्त भूतलं शृङ्गगिरिमासाद्य सद्यः समुत्पाद्य कंचन मठं, प्रतिष्ठाप्य तत्र शारदां, व्यवस्थाप्य वाणीमहामहान्, आरचय्यापरमपि विद्यापीठं, अधिष्ठाय च स्वयं तमन्तरमिवान्तरात्मा अनुशिष्य च शिष्यानात्मभाष्येण, अध्युष्य च कतिचिदहानि वितीर्णव्याख्यानसिंहासनाभिधाने तदधिष्ठाने, संस्थाप्य च सुरेश्वरमखिलहरिज्जिगीषया स लोकगुरुरतः प्रतस्थे। अथो यथोद्दिष्टमनुतिष्ठता क्षेत्राटनमवजगाहे कांचीनगरी कर्मन्दिशेखरैः। तदा तदातनेन राज्ञा राजसेनेन नगरमभिनवतयाऽत्र निर्माप्य, प्रकल्प्य च श्रीमदेकाम्रनाथस्य श्रीकामाक्ष्या वरदस्य चायतनानि यथाविधानं, विधाय च तामुग्रकलाममलचिद्रूपामधिष्ठितगुहामार्यां त्र्यक्षवामाक्षीं कामाक्षीमुपोढप्रतिकृति, वराकृतिं तदुग्रताशमनाय च निधाय चक्रमतोऽन्यतः समुदचलत्॥

इत्थमनवहित्थमविकत्थमखिलामवनीमटन्निखिलदुर्मतमर्मनिर्मथनान्याधाय स्वस्ववर्णाश्रमधर्मसहकृतमेवाद्वैत-मादरणीयमखिलैरिति जनानादिश्य, शैवप्रमुखानि षण्मतानि निरूप्य, द्वारवत्यां हस्तामलकं, जगन्नाथे पद्मपादं, बदरिकाश्रमे तोटकं च निक्षिप्य, तदद्वैतमुद्वेलयितुमेनांश्चाज्ञाप्य, आसेतोरा च शीताचलात् स्थितान् देहिनश्च स्वे स्वे वर्त्मनि नियमयितुं नियन्तुं च मुख्याधिकारमन्तेवासिमुख्याय शृङ्गगिरिकृतनियतावसथाय सुरेश्वराय समर्प्य, काश्मीरमवाप्य, सर्वज्ञपीठमधिरुह्य, दत्तात्रेयगुहामवगाह्य, सशरीरः प्रत्युद्गतप्रमथपरिवृढपरिवृतपरिसरः पुरहरगिरिमवाप ब्रह्मविद्यावरः सकलभुवनाभयंकरः शंकरः॥

आचार्यचरितं संपूर्णम्॥

ॐ शिवाभ्यां नमः॥



शिवाय नमः

॥ श्रीमदाचार्यपादेभ्यो नमः ॥

कुम्भघोणनगरसमीपस्थकावेरीपत्तनाख्यग्रामवासिना विख्यातकीर्तिशेषितभट्टश्रीनारायणशास्त्रिणा कृत आचार्यचरित्रे विमर्शनाख्यो नाम द्वितियो भागः यथावदधस्तात् प्रकाश्यते सज्जनानां सुबोधाय—

तदादि तदा तदा तदानींतननानामासेतुशीतशैलमाकलितसंस्थानानां जनानाम् आब्रह्मशूद्रमखिलानाम्, अखिलीकृतानि मतानि, अनल्पितानि कल्पितानि, अदुष्प्रचारान् आचारान्, अदुरवस्थाः व्यवस्थाः, अविभाषाः परिभाषाः, असङ्कीर्णान् वर्णान्, अविस्मृतीः स्मृतीः, अनल्पश्रुतीः श्रुतीश्च कारयन्तः, संततम द्वैतम द्वैतमु द्वेलयन्तः, समुद्बोदयन्तश्च प्रबोधम्, आसुरेश्वरादाश्रितशृंगगिरिपीठा नित्यबोधघनप्रभृतयः नियमिशिरोमणयः परंपरीणाम् प्रजाधर्मरक्षामक्षीणमाचरन्तस्सन्ति। अत्रान्तरे गोत्राधिपत्यमुपेयिवत्सु परत्रत्येषु पाश्चात्येषु विजातिषु नृपतिषु, देशा द्देशमटन्तीः प्रकृतीः प्रतिषिध्य क्वचिदेव सनिर्बन्धमवरुन्धत्सु सत्सु, द्विजादिषु च तथा निरुद्धेषु, विनष्टेषु, च वैदेशिकविबुधविवादेषु, कतिचन यतिवरास्तामवनिजानाश्रित्य, स्वयमपि शृंगगिरिपरम्परानुषङ्गिण इति वदन्तः, तेषामिव स्वेषामपि श्रीमुखानि प्रवर्तयन्त;, प्रजाः प्रलोभयन्तः ततस्तत इतस्संचरितुमारेमिरे। तदानां तदानींतमा नियमिनः केचित् कल्पितमपि स्वमनितरदेश्यमशृङ्गगिरिपरम्परीणमात्मीयमेवेति मठं अभिव्याहरन्तः, प्रसभमखिलमपि भगवत्पादबिरुदजालमपहरन्तः, स्वयमपि शङ्कराचार्य इति महन्नाम समुच्चरन्तः, तदनुकूलमुद्रामुखानि सर्वतोमुखानि श्रीमुखानि सततमुपाहरन्तः, पीठमप्यात्मनामनादिमं विकानुषङ्गिणमखिलजनासिवन्यमाश्रितजनवितीर्णकामकोटिम् कामकोटिपीठमेव समुदाहरन्तः, प्रमाणग्रन्थप्रतिपादितानाम् वचसामधिक्षेपभूयिष्ठम् व्यवहरन्तः, कांचीमधिसंचरितुम् उपाक्रमन्त। तदनु केनचित् कारणेन ततो निष्कासिताश्चोलानधिगम्य क्वचित् मरुद्वृधारोधसि कञ्चन मठमुदपीपदन्। तदादि यथा शृङ्गगिरिपरम्परीणम्, निरुपितनिखिलविशेषतया वा, नियमिभूमिकतया वा, निखिलवशीकरणनिपुणतया वा, निस्तुलनामावहतया वा, निरुढमठतया वा, निचितबहुद्रविणतया वा, निर्मलचरिततया वा, निर्जितविवादितया वा, निर्वैदेशिकयोगतया वा, नृपासिमततया वा, निरुपमविश्रुततया वा, निरुपरोधितया वा, निस्सारतया वा, निष्पन्दतया वा, निरतिशयख्यातिविरहिततया वा, नैकटिकविद्वदसिमततया वा, नियमितवर्णाश्रमधर्मतया वा, निसृष्टभूरिभूरिदानतया वा, न जानीमहे कया वा निगूढनिजचरितास्सकलजनग्राह्यवचसः सुखमति चिरमविप्रतिपन्नमवसन्। अथत्वेऽतिबहुलतया वा पण्डितानाम्, अतिसुलभतया वा देशवृत्तावगमनानाम्, अत्यमर्षणतया वा परेषाम्, अवावदूकतया वा स्वेषाम्, अदक्षिणतया वा अध्यक्षाणाम्, अतिमिन्नतया वा मठमर्य्यादानाम्, अबाधिततया वा प्रकाशनानाम्, अधिगततया वा प्राक्तनप्रबन्धानाम्, अपरिचिततया वा वशीकरणशक्तेः, अतिस्फुटतया वा निजागमस्य, अप्रमन्नतया वा पुंजीकरणाय, अनसिमानतया वा तत्त्ववदशाम्, असाह्यतया वा विविदुषाम्, कया वा यथाचरितमखिलमपि चरितमतिविशदमभूदापण्डितमाप्राकृतमखिलस्य। तथा सत्यधुनापि मधुनेव पिण्डखण्डास्वादिनः, विधुनेव व्यजनवातसेविनः, शीधुनेव वनिताधरामृतपायिनः अन्धुनेव तृणाग्रतुषार तोषिणः, सिन्धुनेवान्धुदर्शनानन्दिनः कर्कन्धुनेव कक्षचयभक्षिणः, प्रत्यप्रसंशयाविष्टस्य विष्टपस्य तत्स्थैर्यसमुपष्टम्भकेन, अनन्तानन्दगिरीयोपधिना शङ्करविजयेन प्रमाणमात्मनामिति मुद्रापितेन मभसावि :—

"तमामूलाग्रमबद्धमितरप्रबन्धविरुद्धमलौकिकं वैदिकसमयनिबद्धधम् अतिविरुद्धमपि च मुहुर्मुहुः प्रब्रूमः च वयामः। तन्न सम्प्रतीमस्सम्प्रतीममनन्तानन्दगिरीयम्" इति विवादविशारदा वदन्ति तदिह संग्रहेण तैः प्रतिपादिताः केचन विरोधास्तस्य परेषामपीहाधस्तान्निरूप्यन्ते—तदवधीयताम् धीरधीभिः। यथा ननु शङ्करकथायाम् ज्ञेयभागाः पञ्च, ते यथा—

1. शङ्करःक्वजातः ? कस्य ? कस्यामिति ?
2. क्व प्रथमः पीठः ? कस्तत्र निहितः ?
3. कियदायुराचार्याणाम् ?
4. क्व ? कथं गतः परोक्षताम् ?
5. कति पीठाः ? क्वा तेनाक्रियन्त ?

इति तत्रायं विचारयामहे।

शिवरहस्ये नवमांशे षोड़शाध्याये "केरले शशलग्रामे" इति देशस्य केरलत्वं, स्थलस्य शशलाभिधत्वमप्युक्तम्। शशलमिति कालटया एवापरपर्यायः। माधवीये द्वितीयसर्गे प्रथमश्लोके "ततो महेशः किल केरलेषु" इति देशस्य प्राग्वदुक्तम्। तृतीयश्लोके "कालटयभिख्योऽस्ति महान् मनोज्ञः" इत्यनेन कालटयभिधानः कश्चित् अग्रहारः कथितः। तदिदमवतारस्थलमिति। जनकश्च तस्मिन्नेव सर्गे 71 तम श्लोके—"लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारम् श्रीपार्वतीव सुखिनी शुभवीक्षिते च। जायासती शिवगुरोर्निजतुंगसंस्थे सूर्ये कुजे रविसुते च गुरौ च केन्द्रे॥" इत्यनेन शिवगुरुरित्युपन्यस्तम्। 72 तम श्लोके—"दृष्ट्वा सुतं शिवगुरुः शिववारिराशौ" इत्यादिना तस्य सन्निधिस्तदभिनन्दनं चोदितम्। तथैव शङ्करविजयविलासेऽपि पंचमाध्याये चतुर्थश्लोके—"विद्वत्ताम् केरलानां च पावनत्वविधित्सया" इति देशः प्राग्वदुक्तः। तत्रैव षष्ठश्लोके—"अलकेव पुरी यत्र कालटीति प्रतिश्रुता" इति स्थलस्य तद्वदुक्तम्। तत्रैव 39 तम श्लोके—"प्रसूना तनयम् साध्वी गिरिजेव षडाननम्,"। इति। 52 तम श्लोके—"ततः श्रुत्वा पिता सोऽपि निधिं प्राप्येव निर्धनः।" इति पितुस्सान्निध्यादेः पूर्ववदुपपादनमस्ति। तथैव नवमाध्याये चतुर्थश्लोके—"जातोऽहम् केरले देशे श्रीमच्छिवगुरुद्विजात्। किशोरता दशायां मे तातो लोकान्तरं गतः॥" इत्यनेन च जननात् परमेव पितुरुपरतत्वमवगम्यते। तथा मणिमंजरीमेदिन्यामपि प्रथम सर्गे 35 तम श्लोके-"श्रीकालटीपत्तनवासिनो जनाः" इति कालटीप्रसक्तिः। प्रथमसर्गे 62 तम श्लोके—"शिवगुरुरपि जायया समेतः" इति। 63 तम श्लोके—"तस्या गर्भपुटीपयोधिकुहरादाविर्बभूव स्वयम्" इति च। 64 तमश्लोके—"ततः पितामुष्य च जातकर्म" इत्याद्युपन्यासेन जननकालेऽस्य पितुः सान्निध्यादिकमुक्तम्।

इतिसत्यनन्तानन्दगिरेः परमपरः पंथाः, स यथा (द्वितीयप्रकरणम्)-श्रीचिदम्बरमवतारस्थलमिति पिताऽस्य विश्वजिन्नामाभसुर इति माता च विशिष्टाभिधेति सोऽपि सुशीलामपितां विहाय तपसे वनं ययाविति च ततः

"चिदम्बरेश्वर कृत्वा यजमानं द्विजोत्तमाः।
तृतीयादिषु मासेषु चक्रुः कर्माणि वेदतः॥
प्राप्ते तु दशमे मासि विशिष्टागर्भगोलकः।
प्रादुरासीन्महादेवः शंकराचार्यनामतः॥"

इत्युपन्यस्तम्। अतितराम् इदम् न संगच्छत इति विदन्तु विद्वांस एव। आस्तामत्र शङ्करकथा विरोधः प्रकरणे-पुराणादिविरोधोऽपि दृश्यते। तद् यथा—"परन्तु क्षीणेपुण्ये लुप्तधर्मतया क्लेशभाजि कलियुगे". इत्यारभ्य कलिम् निरूप्य कतिपयैर्वचनैः ततस्तद्दुद्वीक्ष्य दूयमानमानसेन निजसूनुना समीरितस्सुरेश्वरः परमेश्वरमुपेत्य प्रकृतमुपश्लोकयामास। तदनु तदनुनयप्रीत मानसश्शंकरः "ब्रह्मन् यथासुखं गच्छ सन्तुष्टोऽस्मि तवोक्तितः। शंकराचार्यनाम्नाहं संभवामि महीतले॥" इत्याद्युक्त्वा निधिं विसृज्य—"ततः सर्वात्मको देवश्चिदम्बरपुराश्रितः। आकाशलिंगनाम्ना तु विख्यातोऽभून्महीतले॥" इत्युक्तम् भवति। इदं शङ्करसंहितायामुपदेशकाण्डे क्षेत्रप्रकरणे, सूतसंहितायां क्षेत्रखण्डे, सनत्कुमारसंहितायां मलयाचलखण्डे च पुण्डरीकपुरमाहात्म्ये च, व्याघ्रपुरमाहात्म्ये च कथितेन चिदम्बरमाहात्म्येन न संगच्छते, हालास्यमाहात्म्येपि—

"कृते षोडश लीलाश्च त्रेतायामपि षोडश।
द्वापरे षोडश तथा षोडशैव कलौ युगे ॥"

इत्युपक्रम्य "या लीला लोकविख्यातास्तासां क्रम इहोच्यते" इति क्रमादुक्तासु कृतयुगलीलासु प्रथमासु षोडशस्वेकतमां षष्ठीम् लीलाम् अवलोकयति पण्डितजने—

"कांचने सदसि ख्यातं तेन ताण्डवमन्वहम्।
दृष्ट्वाहम् नियमेनैव भोजनं च करोम्यतः॥" इति
"चिदम्बरम् हृदाकाशं विश्वरूपस्य वेधसः।" इति
"हृत्पुण्डरीकम् संप्रोक्तं पुण्डरीकपुरं त्वया।" इति
"हृत् पुण्डरीकम् धातुश्च चिदंबरमितीरितम्।" इति,
"सभापतिरहं तत्र प्रयच्छामि सदीप्सितम्।" इति

च वचनानि भूयस्तराम् अधिगम्यन्ते। अतो यदुक्तमनन्तेन। कलेराविर्भावात् परमाकाशलिङ्गतामयासीदमृतांशुशेखर इति तदसमञ्जसम्। ननु कलाविति पदं प्रक्षिप्तम्। तत्पूर्वमेवेदमिति वाच्यम्। तदुपन्यस्तानाम् तादृशामाचारश्रेष्ठानां कलेर्धर्मत्वेन व्यासेन महाभारतादिषूक्तत्वात्। अपि च शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये—"कल्यादिमे महादेवि सहस्रद्वितयात् परम्"। इति भगवत्पादाचार्याणामवतारकाल उक्तः तदेतेनापि तत्पूर्वमेव कलौ भाव्यम्, अपि च खण्डनकारश्रीहर्षधर्षणेनापि शंकरस्य तात्कालिकत्वसिद्धेस्तदसंगतमेवेति बोध्यम्

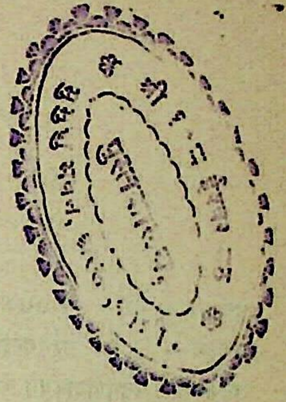
अथ द्वितीयमवगाहामहै—

शिवरहस्ये नवमांशे षोडशाध्याये—

"दुर्वासःशापतो भूमौ जातां वाणीं विजित्य ताम्।
अगस्त्यचरिते देशे तुंगातीरे सुनिर्मले॥
पुण्यक्षेत्रे द्विजवर स्थापयित्वा सुपूजय।
यत्रास्ते ऋष्यश्रृंगस्य महर्षेराश्रमो महान्॥
कलावपि ततोऽद्वैतमार्गः ख्यातो भविष्यति॥"

इत्यत्र ततः पदस्य तत्र पीठोत्पादनेनैवेत्याशयः। तदस्य श्रृंगगिरिपीठस्य प्रथमतोक्ता शंकरविजयविलासे—24 अध्याये 18 तमश्लोके—"सयोगकरणासफेलमे महति पूजिते। वाणीस्थापनमातिष्ठत्यस्मिन् देशिकपुंगवे।" इत्यारभ्य तदभ्युदयसूचकानि कतिचन शुभनिमित्तानि कथयित्वा—31 तमश्लोके—

"इत्थं विचार्य चतुरः श्रीमान् देशिकचन्द्रमाः।
वाग्देव्याः सविधे नित्यं गोपुराट्टालशोभितम्॥
श्रीमठं तत्र निर्माय विद्यापीठमचीक्लृपत्।
चतुर्ष्वेकं चावदूकं सुरेशाचार्यमग्रिमम्॥
ब्रह्मविद्यावरिष्ठं तं तत्पीठे विनिवेश्य सः।
आजिज्ञिपत् सुरेशार्यमित्थं देशिकपुंगवः॥
यस्त्वद्वैतमते स्थित्वा भारतीपीठनिन्दकः।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम्॥



आसेतुहिमवच्छैलं सदाचारान् विचारय।
यत्र स्खलति यः को वा विप्रस्तं शिक्षयाधिकं॥
संप्रदायान् दशैवैतान् शिष्येष्वारचय स्वतः।
(तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः।
सरस्वती भारती च पुरीत्येते दशैव हि)॥
शिवात् क्रमात् समायात चन्द्रमौळीश्वरं परम्।
रत्नगर्भं गणपतिं पूजयेति ददौ मुदा॥
कारयामास तेनैव स्वीयभाष्यार्थवार्तिकम्।
सविधे निवसन्नेव शरदो नवपंच च॥
वाग्देव्याः पूजनं कुर्वन् अवसत्तेन तन्मठे।
मलहानिकरं देवं प्रत्यहं पूजयन् सुधीः॥"

इत्यत्र शृङ्गगिरौ वाणीस्थापनम्, पीठप्रतिष्ठा, सुरेश्वरस्थापनम्, तत्रत्य लिङ्गरत्नगर्भगणपत्योः साक्षादीश्वरादागमनं च, तन्मठस्य, तत्पीठस्य, तदधिष्ठातुश्च सर्वेभ्योऽप्यभ्यर्हितत्वमप्युपन्यस्तम्। मणिमंजरीमेदिन्यामपि 3 सर्गे 50 तमश्लोके —"तथा भवत्वित्थमुदीरयन्तीम् नीत्वा वियत्येव यतीश्वरोयम्। श्रीशृंगपुर्यास्सविधे सुचक्रं निर्माय तस्मिन् विदधे प्रतिष्ठाम्।" इत्यनेन शृंगगिरौ वाणीस्थापनम्। 63 तमश्लोके —"स द्वादशाब्दं गुरुरत्रपीठे स्थित्वानवद्यामुपदिश्य विद्याम्" इति स्वेनैवाधिष्ठितत्वमुक्तम्। तदनु सुरेश्वरमस्थापयंदिति गम्यते। नन्वत्रैव "श्रीपद्मपादं च निधाय तत्र जगाम कांचीपुरमन्यशिष्यैः" इति दृश्यते तदत्र सुरेशो न स्थापितः पद्मपाद एवेति वाच्यम्। चतुर्थसर्गे—

'इत्याज्ञामथ परिगृह्य मण्डनार्यः शिष्यैः स्वैः पुरवरशृंगशैलमेत्य।
अद्वैतामृतमहदब्धिमध्यनिर्यत्साराख्यम् सपदि ततान वृत्तियुगमम्॥
तत्रैवं कतिचिद्दिनानि निवसच्छ्रीमान् सुरेशो गुरुः।
शुद्धाद्वैतमतप्रवर्तनपरैः शिष्यैरनेकैर्वृतः॥
तत्रैक कल नित्यबोधसुघनाचार्याख्यमेतन्मठे पीठाध्यक्षमथारचय्य स ययौ तूर्णं गुरोः सन्निधिम्।"

इत्यत्र सुरेशस्य नित्यबोधघनस्थापकत्वेनोक्तत्वात् तस्य तत्पीठाधिपतित्वस्य, 'तूर्ण' शब्दस्वारस्यात् व्यंग्यया गुरुविरहासहतया पद्मपादमात्ममठरक्षणाय निधाय पूर्वमाचार्यमनुगतवान् इत्यर्थस्य च प्रतीयमानत्वात्, तथा च श्रीजगद्गुरुपरम्परायाम्— "सुरेश्वराचार्ययोगी नित्यबोधघनासिदः" इत्यनेन सुरेशात् परं नित्यबोधघन इत्युक्तम्। तथा च मठाम्नाये—

"तुरीयो दक्षिणस्यां च शृंगेर्यां शारदामठः॥
मलहानिकरं लिंगं विभाडंकसुपूजितम्।
यत्रास्ते ऋष्यशृंगस्य महर्षेराश्रमो महान्।
वराहो देवता तत्र रामक्षेत्रमुदाहृतम्।
तीर्थं च तुङ्गभद्राख्यं शक्तिः श्रीशारदेति च॥
आचार्यस्तत्र चैतन्यब्रह्मचारीति विश्रुतः।
वार्तिकादिब्रह्मविद्याकर्ता यो मुनिपूजितः॥
सुरेश्वराचार्य इति साक्षाद् ब्रह्मावतारकः।

सरस्वती पुरी चेति भारत्यारण्यतीर्थकौ ॥
गिर्याश्रममुखानि स्युः सर्वनामानि सर्वदा।
संप्रदायो भूरिवालो यजुर्वेद उदाहृतः।
अहं ब्रह्मास्मीति तत्र महावाक्यमुदीरितम्।"

इत्यनेन च सुरेश्वर एव भगवत्पादैः शृंगगिरौ स्थापित इति सिध्यति। तेषां प्रबन्धे परमपरमयनम्। तद् यथा—62 प्रकरणे—"तत्रैव परमगुरुर्द्वादशाब्दकालम् विद्यापीठे स्थित्वा, बहुशिष्येभ्यः शुद्धाद्वैतविद्यायाःसम्यग्गुरूपदेशं कृत्वा, तदनन्तरम् पद्मपादाख्यम् कंचित् छिष्य पीठाध्यक्षं कृत्वा भोगनामकलिंगमेतत्पीठे निक्षिप्य स्वयं निश्चक्राम" इत्यारभ्य कांचीगमनम्, नगरालयादिनिर्माणं, ताम्रपर्णीतीरादागतानाम् परिभवं च समुपन्यस्य, कामाक्षीमहिमप्रपंचमपि प्रपंच्य—65 प्रकरणे—"अतः सर्वेषां मोक्षफलप्राप्तये दर्शनादेव श्रीचक्रं भवतीति भगवद्भिराचार्यैस्तत्र निर्मितम् तस्मान्मुक्तिकांक्षिभिः सर्वैः श्रीचक्रपूजा कर्तव्येति निश्चित्य, तत्रैव निजावासयोग्यं मठमपि परिकल्प्य, तत्र निजसिद्धान्तपद्धतिं प्रकाशयितुमन्तेवासिनम् सुरेश्वरमाहूय, योगनामकं लिंगं पूजयेति तस्मै दत्वा, त्वमत्र कामकोटिपीठमधिवसेति व्यवस्थाप्य, शिष्य जनैः परिपूज्यमानः परमगुरुः सुखमुवास"। इति च तदनु 68 प्रकरणे—"तदनु सकललोकैकसाक्षी चैतन्यानुभविष्यद्वर्तमानकालः परमगुरुः स्वतन्त्रपुरुषः शुद्धाद्वैतविद्यानिष्ठागरिष्ठान् सेतुहिमाचलमध्यदेशस्थान्, अशेषान् ब्राह्मणादीन् कृत्वा तदीयसेवांगीकारसमर्थाम् निजशिष्यपरम्पराम् आकल्पम् कांचीपीठादितत्पदस्थायिनीं कृत्वा तन्मुखादेव सकलशिष्येभ्यो मोक्षमार्गोपदेशं कल्पयित्वे" त्यादि च लिखितम्। अन्यैत्र सुरेश्वरमुदाहरन्। अत्र परं पद्मपादः कथितः। तिष्ठतु, अत्र प्राक्तने वाक्ये, कांचीनगरे च, निजावासयोग्यं मठमपि परिकल्प्य सुरेश्वरं कामकोटिपीठमधिवसेति व्यवस्थाप्य, परमगुरुः सुखमुवासेत्यनुषंगेण, 'अपि' शब्दस्वारस्याच्च आत्मवासार्हमन्यं कंचन मठमुत्पाद्य, सुरेश्वराय कामकोटिपीठाधिपत्यमर्पयित्वा, स्वयं स्वमठे सुखमुवासेत्यर्थो लभ्यते। अन्येषां यतीनां मठ इव भगवत्पादानामपि तत्र मठः समभवदित्यत्र न विवदामः, सामान्यतो यतिनिवासानां मठ इति व्यवहारस्य विश्वदृष्टत्वात्। स मठो न शृंगगिर्यादिष्विवाधिपत्यसहित इति वयमुदाहरामः। मानाभावात् सुरेश्वरस्य च कामकोटि पीठाधिवासः कथमिति सिध्यति? तद्ग्रंथरीत्यैव कामाक्ष्याः—"चिद्रूपिणी ब्रह्मविद्या रुद्रशक्तिः गुहावासिनी" इत्यादिना महिमा प्रपंचितः सा च कामकोटिपीठगतेत्यस्य प्रमाणानि बहुशः सन्ति तत्र च मूकोपि—"कामपरिपथि कामिनि कामेश्वरि कामपीठमध्यगते। कामदुघा भव कमले कामकले कामकोटि कामाक्षि॥" इत्युपश्लोकितवान्। नन्वाचार्या बिंबान्तरे तामावाहयन्तो न दोषः पिठाधिवासेनेति वाच्यम्। तत्प्रबन्धगतेनैव—"साप्युपासकानां फलदा कल्पवल्लीव समभवदिति" वाक्यान्तर्गतेनापिशब्देन पीठगताया अपि सूचनात्। अतः, स्वेनापि स्वाचार्यैरपि सुरशेखरैरपि वन्दनीयवैभवे देवतात्मनि तावति महति पीठे कथमेष सुरेश्वरः कृतपदस्तिष्ठतिस्मेति क्षेपिष्ठमिदम्। तत्तत्र मठद्वितयमप्यश्रद्धेयमेव। अपि च, हन्त पश्यानन्तानन्दगिरेः स्मृतितन्त्रनैपुणमत्र। यत्र—"पतिसन्यासात् पूर्वमेव वैधव्यभयात्" इत्यादिसरसवाणीवाण्यां जिते मण्डने विवादाय समाह्वयति च यतिशेखरे लिखितमस्ति। न जाने पत्यौ प्रव्रजति प्रमदानां वैधव्यमुपनमेदिति। स्मृततोपि तथा वैधव्यस्य तदानीमवकाशं न वितरन्ति। लोकेपि पत्यौ प्रव्रजिते न वैधव्यमनुतिष्ठन्ति नार्यः। इति स्मर्तुरनन्तस्य गिरेराशयः कीदृगिति न जाने। सुदिनमिदं यदि माम् पंक्तिमथावालोकिषि।

ततः पदान्तरमवतरामः कियदायुराचार्याणामिति।

शिवरहस्ये नवमांशे 16 अध्याये—"द्वात्रिंशत् परमायुस्ते शीघ्रं कैलासमावस" इत्युपन्यस्तम्। माधवीये सप्तमसर्गे 55 तमश्लोके—

"अष्टौ वयांसि विधिना तव वत्स दत्ता-
न्यन्यानि चाष्ट भवता सुधियाऽऽर्जितानि॥
भूयोऽपि षोडश भवन्तु भवाज्ञया ते
भूयाच्च भाष्यमिदमारविचन्द्रतारम्॥"

इति 16 सर्गे 96 तम श्लोक के—

"एवंप्रकारैः कलिकल्मषघ्नैः।
शिवावतारस्य शुभैश्चरित्रैः॥
द्वात्रिंशदत्युज्ज्वलकीर्तिराशेः।
समा व्यतीयुः किल शङ्करस्य॥"

इति चोक्तम्। एभिर्भगवत्पादानामायुर्द्वात्रिंशदिति सिद्धम्। अनन्तानन्दगिरेः परमन्यादृशः पंथाः। तद यथा—

"इति ब्रह्मवचःश्रुत्वा व्यासः काशीकृतालयः॥
करेणानीय गगांबु जीवेत शरदां शतम्।
इत्युक्त्वा प्रोक्षयामास शंकराचार्यमुत्तमम्॥"

इत्युपन्यस्तम्। अत्र परावरज्ञे पाराशर्ये स्वयं शरदां शतममुष्य पुरुषायुषमभिहितवति स एष द्वात्रिंशति तिरोधादिति चेत्। तदाचार्येणां मुनिवचनतिरस्कारिता पाराशर्यस्य मिथ्यावादिता च सिध्यत इत्यलमलं महतामपि महादोष आरोपयद्भिरीदृशैव दितैरित्युपरमः परमः पण्डितानाम्।

अतस्तुर्यां शालां प्रविशामः—"क्व कथं गतः परोक्षतामिति"।

शिवरहस्ये नवमांशे शोडषाध्याये—"तान्वै विजित्य तरसाक्षतशास्त्रजालैः मिश्रांस्ततो नैजमवाप लोकम्।" इत्यत्र मिश्रान् गौडान् इत्यर्थो वोध्यः। गौडानामेव मिश्रा इति विरुदस्य सर्वजनीनत्वात्। अतो गौडान् विजित्य कैलासमापदित्यर्थः अतः, काश्मीरेसर्वज्ञपीठाधिरोहमारचय्य सशरीरः कैलासमगादित्याकूतम्। "मिश्रान्सकांच्यामथ सिद्धिमाप" इति पाठेपि न कापि हानिरस्य राद्धान्तस्य, तद् यथा—सिद्धिशब्दो न मोक्ष वाचकः कुतः? शक्तेर्मानाभावात्, न लक्षणा मुख्यार्थबाधाभावात्। न व्यञ्जना मूलाभावात्। अतः साधनार्थः, कांच्यामपि सर्वज्ञपीठाधिरोहस्य कैश्चिदुक्तत्वात् तद्रूपस्य मनोरथस्य सिद्धिमवाप इत्यर्थः। अस्यैव विस्तरो माधवीये 16 सर्गे 86 तमश्लोके यथा—"इत्थं निरुत्तरपदां सविधाय देवीं सर्वज्ञपीठमधिरुह्य ननन्द सभ्यः। संभाजितो भवदसौ विबुधैश्च वाण्या गार्ग्यां कहोलमुखरैरिव याज्ञवल्क्यः।" इत्युपक्रम्य बदरिकाश्रमगमनम् निरूप्य—

"इन्द्रोपेन्द्रप्रधानैस्त्रिदशपरिवृढैः स्तूयमानः
प्रसूनैर्दिव्यैरभ्यर्च्यमानः सरसिरुहभुवादत्तहस्तावलंबः।
आरुह्योक्षाणमग्र्यं प्रकटितसुजटाजूटचन्द्रावतंसः
शृण्वन्नालोकशब्दं समुदितमृषिभिर्धामनैजं प्रतस्थे॥'

इति 16 अध्याये 107 तमश्लोके उक्तम्। गिरेस्तु तृतीयः कोपि पन्थाः। तद यथा—'स्व लोकं गन्तुमिच्छुः कांचीनगरे मुक्तिस्थले कदाचिदुपविश्य स्थूलशरीरं सूक्ष्मेन्तर्धाय सद्रूपो भूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा, चिन्मात्रो भूत्वाऽगुष्ठपुरुषस्तदुपरि पूर्णमखण्डमण्डलाकारानन्दं प्राप्य सर्वजगद्व्यापकम् चैतन्यमभवत्॥" इति आस्ताम्।

'कांचीपुर' इत्यनेन तदितरग्रन्थसंदर्भविरोधः। अत्र "स्वं लोकं गन्तुमिच्छुः" इत्यादौ "सर्वव्यापकम् चैतन्यमभव" दित्यन्ते सर्वव्यापकचैतन्यमभवदिति प्रथममीप्सितस्य साधनमुक्तम्, उद्दिष्टमात्मलोकगमनम्। सर्वव्यापकचैतन्यस्य स्वलोकः परलोक इति भिदास्तीत्यलम द्वैतमतवैशारद्येन गिरेः। अपि च केचिदाधुनिकाः कांचीपुरस्थं कस्यापि कर्मन्दिनो वृन्दावनमाचार्याणां इति वदन्ति। तद् गिरिवचनेनापि न सिद्धयति। तेन, स्थूलस्य सूक्ष्मानुप्रवेशस्य सूक्ष्मस्य कारणानुप्रवेशस्य चोक्तत्वात्। यद्वा, उपविश्येत्युक्तं खलु गिरिणा तदुपवेशस्थलमेव वृन्दावनमचीक्लृपन्निति चेत्। तद् अवैधमित्यलमनेन।

तदन्यतः परिक्रमामः।

कति क्व प्रतिष्ठिता मठा इति—मठाम्नाये—

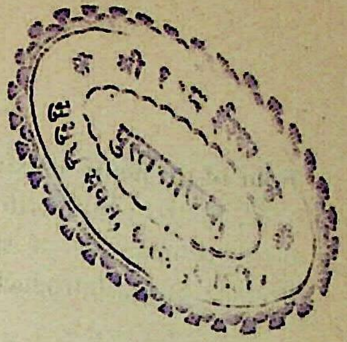
"दिग्भागे पश्चिमे क्षेत्रे द्वारकाकालिकामठः।
द्वितीयः पूर्वदिग्भागे गोवर्द्धनमठः स्मृतः॥
उत्तरस्यां श्रीमठः स्यात् क्षेत्रे बदरिकाश्रमम्।
तुरीयो दक्षिणस्यां च शृंगेर्यां शारदामठः॥"

इत्युपन्यासेन चतुर्णामेव मठानामस्तित्वधीरुत्पद्यते। अन्ये तु गगनकुसुमस्तवका इव, गन्धर्वनगर सौधा इव, मरीचिकापूरतरंगा इव, मानुषविषाणचषकपरा इव, शशशिशुशफा इव, शिरीषशिफा इव च प्रमाणप्रबन्धैः निरूप्यन्तेत-रामाचार्यस्थापिता इति मठाः। अनन्तस्तु आसेतोराच शीताचलादतिप्रथितप्रभावम द्वैतमतरत्नाकरमखिलविबुधजनसम्मत-मवनिपालशतकृतसभाजन सभाजनान्वितमशेषजनवन्दनीयमादिमाचार्यनिर्विशेषनियमिपरिवृढपरिकर्मितममलं ऋष्यशृंगाश्रमस्थं शृंगगिरिमपलपितुमनलम्, आचार्यविपर्ययमत्रेण कृतकृत्यं मन्यस्तमतिनिर्बन्धेन कथयित्वा, प्रागुक्तसरणौ कंचन कांचीपुरगत इत्यपूर्वमश्रुतमज्ञातमदृष्टमाचार्यमठमकथयत्।' तदश्रद्धेयमिति पूर्वमेवोक्तम्।

अन्यच्चेदम्—"इन्द्रसंप्रदायवर्तिनं सुरेश्वरं" —इति 74 प्रकरणे गिरिराह, तदभिदस्संप्रदायः न संप्रदायादादीयते, न वैद्यनाथदीक्षितीये विद्यते, न मठाम्नायेनाम्नायते, न शङ्करविजयेषु विलोक्यते, न मठसंप्रदायेषु गण्यते, न विश्वेश्वरस्मृतौ दृश्यते, न यतिधर्मप्रकाशिकायां प्रकाश्यते, न रामानन्दीयेनाभिनन्द्यते, तदेष झषपयोधरपयःपूर इव, जन्तुफलप्रसवसर इव, पीतोत्पलप्रभिन्नवर्णवान्ध्येयमन्दस्मितांकुर इव, कुहूतुहिनकरकरनिकरक्षरदिन्दुकान्तसलिलशीतल कल्पान्तत्रियामायामोत्कर इव सुतरामभिनन्द्यो भवति। तदेष संप्रदायो नवीन इति, तेन तत्प्रबन्धप्रबन्धापि, न भगवत्पादपादसेवनावाप्तानवद्यविद्यावैशारद्याः पूज्यपादास्तत्र भवन्तः तोटकार्याः। अस्त्यत्र सूचनमनन्तानन्दगिरिरित्यन-न्तपदम्' नेदमाचार्यान्तेवासिभिरानन्दगिरिभिरारचितेषु भाष्यव्याख्यानेषु क्वापि दृश्यते—अपि च मणिमंजर्यादिकथित-कथाछायाश्रयणेन च—अन्तरान्तरा प्रतीपमतसूचनेन च, अश्राव्य पदशय्यया च, कोप्ययमतिप्रतीपमतः शुद्धाद्वैतमत-सिद्धान्तमाकुलीचिकीर्षुरिमम् प्रबन्धमचीकरदिति प्रज्ञाधनैः अनुमीयते।

"सकलभुवनैकमंगलशङ्करगुणवर्णनप्रवृत्तेन
नस्मरणीयाः कुधियो लोकायतिका इव प्रतस्थेन"

इति नीलकंठोक्तरीत्या प्रबन्धोयमाचार्यमतमननिरतानाम द्वैतिनामवलोकनपदवीमपि नार्हति, यत्तु विवदितमेतद् अधिकृत्य तत्सर्वमभ्युपेत्यन्यायेनेति न्यायविदो विदांकुर्वन्तु, ततस्सचादावुक्तयतिवराणाम् प्रमाणप्रबन्ध—परम् विमृशन्तु विमर्शशील विज्ञाः।



अपि चेदम् शङ्करमभ्यर्थयामहे यथा—

" असंकीर्णान् वर्णान् अतुलजयम द्वैतसमयम्।
अकुण्ठामुत्कंठामपि च, भगवत्पादपदयोः ॥
सुतुंगश्रृंगेरीवसतिरिह विश्वस्य वितरन्।
विधत्तामायत्तामवनिधुरमाचार्यतिलकः ॥"

इति श्रीमेधादक्षिणास्यकृपासमासादितसकलकलाविलासश्रीमन्मिश्रजयिश्रीमत्कौण्डिन्यकुलतिलकश्रीमहादेवदीक्षितेन्द्रवंश्यश्रीमदहिपतिफणितनिष्णातकुम्भकोणनगरकमलाकरकलहंसश्रीरामस्वामिशास्त्रिणाम् तनुजेन सकलाधुनिककविकुलतिलकेन भट्टश्रीपदलांछनेन नारायणशास्त्रिणा विरचितमाचार्यचरितविमर्शनम् संपूर्णम्।

47. विद्वानों का मठविषयक विचार

मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' पुस्तक में प्राप्त हुए विचार, सम्मति एवं आमोदन पत्रों में से कुछ वहां प्रकाशित किये गये हैं। पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के रचित ग्रन्थों एवं प्रकाशित लेखों से मठविषयक कुछ विचार एवं अदालत निर्णयों से कुछ भाग उद्धृत भी किये गये हैं। यह सब कुल संख्या 100 विचार प्रकाशित हैं। अब यहां और कुछ विचार मूल पुस्तकों व प्रकाशित लेखों से उद्धृत किया जाता है। आशा है कि शीघ्र ही इन सब पत्रों व उद्धृत भागों को तथा अब तक अप्रकाशित विचारों को भी समग्र रूप में एक अलग पुस्तक छापकर प्रकाशित किया जायगा। ये सब घोषित करते हैं कि श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित आम्नायानुसार अधिकार संपन्न धर्मराजधानियां (आम्नाय मठ) केवल चार ही हैं, आचार्य शङ्कर ने कश्मीर की सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था एवं आपका कैवल्यधाम केदार क्षेत्र था।

(101) (A) Bharat Ratna Dr. Rajendra Prasad, Patna, (Ex-President, Indian Union), January 13, 1963—' This prince among self-less spiritual mentors established Four famous Maths to serve as authoritative centers of religious discourses and activities and one of these is at Sringeri in the south.' (Extract from Sringeri Souvenir 1963)

(B) 'Sri Sankara', the President pointed out. 'within a short space of thirty two years or so, managed not only to study and to master all philosophies but also to write a tremendous lot, and go about and tour all over the country to establish great centers of learning and great mutts in the four corners of India which were today regarded as great places of worship by the people in general and Hindus in particular.' (Extract from 'Kalady—A pilgrim center', published by Sri Ramakrishna Advaitasrama, Kalady—May, 1957)

(102) Bharat Ratna Dr. S. Radhakrishnan (President, Indian Union)— 'Sankara is said to be the incarnation of Siva on earth. Sankara was a Naishtika Brahmachari and his life was spent in exposition, discussion and organisation.

Four of the mutts he established are well known Dwaraka in the West, Puri in the East, Badri in the North and Sringeri in the South. His commentary is well known for its profoundity of spirit and subtlety of speculation.' (Extract from a Book Brahma-Sutra, Introduction.)

(103) Bharat Ratna Dr. Bhagwan Das, Varanasi—' At the four cardinal points stand the four dhamams—Badarikasrama, Puri, Rameswara and Dvaraka and in or near them the four seats of Sankaracharya, which every pious Hindu aspires to visit once in his life.'

(104) Bharat Ratna M. M. Dr. P. V. Kane—' The foundation of Maths received a great fillip after the time of the celebrated Advaita teacher, the great Sankaracharya, whom tradition credits with having established for the propagation of his system of Vedanta, four mathas at Sringeri, Puri (Govardhan Matha), Dvaraka, (Sarada Matha) and Badri (Jyotir Matha)' (Extract from History of Dharma Sastra—Vol II)

(105) Chief Justice B. P. Sinha (Supreme Court of India)-'The four Pithas which had been established in the four corners of India by the Adi Sankaracharya many centuries ago ... ...' (Extract from lecture on ' My Master '—Bhavan's Journal, March 20, 1960)

(106) Chief Justice Patanjali Sastri (Supreme court of India)-'Adi Sankaracharya, born at Kaladi in the far south, travelled all over the country, when there were no means of communication in the modern sense, using Sanskrit as his medium for propagating what he believed to be the truth, and established Mutts for such propagation in the four corners of India—at Joshi Mutt near Badrinath in the north, Dwaraka in the west, Puri in the East and Sringeri in the south, thus visualising Bharat as a single cultural entity.' (Extract from an article ' Sanskrit and National Integration '—published in Sringeri Souvenir, 1963.)

(107) Sir S. Subrahmanya Ayyar, offg. C. J., in Vidyapurna Tirtha Swami, (I. L. R. (1904) 27 Madras 435), — ' The varied and well known contributions made thereto by the famous Vidyaranya Swami of the Sringeri or Sarada Mutt, or under his auspicious, are among the most conspicuous examples of this kind. There is scarcely a branch of learning considered by Hindus as important, to which Vidyaranya or the scholars whom he gathered round him, did not make valuable contributions and it is to his commentaries that the modern world owes its knowledge of the traditional meaning of the oldest of the sacred books—the Rig Veda.'

(108) (A) Justice N. Chandrasekhara Aiyar-'Sringeri is the seat of one of the four famous mutts established by Sri Sankara' (Extract from an article 'Sringeri', published in Sringeri Souvenir, 1963)

(B) Justice N. Chandrasekhara Aiyar (Dist. Judge, Berhampur)—'Most people in India have heard of Sringeri in the Mysore Province—the place where Sri Sankara of imperishable fame established one of his four principal mutts in India, installing his chief disciple, Sureshwara, as its first head.' (Extract from an article 'The Sringeri Mutt'—'Hindu', August 13, 1935)

(109) Extract from the copy of the Judgment of the Patna High Court regarding Govardhana Mutt Appeal—Dated the 19th November, 1936—

'Courtney Terrell, C. J.,—This appeal arises out of a suit by four persons authorised by the Government Advocate to obtain an order to remove a trustee from his office under a public trust, for the appointment of a receiver of the trust property and the appointment of a new trustee.'

'The trust in question is that of the Gobardhan Math at Puri. This trust was founded as one of four similar trusts by a great Hindu religious leader in ancient times with the object amongst others of combating the spread of Budhism. The founder Adi Shankaracharya divided India into four jurisdictions with a Math at the head of each. Under the western jurisdiction was placed the territory roughly corresponding to that now known as the Bombay Presidency called the Sarada Math at Dwaraka but this Western jurisdiction was later sub-divided into three which are now the Provas Math at Junagarh, the Dvarka Math in Baroda, and the Dakor Math at Nadia. Northern India was placed under the Jyoti Math which is now extinct. Eastern India was placed under the Gobardhan Math, the subject of the present dispute, and Southern India under the Sringeri Math in Mysore. We are told that the founder and the Maths founded by him are objects of profound veneration by all sections of pious Hindus. The head of each Math is known by the title of Jagat Guru Shankaracharya and his religious authority is widely, if not universally, accepted. The scriptures which govern the fundamental doctrines and organisation of four Maths are known as the 'Mathamnaya' but it is said that this document is really of the eighth century, and not of an earlier date which is attributed to it by tradition. The Mathamnaya is, however, accepted as authoritative by Hindus. The system by which the Shankaracharya for the time being of each Math is appointed is one widely in vogue amongst Hindu religious institutions of India. Each Shankaracharya takes disciples and from disciples nominates his successors in office. The Mathamnaya

prescribes that the disciples are to be ascetics and in paragraph 9 dealing with the position of the Shankaracharya himself ordains that 'He, who is unsullied, has subdued the senses, is versed in the Vedas, and the Vedangas, and is conversant with the application of all the Shastras, is to obtain my place.'

(110) Government of India, Publication Division—'Sankara one of the greatest religious teachers and reformers of India, was probably born in 788 A. D. at Kaladi in North Travancore. ……… He travelled all over India and founded monastic establishments in Shringeri, Puri, Dwaraka and Badrinath.' (Extract from 'The way of the Buddha' VII)

(111) (A) 'The Himalayan Districts of the North West Provinces of India' II—XI of the Gazetteer of the N. W. Provinces—1884—'……………… established mathas or Monasteries for his disciples—the Sringeri Matha on the Tungabhadra in Mysore to the south; the Jyothi Math (Vulgo Joshi Math) near Badrinath to the north; the Sarada Math at Dwaraka to the west; and the Vardhana Math at Puri in Orrissa to the east. Sankara, towards the close of his life, visited Kashmir, where he overcame his opponents and was enthroned in the chair of Sarasvati, the goddess of eloquence. He next visited Badari where he restored the ruined temple of Narayana and finally proceeded to Kedar, where he died at the early age of thirty-two.'

(B) Mr. Edwin T. Atkinson (Editor of the above Gazetteer)—'The chief Math of the order represent in Garhwal is at Sringeri on the Tungbhadra river' and he addresses Sri Sankara as 'Apostle of the hills.'

(112) Imperial Gazetteer (I—p. 421)—'To him (Sankara) is attributed the foundation of Monasteries from Sringeri in Mysore to Badrinath in Kumaun. Much of his life was spent in wandering along the hill country from Kashmir to Nepal where he organised the temple service.'

(113) Sri Swami Dayanand Sarasvati Ji (Founder of the Arya Samaj) mentions in his book 'Satyartha Prakash' the four mutts founded by Sri Sankara, Dwaraka—Jyotir—Puri—Sringeri.

(114) H. H. Sri Swami Sivananda Maharaj, Haridwar—'The Sringeri Peetha is one of the oldest monasteries of the world flourishing for over twelve centuries now. It is the first of the four seats of learning established by Sankaracharya, the other three being Puri, Dwaraka and Joshi Mutt, each one of them representing of the four Vedas of the Hindus. Sankara placed his four eminent disciples, Sureshwaracharya, Padmapada, Hastamalaka and Totakacharya, in charge of the Sringeri Mutt, Jagannath Mutt, Dwaraka Mutt and Joshi Mutt,

respectively.' ... ... 'He went to Conjeevaram, encountered shaktas, purified the temples, and won over to his side the kings of Chola and Pandya kingdoms.' ... ... 'Many are the mutts and monasteries in India where holy men or their successors sit and where Hindus from all parts of India gather, but none so great or so famous as Sringeri the original seat of Adi Sankaracharya.' (Extract from an article 'Sankara And the Sringeri Mutt' published in Sringeri Souvenir 1963)

(115) श्री प० प० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्यपाद श्रीपयाहारी श्रीस्वामी बालकृष्णयति जी महाराज, वेदान्ताचार्य, महामण्डलेश्वर (जूना)—'हमारे सन्यासी संप्रदाय में आज तक यही प्रसिद्ध है कि श्रीशङ्कराचार्य जी ने वैदिक धर्म के उद्धारार्थ चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना की है। दक्षिण में शृंगेरीमठ और उत्तर में ज्योतिर्मठ तथा पूर्व में गोवर्धन मठ एवं पश्चिम में शारदा मठ। ये ही चार मठ सनातन धर्म के सुरक्षार्थ विशेष रूप में प्रतिष्ठापित हुए। इन मठों में नियुक्त आचार्यों को भी 'श्रीशङ्कराचार्य' कहा जाता है। ... ... परन्तु दृग् गोचर मठाम्नायों में चार ही मठ प्रसिद्ध हैं। .... भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी ने केरल के 'कालटी' नामक स्थान में धर्म रक्षार्थ जन्म ग्रहण किया और नर्मदा तट पर गौडपाद शिष्य भगवत्पूज्यपाद गोविन्द से सन्यास दीक्षा ली, धर्म प्रचार एवं अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया 'अन्त में 32 वें वर्ष की अवस्था में केदार क्षेत्र में पाञ्चभौतिक देह का परित्याग किया है; यहीं बातें आजकल विशेष रूप से प्रामाणिक मानी जाती है।' ('श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' प्रस्तावना से उद्धृत)

(116) श्री प० प० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्यपाद श्रीस्वामी श्रीरामचन्द्रगिरि जी महाराज, महामण्डलेश्वर (निरञ्जनी)—... ... ... 'इतना ही नहीं परन्तु वैदिक धर्म की जड को मजबूत करने के लिये भारत की चारों दिशा में चार मठों की स्थापना करके अपने प्रधान चार शिष्यों को उन मठों पर 'शङ्कराचार्य' के नाम से अभिषिक्त किया। उन्हीं से दसनाम सन्यास चला ... ... इस प्रकार चारों दिशा में चार ही मठों की स्थापना, चार वेद, चार महावाक्यों का उपदेश, चार प्रधान शिष्यों से दसनाम सन्यास का क्रम चला। बहुत से प्रामाणिक ग्रंथ तथा अनेक विद्वान-ब्रह्मनिष्ठ-महात्माओं के श्रीमुख से इन्हीं चार ही मठ, चार ही शिष्य, चार ही वेद, मननात्मक तो महावाक्य बहुत हैं परन्तु उपदेशात्मक चार ही महावाक्य, चार ही मठ तथा दश ही नाम सन्यासी देखे सुने गये हैं। इसके अतिरिक्त कोई पांचवां वेद, पांचवां मठ, पांचवीं दिशा, पांचवां उपदेश महावाक्य, पांचवांधाम, पांचवां प्रधान शिष्य या ग्यारहवां नाम की कपोल कल्पना करें तो वह अप्रामाणिक सर्वथा अमान्य ही है। .... परन्तु चार प्रधान मठों के अतिरिक्त कोई पांचवीं मठ, गुरु पीठ व मठ या प्रधान पीठ देखी सुनी नहीं गई है।' ('श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठविमर्श' प्रस्तावना से उद्धृत)

(117) Sri P. P. Sri M. Swami Hari Narayananandji Maharaj, General Secretary, Bharat Sadhu Samaj—'... ... ... हमने तो स्पष्ट कर दिया है कि आद्य जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ने चार कोने में चार आचार्य पीठों की स्थापना की थी। इसके पीछे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधार हैं। चार महावाक्य, चार वेद, चार वर्ण, चार आश्रम, चार दिशायें, आदि। पांचवां आचार्यपीठ के स्थापना का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। ... ... हमारी मान्यता है कि उनका मोक्ष उत्तराखंड श्रीकेदारनाथ में हुआ था। यदि आपको आवश्यकता हो तो मैं सविस्तार इस संबन्ध में प्रकाश डाल सकता हूं। ... ...' (पत्र ता: 29—5—63 से उद्धृत)

(118) Sri Swami Tapovanji—'……… Sankara renounced his earthly existence here (Kedarnath) ……… in the course of his peregrinations he visited the Sarada Temple (in Kashmir) where he met and vanquished many learned disputants and seated himself triumphantly on the throne of omniscience' (Extract from 'Himagiri Vihar—Wanderings in the Himalayas.')

(119) Sri Swami Ranganathananda Ji—'Sankara took steps to ensure the continuity of his great work by setting up ten orders of monks—the Paramahamsa Parivrajakas, a band of roving and teaching monks—and establishing four monastic centers at the four corners of India and entrusting them to care of monks noted for their intellect, character and vision. The location of these centers—at Sringeri in the South, at Puri in the east, at Dwaraka in the west and at Badrinath in the north—reveals his far seeing genius as also his vision of the geographical and cultural unity of India'. (Extract from 'External Values for a changing Society')

(120) Sri Swami Rajeswarananda Ji—'He established four mutts, the mighty seats of learning and spiritual discipline in the four corners of India' (Extract from 'Thus spake Sankara', with foreword by Sri Kanchi Kambakonam Mathadhipathi—1958)

(121) Sri Swami Atulananda Ji—'Then came the last pilgrimage. Sankara went into the Himalayas. At the foot of the snow capped peak He blessed his disciples and told them to follow him no further. This was the last ever seen or heard of the great sage' (Extract from an article 'Sankaracharya's life' published in Vedanta Kesari 1927/28)

(122) Sri Swami Nikhilananda Ji (Vivekananda Center, New York)—'Before his death at the age of thirty-two at Kedarnath in the Himalayas, Sankara had established monasteries at Sringeri (Mysore) in the South, Puri in the East, Dwaraka (Kathiawad) in the West and Joshi Math (the Himalayas) in the north and had placed four of his gifted disciples—incharge of them.' (Extract from the Preface to 'Self-Knowledge')

(123) Sri Sailakumar Mukherjee (Speaker, West Bengal Legislative Assembly)—'……let us now come to another great saint of India, Sri Sankaracharya of the nineth century A. D. Before the age of 32, he travelled the whole of India and established four centres of learning and spiritual teaching. They are in the north in the Himalayas at Badrinath, at Puri in the east, at Dwaraka in the west and at Sringeri in the south' (Extract from an article 'India's Role in World Peace' published in 'The Vedanta Kesari' Vol XLIII, March 1957).

(124) डा० सम्पूर्णानन्द जी (भूतपूर्व मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, राजस्थान के वर्तमान राज्यपाल)–'... थोडी उम्र में ही उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया, दिग्विजय के लिये भारत में चतुर्दिक यात्रा की, चारों दिशाओं में आम्नायानुसार चार अधिकार संपन्न विशाल मठ स्थापित किये और फिर 32 वर्ष की अवस्था में अपनी इहलीला समाप्त कर दी। इसी बीच में उन्होंने शारीरक-सूत्रों पर और उपनिषदों पर उन भाष्यों को लिखा जिनमें उनके विचारों का प्रतिपादन है। .... अस्तु, इतनी बातें तो ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य हैं। .... उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में दो मत नहीं है। .... सब बातों पर विचार करके उत्तर प्रदेश सरकार ने आज से तीन चार साल पहले यह निश्चय किया कि केदारनाथ क्षेत्र में ही उनके शरीर के अन्तिम दर्शन हुए थे। .... केदारनाथ में ही उनका स्मारक बनाया जा रहा है। जहां तक मैं समझ पाया हूं शङ्कराचार्य के मठाधीशों का भी समर्थन इस विश्वास को प्राप्त है।' ('श्रीमज्जगद्गुरुशांकरमठविमर्श' प्रस्तावना से उद्धृत)

(125) Sri Bishnuram Medhi (Governor of Madras)—

"I am happy to know that a new 'Murthi' of Adi Shankaracharya is to be installed on the 27th May 1963 in the temple dedicated to him at Kedarnath where, according to tradition, he is believed to have shed his body. That the ceremony is to be performed by His Holiness the present Jagadguru of Shri Sharada Peeth of Dwaraka, adds significance to the occasion."

Shankara was a dynamic and many-sided personality, and his achievements during the all the short span of his 32 years of life, were amazing. The whole of India was his field of action in days when travel was not easy. He functioned on the intellectual, philosophical, religious and popular plans. The establishment by him of the four Peethas in the north, south, east and west of India portrays to us the grand conception of our fundamental unity. Rightly it is said of him that 'the rays of his genius have illumined the dark places of thought and soothed the sorrows of the most forlorn heart.'

At a testing time like this, when our aims is to build our national integration at all levels, the message of Shankara should give us strength and hope." (Extract from the message dated April 21, 1963—published in 'Shri Kedarnath & Shankaracharya Kaivalya Dham'—1963)

(126) Smt. Vijaya Lakshmi Pandit—(Governor of Maharashtra)—

'Shri Shankaracharya's conception of the unity of Bharata Varsha is an important part of the great legacy he has bequeathed us. The foundation of important Peethas in the four corners of India was visible proof of that unity.' (Extract from the Message dated 16th April, 1963, published in 'Shri Kedarnath & Shankaracharya Kaivalya Dham'—1963.)

(127) Dr. R.C. Majumdar, Dr.H.C. Ray Chaudri and Dr. Kali Krishna Datta—'Among the most durable monuments of his organising zeal are the famous monasteries at Sringeri in Mysore, Dwaraka in Kathiawar, Puri in Orissa and Badrinath on the snowy heights of Himalayas.' (Extract from the book 'An Advanced History of India'—II Edn.)

(128) Sri C.S. Srinivasachari, M.A., and Sri M.S. Ramaswamy Aiyangar, M. A., — 'He (Sankara) is 'the St. Peter of India's Popes' and established four great monastic institutions at Sringeri in Mysore, at Dwaraka in Kathiawar, at Puri in Orissa and at Badri Kedara in the Himalayas. His Samatva Buddhi secured him the respect of all shades of opinion and he shrewdly secured a permanent machinery for the propagation of his teachings by founding mutts in the four principal directions of the land.' (Extract from the book 'A History of India—Part—I—Hindu India'—V Edn., 1955.)

(129) Dr. R. N. Dandekar, M A., P.HD.,—'That an absolute monoist and an astute Sanyasin like Sankara should have in a true missionary spirit founded in the four corners of this country four Mathas for the propagation of the highest truth is itself perhaps the best illustration of that ideal of spiritual life.' (Extract from 'Sankaracharya' published in Kalyana Kalpataru Vol. XVI—1950/51)

(130) Dr. Kalidas Nag—'Four Mathas in the four cardinal points of India.' (Extract from the Message to Sri H. K. Sen's book 'Acharya Sankara')

(131) Sri H. Chatterjee—'He (Sankara) founded four Mathas or Monasteries at Badrinath in the Himalayas in the north, Sringagiri in Mysore in the south, at Puri in the east and Dwaraka in the west, the one in the south, his own country, being the chief' (Extract from the book 'Brief Survey of Indian History'—V Edn. 1941.)

(132) Sri M. K. Natarajan, M. A., L. T., Mayuram—' The same spirit of national unity impelled Sri Sankara to establish his four Mutts at the four corners of the country—the Jyotir mutt in the north (near Badrinath in the Himalayas), the Dwaraka mutt in the west (in Gujarat), the Govardhan mutt in Puri in the east and the Sarada Mutt in Sringeri, Mysore, in the south' (Extract from the book 'Social Studies' Part I, History.)

(133) Sri Vadakkankur Raja Raja Varma mentions only the four mutts established by Sri Adi Sankara in his work 'Keraliya Samskrita Sahitya Charitam'

(134) Sri V. Nagamia mentions in Travancore Manual, Vol II, the four Mutts—Badrinath, Jagannath, Sringeri and Dwaraka—as the chief mutts established by Sri Sankara.

(135) (A) Sri Sitanath Dutta—'At Sringagiri, on the edge of the Western ghats and now in Mysore territory, at which place he is said to have founded a college that still exists, and assumes the supreme control of the smartha Brahmans of the Peninsula.' (quotation from Mr. Wilson)

(B) '……………four seem to have been established by the illustrious Founder himself. They are the Sringagiri Matha on the Sringeri Hills, the Sarada Matha at Dwaraka, the Govardhana Matha at Puri and the Jyoshi Matha on the Himalayas (Badrikasrama)……' (Extract from the book 'Sankaracharya—His life and Teachings' and 'Sankaracharya' published by the society for the Resuscitation of Indian Literature, 1905)

(136) Sri J. N. Farquhar—'He (Sankara) also founded four monasteries to form centres of Advaita learnings and influence, Sringeri in Mysore, Govardhan in Puri, Sarada in Dwaraka, and Joshi at Badrinath in the Himalayas. All four have survived to our day, and there are a number of subordinate houses.' (Extracts from the book 'Outlines of the Religious Literature in India.')

(137) Sri R. R. Diwakar—'Shringeri in Shimoga District is the place where Shri Shankaracharya (8th century) established his first Dharma Peetha or Pontifical seat, the other three places being Dwaraka in the west, Puri in the east and Badrikedar in the north. The Peetha has an unbroken tradition and has been adorned by such distinguished men as Sureshwaracharya, Vidyaranya and others.' (Extract from 'Some Saints and Savants of Karnatak'—Indian National Congress Souvenir 1960)

(138) Sri St. Nihal Singh—An article entitled 'Seat of Vedic Culture —Sringeri—The Hindu Vatican' published in Times of India, Bombay, May 1931 is worth and interesting reading.

(139) Sri Dilip Kumar Roy and Smt. Indira Devi—'He (Sankara) first of all established the four well-known monasteries; Jyothi Mutt in the North, Sringeri Mutt in the South, Govardhan Mutt in the East and Sarada Mutt in the West.' (Extract from 'Kumbha-India's Ageless Festival' Bhavan's publication)

(140) Dr. P. S. Lokanathan—'The Sringeri Mutt is one of the four mutts founded by Sankara himself and everyone who has written on Sankara has admitted it without doubt or hesitation. Our President, Dr. S. Radhakrishnan in several of his works has referred to the establishment of the four Mutts by Sankara of which Sringeri Mutt is one, the others being at Puri in the East, Dwarka in the West, and Badrinath in the North.' (Extract from an article 'Homage to Sankara' published in Sringeri Souvenir 1963)

(141) 'Sankara Vijayam' in Tamil (1879 and 1913) by Sri Tozhuvoor Velayuda Mudaliar (disciple of Jyothi Ramalinga Swamigal). The book clearly mentions only four mutts that were established by Sri Adi Sankara.

(142) Sri V. Subrahmania Iyer—'He (Sankara) founded four colleges at the four cardinal borders, Badrinath, Jagannath, Sringeri and Dwaraka, comprehending the whole country, lying about and between them, as one.' (Extract from 'The Philosophy of Truth or Tattoajnana')

(143) 'Acharya Charitra Mala – Srimat Sankarachariyar' (Tamil) by Sri T. A. Swaminatha Iyer, mentions four mutts only as established by Sri Sankara, ascending of Sarvagnya Peetha in Kashmir and Niryana in Himalayas.

(144) Sri J. H. Dave—'The famous Sankaracharya, one of the greatest Hindu philosophers, established four big monasteries at Sringeri in Mysore, at Dwaraka in Saurashtra, at Badrinath in Himalayas and at Puri in Orissa' (Extract from an article 'Puri—The Jagannathpur' 'H. H. Jagadguru Shankaracharya Satkarya Samiti Souvenir – 1962)

(145) Sri Kalyanrai N. Joshi—'Thus Dwaraka is the first centre of the four Peethas that His Holiness Shri Shankaracharya managed to establish at four different quarters of Bharat – These centres are known as Sharada Math, Govardhan Mutt, Jothir Math and Sringeri Math.' (Extract from an article 'Holy Dwaraka—A great centre of National Integration' published in 'H. H. Jagadguru Shankaracharya Satkarya Samiti Souvenir 1962')

(146) An appeal for funds for the renovation of the Sringeri Mutt in holy Kashi carries the following paragraphs and was issued over the signatures of–

Dr. C. P. Ramaswami Iyer, the Vice-chancellor, Banaras Hindu University.

Sri N. Chandrasekhara Aiyer, then judge of the Supreme Court.

Rajamantrapravina A. V. Ramanathan, Ex. Prime Minister, Bharatpur.

Dr. M. S. Aney, Ex. Governor of Bihar.

Sri M. S. M. Sharma, Editor, 'The Searchlight', Patna.

Sri A. Chidambaram Mudaliar, Chairman, Madurai Municipal council.

Sri M. V. Nallamuthu Pillai, Chairman of the Board of Trustees, Sri Meenakshi Sundareswara Temple, Madurai.

Rao Bahadur P. Rangaswamy Naidu, Retired Chief Judge, Pudukkottai.

Rao Sahib Rajagopala Pillai of Bhikshandarkoil.
Sri Binodanand Jha, Minister of Bihar.

'The unique significance of the great Sringeri Mutt in India's spiritual revival is too well known to the public of India to need any special reiteration. It has been referred to by Pandit Jawaharlal Nehru, in his classic book, 'The Discovery of India'. Of the only four mutts established by Bhagwan Sri Shankara-Acharya, the Sharada Peetha at Sringeri holds an unrivalled position as the most authentic exponent of the highest spiritual aspirations of a country which had been specially designed by a wise and farseeing Providence to function as Queen of the East and Spiritual Teacher of mankind.'

'His Holiness's mind was centered always in Banaras. Nor was it without cause of the many branch mutts spread throughout the length and breadth of India ...... the Sringeri Mutt in holy Kashi has an unrivalled distinction. It is believed to have been erected on the very spot hallowed by Bhagwan Sri Shankaracharya when that great Avatara of Lord Vishwanatha, the lord of the Universe, visited Kashi and performed many a miracle graphically described in Shankara Vijayam.'

'The great Shri Vidyaranya, a former incumbent of the Sringeri Pontifical Throne, better known to historians as the founder of the Empire of Vijayanagar which checked Moghul aggression from gaining access into the south of this vast Indian Peninsula, conceived the idea over 750 years ago of raising a permanent memorial on the very spot hallowed by the Lotus Feet of Shri Shankaracharya at Kashi. The result was the present Sringeri Mutt on the banks of the sacred Gangamai. In it have been installed the Shivalingam of Chandramowleshwar and a beautiful image of Shri Sharadamba, the Divine Mother, after whose name the Sringeri Peetha has been called.'

'Several Paramparas of Sri Vidyaranya's Sannyasi disciples lived in this mutt and taught Vedanta to generations of qualified aspirants.'

'Located at Kedarghat not far from the temple of Lord Viswanatha and the holy Manikarnika, it is no wonder that pilgrims rich and poor have been attracted to this blessed spot in Kashi. During his stay in Kashi Sri Baji Rao Ragunath Pradhan (Peshwa Baji Rao II) took interest in this mutt and that at Kshemeshwaraghat. In one of his letters he informed the Jagadguru that the unscrupulous pujaris incharge had wrought damages to the Kshemeshwaraghat mutt and even sold the ground and the bricks in the debris for Rs. 6204 and that

he had recovered the ground by reimbursing the Vendee of the amount. Thus a valuable property was restored to the Sringeri Samasthanam. Sri Narasimha Bharati Mahaswamigal, while a boy in his poorvasrama studied the Sastras here and later as Jagadguru visited Kashi in his Vijaya Yatra.' (Sri Sringeri Souvenir 1963)

(147) 'Link', August 6, 1961—'The most famous of the four mutts (monasteries) Sankaracharya established at four points in India is the one at Sringeri whose head is recognised as Jagadguru.'

(148) Editor, The Vedanta Kesari, Vol.XLIV, June 1957–'He (Sankara) established monasteries in four corners of India to practice, preserve and propagate the Vedantic knowledge. He strengthened the custodians of traditional spiritual culture and renovated temples and places of pilgrimages.'

(149) The Vedanta Kesari—Vol.XLII, April 1956, 'Notes & Comments' —'Imagine the vision of a man who in the nineth century traversed the entire length and breadth of the country and established four monasteries in four corners of the country for the spiritual solidarity of the nation. This was Sri Sankara.'

'It was, therefore, gratifying to note that President Rajendra Prasad during his recent pilgrimage to Kaladi drew the attention of the people of India that Sankara's birth place deserved better attention.'

(150) Tamil Encyclopaedia—'Abhidana Chintamani'—Page 1064—mentions four mutts only as established by Sri Sankara and Sringeri in the south as the foremost; Virupakshi Mutt as branch of Sringeri; Pushpagiri was established as branch mutt during the time of Sri Vidyaranya; and later on Kumbakonam, Avani, Sivaganga, Karavira, etc., were established as branch mutts.

(151) Tamil Encyclopaedia—Vol IV—'Kalaikkallanjiyam' Page 684/5, mentions four mutts only as established by Sri Sankara.

(152) Chamber's Encyclopaedia—Vol IX—1904—'Towards the close of his life he repaired to Cashmere and finally to Kedarnath in the Himalayas where he died at the early age of thirty-two.'

(153) Cyclopaedia of India—Mr. E. Balfour—Vol V—1873 (Printed at Madras) 'He (Sankara) was a Nambudri Brahmin and a native of Kerala or Malabar. He lead an erratic life through India and Kashmir and engaged in controversies and finally died at Kedarnath in the Himalayas.'

(**154**) Encyclopaedia Brittanica (under heading 'India-Religion') Vol XII —14 th edition—' He (Sankara) founded Sringeri in Mysore as his Chief Monastry where he himself was the head, Govardhan in Puri, Sarada (Sarasvathi) in Dwaraka and Joshi at Badrinath.'

(**155**) Illustrated Guide to the South Indian Railway by Mr. B. C. Scoot (1915)—' Kumbakonam—A branch mutt of Sankaracharíar, the founder of the Advaita Philosophy, is presided over by a chief guru belonging to the smartha Brahmins.' (Under Conjeevaram, there is no mention of any Sankara mutt).

(**156**) Sir Monier Williams—' ... ... and four monasteries of Sankaracharya, one at each extremity of India viz. Sarada matha at Gomati Dwaraka, Sringeri matha in Karnatic, Jyotir mathā near Badrinath, one of the sources of the Ganges and Vardhana matha at Puri.'

(**157**) Mr. Horace L. Friers and Mr. Herbert W. Shneide (Dept. of Philosophy—Columbia)—' From men of this degree the heads of their principal monasteries or maths in Dwaraka, Puri, Sringeri and Kedarnath are chosen. The head of Sringeri is the supreme authority among southern saivites.' (Extract from a book ' Religion in various cultures ')

(**158**) Mr. J. Estlin Carpenter—' As disciples gathered round him, he (Sankara) established four mathas or monasteries one of which at Sringeri in Mysore, still flourishes under a Preceptor who exercises considerable authority. ... ... Sankara himself is said to have travelled as far as Kashmir and he died at Kedarnath in the Himalaya, ... ' (Extract from a book ' Theism in Medieval India.')

(**159**) Sir Charles Eliot—' ... ... and in the course of the journeys in which like Paul he gave vent to his activity, he founded four mathas or monasteries at Sringeri, Puri, Dwaraka and Badrinath in the Himalaya. Near the latter he died.' (Extract from Hibbert Lectures—second series—1919.)

(**160**) Rev. A. R. Slater-' The great teacher (Sankara) in order to spread his teachings over the whole land, decided to found four mathas at the four cardinal points. Sringeri was one of the places selected. (Extract from Q. J. M. S. VI—Page 251.)



48. आद्यशङ्कराचार्य के जीवन लीला से सम्बन्धित कुछ मुख्य क्षेत्र व स्थल।

महानों के लिखे हुए ग्रंथो के ध्येय व उपदेश सब पढकर या सुनकर एवं स्वानुभूति द्वारा जो भाग्यवान पुरुष परमानन्द का अनुभव करते हैं वे उन महानों के बारे में अनेक चरित्र कथायें जो सब काव्य रूप में लिखे गये हैं उन साधारण विषयों को कोई ध्यान या चिन्ता नहीं करते। ऐसे पुरुष जो अभाग्यवश उन ग्रन्थों को जानने, अनुष्ठान में लाने और अनुभव करने का उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, वे महानों का जीवन चरित्र और छोटी छोटी कथायें सुनकर या पढकर कुछ न कुछ भाग में अवश्य उन महानों की महिमाओं और उपदेशों का अनुभव करते हैं। महानों की चरित्र गाथा अवश्य ही साधारण मनुष्य के हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न करती है। मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है कि अपने दोषों को जानते हुए भी वह उन्हें तब तक नहीं छोडता जब तक उसे कोई गम्भीर प्रेरणा प्राप्त न हो। महानों की जीवन गाथा इसी प्रकार की प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति रखती हैं। उसके अध्ययन से पाठक को अपने सा समान गुण-दोषों से युक्त किसी अन्य प्राणी के चरित्र को देखने का अवसर मिलता है और तब वह अपने जीवन से दोषों को दूर करने का प्रयत्न करता है। वास्तव में समाज के विकास का विधान करनेवाला साधन महानों की जीवन गाथा ही है जो साहित्य रूप में लिखा गया है। महानों की जीवन गाथा हृदय को परिष्कृत करने के साथ ही जीवन को पवित्र और सदाचारयुक्त बनाता है। भगवान भक्तों के कल्याण के लिये अवतार धारण करते हैं और अवतार का मुख्य हेतु भक्तों के लिये लीला का विस्तार करना है। यह क्षोभ की बात है कि हमारे यहां इतिहास व जीवन चरित्र लेखन की प्रथा हीं नहीं थी। यदि घटनाओं और व्यक्तियों पर कुछ लिखा भी गया तो उनकी तिथि और चरित्र से सम्बन्धित स्थलों व चरित्र घटनाओं का विवरण आदि के विषय में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। हमारे महान् पूर्वज या तो आवश्यकता से अधिक नम्र थे या अपने सांसारिक जीवन को तुच्छ समझकर पारलौकिक सत्ता पर दृष्टि डाले हुए थे। आत्मकथा स्वप्रख्याती होने तथा अहंकार के प्रकाशन करने का कारण होने से जो सब पाप और निषेध समझा जाता था, उन महानों ने पुराकाल में अपनी आत्मकथा कहीं भी लिखी नहीं। 'परमपुरुषः स्वस्मै स्वप्रीतये स्वयमेव कारयति' के अनुसार जन्म व मरण ईश्वरेच्छा से होती है और इस आयोजित लोक व उसके कार्यक्रम में हर एक व्यक्ति अपना अपना निर्धारित जीवनलीला समाप्त करते हैं एवं 'तेन विना तृणमपि न चलति' के अनुसार अपनी इह लीला को भी 'ब्रह्मार्पणमस्तु' करते हुए अपने को उस भगवान के हाथ का एक शस्त्र मानकर तथा 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' पर ध्यान रखते हुए अपना निर्धारित कर्म को करते थे। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उन्होंने आत्म कथा लिखो नहीं। त्यागी महान पुरुषों ने लोक कल्याण के लिये निष्काम्य कर्म करके अपनी लीला की समाप्ति की। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अर्वाचीन काल में कुछ विद्वानों ने स्वभिमान द्वारा अपनी भलाई तथा स्व सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये नई नई समस्याओं को खडा कर और उनके प्रमाण के लिये यातो प्राचीन पुस्तकों में से कुछ भागों को बदलकर नयी पुस्तक बना डाली या नवीन काल में रचित पुस्तकों पर प्राचीनता का लेबल चिपका कर प्रचार करने लगे। यह बडे खेद का विषय है कि केवल अपौरुषेय वेद एवं कुछ मूल उपनिषदों को छोडकर प्रायः सब ग्रंथों की एक से अधिक प्रतियां मिलती हैं।

दृढ प्रमाणों के आधार पर आचार्य शङ्कर के जन्म स्थान कालटी के सम्बन्ध में दो मत न होते हुए भी कुछ लोग चिदम्बर को जन्म स्थल होने का प्रचार करते हैं। अग्राह्य एवं अप्रमाणिक तथा द्वेष से लिखी निन्दनीय आनन्दगिरि पुस्तक को प्रमाण में प्रचार करते हैं। श्री गोविन्दभगवत्पाद का आश्रम नर्मदा तट ओंकारेश्वर पर होने का प्रमाण मिलता है। पर कुछ पुस्तकों में आपका आश्रम हिमालय सीमा में होने का भी उल्लेख है। श्रीगोविन्द भगवत्पाद के गुरु श्री गौडपादाचार्य का आश्रम हिमालय की बद्री सीमा में था और गुरु शिष्य दोनों का आश्रम एक ही होने का भावना करके या श्रीगोविन्दभगवत्पाद नर्मदा तट छोडकर बद्री सीमा पश्चात् पहुंच कर गुरु के आश्रम में वास

किये थे इस भावना से भिन्न अभिप्राय का प्रकाश किये हों। आचार्य शङ्कर का काशी में वास, भाष्य रचना की पूर्ति, श्री विश्वेश्वर का सान्निध्य होना, श्री सनन्दन को सन्यास दीक्षा एवं श्री व्यास जी (वृद्धब्राह्मण रूप में) से भेंट होना आदि घटनाओं का उल्लेख काशी में घटित होने का वर्णन प्रामाणिक पुस्तकों में किया गया है। पर कुछ लोगों का अभिप्राय है कि ये सब घटनायें हिमालय के अलकनन्दा नदी तट पर 'उत्तरकाशी' में घटित हुए थे। आचार्य शङ्कर का भेंट श्री कुमारिलभट्ट के साथ त्रिवेणी सङ्गम् प्रयाग राज में होने का एवं आपका भेंट व विवाद श्री मण्डन विश्वरूप मिश्र के साथ नर्मदा तट पर माहिष्मती नगर में होने का विषय निर्विवाद है। पर कुछ मैथिली पंडितों का कहना है कि मण्डन विश्वरूप मिश्र मिथिला निवासी थे और दरभंगा के पास उनका निवास स्थान बताते हैं जहां पर आचार्य शङ्कर श्रीभारती के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। पर अब जो प्रमाण उपलब्ध होते हैं इससे सिद्ध होता है कि 'माहिष्मती' ही आपका निवास स्थान था यद्यपि आपके पूर्वज मिथिला देश वासी गौड ब्राह्मण थे। चतुर्धाम समीप चार आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा-पूर्व-जगन्नाथ पुरी; दक्षिण-शृङ्गगिरि; पश्चिम-द्वारका; उत्तर-बदरीकावन-स्थल निर्विवाद हैं। पर अब कुछ शाखा मठ व उपशाखा मठ यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया है कि आपका मठ भी आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित व अधिष्ठित आचार्य का स्वमठ है। इनका प्रमाण स्वेच्छावाद एवं क्षिप्त एकाङ्गि पुस्तकें हैं। दृढ़ प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर ने कश्मीर स्थित प्राचीन सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था पर अब कुछ लोग दक्षिण भारत कांची मठवाले प्रचार करते हैं कि आचार्य ने कांची के सर्वज्ञपीठ पर आरोहण किया था और कश्मीर में सर्वज्ञपीठ नं था। यह भी अर्वाचीन काल में प्रचार होता है कि काश्मीर मन्डलान्तर्गत कांची होने से कांची में सर्वज्ञपीठ होना सिद्ध होता है और कांची व काश्मीर दोनों एक ही हैं। ऐसे स्वेच्छावाद विषयों पर आलोचना करना व्यर्थ है। आचार्य शंकर का निर्याण स्थल हिमालय के केदारनाथ सीमा ही है और अब उपलब्ध होनेवाले प्रमाण सामग्री द्वारा इसी की पुष्टि होती है। पर स्वाभिमान से एवं अपने स्थल को गौरव देने निमित्त तथा इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये अब अन्य स्थलों के लोग अपना अपना स्थल निर्याण स्थल होने का भी प्रचार करते हैं—यथा-केरळ देश का तिरुचूर, मदरास प्रान्त का चिदम्बरम्, मदरास समीप कांची नगर, गङ्गा तट काशी, आदि। पर अब 100 वर्षों से कुछ स्वतंत्र विचार रखनेवाले अनुसन्धान विद्वानों ने अपने शोध कार्य में ऐसे परस्पर विरोधी एवं इन भिन्नताओं को देखकर अनेक प्रमाणों के आधार पर (अन्त, बाह्य, पुष्टि) यथार्थ विषयों का प्रकटन किया है। राजकीय पुरातत्त्वविभाग एवं प्रसिद्ध इतिहास विद्वानों ने भी इस कार्य में सहयोग देकर सत्य विषय का प्रकाश किया है। इसी आधार पर कुछ स्थलों का विवरण नीचे दिया जाता है।

इस पुण्यमयी भारतवर्ष में पुरा वैदिक काल से एवं आधुनिक काल में प्रायः सब देशवासी तीर्थ व क्षेत्रों के निमित्त यात्रा करते थे और कर रहे हैं। यात्रियों की जानकारी एवं तीर्थाटन के लिये कुछ तीर्थ स्थलों का विवरण दिया जाता है जो आचार्य शङ्कर की जीवन क्रीडा से सम्बन्ध रखा था। हमारा भारतवर्ष विभिन्न भाषा, पोशाक, खानपान, शरीर गठन, वर्ण, आचार-विचार, रहन-सहन, ऋतुवातावरण, प्राकृतिक दृष्टि से भिन्न भागों में विभाजित, होते हुए भी इस विभिन्नता में यात्राटन की आध्यात्मिक दृष्टि ही से लोगों में एकता भाव उत्पन्न होती है। इन विभिन्नताओं के बीच भारत की सांस्कृतिक विरासत-मन्दिर, तीर्थ, धाम, राम-कृष्ण, शिव, गीता, रामायण आदि—एक सूत्र में सबों को आध्यात्म द्वारा बांध रक्खा है। आचार्य शङ्कर ने अपने भारत दिग्विजय यात्रा में अनेक तीर्थ क्षेत्रों देव देवी मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया था और इनमें पुनः जीवन देकर वैदिक मार्ग की प्रणाली पुनः स्थापना की थी। इस शुभ कार्य द्वारा आचार्य ने सारे भारत के समुदाय को जो उस समय पारे की तरह बिखरी हुई थी उनमें आध्यात्मिक भाव उत्पन्न कराकर इस एकता के सूत्र से बांध दिया था। इस संघठन का श्रेय आचार्य शङ्कर को ही है। चतुर्धाम और समीप में चार अधिकार संपन्न आम्नाय मठों की प्रतिष्ठा द्वारा आचार्य शङ्कर ने भारतवासियों को भारत की आध्यात्मिक एकता स्वरूप को मूर्तिमान कर दिखाया था।

जिससे तर जाय, सफल होजाय, पापों से छुटकारा हो जाय, वही तीर्थ है। जीवन का प्रधान उद्देश्य और परम लाभकर भगवत् प्राप्ति में है। भगवत् प्राप्ति के लिये भगवान की शरण जाना चाहिये तथा भगवान् के कीर्तन, श्रवण, मनन, ध्यान, वन्दन, पूजन में मन लगाना चाहिये। चित्त शुद्धि द्वारा अज्ञान का नाश होकर ज्ञान का उदय होता है जो मुक्ति मोक्ष का साधन है। तीर्थाटन एक साधना मार्ग है। भगवान का यथार्थ स्वरूप, तत्त्व, गुण, लीला, नाम आदि जानने से उस भगवान का यथार्थ ज्ञान होता है। यह ज्ञान साधु-सङ्ग से भी होता है और ऐसे महान् तीर्थों में ही मिलते हैं। हृदय कमल में भक्तिभाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिये। तीर्थ तीन प्रकार के हैं—(1) तीर्थ जंगम् (2) तीर्थ मानस (3) तीर्थ भौम। सप्तपुरियां, चतुर्धाम, आदि तीर्थ क्षेत्र सारे देश के सार्वभौम तीर्थ हैं। अतः इहलौकिक व पारलौकिक दोनों के लिये गुरु की भक्ति एवं तीर्थाटन आवश्यक है और मानव यथा शक्ति अपना कर्त्तव्य समझकर तीर्थाटन करें। खेद की बात है कि आधुनिक काल में कुछ लोग तीर्थाटन करना अनावश्यक समझते हैं और इसीलिये यहां इस विषय का वर्णन किया गया है ताकि मानव के हृदय में आचार्य शङ्कर से सम्बन्धित तीर्थ क्षेत्रों का पुनः तीर्थाटन करने की भावना उत्पन्न हो।

साधारण पुरुष महान् पुरुषों की लीला विवरण जानने की उत्सुकता से वह उन श्रेष्ठ महात्माओं के जन्मस्थल, वासस्थल, पर्य्यटन रास्ता, निर्याण स्थल आदि की खोज में जाता है और भूल से कभी यह भावना करने लगता है कि इन स्थलों के द्वारा ही उस महान् की महत्ता है और इन स्थलों को ही ज्यादा गौरव देने लगता है यद्यपि यह गौरव उस महान् आत्मा के श्रेष्ठ गुणों व अद्वितीय जन्म लीला द्वारा हीं है। साधारण मानव अपनी ममता, अभिमान व अभिलाषा से एवं उन अद्वितीय महानों के साथ अपना सम्बन्ध जोडने के लिये तथा उससे अपनी इष्टसिद्धि प्राप्त करने और गौरव प्राप्त करने के लिये, इन स्थानों की महिमा देकर ही उस महान् के महत्त्व बनने का कारण इन स्थलों को ही बतलाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यों का यह शुद्ध विचार उन महानो के प्रति ही है पर ममता उन्हें रागद्वेषादि मार्गों में ले जाता है और उनका यह स्वेच्छावाद विचार यथार्थ जीवन गाथा विवरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। श्री आचार्य शंकर के जीवन लीला से सम्बन्धित अनेक क्षेत्र, तीर्थ, देव देवी पीठ एवं स्थल हैं और आपने भारत दिग्विजय यात्रा में अनेक स्थलों से होते हुए आसेतुहिमाचल का परिभ्रमण किया था। इन स्थलों में कुछ मुख्य स्थल हैं जो आपके जीवन घटनाओं में मुख्य रूप से सम्बन्ध रखता है—यथा—(1) जन्मस्थल, (2) श्री गुरु गोविन्दभगवत्पाद से संन्यास दीक्षा व ब्रह्म विद्या शिक्षा प्राप्त स्थल, (3) भाष्य रचना की पूर्ति, श्रीविश्वेश्वर का सान्निध्य, श्री सनन्दन को दीक्षा, भाष्य प्रवचन एवं श्री व्यास का दर्शन व विवाद आदि घटनाओं का घटित स्थल, (4) श्री कुमारिल भट्ट से भेंट स्थल, (5) श्रीमण्डन विश्वरूप मिश्र से भेंट व विवाद तथा सन्यास दीक्षा स्थल, (6) चतुर्धाम और समीप में अधिकार संपन्न धर्मराज्यकेन्द्र रूप में चार आम्नाय मठों की स्थापना स्थल, (7) सर्मज्ञपीठारोहण स्थल, (8) निर्याण स्थल। इन स्थलों का परिचय संक्षेप में नीचे दिया जाता है ताकि पाठकगण यथार्थ विषय जान लें। कुम्भकोण—कांची मठ जो अपने को श्री आद्यशंकराचार्य के एक मात्र साक्षात् अविच्छिन्न परम्परा होने का एवं आपका मठ श्री आद्यशंकराचार्य द्वारा स्थापित एवं अधिष्ठित होने का भी प्रचार करते हैं वैसे "सर्वोत्तर सर्वसेव्य सार्वभौम जगद्गुरु मठ" (कुम्भकोणमठ कथनानुसार) का सम्बन्ध इन किसी स्थलों के साथ बिलकुल न होना यह आश्चर्यजनक है। यह सिद्ध होता है कि कुम्भकोणमठ अर्वाचीन काल में स्थापित मठ है और आपका प्रचार सब मिथ्या व भ्रामक हैं।

1. जन्म स्थल—कालटी

दक्षिण भारत का एक भाग केरळ देश है जो अतिरम्य, मनभावन, प्राकृतिक दृश्यों से संपन्न हैं, उस देश में कालटी नामक एक अग्रहार का स्थल है जहां ज्ञानज्योति लोकगुरु आचार्य शंकर का आविर्भाव सातवीं शताब्दी

अन्त आठवीं शताब्दी (क्रिस्त पश्चात) प्रारम्भ में हुआ। आपने अपनी अल्प वयस में वह कार्य करके दिखाये जिसे करने में जन्म जन्म युगकाल लग जाता है। इस युग के पूर्व श्रीरामचन्द्र व श्रीकृष्ण आदियों का अवतार हुआ और ये प्रधानतः प्रवृत्तिधर्म मार्ग को स्थापना करने के हेतु व स्वयं उन धर्म मार्गों का अनुष्ठान करके लोक कल्याण के लिये आविर्भून होकर अपने द्वारा कृत जगत् लीला दिखाये। निवृत्ति धर्म मार्ग के सन्यासधर्म व सन्यासाश्रम के अनुष्ठान (श्रवण, मनन, निधिध्यासन) आदियों को व उनसे प्राप्त होनेवाले ज्ञान को व आत्मनिष्ठा के स्वरूप को व ज्ञान मार्ग के तत्त्वों को उपदेश करने तथा स्वयं ब्रह्मचर्य से सन्यास लेकर वेदान्त तत्त्वों को सुलभ रीति से एवं सरस गंभीर भाव से बोध कराने के लिये भगवान शंकर स्वयं नम्बूदरी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर श्रीशङ्कराचार्य का नाम धारण कर अपनी अलौकिक लीला को प्रकट किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण एवं श्रीरामचन्द्र के अवतार की पूर्ति श्रीशङ्कराचार्य ने किया। कोचिन शोरनूर रेलवे लाइन पर 'अङ्गमाली (कालटिरोड)' नामक एक स्टेशन है और कालटी यहां से करीब पांच मील की दूरी पर है। शोरनूर एवं तिरुचूर से मोटरगाडी का प्रबन्ध है। कालटी की पुण्य नदी 'पूर्णा' तट पर आचार्य शङ्कर का आविर्भाव होने से सम्भवतः आपके अवतार का पूर्णत्व का यह एक द्योतक हो। इतिहास द्वारा मालूम पडता है कि खिदमद्गारी एक छोटा राजा राजशेखर के काल में कुछ अन्य अवैदिक मतावलम्बियों के दिये हुए कष्टों के कारण केरळ देश के कुछ नम्बूदरी ब्राह्मण वर्ग 'पाक्षियूर' ग्राम (उत्तर तिरवांकूर) छोड कर कालटी गांव जो पूर्णा (चूर्णी के नाम से प्रसिद्ध है) नदी तट पर स्थित है, वे लोग राजा की सहायता प्राप्त कर अपना डेरा लगाकर गांव बसाये। इस प्रकार दस घरवालों का एक संघ बना और उनके पृथक पृथक वंशज कालटी अग्रहार में रहते हुए चले आये। वर्तमान काल में इन दस घरवालों में से आठ वंशजों के वंशज में से कोई भी रह नहीं गया। 'कैप्पिल्लि' 'तलैयाट्टुमपल्लि' इन दोनो वंशजों के लोग ही अब केवल मिलते हैं। ये नम्बूदरी ब्राह्मण निष्ठावान, सदाचार संपन्न, वैदिक कर्मकाण्ड के अनुरागी होते हैं। इन ब्राह्मणों के सामाजिक आचार और व्यवहार में अनेक विचित्रता दिखलाई पडती है। शास्त्र पारंगत श्री विद्याधिराज 'कैप्पिल्लि' वंशज के एक नम्बूदरी ब्राह्मण जो कालटी ग्राम में निवास करते थे। उनको श्री शिवगुरु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्री शिवगुरु का विवाह सतीशील संपन्न आर्याम्बा से हुआ। सती आर्याम्बा 'वैक्यम्' स्थल के समीप 'पाल्लूर' या 'मेलपाल्लूर' वंशज की एक सुकन्या थी। यह भी कहा जाता है कि सती आर्याम्बा 'पजुर पन्नै इल्लम्' नामक नम्बूदरी ब्राह्मण कुटुम्य की थी। शिवगुरु को सन्तान का सौभाग्य बहुत वर्षों से प्राप्त न होने से एवं उन्हें 'लुप्तपिन्डोदक क्रिया' एवं 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' की चिन्ता सदा सता रही थी। देवादिदेव महादेव वृषभाचलेश्वर उनके अनन्य भक्ति एवं आराधना से प्रसन्न होकर उनको पुत्रप्राप्ति का वरदान देकर स्वयं उनका मनोरथ पूर्ण किया। मनुष्य रीति के अनुसार क्रम से कुछ काल बाद शिवगुरु की धर्मपत्नी आर्याम्बा ने एक दिव्य कान्तिमान पुत्र का जन्म दिया और आपका नामकरण श्री शङ्कर रक्खा गया। आप यजुर्वेदी व अत्रि गोत्रवाले थे।

दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठाधीश श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री 1008 श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती महाराज के आदेश पर व मैसूर राज्य दिवान श्री शेषाद्री अय्यर जी के विशेष प्रयत्नों से श्री शङ्कर भगवत्पाद का जन्मस्थल जो कालटी में एक अग्रहार का स्थल है, उसे निश्चय किया। पश्चात् दिवान् श्री वी. पि. माधव राव जी की सहायता एवं केरल देश के महाराजा श्री मूलम् तिरुनाळ श्री रामवर्मा जी की सहायता व सहयोग से श्री आचार्य शङ्कर का जन्म स्थल खरीदा गया और वहां पर दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गेरी मठ ने मठ, मन्दिर, घाट आदि का जीर्णोद्धार व निर्माण भी कराया। ऐसे शुभ कार्य में दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी जगद्गुरु मठाधीश महाराज के आदेश पर प्रकान्ड विद्वान व कुम्भकोणम् समीप नडुकावेरी वासी ब्रह्मश्री श्रीनिवास शास्त्री जी, ब्रह्मश्री ए. रामचन्द्र अय्यर (भूतपूर्व केरळ व मैसूर हाईकोर्ट न्यायाधीश), शृङ्गेरी मठ के कार्यदर्शी व प्रबन्धक ब्रह्मश्री श्रीकण्ठ

शास्त्री, आदि प्रभृतियों ने अपना अपना कैंकर्य बंटाकर इस कार्य को पूर्ण किया। केरळ और मैसूर राज्य की प्रेरणा पर राजकीय पुरातत्त्वविभाग ने कालटी ग्राम का इतिहास का जांच आन्वेषण करके अन्त बाह्य प्रमाणों के आधार पर कालटी को जन्मस्थल होने का निस्सन्देह निर्णय किया था। आचार्य शङ्कर का जन्मस्थल व आपके मातुशिरोमणि श्री आर्याम्बा के दहन स्थल आदि को भी प्राचीन स्मारक रक्षणधारा के अनुसार खरीदा गया।

सती आर्याम्बा का दहन स्थल जो एक वृक्ष समीप है उस पुण्य स्थल पर एक वृन्दावन का निर्माण किया गया है। इसके समीप शक्तिगणपति का मन्दिर है और इस मन्दिर के सामने ही जगन्माता शारदा का मन्दिर है। इसके पश्चिम में श्रीशङ्करालय है। माता शारदा मन्दिर का विमान अष्टपद्मयुक्त आठ कोणों का है। श्री शङ्कर का मन्दिर षोडश कोण का बना है और आप यहां दक्षिणामूर्ति रूप में स्थित हैं। शारदा मन्दिर में सप्त माताओं की मूर्ति हैं। उक्त दोनों मन्दिरों के सामने छोटे मण्डप हैं। शङ्करालय के उत्तर पश्चिम दिशा में श्री कृष्ण जी का मन्दिर है जो मूर्ति सती आर्याम्बा से पूजित मूर्ति है। शारदा मन्दिर के उत्तर पूर्व में शाङ्करमठ है। पूर्णा नदी के तीर पर सीढ़ियां बनी हुई है। इन मन्दिरों के पीछे वेद वेदान्त की पाठशाला; भोजनालय; उपाध्याय, छात्रों, पुजारियों और मठ कर्मचारियों के वास के लिये अग्रहार का निर्माण किया गया है। कालटी का शङ्कर कालेज (बि. ए., बि. एस. सि, बि. काम और एम्. ए. संस्कृत) अर्वाचीन काल से दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ के निर्वाह व संचालन में है। इस निर्वाह कार्य को एक "बोर्ड आफ ट्रस्टी" के हाथ सुपुर्द किया गया है।

इस कालटी गांव के समीप कुछ पुण्य स्थल हैं जिनसे श्री शङ्कर के वंशजों का सम्बन्ध था। उत्तर तरफ एक मील दूर पर 'माणिक्कमङ्गल' में दुर्गामन्दिर है, 'वेळ्ळिमान्तुळ्ळी' में शिवजी का मन्दिर है। आचार्य शङ्कर के कृपा कटाक्ष से ऐश्वर्य प्राप्त (कनकधारास्तव) उस मातु शिरोमणि का मकान जो 'सुवर्णत्तुमर्णक्कल' के नाम से अब भी प्रसिद्ध है, सब वहीं विद्यमान हैं।

आचार्य शङ्कर का चूडाकर्म व उपनयन एवं वेदाध्ययन तथा शास्त्र पाठ सभी कालटी में हुआ। श्री शङ्कर के पैदा होते समय उनके पिता जीवित थे पर आपके आतुर सन्यास लेने के पूर्व ही आपके पिता श्री शिवगुरु का मरण हो चुका था। एक दिन नदी में स्नान करते समय जब मगर ने उनका पांव पकड लिया था और उससे छुटकारा पाने का सब प्रयत्न विफल रहा और अपने अन्तिम दिन आने का ख्याल कर तब आतुर सन्यास लेने की माता आर्याम्बा से अनुमति प्राप्त कर प्रैषोच्चारण द्वारा मानसिक सन्यास ले लिया। मगर के पकड से छुटकारा भी पाये। आचार्य शङ्कर अपनी माता को नमस्कार करते हुए वचन दिया कि जब उनकी मां इनका स्मरण करेंगी वे शीघ्र उपस्थित हो जायेंगे और अपने हाथों द्वारा दाह संस्कार करने का भी वादा देकर श्री शङ्कर कालटी घर से रवाना हुए। गुरु को ढूंढ़ने में उत्तर दिशा चल पडे और आप नर्मदा नदी तट पर स्थित ओंकारनाथ पहुंच श्री गोविन्दभगवत्पाद का दर्शन कर अपने को शिष्य बना लेने की इच्छा प्रकट किया।

आचार्य शङ्कर ने श्री गोविन्दभगवत्पाद से दीक्षा लेकर पश्चात् काशीधाम पहुंच कर कुछ काल वास के पश्चात् वहां से बदरी सीमा की यात्रा पूर्ण करके पुनः काशी पहुंचें। यहां भाष्य की पूर्ति की। श्री विश्वेश्वर का सान्निध्य हुआ। वृद्ध ब्राह्मण रूप में आये श्री व्यास से भेंट कर शास्त्रार्थ किया। श्री सनन्दनाचार्य को दीक्षा देकर अपना प्रथम शिष्य बनाया। यहां से प्रयागराज पहुंचकर वहां कुमारिल भट्ट जो तुषानल में प्रायश्चित निमित्त जलने वाले थे उनसे भेंट कर, पश्चात् श्री मण्डन मिश्र (आप गृहस्थ थे और गृहस्थ ही रह गये। आपसे रचित ग्रंथ 'ब्रह्मसिद्धि' है) से भेंट व शास्त्रार्थ करके माहिष्मति पहुंचे। यहां मण्डन विश्वरूप मिश्र से भेंट कर और आपको शास्त्रार्थ में पराजित करके सन्यासाश्रम दिया। आप ही श्री सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचार्य शंकर अपने दो शिष्यों के साथ

माहिष्मती से शृङ्गेरी आ पहुंचे। रास्ते में श्रीवलिगांव में श्री हस्तामलक को दीक्षा देकर अपना तृतीय शिष्य ग्रहण किया। शृङ्गेरी में चतुर्थ शिष्य श्री तोटकाचार्य या गिरि को भी दीक्षा दी। अपने चार शिष्यों के साथ जब शृङ्गेरी में आचार्य शङ्कर वास करते थे उस समय श्री पद्मपाद तीर्थ यात्रा में चल पडे। इसी समय में आचार्य शङ्कर ने श्रीसुरेश्वराचार्य के ऊपर शृंगेरी मठ का भार छोडकर स्वयं माता के पास काल्टी आ पहुंचे। आपने अपने पूर्व किये वादा के अनुसार माता कि अन्त्येष्टि क्रिया भी अपने हाथों से ही की। गांव के ब्राह्मणों ने शङ्कर की निन्दा की। शङ्कर स्वयं बिना अन्यों की सहायता से घर के पीछे भाग में दाहसंस्कार करके उन ब्राह्मणों को शाप दिया। आजपर्य्यन्त बहुतेरे नम्बूदरी ब्राह्मण चिता को घर के पीछे भाग में ही जलाते हैं। यहां के मकान लम्बे होते हैं और पीछे का भाग आकाश खुला जमीन होता है। शवको काटकर टुकडा करने के बदले उसे चाकू द्वारा हर एक अङ्गो पर चिन्ह करते हैं। वेदाध्ययन भी नहीं करते। नम्बूदरी वंश के इस परम्परा आचरण से सिद्ध होता है कि श्री शङ्कर का शाप देना सत्य था। माता की दाह संस्कार पश्चात् आचार्य शङ्कर यहां से दिग्विजय यात्रा के लिये रवाना हुए।

2. सन्यास दीक्षा व ब्रह्मविद्या शिक्षा प्राप्त स्थल–ओंकारनाथ (नर्मदा नदी तट पर)

इन्दोर से 47 मील पर ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है। यहां से ओंकारेश्वर 7 मील पर है। ओंकारेश्वर की गणना ज्योतिर्लिङ्गों में की जाती है। नर्मदा नदी के बीच में मान्धाता टापू पर ओंकारेश्वर लिङ्ग है। नर्मदा नदी एक ओर बहती है दूसरी ओर नर्मदा की एक धारा है जिसे लोग 'कावेरी' के नाम से पुकारते हैं। द्वीप के अन्त में कावेरी धारा नर्मदा नदी में मिल जाती है। दक्षिण भारत की नदी कावेरी का नाम से ही प्रतीत होता है कि पुराकाल में इस ओंकारेश्वर पुण्यक्षेत्र में दक्षिणात्य महानों का वास एवं उनका आना जाना बराबर रहा होगा। स्थल पुराणों द्वारा प्रतीत होता है कि यहां महानों का आश्रम भी था। यह अनुमान किया जाता है कि श्री गोविन्द भगवत्पाद अपने पूर्वाश्रम में दाक्षिणात्य रहे हों। ओंकारेश्वर की महिमा स्कन्दपुराण-रेवाखन्ड-ओंकारेश्वर माहात्म्य-से मालूम किया जा सकता है। शिवमहापुराण IV-18 में उल्लेख है कि ओंकारेश्वर स्थल में भगवान शिव ने देव ऋषियों के अनुरोध पर विन्ध्य पर्वतराज को स्व स्वरूप प्रगट कर वहीं पर एक चिन्ह रूप में वास करने लगे। महाराजा मान्धाता ने यहीं आराधना की थी।

ओंकारेश्वर क्षेत्र में श्री गौडपादाचार्य के शिष्य श्री गोविन्द भगवत्पाद की पर्णशाला में आचार्य शङ्कर पहुंच कर सविनय प्रणाम करके अपने को शिष्य बना लेने की इच्छा प्रकट किया और यहीं श्री गुरुगोविन्दभगवत्पाद से सन्यास दीक्षा व प्रणव सहित महावाक्योपदेश लेकर कुछ काल के लिये ब्रह्म विद्या की शिक्षा भी पायी। पूर्व में काल्टी में आतुर सन्यास लेने के कारण अब आपने यहां सशास्त्रीय दीक्षा लेकर साधना में प्रवृत्त होकर ब्रह्मत्व का लाभ पाया। श्री गोविन्दभगवत्पाद चिद्विलास के अनुसार श्री गुरुगोविन्द भगवत्पाद का आश्रम बदरी सीमा में होने का उल्लेख है। श्री गोविन्दभगवत्पाद के गुरु श्री गौडपादाचार्य का आश्रम बदरी सीमा में था और गुरु शिष्य दोनों का वास स्थल एक ही होने का भावना कर बदरी सीमा का उल्लेख किया गया है। यह भी सम्भव है कि श्री गोविन्दभगवत्पाद नर्मदा तट ओंकारेश्वर में कुछ काल वास करने के बाद आप भी बदरी सीमा पहुंचकर अपने गुरु के आश्रम में वास किये हों। अग्राह्य अप्रामाणिक निन्दास्पद आनन्दगिरि शङ्करविजय में श्री गुरुगोविन्द भगवत्पाद का आश्रम चिदम्बर समीप व्याघ्रपुर में होने का उल्लेख है। पर अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आपका आश्रम ओंकारेश्वर एवं बद्री सीमा में था।

एक कथा कही जाती है कि श्री गोविन्दभगवत्पाद के आश्रम में लगातार पांच रोज की वर्षा से बाढ हो गई जिससे पर्णशाला भी बहता जा रहा था। श्री शङ्कर ने अपने कमन्डलु से समस्त पानी को रोक लिया। इस

योगिक सिद्धि को देखकर श्रीगोविन्दभगवत्पाद को जटाधारी भगवान श्री शङ्कर की याद आई और इस शङ्कर को उनका अवतार जानकर उन्हें श्री काशी एवं बदरी सीमा जाने एवं वहां महानों से भेंट करके व्यास सूत्रों का भाष्य रचने की आज्ञा दी। हिमालय के देवयज्ञ में पधारे श्री व्यास ने कहा था कि जो पुरुष एक घडे के भीतर नदी के जल को भर देगा वही मेरे ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या करने में समर्थ होगा। श्रीगोविन्दभगवत्पाद को उक्त कथा कि याद आयी और आपने श्री शङ्कर को ही सूत्रों पर भाष्य लिखने का योग्य व्यक्ति समझा।

आचार्य शङ्कर का एक स्मृति चिन्ह ऐसे पुण्य क्षेत्र ओंकारेश्वर में होना परमावश्यक है। प्रार्थना की जाती है कि शुभाकांक्षी धर्मनिष्ठ उदारशील पुरुष सार्वजनिक हित के लिये इस कार्य को हाथ में लेकर ओंकारेश्वर में आचार्य शङ्कर की मू र्ति स्थापना करें। भावी सन्तानों के लिये यह सत्य पथ का प्रदर्शक होगा।

3. श्री विश्वेश्वर का सान्निध्य, श्री सनन्दन को दीक्षा, भाष्य रचना की पूर्ति, भाष्य प्रवचन, श्रीव्यास का दर्शन व विवाद—श्री काशी।

'जहां ब्रह्म प्रकाशित हो, वह काशी' यह काशी शब्द का अर्थ है। जिनके हृदय में काशी विराजमान है उन्हें संसार-सर्प-विष से कोई भय नहीं है। शङ्कर के त्रिशूल पर काशी बसी है और प्रलय में इसका नाश नहीं होता। तारकमंत्र से जीव को तत्त्व ज्ञान हो जाता है और अपना ब्रह्म स्वरूप प्रकाशित हो जाता है। काशी के बारह नाम हैं—काशी, वाराणसी, अविमुक्त, आनन्दकानन, महाश्मशान, रुद्रवास, काशिका, तपः स्थली, मुक्तिक्षेत्र, पुरि, शिवपुरी, त्रिपुरारि राजनगरी। जागतिक सीमा आबद्ध होने पर भी मोक्षदायनी है। इसे भूकैलास भी कहते हैं। सप्तपुरी में यह प्रधान क्षेत्र है। त्रिलोकपावनी भागीरथी के तट पर शोभित व सुसेवित असी वरुणा नदी के मध्य में है। सात मोक्ष पुरियों में छः पुरियां कालान्तर में काशी प्राप्ती करा के ही मोक्ष प्रदान करती है पर काशी स्वतः मोक्ष देती है। यह विश्वास किया जाता है कि विश्वेश्वर मन्दिर की जीर्णोद्धार भगवान शङ्कर के अवतार श्रीमदाद्य-शङ्कराचार्य ने स्वयं अपने कर कमलों से किया था। यह भी कहा जाता है कि आचार्य शङ्कर ने श्रीमाता अन्नपूर्णा मन्दिर में श्रीचक्र की प्रतिष्ठा भी की थी।

आचार्य शङ्कर काशी में दक्षिण देश वासी वैराग्यशील श्री सनन्दन को अपना प्रथम शिष्य बनाया। इन्हीं का दूसरा नाम श्री पद्मपादाचार्य से प्रसिद्ध हुआ है। अपने गुरु का आज्ञापालन करने के लिये श्री सनन्दन को गंगा पार कर आना पडा और उनका दृढ अनन्य गुरु भक्ति से गंगामाता जी ने हर पाद रखने की जगह कमल पुष्प आविर्भाव कर गंगा की पार सुविधा से करायी। इसी कारण आपका नाम श्री पद्मपादाचार्य है। श्री शङ्कर ने श्री काशी की स्तुति 'शिवाकारां देवीं हरिहर निजावास धरणीम्' भागीरथी की स्तुति 'ॐ शिवा शान्ता शीता हरिपद यशोभू तिरतुला', स्वात्मरूप श्री विश्वेश्वर जी की स्तुति 'ॐ शिवं शान्ताकारं भवमृतिजराशून्यममृतम्', और श्री अन्नपूर्णा की स्तुति 'शिवां शंकरस्यार्द्धदेहां विशुद्धाम' इस प्रकार की थी।

एक दिन एक चान्डाल चार श्वानों को साथ लिये हुए श्री शङ्कर के सामने आया। उस चांडाल को अपने सामने से चले जाने को कहा। पर चान्डाल ने कहा "आत्मा असंग, चिद्रूप, आनन्द, पवित्र, भेद रहित व सर्वव्यापक है और सबों में विद्यमान है। तब आप हटाते किसको हैं? व्यापक में हटना या दूर होना असम्भव है। यदि शरीर का भेद है सो भी ठीक नहीं क्योंकि पंच भौतिक द्वारा रचित अन्नादिक शरीर दोनों का एक है तथा षट् विकार व उर्मियों का संग्रह एवं जडता व अनित्यता भी दोनों में बराबर हैं। अहंकार रूपी चांडाल जो घुसा है

उसे निकालने का प्रयत्न करना उचित है। बाहर के चांडाल को हटाना अज्ञान कार्य होगा।" चांडाल के ऐसे प्रखर वचनों ने श्री शङ्कर के हृदय-पटल से भेदभाव का पर्दा हटा दिया और ज्ञान ज्योति उज्ज्वल हो उठा। चांडाल के स्वरूप में आये हुए व्यक्ति के बदले श्री शङ्कर ने आशुतोष श्रीमहादेव जी को वहां स्थित देखा और उनके साथ चारों श्वानों की जगह चारों वेदों को भी खडे हुए देखा। भगवान शङ्कर ने उन्हें व्यास कृत सूत्रों का भाष्य रचने एवं वेद धर्म प्रचार करने की आज्ञा देकर स्वयं अन्तर्द्धान हो गये। आचार्य शङ्कर द्वारा रचित "मनीषापंचक" स्तोत्र पढने योग्य है। श्री पद्मपादाचार्य पञ्चपादिका में कहते हैं कि भाष्यकार भगवान् श्री शङ्कराचार्य शिष्टाचार के परिपालन में अग्रणी हैं—"अग्रणीः शिष्टाचार परिपालने भगवान् भाष्यकारः"।

आचार्य शङ्कर द्वारा काशी में रचित बारह श्लोकों का स्तोत्र 'भजगोविन्दम् भजगोविन्दम्' है जो सरस सरल सुबोध है और इसकी मधुर स्वर लहरी जब कानों में पडती है और चित्त जब लय हो जाता है तो यह अनित्य दुःखमय भौतिक संसार से मानव उठ कर एक अलौकिक जगत् में पहुंचता है और वहां ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है।

आचार्य शङ्कर अपने शिष्यों सहित काशी छोड बदरी सीमा की यात्रा पूर्ण कर वहां महानों का दर्शन कर व भाष्य रचना का अधिकांश कार्य वहीं समाप्त कर बदरी से पुनः श्रीकाशीधाम पहुंचे। श्री काशी में कुछ काल वास करते हुए भाष्य की पूर्ति की। यहीं शिष्यगणों को उपदेश देने लगे और भाष्य प्रवचन भी किया।

श्री काशी में एक कृष्णकाय वृद्ध ब्राह्मण ने श्री शङ्कर से मिलकर एक सूत्र का (अ० 3, पा० 2, सूत्र 2) अभिप्राय पूछा। लगातार आठ दिनों तक विवाद होते हुए भी कोई निष्पत्ति न हुई। अपने शिष्य पद्मपादाचार्य के युक्ति को सुनकर श्री शङ्कर ने इस वृद्ध ब्राह्मण को वेदव्यास स्वरूप होने का स्वीकार कर उनकी स्तवन करते हुए क्षमा मांगी। श्री व्यास द्वारा आयु वृद्धि का आशीर्वाद पाकर आचार्य शङ्कर यहां से चल पडे। कुछ लोगों की भावना व प्रचार है कि आचार्य शङ्कर ने पद्मपादाचार्य को दीक्षा एवं वृद्ध ब्राह्मण रूप में आये हुए श्रीव्यास जी से भेंट हिमालय के अलकनन्दा नदी तट पर उत्तरकाशी में घटित हुआ। यह निस्सन्देह है कि गङ्गातट काशी ही यह पुण्य स्थल था चाहे वह स्थल हिमालय सीमा को (उत्तरकाशी) हो या निचला समतल मैदान का (काशी) हो।

परम्परा प्राप्त कर्णश्रुति आधार पर विश्वास किया जाता है कि दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी मठ का काशी शाखा मठ (गङ्गातीर क्षेमेश्वरघाट, केदारनाथ मन्दिर समीप) पुण्यस्थल पर आचार्य शंकर का निवास स्थल था एवं दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीविद्यारण्य महराज जो एक बार काशीधाम यात्रा निमित्त आये थे उनका भी निवास स्थल यही पुण्य स्थल था। प्राचीन रिकार्डों से मालूम पडता है कि पेशवा बाजी राव II श्री बाजी राव रघुनाथ प्रधान (1795—1818) जब आप काशी आये थे आपने इस श्रृङ्गेरी शाखा मठ को जिसे वहां के पुजारियों ने मठ का कुछ जमीन एवं मकान सामग्री आदि को रु० 6204 के लिये बेच दिया था उसे आप बाजी राव II ने पुनः खरीद कर श्रृङ्गेरी मठ के हाथ सुपुर्द कर दिया था। डा० सी. पि. रामस्वामी अय्यर (भूतपूर्व कुलपति हिन्दू विश्वविद्यालय-काशी), श्री एन्. चन्द्रशेखर अय्यर (न्यायाधीश, सुप्रीम कोर्ट), राजमंत्रप्रवीन श्री एन्.वि. रामनाथन् (भूतपूर्व दिवान भरतपुर), डा० एम्. एस. अणे (भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार), श्री एम्. एस. शर्मा (संपादक, 'सर्चलाइट,' पटना), श्री ए. चिदम्बर मुदलियार (सभापती, मदुरै म्युनिसिपल कौन्सिल), श्री एम्. वी. नल्लमुत्तु पिल्लै (सभापति, मदुरै मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर ट्रस्ट बोर्ड), राव बहादूर पि. रङ्गस्वामी नायडू (न्यायाधीश-पुदुक्कोट्टै), रावसाहब राजगोपाल पिल्लै, श्री विनोदानन्द झा (मंत्री बिहार), आदि प्रभृतियों से प्रकाशित एक निवेदनपत्र जो काशी श्रृङ्गेरी शाखा मठ का जीर्णोद्धार विषय का था उसमें उक्त कहे विषयों की पुष्टि की गयी है।

"... ... ... The Sringeri Mutt in Holy Kashi has an unrivalled distinction. It is believed to have been erected on the very spot hallowed by Bhagwan Sri Shankaracharya, when that great Avatara of Lord Visvanatha, the lord of the Universe, visited Kashi and performed many a miracle graphically described in Shankara Vijayas." "... ... ... The great Shri Vidyaranya, a former incumbent of the Sringeri Pontifical Throne, ... conceived the idea over 750 years ago of raising a permanent memorial on the very spot hallowed by the Lotus feet of Shri Shankaracharya at Kashi. The result was the present Sringeri Mutt on the banks of the sacred Gangamai." "... ... ... During his stay in Kashi Baji Rao Ragunath Pradhan (Peshwa Baji Rao II) took interest in this mutt. ... ... In one of his letters he informed Jagadguru that the unscrupulous pujaris incharge had wrought damages to the Kshemeswara Ghat Mutt and even sold the ground and the bricks in the debris for Rs. 6204 and he had recovered the ground by reimbursing the Vendee of the amount. Thus a valuable property was restored to the Sringeri Samasthanam."

परम्परा प्राप्त जनश्रुति आधार पर एवं आज से लगभग 250 वर्ष पूर्व लिखित एक पुस्तक के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि हरिद्वार में आचार्य शङ्कर का निवास स्थल वही था जिसे अब शृंगेरी शङ्करमठ-हरिद्वार के नाम से पुकारा जाता है। इस मठ में प्रतिष्ठित पाताल लिङ्ग मूर्ति आचार्य द्वारा जीर्णोद्धार किया गया था। हरिद्वार कुम्भमेला का प्रारम्भ भी आचार्य शङ्कर ने यहीं से किया था। इसके अतिरिक्त दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के शाखा मठ नासिक-पंचवटी, प्रयाग, गया, आदि स्थलों में भी हैं। काशी पञ्चगङ्गा घाट समीप पञ्चगङ्गेश्वर मठ भी श्री शृङ्गेरी का शाखा मठ है।

4. श्रीकुमारिल भट्ट से भेंट स्थल–तीर्थराज प्रयाग–त्रिवेणी संगम्।

"को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुञ्ज कुञ्जर मृगराऊ।" शङ्करविजयादि ग्रंथों से प्रतीत होता है कि बौद्धमत का खण्डनकार एवं वैदिक धर्म कर्मकान्ड का प्रचार करनेवाले श्रीकुमारिल भट्टपाद अपने शरीर को प्रायश्चित निमित्त अग्निमें त्रिवेणी तट पर समर्पण किया था। आचार्य शंकर अपने शिष्यों सहित श्री काशी से प्रयागराज पधार कर यहीं उपस्थित हुए जहां भट्टपाद तुषाग्नि में प्रवेश करने वाले थे। भट्टपाद ने आचार्य शङ्कर को माहिष्मती नगरवासी सस्त्रीक मण्डन विश्वरूप मिश्र से शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया था। अब उपलब्ध होनेवाले प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कुमारिल भट्ट एवं आचार्य शङ्कर समसामयिक काल के थे। भेद इतना ही है कि कुमारिल भट्ट नितान्त वृद्ध थे जब आचार्य शङ्कर बालक थे।

प्रार्थना है कि धर्मनिष्ठ पुरुष ऐसे पुण्यस्थल में आचार्य शङ्कर का स्मृति चिन्ह निर्माण करने का शुभ कार्य हाथ में लेकर इसे संपूर्ण करें। सुना जाता है कि दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ ने यहां प्रयागराज में जमीन खरीदा है और शीघ्र ही एक शङ्करमठ का निर्माण भी करने वाले हैं।

5. श्रीमण्डन विश्वरूप मिश्र से भेंट व विवाद एवं सन्यास दीक्षा स्थल—माहिष्मती (चोलीमहेश्वर या महेश्वर)

कल्कि पुराण के प्रथमांश तृतीयाध्याय 32/33 श्लोक में 'माहिष्मत्यां निजपुरे' की टिप्पणी देते हुए लिखते हैं कि 'माहिष्मति' नर्मदा नदी के तट पर बसा हुआ है। इसका वर्तमान नाम चोलीमहेश्वर या महेश्वर है। अजमेर-खंडवा लाइन पर ओंकारेश्वर रोड के पास बडवाहा स्टेशन है। बडवाहा से माहिष्मती 35 मील दूर पर नर्मदा नदी के उत्तर तट पर बसा है। यह ओंकारेश्वर से 50 मील दूर पर स्थित है। यहां राजराजेश्वरी मन्दिर भी है। माहिष्मति या महेश्वरी नाम की एक छोटी नदी भी है जो नर्मदा से महेश्वर नगर से पूर्व थोडी दूर पर मिलती है। डा॰ राजेन्द्रनाथ घोष इस स्थान को देख भी आयें और आप लिखते हैं कि वे स्वयं इस स्थान को खोद करके देखा तो उनको भस्म समान मिट्टी भी मिली। इस स्थल पर यज्ञयागादिक हुआ होगा ऐसा अनुमान करते हैं। कर्मकान्डी विद्वानों का निवास स्थल होने से ही यज्ञयागादिक हुआ होगा। संगम पर महेश्वरी के दोनों ओर कालेश्वर ज्वालेश्वर मन्दिर भी हैं। नगर के पश्चिम मतङ्ग ऋषी का आश्रम है और समीप में भतृहरि गुफा भी है। माहिष्मती पुरी को गुप्तकाशी भी कही जाती है चूं कि इसका महत्त्व काशी के समान है। अहल्यावाई होलकर रानी की राज्यकेन्द्र माहिष्मती था। अब भी राजगृह और अहल्येश्वर मन्दिर देखा जा सकता है।

इस महेश्वर नगर में नर्मदा नदी किनारे पर एक उच्च स्थल है जिसे 'महिको' कहते हैं। वहां के वासिन्दे आज भी इसी स्थल को मण्डन विश्वरूप मिश्र जी का वासस्थल बतलाते हैं। इसी जगह का घाट को मण्डन-मिश्रघाट के नाम से पुकारा भी जाता है। 'महिको' में एक भग्नावस्था मण्डप है जिसमें शिला के दो पाद प्रतिष्ठित हैं और इसे आचार्य शङ्कर का पाद कहा जाता है। यहां के वासिन्दे यह भी बतलाते हैं कि मण्डन मिश्र का वास स्थल जब खोदा गया था तो वहां उनसे उपयोग की गयी वस्तु भी प्राप्त हुए और भस्म भी मिला। ऐसे पुण्यक्षेत्र में आचार्य शङ्कर का स्मारक चिन्ह न होना क्षोभ की बात है। प्रार्थना है कि धर्मनिष्ठ व्यक्ति यहां आचार्य शङ्कर का स्मारक चिन्ह निर्माण करने का कार्य हाथ में लेकर इस शुभ कार्य को संपन्न करें।

आचार्य शङ्कर प्रयाग में श्री कुमारिल भट्ट से भेंट कर और उनके अनुरोध पर वहां से माहिष्मती को चल निकले। रास्ते में आचार्य शङ्कर एक व्यक्ति मण्डनमिश्र से मिलकर शास्त्रार्थ किया था। यह गृहस्थ मण्डनमिश्र जैमिनी भाष्य के पण्डित एवं तीव्र कर्मकान्डी थे। विवाद के पश्चात् भी आप गृहस्थ धर्म में ही रह गये। यह विश्वास किया जाता है कि आप ही 'ब्रह्मसिद्धि' ग्रंथ के रचयिता थे। 'मण्डन' शब्द का अर्थ सर्वोत्तम् या विद्वान मन्डली के सिरमोर या भूषण, अलङ्कार है। यह किसी व्यक्ति का नामकरण नाम नहीं है पर यह पदवी प्रकान्ड पन्डितों को दिया जाता था। 'मिश्र' पद गौड ब्राह्मण होने का संकेत करता है। कुछ विद्वानों ने मण्डनमिश्र पद को व्यक्ति का नाम समझ कर दो भिन्न व्यक्तियों ('ब्रह्मसिद्धि' के रचयिता मन्डनमिश्र एवं सन्यास दीक्षा लेकर श्री सुरेश्वराचार्य नाम धारण कर 'नैष्कर्म्य सिद्धि' के रचयिता मन्डन मिश्र) को जिन्हें इस पदवी से संबोधित किया जाता था उन्हें एक ही अभिन्न व्यक्ति होने की कथा लिख गये। वार्तिककार का पूर्वाश्रम नाम मण्डन विश्वरूप मिश्र था और आप एक तीव्र कर्मकान्डी थे। आप श्राद्ध कर्म करते समय आचार्य शंकर आपके यहां पहुंचे। दोनों के बीच में कुछ वितन्डावाद का प्रहार वाक-वाणी द्वारा हुआ और अन्त में स्वीकार हुआ कि मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी सरसवाणी (उभयभारती) मध्यस्था की पदवी को ग्रहण करेगी और इन दोनों में शास्त्रार्थ होगा। दोनों ने स्वीकार किया कि जीतनेवाले के मत को हारनेवाला मान लेना ही होगा। भेदाभेद के विवाद परस्पर दोनों में बहुत दिन तक हुआ और अन्त में मण्डन मिश्र की हार हुई। पर सरसवाणी पूर्ण हार न मानी और स्वयं शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रगट की।

आचार्य शङ्कर भी तैय्यार हुए पर आपने कुछ दिन अवकाश मांगी ताकि आप कामशास्त्र सीख कर पूछे प्रश्नों का उत्तर दे सकें। आचार्य शङ्कर पुनः माहिष्मती पहुंचे और इस बीच में सरसवाणी ने निश्चय कर लिया कि वह हार जायगा। आचार्य शङ्कर के पास स्वयं पराजित होने की बात मान ली। तब श्री शङ्कर ने मण्डन विश्वरूप मिश्र को सन्यासाश्रम की दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। आप श्री सुरेश्वराचार्य के नाम से विख्यात हो गये। आपका दूसरा प्रसिद्ध नाम श्रीविश्वरूपाचार्य भी था। सरसवाणी अपनी निज स्वरूप देवी रूप को जानकर ब्रह्मलोक जाने लगी। तब आचार्य शङ्कर ने वन दुर्गा मंत्र से शारदा को तुरन्त बांध दिया। आपने प्रार्थना की कि जिस पुण्य क्षेत्र में आपको पीठ की अधिष्ठात्री बनाकर स्वयं प्रतिष्ठा करें और उस क्षेत्र में आप स्वयं आकल्पवास करते हुए सान्निध्य रूप से रहें। भगवती शारदा ने 'अस्तु' कहकर स्वलोक चली गयी।

श्री शङ्कर अपने शिष्यों सहित दक्षिण दिशा में श्री शृङ्गगिरि की ओर रवाना हुए। भ्रमण करते हुए कुछ काल के बाद आप शृङ्गगिरि पहुंचे। भ्रमण में अनेकानेक स्थलों से होते हुए वहां वहां अवैदिक व पाखण्ड मतों का खण्डन करते हुए अद्वैत मत की स्थापना की। आप श्रीशैल भी पहुंचे और वहां के कापालिक साधुओं से भी भेंट कर उनके मत का घोर विरोध भी किया। महराष्ट्र देश होते हुए पश्चिम समुद्र तट किनारे किनारे से भ्रमण करते हुए शृंगेरी पहुंचे। रास्ते में श्रीबलिग्राम में श्रीप्रभाकर (भास्कर) के पुत्र को दीक्षा देकर अपना तृतीय शिष्य (श्रीहस्तामलक) को ग्रहण किया। शृङ्गेरी पहुंचकर वहां आपने चतुर्थ शिष्य (श्री तोटकाचार्य, गिरि, आनन्दगिरि) को भी ग्रहण किया। शृंगेरी में श्री शारदा की प्रतिष्ठा की। आयात्म विद्या, महाविद्या, ब्रह्मविद्या, श्रीविद्या के अनेक नाम से प्रख्यात् विद्यारुपिणी श्री शारदा माता हैं। अपने निजाश्रम शृंगेरी में व्याख्यान-सिंहासन विद्यापीठ का निर्माण किया और अपना निजमठ शृंगेरी का निर्वाह व संचालन कार्य श्री सुरेश्वराचार्य के हाथ सुपुर्द कर पश्चात् दिग्विजय यात्रा के लिये शृंगेरी से चल पडे। यहीं से श्री पद्मपादाचार्य भी तीर्थयात्रा के लिये चल पडे और पश्चात् आचार्य शङ्कर से दिग्विजय यात्रा में भेंट की। आचार्य शंकर यहीं से कालटी पहुंचकर मातुशिरोमणि आर्याम्बा की दाह संस्कार भी स्व करकमलों से किया था।

6. आम्नाय मठों का स्थल—जगन्नाथ-पुरी (पूर्व), शृङ्गगिरि (दक्षिण), द्वारका पुरी (पश्चिम), जोशीमठ बदरिका वनम् (उत्तर)।

भारत की धरती के प्रति वेद तीर्थ क्षेत्र देव देवी पीठों द्वारा सारे देश की भावना जगाकर और मत मतान्तरों के स्थान में एक समन्वयात्मक दर्शन की स्थापना करके इस बिखरे भारत देश को (सातवीं/आठवीं शताब्दी क्रिस्तपश्चात्) आधात्मिक एकता के सूत्र में बांध देने को श्रीशङ्कर ने निश्चय किया। भारतवर्ष को ज्ञान यज्ञ भूमि मानकर यागानुशासन अनुसार शास्त्र सम्मत चार वेदों के चार दिशाओं के लिये चार भिन्न आम्नाय पद्धति बनाकर (मठाम्नाय व महानुशासन) आचार्य शङ्कर ने चार धर्मराज्यकेन्द्र (आम्नाय मठ) की प्रतिष्ठा की थी। ये चार आम्नाय मठ भारत देश सीमा के धर्मगढ़ भी कहा जा सकता है। ये चार आम्नाय मठ चतुर्धाम समीप स्थापित हुए हैं (पूर्व और पश्चिम समुद्र तट चतुर्धाम में, उत्तर और दक्षिण पर्वत पर चतुर्धाम समीप में) और सनातन प्रसिद्ध वेद मंत्र की भावना को स्वयं मूर्तिमान किया है।

पूर्वाम्नाय—ऋग्वेद, प्रज्ञानं ब्रह्म, गोवर्धन मठ, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, उत्कल शासनाधीन धर्मराज्यसीमा, वही जगन्नाथ पुरी-केन्द्र स्थान।

दक्षिणाम्नाय—यजुर्वेद, अहंब्रह्मास्मि, शृंगेरी शारदा मठ, आन्ध्र, द्रविड, केरळ, कर्नाटक, आदि शासनाधीन धर्मराज्यसीमा, शृङ्गगिरि या शृङ्गेरी–केन्द्र स्थान।

पश्चिमाम्नाय—सामवेद, तत्त्वमसि, द्वारका शारदामठ, सिन्धु, सौवीर, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, आदि शासनाधीन धर्मराज्यसीमा, द्वारकापुरी–केन्द्र स्थान।

उत्तराम्नाय–अथर्वण वेद, अयमात्मा ब्रह्म, ज्योतिष्मन्मठ, कुरु, काश्मीर, पाञ्चाल, कम्बोज, आदि शासनाधीन धर्मराज्य सीमा, बदरिका वनम्—(जोशिमठ) केन्द्र स्थान।

उक्त चार आम्नाय मठों के परम्परा को ही आचार्य शङ्कर की साक्षात् परम्परा में आये हुए माने जाते हैं और ये ही चार आम्नाय मठाधीश 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' के नाम से संबोधित किये जाते हैं। आचार्य शङ्कर ने अपने लिये अलग कोई भी आम्नाय मठ किसी भी समय में किसी भी स्थान पर स्थापित नहीं किया। इन चार आम्नाय मठों द्वारा बोध होता है कि भारत एक अखण्ड है और एक ही सनातन वैदिक संस्कृति है और भाषा, वेश, जाति, रहनसहन के सामान्य अन्तरों के कारण भारत के भाग या भेद नहीं किये जा सकते हैं।

पूर्व का जगन्नाथ पुरी एवं पश्चिम का द्वारका पुरी दोनों रेल यात्रा द्वारा पहुंचा जा सकता है। रेल सुविधा न तो शृंगेरी के लिये है और न आसपास की जगहों के लिये। ऐसे स्थान पर पहुंचने के लिये शिमोगा, तरिकीरी, बिरूर, कडूर आदि स्थानों में ही रेल स्टेशन हैं। इन जगहों से साठ या सत्तर मील पहाडों या घने जंगलों से प्रयाण करके तब शृंगेरी पहुंच सकते हैं। मोटर प्रयाण की सुविधा है। इसी प्रकार उत्तर में जोशी मठ (बदरीनारायण समीप) पहुंचने के लिये रेल सुविधा नहीं है। काठगोदाम, रामनगर, कोटद्वार, हरिद्वार आदि स्थानों में रेल स्टेशन हैं और यहीं से मोटर प्रयाण की सुविधा भी हैं।

उदारचित्त, धीरवीर, दानशील, देवपुरुष श्री शंकर ने अपने शरीर को लोक कल्याण, नित्यशान्ति प्राप्ति और भवसागर पार करने योग्य मार्ग प्रदर्शन व परोपकार के लिये ही अर्पण किया था। भारत देश के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा के गांव गांव नगर नगर पैदल घूमते हुए अपने नये संदेश (अद्वैतवाद तत्त्वों को) सबों को सुनाने लगे। रामेश्वर से हिमाचल केदार पर्य्यन्त, काश्मीर से कामरूप पर्य्यन्त, द्वारका से जगन्नाथ पुरी पर्य्यन्त भारत की यह विस्तृत भूमी श्री शङ्कर के सामने एकाग्र होकर आ खडा हुआ। अनेकानेक तीर्थ, क्षेत्र, मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराकर एवं कुछ नगरों व मन्दिरों का निर्माण भी कराकर अपनी दिग्विजय यात्रा की पूर्ति की थी। इसी समय आचार्य शंकर ने चार आम्नाय मठों की स्थापना कर प्रसिद्ध वेदमंत्र की भावना को मूर्तिमान किया था। विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया और ज्ञान के साथ ही सगुण भक्ति मार्ग का भी समर्थन किया। अपने दिग्विजय यात्रा में अनेकानेक तीर्थ क्षेत्र भी गये थे और इन स्थलों की सूची एवं आपका लीला विवरण शङ्कर दिग्विजय ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं। आपने हिमालय सीमा की यात्रा भी की थी और इन स्थलों का विवरण पृष्ठ 149/151 में पाठकगण पायेंगे।

7. सर्वज्ञपीठारोहण स्थल–काश्मीर शार्दी (शारदा सर्वज्ञपीठ) और श्रीनगर समीप गोपाद्रि।

कश्मीर देश को 'शारदा मन्डल' या 'शारदा पीठ' के नाम से भी पुराकाल में प्रसिद्ध नाम था। कश्मीर का प्राचीन ग्रंथ 'शारदा माहात्म्य' है। कश्मीर की अधिष्ठात्री माता शारदा देवी हैं। मतान्तर में सती का अङ्ग गिरने से कश्मीर का उपनाम शारदा पीठ भी है। कल्हण (1148/50 क्रिस्त पश्चात्) कश्मीर में शारदा पीठ का

उल्लेख करते हैं 'गङ्गोत्पत्ति स्थान जो मेदगिरि है उसके एक शिखर में एक रम्य सरोवर है जिसमें क्रीडा करनेवाली हंस ही शारदा देवी हैं।' इस तीर्थ को 'बुदूवार' कहते हैं। मदुमती में एक छोटी नदी सरस्वती मिलती है। यह मधुमती कृष्ण गङ्गा से मिलती है। इसी सङ्गम समीप शारदा पीठ है। कश्मीर का श्री नगर के दूर उत्तरी पहाडी सीमा को पारकर नदी व घाटी पारकर जाने से 'गोषपुरी' पहुंचते हैं। यहीं शारदा मन्दिर के पुजारी वास करते हैं। इसके बाद 'हयग्रीव आश्रम' पडता है जिसे 'हे होम' शहर कहते हैं। यहां एक छोटा पहाड श्रीगणेश रूप में है। इसी के समीप 'शान्डिल्य ऋषी' का तपोवन है। इसी तपोवन को 'शारदा वन' भी कहते हैं। इसी वन में एक ग्राम है जिसे 'शार्दी' कहते हैं। मदुमती नदी किनारे पहाड हैं जहां शिवलिंग मूर्तियां हैं। इसी के समीप 'अमर कुण्ड' एक तालाब है। इसी तालाब के समीप में देवी का मन्दिर है। इसी मन्दिर के मूलस्थान में देवी शारदा शान्डिल्य मुनि को दर्शन दिया था। यहां अब भी श्रीचक्र एवं सर्वज्ञपीठ शारदा माता पूजित होता आ रहा है। अल-बिरूनी (1030 ई०) कहते हैं कि यहां काष्ठ की मूर्ति थी। शारदा मन्दिर जाने का मार्ग कठिन होने से एवं कष्टप्रद होने से श्रीनगर समीप एक गांव जिसे 'खुह्योम' कहते हैं वहां शारदा मन्दिर निर्माण कर देवी प्रतिष्ठा की गयी है।

कश्मीर के श्रीनगर के पास गोपाद्रि में सर्वज्ञपीठ होने का प्रमाण भी मिलता है। मुसलमान राजाओं ने इस मन्दिर को 'तख्त-इन-सुलिमान' (सर्वज्ञपीठ) के नाम से पुकारते थे। यहां एक छोटे पहाड पर जिसे शङ्कराचार्य पर्वत या गोपाद्रि पर्वत भी कहा जाता है वहां ईश्वर का मन्दिर है (ज्येष्ठेश्वर या ज्येष्ठरुद्र)। शङ्कराचार्य पर्वत का मन्दिर महाराजा अशोक (220 क्रिस्त पूर्व) के पुत्र जलोक ने बनवाया था। कल्हण के अनुसार राजा गोपादित्य (700 ई०) से निर्मित यह मन्दिर है। इस गोपाद्रि के समीप एक गांव जिसे अब 'गुपकार' के नाम से पुकारा जाता है, यही गांव राजा गोपादित्य ने पन्डितद्विजों को दिया हुआ 'अग्रहार' है। इसी अग्रहार में दिग्गज विद्वान वास करते थे। आचार्य शङ्कर इन दिग्गज पन्डितों से वादविवाद कर उन पन्डितों द्वारा आपको 'सर्वज्ञ' होने का विषय स्वीकार कराया था। सब विद्वानों ने आचार्य शङ्कर का स्वागत कर पीठारोहण करने को कहा। आचार्य शङ्कर अपने दिग्विजय यात्रा में यह बात सुनी थी कि कश्मीर के सर्वज्ञपीठ का दक्षिण द्वार बन्द है चूंकि दक्षिण से कोई दिग्गज विद्वान यहां आकर शास्त्रार्थ में अन्यों को पराजित नहीं किया है। आचार्य शङ्कर यहां पहुंच कर दक्षिणद्वार द्वारा सर्वज्ञपीठारोहण किया। यहां से आचार्य शङ्कर हिमालय के बदरी-केदार सीमा पहुंचे और इस सीमा की यात्रा पूर्ति भी की।

पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री 1008 श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ महाराज जी ने 20—4—1961 के शुभदिन श्रीशङ्करजयन्ती के शुभ अवसर पर, कश्मीर के शङ्कराचार्य पर्वत के उपरितन मन्दिर के निकट श्रीमच्छङ्कराचार्य की मूर्ति की प्रतिष्ठा स्व कर कमलों द्वारा की थी। इस शुभ कार्य द्वारा कश्मीर के सर्वज्ञपीठ पर आद्यशङ्कराचार्य जी की मूर्ति प्रतिष्ठा एक स्मारक चिन्ह रूप हुआ।

8. निर्याण स्थल—हिमालय केदारनाथ मन्दिर समीप 'कैवल्यधाम'।

आचार्य शङ्कर कश्मीर में सर्वज्ञपीठारोहण करते हुए दिग्विजय यात्रा की पूर्ति की। पश्चात् जब आप हिमालय के केदारनाथ सीमा में थे तब आचार्य शङ्कर अपने अवतार कार्य को सफल देखकर व अपनी बत्तीसवीं वर्ष की आयू को शेष विधि समझ कर अपने धाम कैलास जाने की याद की। शिवरहस्य, माधवीय, गुरुपरम्परा चरित्र, श्रीमाणिक्यविजय (ब्रह्माण्ड पुराण सार), चिद्विलास, सदानन्द, व्यासाचलीय (माधवीय का नवीन परिष्कृत्य प्रति),

दर्शन प्रकाश में प्राचीन पुस्तक 'शङ्कर पद्धति' से उद्धरण, आदि अनेक दृढ प्रमाण ग्रंथों से सिद्ध होता है कि आचार्य का 'निर्याण' स्थल केदारनाथ मन्दिर समीप ही था। हिमाचल व नैपाल का प्राचीन लोक गीत व स्थल कथा भी केदार सीमा को ही निर्याण स्थल बतलाता है। हिमाचल गजटियर एवं पूर्वी व पाश्चात्य प्रसिद्ध अनुसन्धान विद्वानों का भी यही अभिप्राय है। आद्यशङ्कराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठाधीशों का भी अभिप्राय केदार सीमा ही है।

आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल के विषय में कुछ अन्य स्थलों का नाम (तिरुचूर, चिदम्बरम्, कांची, काशी आदि) लिया जाता है। कुछ लोग अपनी ममता, अभिमान व अभिलाषा से एवं उन अद्वितीय महानों के साथ अपना सम्बन्ध जोडने के लिये एवं उससे अपना गौरव प्राप्त करने के लिये, इन स्थानों को महिमा देकर ही उस महान् के महत्त्व बनने का कारण इन स्थलों को ही बतलाते हैं। प्रमाणरहित उनका स्वेच्छावाद विचार यथार्थ विषय का परित्याग कराकर अन्य नवीन मार्ग का प्रारम्भ कराता है।

हिमाच्छादित पुण्यक्षेत्र कैलास व केदारनाथ सीमा एवं ऋषि मुनि देव देवियों का क्रीडा स्थल हिमालय सीमा को छोडकर एक साधारण क्षेत्र दक्षिण का कांची को भगवान शंकर के अवतार आचार्य शंकर का निर्याण स्थल कहना केवल बकवास है। परमशिव के अवतार आचार्य शङ्कर का निजधाम कैलास है और आप वहीं जा पहुंचे। हिमालय सीमा जहां श्री व्यास का आश्रम था (व्यास गुफा अब भी देखा जा सकता है), जहां श्री व्यास के कहने पर श्री गणेश महाभारत लिखते गये, जहां श्री व्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना की थी, जहां शुक सर्वात्म भाव प्राप्तकर शुकब्रह्म कहलाने लगे, जहां श्री गौडपाद निष्ठा में तपस करते थे, जहां गुरुगोविन्दभगवत्पाद ओंकारेश्वर आश्रम छोड अपने गुरु श्री गौडपाद से जा मिले, ऐसे हिमालय सीमा के केदारनाथ मन्दिर समीप स्थल ही आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल होना संगत है। हिमालय पर अनादिकाल से तपस्या करने महात्मा लोग तथा तीर्थयात्रा करने गृहस्थी और विरक्त जाते रहे हैं। अब भी वह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

इन सब बातों पर विचार व शोध करके उत्तर प्रदेश सरकार ने तीन चार साल पहले यह निश्चय किया कि हिमालय के केदारनाथ मन्दिर समीप जो प्राचीन समाधि थी जिसे अब 'शङ्कराचार्य कैवल्यधाम' के नाम से पुकारा जाता है वही स्थल आचार्य शङ्कर का निर्याण स्थल है। बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर कमिटि ने इस प्राचीन समाधि स्थल पर स्मारक चिन्ह निर्माण कार्य में पूर्ण सहायता प्रदान कर और उत्तर प्रदेश सरकार की सहायता भी प्राप्त कर उक्त कमिटि केदारनाथ में ही आचार्य शङ्कर का स्मारक बनवा रहा है। आद्यशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार आम्नाय मठ के मठाधीशों का भी समर्थन इस विश्वास को प्राप्त है। सैकडों वर्षों से केदारनाथ जाने वाले यात्री शङ्कराचार्य का समाधि पुण्य स्थल पर अपनी अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए आये थे और अब भी करते हैं। श्री सेठ गोविन्ददास (एम्. पि.) (पद्मभूषण) उत्तराखण्ड यात्रा में लिखते हैं——

"केदारनाथ में श्री शङ्कराचार्य समाधि"

"जगद्गुरु शंकराचार्य की समाधि की ओर बढ़ गये। समाधि के निकट पहुंच जगद्गुरु शङ्कराचार्य की स्मृति में दो मिनिट मौन हो। हम सबने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। अपनी इसी मौनावस्था में आद्य शंकराचार्य के कार्यों और उनके आज दिखरहे स्मृति चिन्हों के यादगार से हृदय भर उठा। केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था में इसी स्थल पर उस महान् सन्त उपदेशक आचार्य और अवतारी ने अपना पार्थिव शरीर छोड दिया। इतनी अल्पायु में जितना महान् कार्य श्री शङ्कराचार्य ने किया उतने कदाचित् ही विश्व के किसी मानव या महापुरुष ने किया हो। विश्व के सब से प्राचीनतम हिन्दू धर्म के

उसके प्राचीन सिद्धान्त की पूर्ण रक्षा करते हुए पुनस्स्थापन कर उसे जो वर्तमान रूप दिया है वह इस अल्पायु वाले मेधावी सुधारक और सद्गुरु की भारत के लिये सबसे बडी देन है। चारो दिशाओं में भारतीय सीमाओं पर इस चार मठों की स्थापना कर इस संस्कृति की एक सूत्रता और सीमा की सुरक्षा, और अखण्डता की किस तरह स्थापना की यह आज हमें स्पष्ट दिखायी देता है।

ऐसे उत्तराखण्ड में शङ्कराचार्य की साधना भारतीय धर्म संस्कृति की उपासना उसके लिये कार्य और अन्त में समाधि भी सनातनधर्म के भाग्योदय का कारण बनी।"

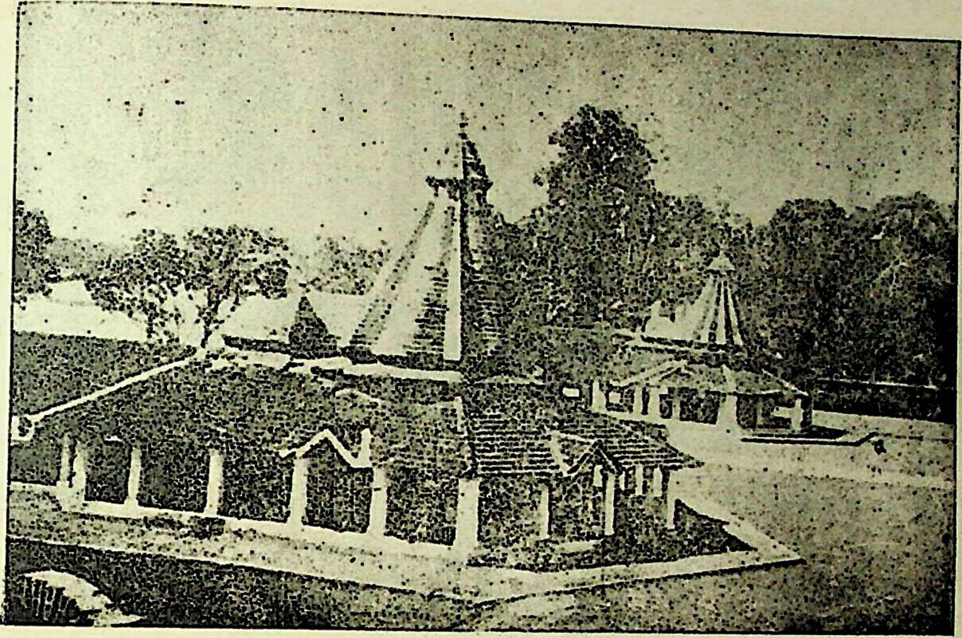
ऐसे शंकराचार्य कैवल्यधाम पुण्यस्थल पर बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर कमिटि के आयोजन से 27—5—1963 के शुभ दिन में पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज के कर कमलों द्वारा आद्यशंकराचार्य की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई थी। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास के सभापतित्व में यह कार्य संपन्न हुआ। अनेक भक्त एवं प्रख्यात विद्वान भी इस शुभ अवसर पर वहां पधार कर परमानन्द का अनुभव करते हुए आशीष भी प्राप्त किया। इस शुभ कार्य को संपन्न करने का श्रेय खासकर उत्तर प्रदेश सरकार एवं बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर कमिटि के सदस्यों को है और ये सब धन्यवाद के पात्र हैं। पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य जी को अपनी श्रद्धाञ्जली व वन्दना अर्पण करते हैं और आप जगद्गुरु महाराज के प्रोत्साहण एवं आशीष से यह कठिन कार्य शीघ्र संपन्न हुआ। पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदा मठ के वर्तमान जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज भारत के कोने कोने परिभ्रमण करके धर्म प्रचार करते हुए धार्मिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक कई लोकोपयोगी कार्य कर रहे हैं। धर्मनिष्ठ भारतवासियों के लिये यह एक भाग्य की बात है। पचास के ऊपर संख्या में उपयोगी ग्रंथों का प्रकाशन कराया है। मासिक पत्रिका भी प्रकाशित हो रहा है। श्री शारदापीठ आर्टस कालेज और अन्यांन्य विद्याविषयक प्रवृत्तियां भी चलती हैं जो सब श्लाघनीय हैं। जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज की अध्यक्षता में संस्थापित शारदापीठ आर्टस कालेज, द्वारकाधीश संस्कृत विद्यापीठ, भारतीय विद्या संशोधन मन्दिर, आदि हैं। न केवल आप शङ्कराचार्य महाराज जी एक आम्नाय मठ के मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य हैं, प्रकान्ड विद्वान हैं, वासुदेव स्वरूप विरक्त सन्यासी हैं, व्यवहार कुशल पन्डित हैं, सिद्ध पुरुष हैं पर आपकी अनुकम्पा, प्रेम व दया शिष्यों पर सीमातीत है।

दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी व पश्चिमाम्नाय द्वारका आम्नाय मठों के वर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज एवं पूर्वाम्नाय पूरी जगन्नाथ आम्नाय मठ के ब्रह्मीभूत जगद्गुरु शंकराचार्य श्री 1008 श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, भारत में वैदिक धर्म की महत्ता को बढाने, वेदों के प्रति श्रद्धा भाव जगाने, ज्ञान के प्रति आदर भाव एवं साधना मार्ग का प्रदर्शन कराने, भारतीय के हृदय में आध्यात्मिक भाव लाने का जो सब कार्य किया था व कर रहे हैं तथा प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार, नवीन मन्दिरों का निर्माण, देव देवी मूर्तियों की प्रतिष्ठा कार्य जो सब किया था और कर रहे हैं, इसके लिये हम सब सविनय कृतज्ञता प्रकट करते हुए वन्दना अर्पण करते हैं। भटकते जीवन यात्रा को ध्येय से जगा देने का, संसार–विष–सर्प भय से बचाने का, उक्त तीन महान् शक्ति भी रखते हैं।

आ शैलादुदयात्तथाऽस्तगिरितो भास्वद्यशोरश्मिभि-
व्याप्तं विश्वमनन्धकारमभवद्यस्य स्म शिष्यैरिदम्।
आराज्ज्ञानगभस्तिभिः प्रतिहतश्चन्द्रायते भास्करः
तस्मै शङ्करभानवे तनुमनो वाग्भिर्नमस्तात्सदा॥ (श्रीसुरेश्वराचार्य)

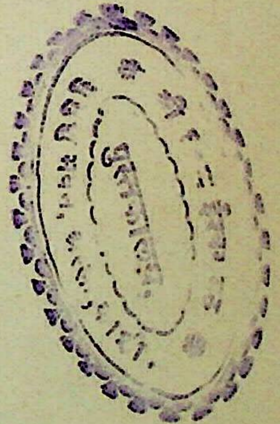
49. आद्यशङ्कराचार्य के जीवन लीला से सम्बन्धित कुछ मुख्य स्थलों का चित्र।

जन्म स्थल–कालटी

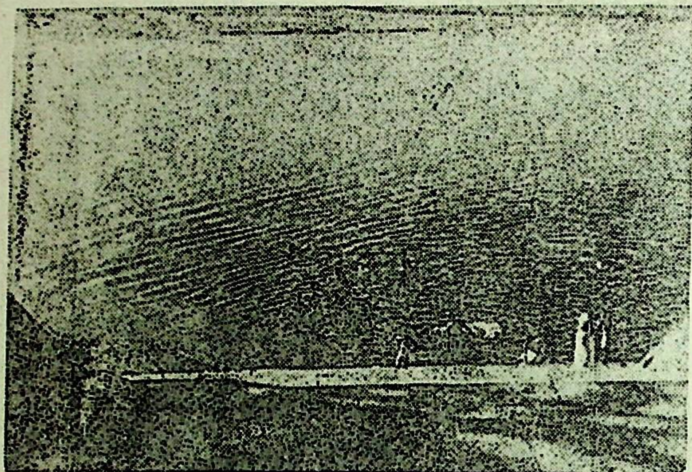


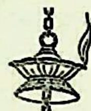
कालटी–मन्दिर





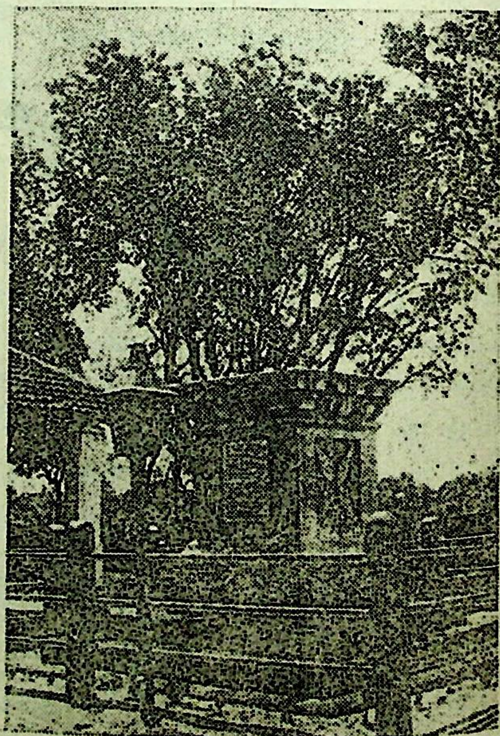
श्री शङ्करभगवत्पादाचार्य





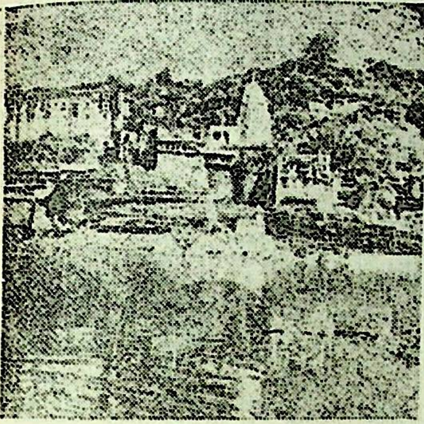
कालटी—पूर्णा (चूर्णा) नदी व घाट



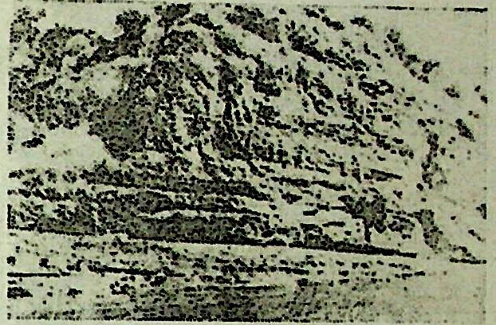


कालटी—मातु श्री आर्याम्बा की समाधि

सन्यास दीक्षा व ब्रह्मविद्या शिक्षा प्राप्त स्थल–ओंकारनाथ

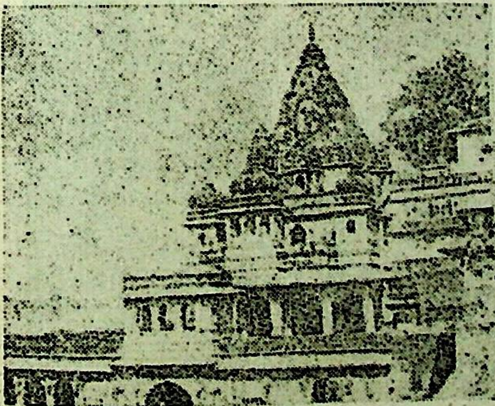


नर्मदा तट पर श्री ओंकारेश्वर मन्दिर



भृगुपतनवाली पहाडी—ओंकारेश्वर

श्रीमण्डन विश्वरूप मिश्र से भेंट व विवाद एवं सन्यासदीक्षा स्थल माहिष्मती (चोलीमहेश्वर या महेश्वर)।



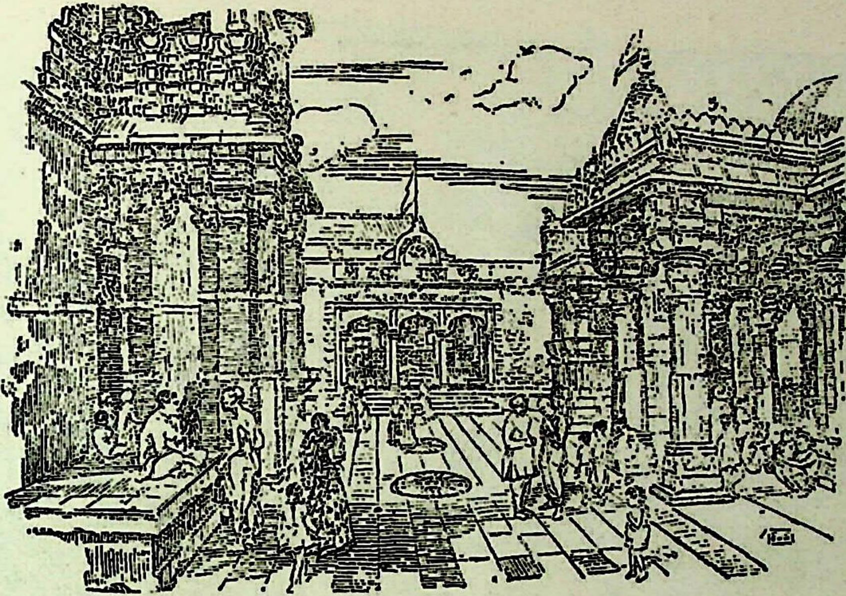
श्री अहल्येश्वर मन्दिर—माहिष्मती



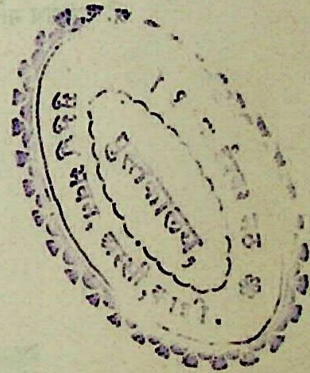
सहस्रधारा माहिष्मती



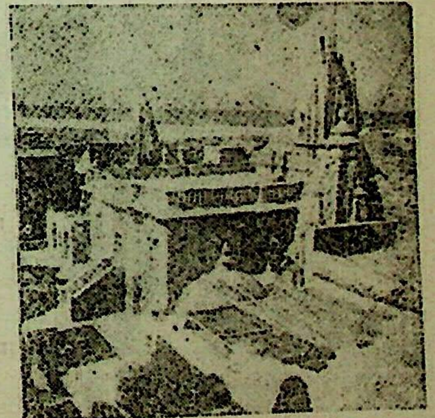
दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गेरीमठ—शृङ्गगिरि (एक दृश्य)



पश्चिमाम्नाय श्री द्वारका शारदा मठ

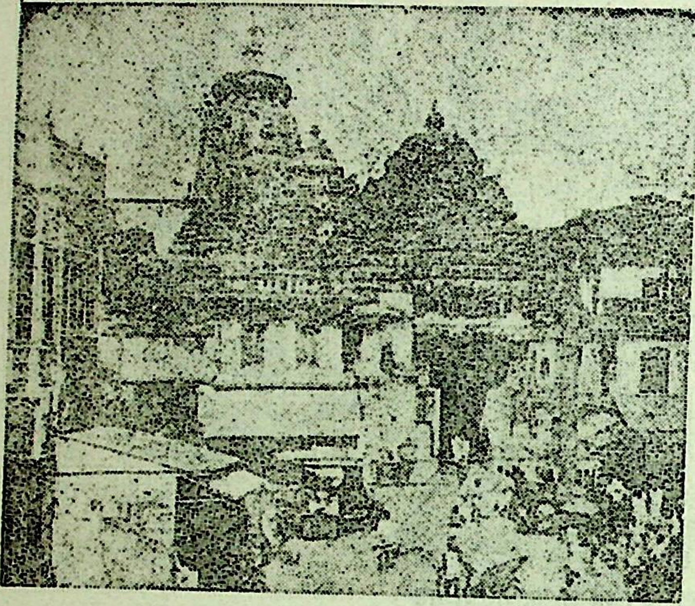




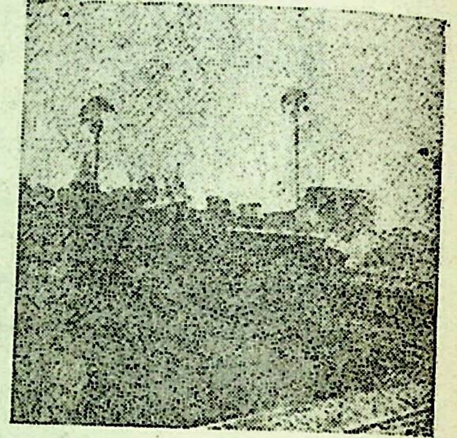


द्वारका मठ में श्री शारदा मन्दिर

श्री द्वारकाधीश मन्दिर

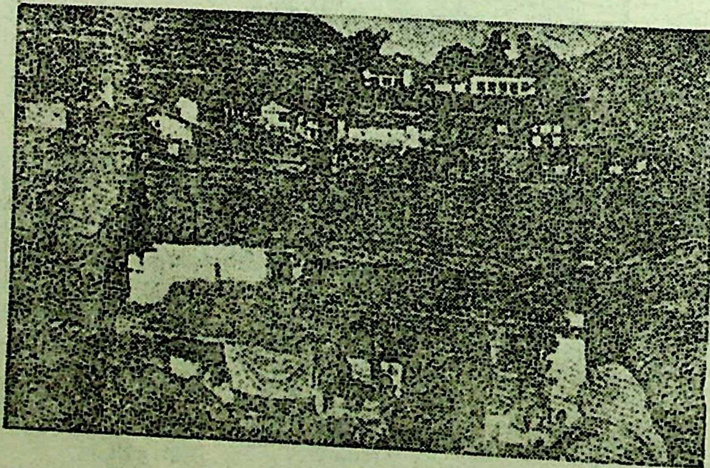


श्री जगन्नाथ मन्दिर—सिंहद्वार के वाहर से



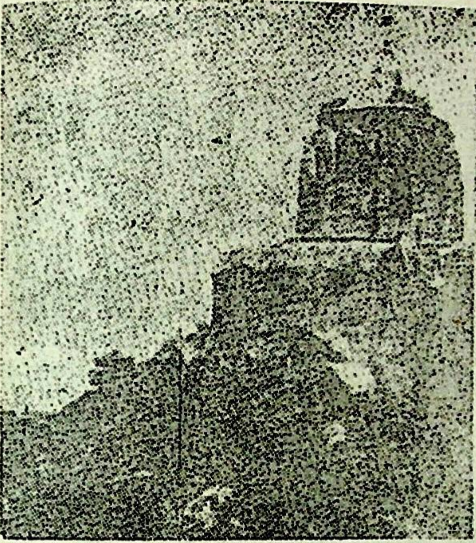
पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्धन मठ जगन्नाथ पुरी





उत्तराम्नाय श्रीजोशी मठ—वदरिकावन

सर्वज्ञपीठारोहण स्थल—काश्मीर



श्री शङ्कराचार्य पर्वत पर श्री शङ्कराचार्य मन्दिर
श्रीनगर—काश्मीर



श्री शङ्कराचार्य मन्दिर—श्रीनगर (काश्मीर)



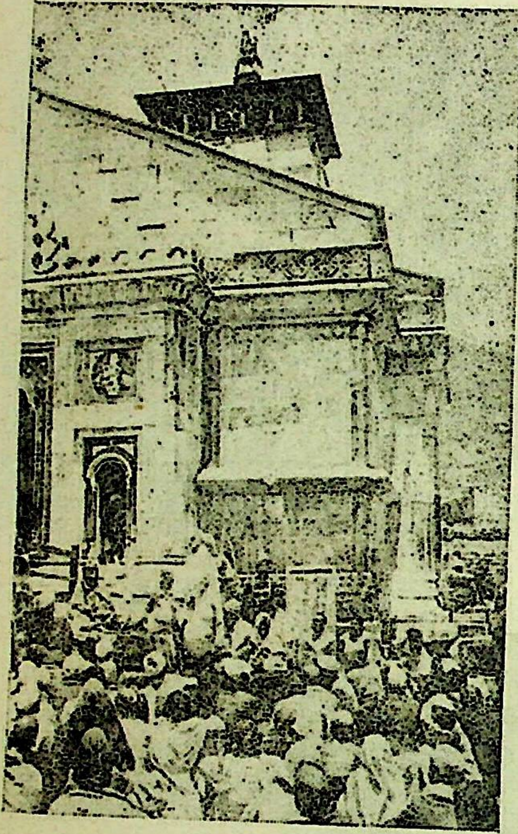




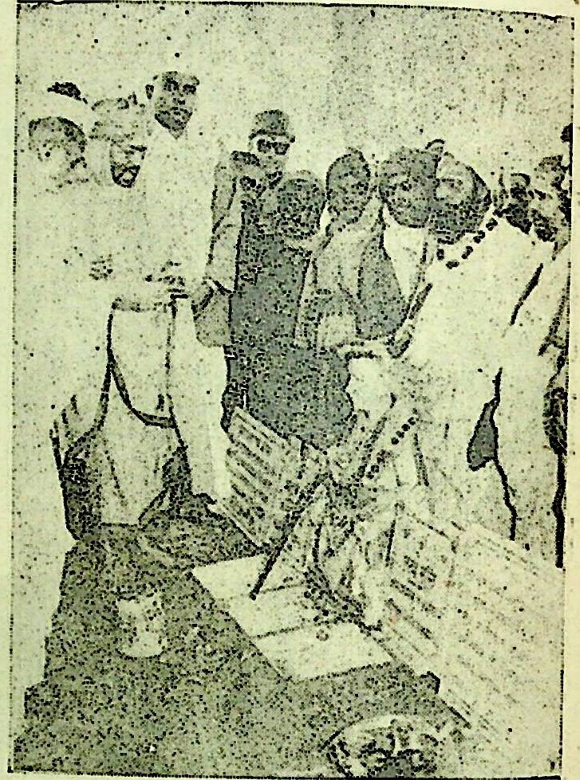
पश्चिमाम्नाय द्वारका जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य करकमलों द्वारा शङ्कराचार्य मन्दिर में प्रतिष्ठित श्रीशङ्कराचार्य मूर्ति

निर्याण स्थल-हिमालय केदारनाथ मन्दिर समीप "कैवल्यधाम" समाधि

श्री आदि शंकराचार्य मूर्ति प्रतिष्ठा 27-5-1963



केदारनाथ मन्दिर में मान्य राज्यपालजी (उत्तर प्रदेश) प्रतिष्ठा समारम्भ सभा में अध्यक्ष भाषण दे रहे हैं
27—5—1963



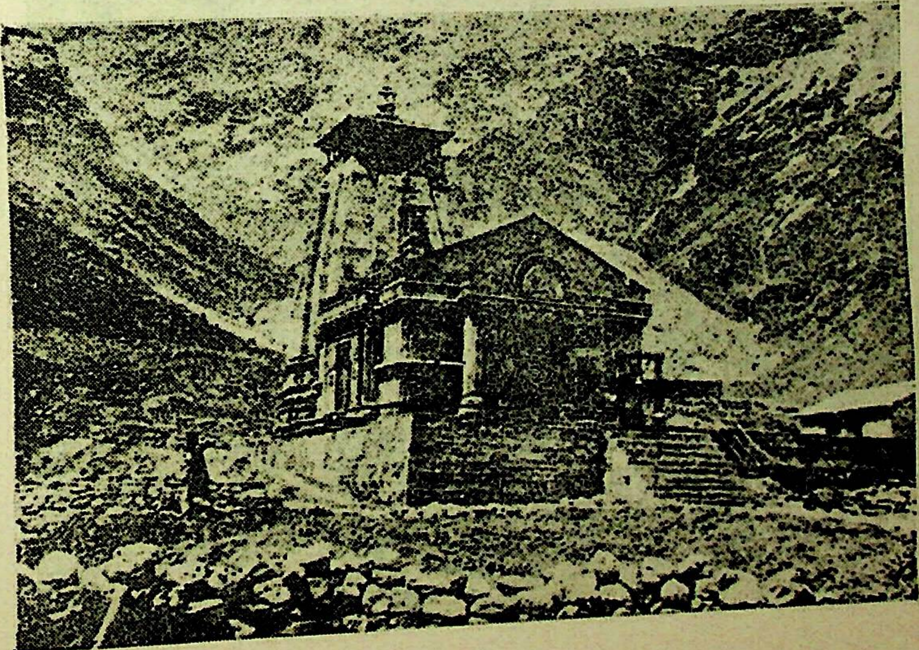
पश्चिमाम्नाय श्रीजगद्गुरु जी तथा मान्य राज्यपाल जी (उत्तर प्रदेश) मूर्ति प्रतिष्ठानन्तर पुष्पाञ्जलि अर्पण कर रहे हैं
27—5—1963



द्वारका मठाधीश श्री जगद्गुरु जी
तथा मान्य राज्यपालजी
(उत्तर प्रदेश)
एवं अन्य सज्जनों के साथ
केदारनाथ के पथ पर
27—5—1963

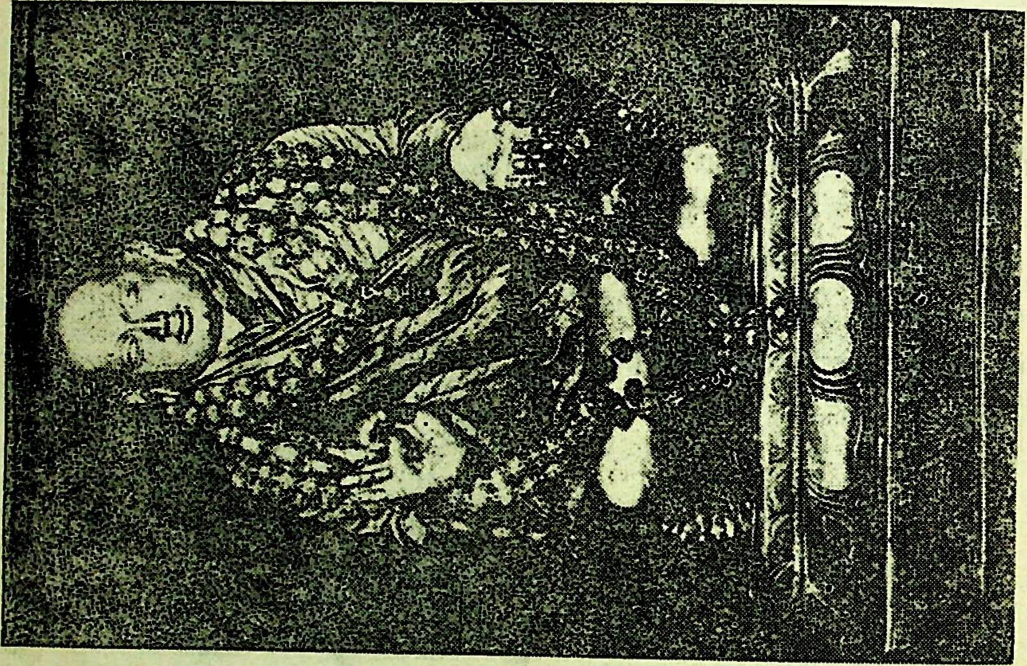


पश्चिमाम्नाय द्वारका जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज, उत्तर प्रदेश मान्य राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास जी, श्रीमङ्गला प्रसाद जी (अध्यक्ष बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर कमिटि), सेठ श्री लक्ष्मीचन्द गज्जर जी, आदि, प्रतिष्ठित शङ्कराचार्य मूर्ति के सन्मुख खडे हैं। पीछे हिमाच्छादित केदारनाथ शिखर है। (27-5-1963)



श्री केदारनाथ मन्दिर

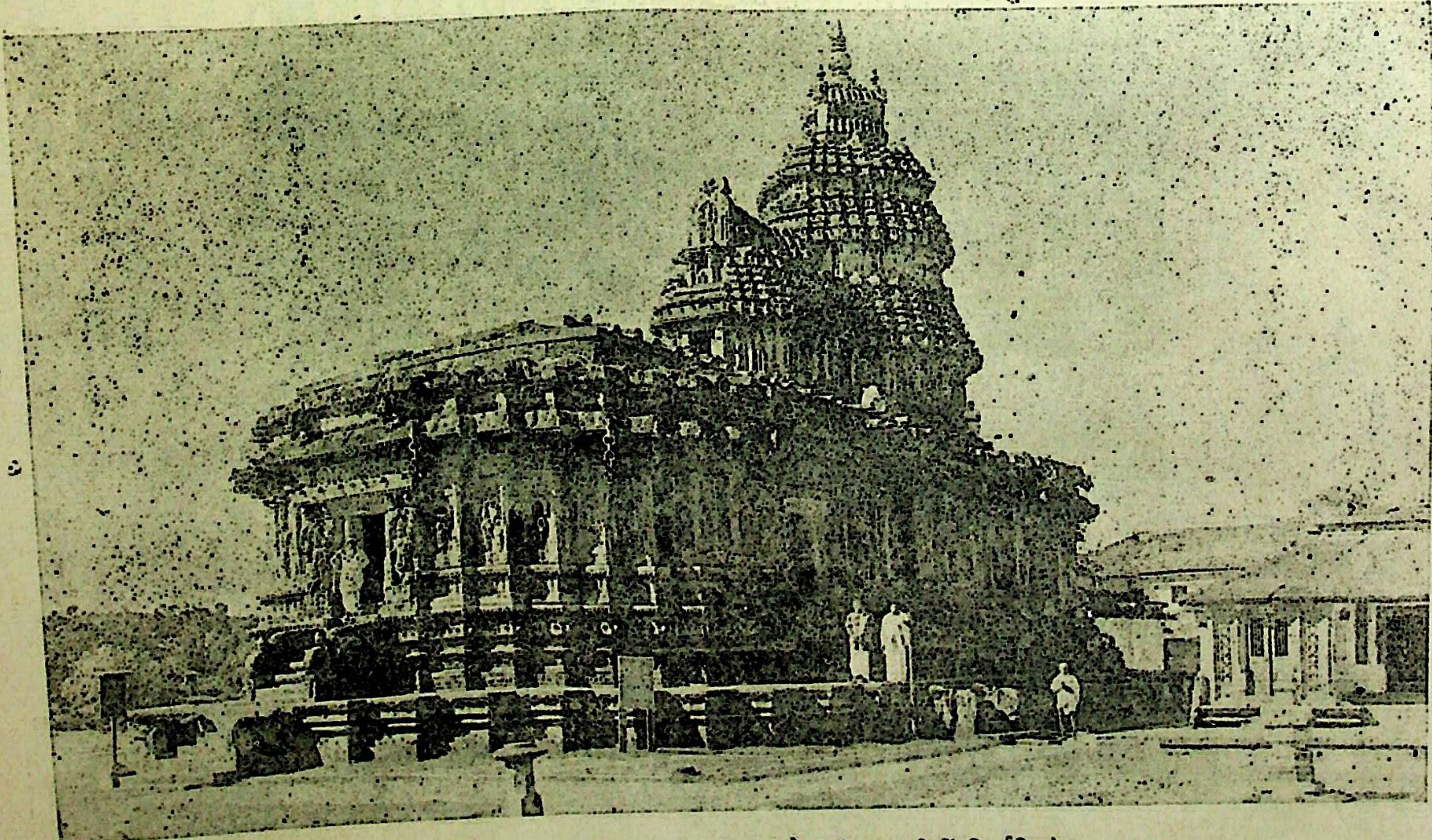
50. दक्षिणाम्नाय श्रीश्रृङ्गेरी शारदा मठ——श्रृङ्गगिरि



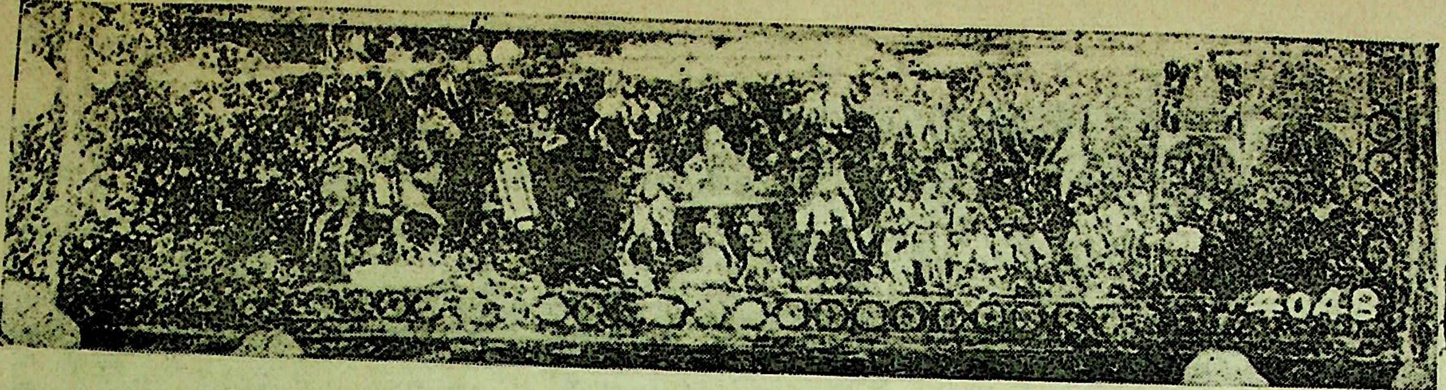
श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य मूर्ति—श्रृंगेरी मठ



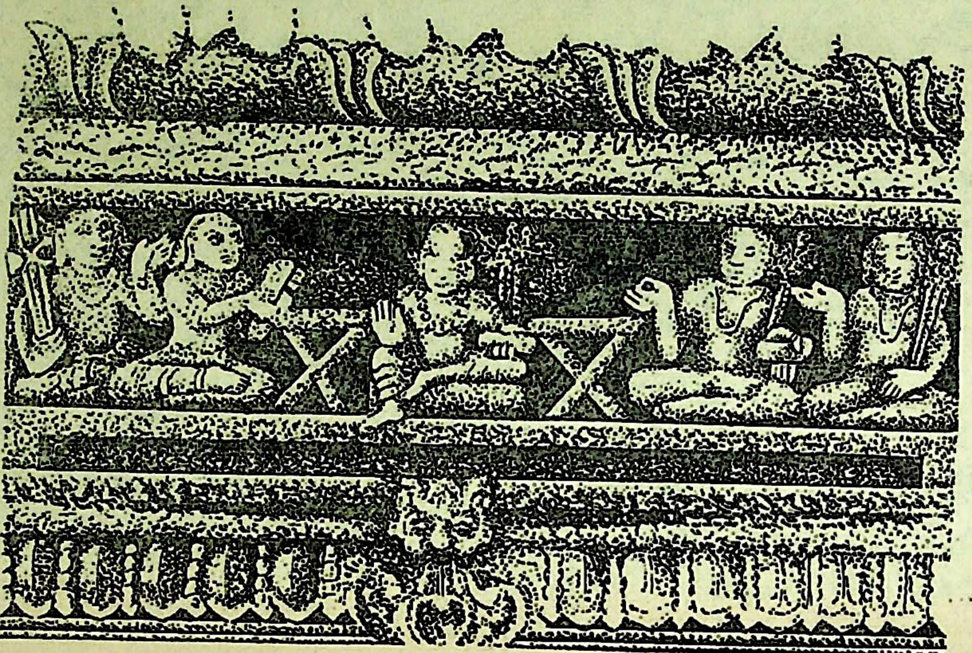
श्री शारदा—श्री श्रृंगेरी मठ



श्री विद्याशङ्कर मन्दिर—श्री श्रृंगेरी (चौदहवीं शताब्दी में निर्मित)



नगर प्रवेश जुलूस में राजमर्य्यादा व चिन्हों के साथ दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री विद्यारण्य स्वामी जी महाराज (पम्पाति मन्दिर के प्राचीन चित्र से लिया हुआ एक दृश्य)।



चौदहवीं शताब्दी निर्माणित शृंगेरी के एक मन्दिर में शिला पर खुदा हुआ श्री आचार्य की मूर्ति एवं आपके मुख्य चार शिष्य।

50. दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गेरी शारदा मठ—शृङ्गगिरि।

कुम्भकोणमठ अपने मिथ्या भ्रामक प्रचारों द्वारा यह भ्रम फैला रहा है कि दक्षिणाम्नाय शृंगेरीमठ एक समय शिथिल होकर विच्छिन्न पडा था और कांचीमठ के पूर्वाचार्यों ने शृङ्गेरीमठ का जीर्णोद्धार करके और वहां अपने शिष्य को भेजकर वंशावली पुनः चलाई थी। कुम्भकोणमठ द्वारा प्रकाशित, कुम्भकोण मठाधीश को समर्पित, मठाधीश की आज्ञा से रचित व प्रकाशित प्रचार पुस्तकों में यह सब असत्य प्रचार किया गया है। वर्तमान कुम्भकोण मठाधीश जो "परमशिवावतार" "चलतेफिरतेदेव" "आद्यशङ्कराचार्य" आदि विशेषणों से पूजित हैं, आपने अपने मदरास नगर भाषण मे भी (पुस्तक रूप में प्रकाशित है) उक्त भ्रामक प्रचारों का समर्थन भी किया है। कुम्भकोण मठविषयक प्रचार मासिक पत्रिका 'कामकोटिप्रदीपम' में उक्तविषयों का पुनः प्रचार किया गया है। इस पत्रिका में न केवल भ्रामक मिथ्या प्रचार किया गया है पर दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठाधीश एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका मठाधीश पर अवांछनीय भाषा में टीकाटिप्पणी की गयी है। यह सब धर्माचार्यों एवं उनके प्रचारकों को शोभता नहीं है। 'इलस्ट्रेटड वीक्ली आफ इन्डिया" साप्ताहिक पत्र में भी (अगस्त 11, 1968) श्री शृंगेरी आचार्य एवं अन्य तीन आम्नाय मठाधीशों के बारे में व्यक्तिगत अवांछनीय शब्दों में टीकाटिप्पणी करते हुए कुम्भकोण मठ प्रचारों का समर्थन करके कुम्भकोणमठ व मठाधीश को 'सर्वोत्तर, सर्वसेव्य, सार्वभौम, जगद्गुरु" बनाने का प्रयत्न किया गया है। दुख का विषय है कि तामिलनाड का कुछ दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रिकायें (इन्डियन एक्सप्रेस, दिनमणी, मेल, हिंन्दू, स्वदेशमित्रन, कल्कि, आदि) एवं बम्बई का कुछ साप्ताहिक, दैनिक तथा 'भवन पत्रिका' आदि सब भी कुम्भकोणमठ भ्रामक मिथ्या प्रचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ प्रकान्ड विद्वान, प्रभावशाली सज्जन, राज्य मंत्री, देश के नेता इन प्रचारों में सहयोग भी देते हैं। जब पत्र लिखा जाता है तो जवाब नहीं मिलता है या मिलता है तो कह देते हैं कि 'धर्म खतरे में है' और 'आपस का झगडा ठीक नहीं'। पर यह तो विवाद के प्रवर्तक व मूल पुरुष को जानना चाहिये। उक्त समाचार पत्रों को उत्तर जब लेख रूप में लिख कर भेजा जाता है तो पत्रिकायें प्रकाश नहीं करते। यदि हमारे धर्म का वास्तविक स्वरूप बदल गया है और प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों की क्षिप्त प्रतियां भी अनेक मिलते हैं तो इसका कारण यही है कि ऐसे दुष्प्रचारों का खन्डन न करके मौन धारण करते हुए समर्थन करना ही है। जब कुछ स्वार्थी अपने इष्ट काम्य प्राप्त करने के लिये अपने दुष्प्रचारों से पामरजनों की आखों में धूल फेंकने के लिये तुले हुए हैं, इस परिस्थिति में सत्यप्रकाशन करने का केवल दो ही मार्ग मुझे दीखता है। कुम्भकोण मठ या मठानुयायियों या प्रचारकों की तरह अवांछनीय दुष्मार्ग का अवलम्बन करना (शठंन शठमाचरेत रीति का अवलम्बन) और यथार्थ विषयों का प्रकाशन करना, एक मार्ग है। दूसरा मार्ग है कि इनके दुष्प्रचारों पर ध्यान न देकर यथार्थ सत्य विषयों का प्रकाशन करके पाठकगणों के सामने उपलब्ध प्रमाण सामग्री उपस्थित करना ताकि पाठकगण दोनों तरफ के विषयों को पढकर सत्य विषय को जान लें। पर इस मार्ग का अवलम्बन भी कठिन है चूं कि प्रभावशाली कुछ समाचार पत्र कुम्भकोण मठ प्रचारों का ही प्रकाशन करते हैं। इन प्रचारकों का प्रचार भी सीमातीत है। अवांछनीय, द्वेषयुक्त, निन्दनीय भाषा में अन्य आम्नाय मठाधीशों के प्रति टीकाटिप्पणी करते हुए एवं कुम्भकोण मठाधीश को ही एक मात्र शंकराचार्य होने का विषय एवं आपको सर्वज्ञ, सर्वोच्च, सर्वोत्तर, सर्वसेव्य, सार्वभौम होने की कथा प्रचार भी करने लगे। धर्मनिष्ठों के हृदय में इसे पढकर दुःख हुआ और सैकडों पत्र व तार द्वारा अपनी अपनी विरोध अभिप्राय जब लिख भेजा गया तब कुम्भकोण मठाधीश की आंखें खुली और आप इस दुष्कर्म से अपने नाम को बचाने के लिये एक बयान समाचार पत्रों में प्रकाशित करा दिया है कि आपके प्रचारक भक्त व शिष्य आपके बारे में इतनी स्तुती न करें क्यों कि अन्य महान भी अनेक हैं जो धर्मप्रचार कार्य में प्रवृत्त हैं एवं इन प्रचारों ने आपको संकट स्थिति में पहुंचाया है। इस बयान का पूर्ण विवरण 'इन्डियन एक्सप्रेस'

मदुरै ताः 22—8—63 के अङ्क में प्रकाशित है। मेरे पास आज से लगभग 40 वर्षों का कुम्भकोण मठ प्रचारकों का प्रचार सामग्री हैं और यह कहना भूल है कि कुम्भकोण मठाधीश इन सब प्रचारों को जानते नहीं। 1934/35 ई० में जब इन प्रचारों का विवरण देकर कुम्भकोण मठाधीश से पूछा गया था तो आपने कह दिया कि ' शिष्यों का निर्णय ही निर्णय है "। अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिससे सिद्ध होता है कि कुम्भकोण मठाधीश इन सब प्रचारों से पूर्ण जानकारी रखते हैं। एक तरफ दुष्प्रचारों का खन्डन होता है और दूसरी तरफ प्रचारक प्रचार कार्य में तुले हुए हैं। इन प्रचारों का पूर्ण विस्तार, प्रणेता पुरुष, एवं प्रचार विधि व सामग्री आदियों का विवरण मुझसे प्रकाशित पुस्तक ' श्रीमज्जगद्गुरु शांकरमठ विमर्श ' में पाठकगण पायेंगे। कुम्भकोण मठाधीश कृपया धर्मप्रचार कार्यों के साथ अपना मठ का भ्रमात्मक व मिथ्या प्रचार कदापि न करने की कृपा करें। धर्म प्रचार कार्य के लिये अपने मठ को ' सर्वोत्तरः सर्वसेव्यः सार्वभौमो जगद्गुरुः। अन्य गुरवः प्रोक्ताः जगद्गुरुरयं परः ' (कुम्भकोण मठ का मठाम्नाय) का मिथ्या प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है। अब मैं यहां संग्रह रूप में शृंगेरी परम्परा का इतिहास देता हूं ताकि पाठकगण जान लें कि शृंगेरी परम्परा विच्छिन्न था या अविच्छिन्न रूप से आठवीं शताब्दी से आज तक चली आरही है तथा इस मठ के आचार्य सब साधारण व्यक्ति थे या महान् थे।

मैसूर प्रदेश के मलनाड भाग में पश्चिम समुद्र तट समीप जिसके चारों दिशाओं में सह्याद्रि पर्वत का ही घेरा है उसी एक घाटी में शृंगगिरि या शृंगेरी आश्रम बसा है। समतल भूमी की तुलना में शृंगेरी एक पर्वत है। शृंगेरी आश्रम से छः मील पश्चिम पर मूल शृंगगिरि पर्वत है। इसी का प्राचीन नाम वाराह पर्वत था। इस पर्वत के विभिन्न भागों से तुङ्गा, भद्रा, नेत्रावती, वाराही इन चार नदियों का उद्गम है। श्री विभाण्ड ऋषी का आश्रम वाराह पर्वत से शृंगेरी तक था। पूर्वयुग से शृंगगिरि एक अनोखा, मनोरम्य, पुण्यमयी, पतितपावन तुङ्गा और स्पर्शमात्र से सर्वपाप हरने वाली भद्रा के मध्य स्थल एक गिरि अरण्य समृद्ध स्वर्ण भूमि जो ज्ञान मोक्ष फलदायिनी व शान्ति प्रेम व अभेदभाव से युक्त प्रख्यात क्षेत्र है। तुंगा नदी तट पर ऋष्य शृंगाश्रम था जो रामायण काल से प्रसिद्ध पुण्य स्थल है। इस सीमा के रक्षक चार हैं—भैरव, दुर्गा, हनुमान, काळी। आचार्य शङ्कर ने जब यहां माता शारदा की प्रतिष्ठा की थी एवं यहीं व्याख्यान सिंहासनपीठ की स्थापना भी की थी तो मानो कश्मीर के श्रीनगर की सर्वज्ञपीठ एवं शार्दी समीप में स्थित माता शारदा यहीं स्वयं चली आयी हो। आचार्य शङ्कर ने श्रीनगर और शृंगेरी का घनिष्ठ भौगोलिक प्राकृतिक व आध्यात्मिक सम्बन्ध भी दिखाया है। शृंगेरी के विविध मन्दिर (शैव, वैष्णव, शाक्त) व मूर्तियां बोध कराता है कि ब्रह्म ही सत्य है यद्यपि मूर्ति भेद हैं। इस प्रपञ्च की माया व लोभ से दूर, शहरों की अप्राकृतिक व आधुनिक कृत्रिम व्यवस्था व कोलाहल आदि त्रुटियों से दूर, हरे भरे निर्मल शुद्ध तपो भूमि आज भी वैसा ही विद्यमान है जैसा कि पूर्व में था। पर्णशाला आश्रम की जगह राजा, महाराजा, धनाढ्य शिष्यों द्वारा निर्माणित पक्का मठ व मन्दिर अब बने हुए हैं पर वातावरण का परिवर्तन नहीं हुआ है। रेल सुविधा न तो शृंगेरी को है या न आसपास के जगहों के लिये। ऐसे स्थान पहुंचने के लिये शिमोगा, तरीकीरी, बिरूर, कडूर आदि स्थानों में ही रेल स्टेशन हैं और यहां से 60 मील पर पहाड व घने जङ्गलों से प्रयाण करके शृंगेरी पहुंच सकते हैं। समीप काल में मोटर की सुविधा हुई है। अथवा पश्चिम समुद्र तट का मंगळूर नगर से शृंगेरी 80 मील दूर पर है और मोटर की सुविधा भी है। शृंग का अर्थ है प्रभुत्व व प्राधान्य और गिरि का अर्थ है उच्च स्थान। स्थावरों में गिरि ऊंची है एवं मनुष्यों के लिये गुरु ऊंचा है। अर्थात् गुरु का ऊंचा स्थान शृंगगिरि (प्रधान गुरु स्थान) है।

पूर्वीय व पाश्चात्य अनुसन्धान विद्वानों द्वारा शोधित प्रमाण सामग्री के आधार पर निश्चित किया जा सकता है कि आचार्य शङ्कर का जन्म काल सातवीं शताब्दी अन्त क्रिस्त पश्चात् का ही था। आचार्य शङ्कर अपने प्रधान शिष्यों के साथ शृंगगिरि में बारह वर्ष वास करते हुए प्रकरण ग्रन्थों व स्तोत्रों का रचना की थी और आपके शिष्यों ने

टीका, वार्तिक आदि ग्रंथ भी यहीं लिखे थे। आचार्य शङ्कर ने अपने निजाश्रम शृङ्गगिरि में माता शारदा की प्रतिष्ठा कर चतुराम्नाय मठों में एक दक्षिणाम्नाय मठ की स्थापना करके यहीं व्याख्यान सिंहासन पीठ का भी स्थापना की थी। इन सब विषयों का प्रमाण एवं विवरण मुझसे प्रकाशित 'श्रीमज्जगद्गुरु शाङ्करमठ विमर्श' नामक पुस्तक में पायेंगे।

दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ का आराधित पीठ माता शारदा हैं और यहां का मुख्य मन्दिर माता शारदा का मन्दिर है। आचार्य शंकर द्वारा 8 वीं शताब्दी प्रारम्भ में प्रतिष्ठित श्रीचक्र पर एक चन्दन काष्ठ मूर्ति शारदा प्रतिष्ठित थी। यही काष्ठ मूर्ति प्राचीन मूर्ति है। शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु श्री भारती कृष्ण तीर्थ एवं श्री विद्यारण्य ने चौदहवीं शताब्दी में काष्ठ का मन्दिर भी निर्माण कराया था। पश्चात् श्री विद्यारण्य ने काष्ठमूर्ति शारदा की जगह स्वर्ण शारदा की मूर्ति तैय्यार कराकर प्रतिष्ठा की थी। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती II (1705—41 ई०) ने नवरात्री उत्सव की एक नयी प्रणाली प्रारम्भ की थी और आज भी शृंगेरी में वही नवरात्री उत्सव देखा जा सकता है। 1791 ई० में एक महाराष्ट्र व्यक्ति परशुराम भाऊ ने शृंगेरी को लूटा और स्वर्ण मूर्ति, देव देवीयों का मूल्य आभरण व सोना चांदी के पात्रों को भी लेते हुए चले गया। टिपू सुल्तान से प्राप्त धन द्वारा शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770 1814) ने मूर्ति का कुम्भाभिषेक किया। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती (1866–1912) ने पुनः मन्दिर का निर्माण कराकर वर्तमान रूप दिया था। 1916 ई० में शृंगेरी मठाधीश श्री चन्द्रशेखर भारती ने पुनः कुम्भाभिषेक कराया था। श्री दुर्गा या महिषमर्दिनी, श्री राजराजेश्वरी, एवं दो अन्य देवियों की मूर्ति खम्भों में खुदे हैं। दो द्वारपालक भी हैं। गर्भगृह में माता शारदा स्थित हैं। मन्दिर प्राकार में श्री गणेश एवं श्री भुवनेश्वरी मूर्ति हैं। समीप काल में वर्तमान शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ महाराज ने मन्दिर गोपुर बनवाया था और कुम्भाभिषेक अभी समाप्त हुआ है।

1338 ई० में निर्माणित मन्दिर श्री विद्याशंकर मन्दिर है। यह मनभावती मन्दिर चालुक्य व द्रविड शिल्प कलाओं का एक प्रदर्शनि है। मन्दिर के पश्चिम अर्ध भाग में गर्भ गृह है और दक्षिण में विद्यागणपति व उत्तर में महिषमर्दिनी की मूर्तियां हैं। दोनों के सामने अर्धमन्डप भी हैं। गर्भगृह के तीन तरफ (दक्षिण) ब्रह्मा सरस्वती, (पश्चिम) विष्णु लक्ष्मी, (उत्तर) महेश्वर उमा, की मूर्तियां भी हैं। यहां बारह खम्बा मण्डप है। बारह माह का बारह राशी के बारह खम्मे हैं और हर एक माह सूर्य का किरण प्रातः उस उस माह के राशी खम्मे में ही पडता है। मन्दिर के दिवालों में, पाटन में, खम्भों में, बाहर चारों तरफ, तरह तरह के सैकडों मूर्तियां खुदे हुए हैं जो सब पुराणिक कथा की याद दिलाती हैं। महेश्वर, विष्णु, ब्रह्मा का मन्दिर भी हैं। शिल्प कला का यह एक भण्डार है। राजकीय पुरातत्त्व विभाग इस मन्दिर का जांच करते हैं और मरम्मत आदि कार्य वे ही स्वयं करते हैं।

शृंगेरी में आचार्य शङ्कर की मूर्ति अनेक जगह हैं पर मूल मठ में ही (शारदा मन्दिर के उत्तर तरफ) एक मूल मन्दिर भी है जहां आचार्य शंकर योगपद्मासन स्थित एवं चिन्मुद्रा व अभयमुद्रा सहित हैं। श्री विद्याशंकर मन्दिर में आचार्य शंकर व अपने प्रधान चार शिष्यों का मूर्ति है।

शृंगेरी नगर मध्य में एक छोटे पर्वत पर श्री मलहानिकरेश्वर (मल्लिकार्जुन) का मन्दिर है। श्री ऋष्य शृङ्ग के पिता श्री विभान्डक ऋषी का यह आश्रम था। यह स्थल रामायण प्रसिद्ध है। श्री ऋष्य शृंग अंग देश में अकाल का निवारण कराकर अतिवृष्टि करायी थी और राजा दशरथ के पुत्रकामेष्ठी यज्ञ में आचार्य होकर पधारे थे। श्रीवाल्मीकि ने इनका वर्णन बहुत सुन्दर रूप में किया है। श्री मलहानिकरेश्वर लिंग प्रतिष्ठा स्थल वही पुण्य स्थल है जहां से श्री विभान्डक ऋषी ने अपने लोक को सिधारे थे। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती (1622–63) ने

यहां श्री भवानी की प्रतिष्ठा की थी। आप गुरुदेव ने यहीं रथोत्सव व दीपोत्सव की प्रणाली प्रारम्भ की थी। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती II (1705—41) ने माघ व कृत्तिका उत्सव आरम्भ किया था। इस मन्दिर के प्राकार में बिन्दुमाधव मूर्ति भी है। शृंगेरी मठाधीश श्री अभिनव नृसिंह भारती (1599-1622) ने एक समय हल्दी से एक खम्मे में श्री गणेश की मूर्ति खींचकर पूजा की थी। अब उसी जगह वह गणेश मूर्ति खम्मे से आगे बढ़ा हुआ मूर्ति मालूम होता है। मूर्ति के पीछे भाग पोल है पर ऊपर और नीचे का भाग ठोस है। जो मन्दिर रूप आज दीखता है सो 14 वीं/15 वीं शताब्दी में निर्माणित था। 1621 ई॰ में मठ के एक भक्त श्री पुट्टप्पय्या ने मन्दिर के कुछ भागों का जीर्णोद्धार किया था।

श्रीसुब्रह्मण्येश्वर मन्दिर का निर्माण 1760 ई॰ में हुआ था।

शृंगेरी मठाधीश श्री ज्ञानघनाचार्य (846—910 ई॰) ने श्री जनार्दन मन्दिर की प्रतिष्ठा व निर्माण कराया था। ताम्रशासनों द्वारा मालूम पडता है कि 1386 ई॰ में श्री हरिहर II ने इस मन्दिर के लिये दान दिया था। हनुमान, गरुड, श्री शंकर के अन्य मन्दिर भी यहीं है। यहां का पंचमुख हनुमान की मूर्ति रामायण के सुन्दरकान्ड की मंत्रों का बोध कराता है।

उक्त जनार्दन मन्दिर समीप शक्ति गणपति एवं वागीश्वरी मन्दिर भी हैं। राम, सीता, लक्ष्मण व हनुमान की मूर्तियां एक मन्दिर में है। हरिहर के दो मूर्तियां भी यहीं है।

मल्लिकार्जुन मन्दिर के पूर्व में होण्णण्णा ने 1692 ई॰ में श्री विश्वेश्वर की प्रतिष्ठा करायी थी। यहीं भैरव व वीरभद्र के मन्दिर भी है। 1695 ई॰ में अवधान राजगोपाल भट्ट ने नीलकण्ठ मन्दिर वनवाया था और यहीं पार्वती मन्दिर भी है।

कथा सुनायी जाती है कि एक ब्रह्मराक्षस श्रीविद्यारण्य का पीछा वरावर करता था और उसी ब्रह्मराक्षस का मन्दिर भी एक निर्माण कर ब्रह्मराक्षस मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।

शृंगेरी में आचार्य शङ्कर ने पीठ व मठ स्थापना के साथ चार दिशा में चार मूर्तियों की प्रतिष्ठा कर उन्हे शृंगेरी स्थल व वासियों का रक्षक बनाया था—पूर्व में कालभैरव, दक्षिण में दुर्गा, पश्चिम में हनुमान, उत्तर में काळी।

शृंगेरी से एक मील दूर पर जहां तुङ्गा नदी पश्चिमवाहिनी होकर बहती है, यहीं विद्यारण्यपुर का अग्रहार है जो श्री हरिहर II (चौदहवीं शताब्दी) ने निर्माण कराया था। इसी गांव के पश्चात् वशिष्ठाश्रम है। यहीं शृङ्गेरी मठाधीश श्री विद्याशंकरतीर्थ महाराज (तेरहवीं/चौदहवीं शताब्दी में) योगनिष्ठा में वैठते थे। यहीं आपका एक मन्दिर भी है। इसी के समीप 1547 ई॰ में श्री नरसिंह भट्ट ने गणेश मन्दिर बनवाया था। शिवप्पा नायक ने सदाशिव का मन्दिर बनवाया था। शृङ्गेरी मठाधीश श्री नरसिंह भारती VI (1663-1705 ई॰) ने सच्चिदानन्दपुर ग्राम का निर्माण कराया था। शृङ्गेरी मठाधीश श्री अभिनव नृसिंह भारती I (1599-1622 ई॰) ने तुङ्गा समीप रुद्रपाद में लिङ्ग प्रतिष्ठा की थी।

सिंहगिरि में चतुर्मूर्ति श्रीविद्येश्वर का मन्दिर है। यह मूर्ति शृङ्गेरी मठाधीश श्री विद्यातीर्थ (या विद्याशङ्कर तीर्थ) जो लम्बिका योग में निष्ठ थे उनका समाधि स्मारक है। आप गुरुदेव ने कहा था कि आपका लम्बिका योग बारह वर्ष की तपस्या से आपका भौतिक शरीर नाश होकर यह स्वरूप जो मूर्ति में खुदा है वही स्वरूप

धारण कर लेंगे। पर अभाग्यवश आपकी तपस्या बीच में ही एक शिष्य के दुष्कर्म से तपस्या खन्डित हो गयी थी। शिला के चारों तरफ ब्रह्मा, विष्णु, महेश: श्री विद्यातीर्थ अपने दो शिष्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ एवं श्री विद्यारण्य सहित मूर्तियां हैं। उर्ध्व में शिवलिङ्ग है।

तुङ्गा नदी में नन्दिनी नदी का सङ्गम है और यहीं किग्गा (मरुकल्लु) है। यहां श्रृंगेश्वर मन्दिर भी है। कहा जाता है कि ऋष्य शृङ्ग यहीं तपस्या में मग्न थे। यहां सातवीं शताब्दी का एक शासन प्राप्त होता है जिससे इस स्थल की प्राचीनता सिद्ध होती है। उक्त शासन में यहां के देव का उल्लेख भी है। यहां का लिङ्ग रुद्राक्ष की तरह है। लिंग के ऊर्ध्व में सिंग है और बायें शान्ता है। विश्वास किया जाता है कि इस लिंग की पूजनसेवन करने पर वृष्टि होकर अकाल दूर होता है। रामायण की कथा ऋष्य शृंग की याद दिलाती है। इस मन्दिर में शिलाशासन भी हैं। राजा गुणसागर के पुत्र चित्रवाहन (सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध) का दान शासन यहीं है। इसी वंशज का पृथ्वीवल्लभ (1090 ई०) का शासन भी प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्य शङ्कर के समय सातवीं अन्त आठवीं शताब्दी प्रारम्भ में यह शृङ्गेरी सीमा प्रसिद्ध था और आचार्य शङ्कर ने इस पुण्यस्थल को अपना निजाश्रम बनाया था।

आचार्य शङ्कर ने शृंगगिरि में देखा कि एक स्त्री मेढक जन्म देने वाली है और एक कृष्ण सर्प ने अपने फण को पसारकर कडी-धूप से उस मेढक पर छत्री की तरह रक्षा कर रहा था। स्वाभाविक शत्रु होते हुए भी यहां पर मित्र बनकर, अभेद भाव से निर्भय होकर, शान्त व प्रेम से वास करते थे। ऐसे स्थल को श्री शङ्कर ने अपने योग्य आश्रम एवं पीठ निर्माण क्षेत्र समझकर यही शृङ्गगिरि में निजाश्रम बना लिया था। इस आश्चर्यमयी घटना स्थल को 'कप्पेशंकर' के नाम से पुकारा जाता है। इस घटना की यादगार में आपने वहां पर एक शिवलिंग की प्रतिष्ठा की है जो आज भी देखने में आता है। दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी मठ का तीर्थ तुङ्गा नदी, स्थल शृङ्गेरी, रामेश्वर नामक रामक्षेत्र, शक्ति शारदा, देव मलहानिकरेश्वर व वराह मूर्ति हैं। सुना जाता है कि शृङ्गेरी और आसपास में छोटा व बडा मन्दिर व अधिष्ठान व समाधि कुल 120 हैं।

जैनमतावलम्बियों का मन्दिर भी हैं। श्रीपार्श्वनाथ का मन्दिर प्राचीन है। श्री अनन्तनाथ एवं श्रीचन्द्रनाथ का मन्दिर 1583 ई० में निर्माण हुए थे। यहां 1161 ई० का एक शिलाशासन भी प्राप्त होता है।

शृङ्गेरी शारदा मन्दिर दक्षिण द्वार समीप श्री सुरेश्वराचार्य की समाधि है। विद्याशङ्कर मन्दिर के पश्चिम में कई समाधि व अधिष्ठान हैं। कालप्रवाह के कारण अभी इन प्राचीन समाधियों में किन किन आचार्यों का समाधि होने का निर्धारण किया नहीं जा सकता है। शृङ्गेरी मठ के प्राचीन रिकार्डों का पूर्ण शोध भी अभी तक नहीं किया गया है और सम्भवतः शोध करने पर कुछ विवरण प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त शृंगेरी में निवास मकानों में भी अनेक समाधियां हैं और यहां ब्राह्मण पुजारी वास करते हुए उन अधिष्ठानों या समाधियों का पूजासेवन करते थे। इन समाधियों का भी विवरण मालूम नहीं होता। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770-1814), श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती II (1814-1817), श्री नृसिंह भारती VIII (1817-1879) की समाधि शृंगेरी में हैं। श्री विद्यारण्य की समाधि (1386 ई०) विरूपाक्षी में होने का कहा जाता है और यदि इसे स्वीकार किया जाय तो शृंगेरी में अधिष्ठान होना निश्चित होता है। श्री भारती कृष्णतीर्थ जी की समाधि (1380 ई०) भी शृंगेरी में है। श्री विद्याशङ्कर मन्दिर ही श्री विद्यातीर्थ जी का समाधि (1333 ई०) व अधिष्ठान है। तुङ्गानदी उस पार पर नरसिंह वन में शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती (1879-1912) एवं श्री चन्द्रशेखर भारती III (1912-1954) का समाधि है। नरसिंहवन में 'सच्चिदानन्दविलास' भी है जहां श्री चन्द्रशेखर भारती III

वास करते थे। यहां एक धर्मशाला भी है। नासिक में श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती I (1741-67) एवं श्री नृसिंह भारती VII (1767-70) मठाधीशों का समाधि है।

दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ के आचार्य सब आठवीं शताब्दी से लगभग तेरहवीं शताब्दी तक शृंगेरी आश्रम में वास करते हुए इस मठ को वैदिक संस्कृति का केन्द्र एवं अद्वैत वेदान्त का विद्यापीठ बनाया था। उस समय पर्णकुटि व काष्ठ का ही बना मठ था। आपलोगों का निवास स्थल शृंगेरी, सिंहपुर, वशिष्ठाश्रम, किग्गा व कलस आदि स्थल थे जो सब स्थल शृंगेरी में एवं शृंगेरी सीमा में है। विजयनगर महाराजा श्री हरिहर II के समय में शृंगेरी का अग्रहार (धर्मार्थ किसी गांव का दान) एवं श्रीविद्यारण्यपुर बसाया गया था। महाराजा हरिहर II की हार्दिक इच्छा थी कि पर्णकुटि आश्रम के जगह में 'श्रृङ्गपुर का धर्मपीठ' एक पक्का निवास स्थल मठ का निर्माण होना चाहिये; छात्र ब्राह्मण, विद्वानों के लिये अग्रहार का होना चाहिये जो सब ब्राह्मण मलहानिकरेश्वर, श्री विद्याशङ्कर, श्री शारदा की पूजासेवादि कार्य करते हुए वेद, शास्त्र एवं वेदान्त का पाठ भी पढते हैं। शृङ्गेरी के पूर्वाचार्य करीब पांच शताब्दी के लिये तपस्या में, वेदान्त निष्ठा में, वैदिक सदाचार में अपना काल विताये थे और ये सब महान् व्यक्ति व्यवहारिक व भौतिक संसार जाल से परे थे। शिष्य, यात्री, राजा, धनाढ्य आदि जो बराबर शृंगेरी जाते थे, वे भी महानों को दर्शन करके आशीष प्राप्तकर लौट आते थे। यति, ब्रह्मचारी व अन्य शिष्य गुरुकुलवास करते हुए अध्ययन व भाष्य पाठ पढते थे।

तेरहवीं अन्त चौदहवीं प्रारम्भ शताब्दी में मुसलमानों का जब धाक व प्रभुत्व दक्षिण में फैल रहा था और हिन्दू राजाओं का पतन हो रहा था, जब मन्दिर व मठ तोडे जाते थे, उस समय दो हिन्दू भाई श्री हरिहर राय व श्री बुक्कराय ने, जो पहिले मुसलमानों से पकडे गये थे और पश्चात् हिन्दूओं के प्रभाव को घटाने के लिये मुसलमानों से दक्षिण भारत भेजे गये थे, आप दोनों ने निश्चय किया कि इन मुसलमानों को भगाकर हिन्दू राज्य की स्थापना पुनः दक्षिण में किया जाय। शृंगेरी मठाधीश श्रीविद्याशङ्कर तीर्थ से ये दोनों भाई पूर्व में आशीष प्राप्त किया था। पश्चात् श्री विद्यारण्य से भेंट कर (लगभग 1331 ई० में) और उनका आशीष प्राप्त करके, श्रीविद्यारण्य के आदेश पर अपना कार्य प्रारम्भ किया। फलतः आप दोनों ने अपना राज्य स्थापना की जो पूर्व व पश्चिम समुद्र तट सीमा तक फैल गयी थी। श्री हरिहर I एवं उनके वंशजों ने शृङ्गेरी मठ को संपत्तिदान, भूदान, राजचिन्ह मर्य्यादा सामग्री आदि भेंट देकर, मठ व मन्दिरों का निर्माण कराया था। शृङ्गेरी मठ इतिहास में प्रथमवार संपत्ति, भूमि, राजचिन्ह मर्य्यादा सामग्री, आदि का प्रवेश हुआ था। श्री हरिहर I ने शृंगेरी मठ को 23 ग्रामों का भूदान दिया था। पर्णशाला व काष्ठ से निर्माणित मठ की जगह अब पक्का मठ निर्माण हुआ। हरिहर II ने 1380 ई० में अपने वंशज द्वारा पूर्व में दिये गये दानों के साथ अपना भी दान जोड कर एक समग्र शासनपत्र लिखकर दिया था (लगभग 3003 पगोडा का था)। शृंगेरी को यहां 'गुरुसवीर सीमे' कहा गया है। इस प्रकार शृंगेरी आश्रम अब एक संस्थान रूप में परिवर्तित हुआ। शृंगेरी आचार्यों ने इन दानों द्वारा प्राप्त आय को पीठ के नियमित पूजासेवादि कार्य, अद्वैत प्रचार कार्य, विद्याप्रचार कार्य, आदियों में खर्च करने के लिये प्रबन्ध भी कर दिया था। कुछ वर्ष बाद दक्षिण में जब साम्राज्यों का पतन हुआ, राजा व रजवाडों का नाश हुआ, और राज्य केन्द्रों का परिवर्तन हुआ तो उस समय शृंगेरी मठ को राज्य का आश्रय या संरक्षन प्राप्त न हो सका। परन्तु 'केलाडि नायकों' ने जिनके सीमान्तर्गत शृंगेरी था आप लोगों ने मठ संरक्षन कार्य अपने हाथ में ले लिया था। श्रीवेंकटप्प नायक I ने निवास स्थल मठ का जीर्णोद्धार व मरम्मत कराया था और अग्रहार में सुविधाओं का प्रबन्ध कराया था। कुछ वर्ष उपरान्त शृङ्गेरी के बाहर जितनी संपत्ति, भूमि, शाखा मठ था उन सबों को वहां वहां के निरीक्षक एवं अन्य शाखा मठाधीशों ने स्वहस्त कर लिया था। पर नायक के सीमा में सब संपत्ति शृंगेरी के हाथ में ही रह गया। शिवप्पा नायक ने अन्यों से जो मठ संपत्ति व जमीन स्वहस्त कर लिया

गया था उसे मठ को लौटा देने का प्रबन्ध भी किया। नहर व कुआं खोदवा कर कृषि का प्रबन्ध भी कराया था। श्रीहरिहर I द्वारा दिया गया 23 ग्रामों को छोड कर मैसूर सीमा में अन्य 24 गांव भी शृंगेरी के नाम पर था। ये सब 47 इनाम ग्राम अब मैसूर सरकार ने ले लिया है चूं कि इनाम का रद्द हो चुका है। जागीर से आय करीब रुपया 50000 का था। चन्दन लकडी काटना व बेचना, जङ्गलों का काष्ठ काटना व बेचना, भूगर्भ के धातुओं का निकालना व बेचना, कर लगाने, आदि का हक भी था। शृंगेरी मठ के अधिकार व संचालन में करीब 30 धार्मिक संस्थायें हैं। 1403 ई० का शासन उल्लेख करता है 'धर्मपीठ शृंगेरी में स्थित श्री प. प. श्री नरसिंह भारती उडयार'। 1573 ई० का शासन 'शृंगेरी धर्मपीठ पर विराजमान श्री नृसिंह भारती III' को दिया गया है।

1637 ई० में बीजापुर के शाह ने वीरभद्र नायक राज्य पर हमला कर आधा राज्य ले लिया था। इस कष्ठ परिस्थिति में भी नायक ने शाह से प्रार्थना की कि शृंगेरी मठ के ग्रामों को रक्षित कर मठ को लौटा दें। शृंगेरी का एक शाखा मठाधीश ने दो गांव अपने स्वाधीन कर लिया था और शाह के कर्मचारियों ने इन दोनो ग्रामो को पुनः शृंगेरी के हाथ सौंप दिया था। 1639/40 ई० में बीजापूर शाह के सेना ने बङ्गलूर, तुमकूर, बेलापुर, बसवपटना आदि नगरों को अपने राज्य में मिला लिया था। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती (1662-63) ने शाह के कर्मचारि को श्रीमुख भेजा कि मठ के ग्राम व मन्दिरों की रक्षा की जाय। जगद्गुरु के आदेश पर शाह के कर्मचारी ने एक ताकीद भेजा जिसमें हुक्म दिया गया कि षिमोगा सीमा में मठ के गांव जो अन्यों ने स्वहस्थ कर लिया था उसे शृंगेरो मठ को लौटा दिया जाय और इस सीमा के वासिन्दे सब शृंगेरी गुरु का आज्ञापालन करें। हैदरावाद के निजाम-उल-मुल्क ने शृंगेरो मठ को कई फरमान व सनद दिया है। निजाम के पुत्र निजाम अलि खान (1761-1803 ई०) ने पूर्व में दिये गये सनदों को पुष्टि कर एक नया सनद 16—4—1782 के दिन निकाला था। इन सनदों में शृंगेरी आचार्यों को कुछ ऐसे धर्माधिकार व अन्य अधिकार दिये गये हैं जो अन्यों को प्राप्त नहीं हुआ है। शृंगेरी मठाधीश श्री नरसिंह भारती (1817-79 ई०) हैदरावाद पहुंचे जब अन्य चिल्लर व शाखा मठों ने शृंगेरी के अधिकार को प्राप्त करने की चेष्टा में प्रवृत्त थे। इन विषयों पर जांच कर निजाम ने 16—10—1843, 11—3—1845, 16—12—1845 के दिनों में हुक्म जारी किया था कि ये सब चिल्लर व शाखा मठ अनधिकारी हैं और शृंगेरी जगद्गुरु की आज्ञा बिना अन्य मठ निजाम सीमा में कोई भ्रमण न करें। इस हुक्म में अनेक विषय हैं। निजाम ने ताः 1—2—1910 के पत्र में भी उक्त अधिकारों का पुष्टि किया है।

पेशवा माधवराव ने शृंगेरी मठ को 'अग्र पूजा' सालाना भेंट देना प्रारम्भ किया था। श्रीरघुनाथ राव ने शृंगेरी मठाधीश अभिनव सच्चिदानन्द भारती (1741-67 ई०) से प्रार्थना की थी कि आप पूना पधार कर सबों को आशीष दें। हैदर अली ने एक हाथी, 5 घोडा, 1 पालकी, 5 ऊंट, वस्त्र, शाल, स्वर्ण व चांदी पात्र, एवं रु० 10500 श्री गुरु जी की भेंट देकर पूना भेजा था। तीसरा मैसूर युद्ध (1790-92) के समय एक पटबर्धन सेनानि ने शृंगेरी को लूटा और कहा जाता है कि यह लूट से मठ को रु० 60 लाख की हानी हुई। टिपू इस घटना को सुनकर 24—7—1791 के दिन पत्र लिखते हैं कि गुरु को जो अपचार करते हैं या दुःख पहुंचाते हैं उनका व उनके वंशज का नाश हो जायगा। टिपू सुल्तान ने मठ व मन्दिर मरम्मत के लिये द्रव्य भेजा। हाथी, घोडा, पालकी, ऊंट, गाय आदि भी भेजा था। 1791 ई० में टिपू सुल्तान ने शृंगेरी मठाधीश से प्रार्थना की कि आप गुरु महाराज 'सहस्रचन्डीजप' एवं 'होम' आदि शुभ कार्य करायें। खर्च के लिये धन भेजा। टिपू ने 1792 ई० में काञ्ची से शृंगेरी मठाधीश को पत्र लिखकर प्रार्थना की कि गुरुदेव कांची पहुंचकर मन्दिर प्रोक्षण आदि कार्यों को करायें। 1793 ई० में वालाजा के नवाब ने कांची में वर्णाश्रम झगडे के सम्बन्ध में लिखकर 'लोकगुरु शङ्कराचार्य' से निर्णय मांगा था।

अठारहवीं शताब्दी प्रारम्भ में श्रृंगेरी मठ का प्रभाव व सम्बन्ध महराष्ट्र राजाओं व कोल्हापूर, पेशवा, होलकर आदियों के साथ घनिष्ठ था। दक्षिण में नायक राजाओं ने अपनी अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पण किया था। हैदर, टिपू, रीजन्ट पूर्णय्या, निजाम आदियों ने भी श्रृंगेरी की आध्यात्म महत्ता से प्रभावित होकर न केवल संपत्ति दिया पर अपने राज्य सीमा में धर्माधिकार एवं अन्य अधिकार भी दिया था। मैसूर राज्य ने मठ संपत्ति की रखवाली करने लगे। मैसूर प्रान्त छोड दूर दक्षिण एवं उत्तर देश में भी भूमि खरीदी गयी। मैसूर प्रान्त के शिमोगा, चिक्कमगळर, हासन, श्रीरङ्ग-पट्टिनम्, बङ्गलूर, मैसूर आदि जिलों में अनेक गांव मठ के नाम पर है। इसके अतिरिक्त धारवार, दक्षिण कनरा, बेल्लारी, चित्तूर, अहमदनगर, रामनाथपुरम्, कोयम्बतूर, तिरुच्चिरापल्ली, शेलम, मदुरै, तिरुनेलवेली, आदि जिलों में भी मठ के नाम से अनेक गांव व जमीन भी हैं। अर्वाचीन काल में आचार्य शङ्कर का जन्म भूमि 'कालटी संकेतम' भी खरीदा गया। श्रृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770–1814) और श्री नरसिंह भारती VIII (1817-79) पूज्यपादों ने भारत का दिग्विजय यात्रा कर दूर उत्तर की यात्रा भी की थी। कम्पनी सरकार ने 1839 ई॰ में यह घोषणा की थी कि श्रृंगेरी मठ द्वारा दिया गया आचारविचार निर्णय पर, वर्णाश्रम के सम्बन्ध में दिये हुए निर्णय पर, प्रायश्चित विधि विधान पर, जातिबहिष्कार विधिपर, मठ द्वारा दिये गये दण्ड पर, कोई अपील सरकार के पास किया नहीं जा सकता है और श्रृंगेरी मठ का निर्णय सर्वमान्य है। प्राचीन काल में सरकार कृषिकों से 'शंकराचार्यभिक्षा' वसूल करते थे और श्रृंगेरी मठ को वार्षिक भेंट देते थे पर कालान्तर में यह प्रथा लोप होगया। श्रृंगेरी शाखामठ तिरुनेलवेली के पास एक ऐसा पट्टा अब भी उपलब्ध होता है।

श्रृंगेरी संस्थान को अपनी सीमा में दीवानीऔर फौजदारी अधिकार भी था। स्वयं किश्त वसूल करते थे। काश्तकारों को जमीन का हक दिया गया था। वेतन भोक्ता मजदूर न था और न जमीन से हटाया जाता था। कृषि के लिये मठ से धन व द्रव्य सहाय मिलता था। जंगलों को काटकर भूमि को कृषि के लिये कृषक को दिया जाता था। पर अब यह श्रृंगेरी का 'जागीर' (44 वर्गमील) न रहा एवं कई सौ एकड इनाम जमीन मैसूर प्रान्त के बाहर भी जो था सो भी अब न रहा। सरकार के हाथ ये सब इनाम जमीन सौंप दी गयी है। सुना जाता है कि मठ को रियायत दी जायगी एवं जगद्गुरु को 'तस्दीक' भी दिया जायगा। शारदा व चन्द्रमौलीश्वर पूजा सेवादि कार्य व्यय के लिये वार्षिक भेंट आज भी प्राप्त होता है—मैसूर राज्य, ग्वालीयर, इन्दोर, जमखन्डी, धार, तिरवांकूर, उत्तर प्रदेश सरकार (नासिक ट्रेषरी द्वारा), आदियों से।

1887 ई॰ में श्रृङ्गेरी नगर म्युनिसिपालटी में परिवर्तन हुआ और श्रृंगेरी जागीर के बडे गांव सब पंचायत में परिवर्तन हुआ। पर इस शताब्दी प्रारम्भ में श्रृङ्गेरी मठ ने इन सब अधिकारों को भी मैसूर राज्य सरकार के हाथ सौंप दिया था। मैसूर राज्य ने 1936 ई॰ से 1—4—1959 तक मठ निर्वाह कार्य अपने हाथ में ले लिया था पर 1959 ई॰ से श्री मठाधीश ने पुनः मठ निर्वाह कार्य अपने हाथ में ले लिया है। श्रृंगेरी 'जागीर' अब न रहा। श्री मठाधीश ने मठनिर्वाह कार्य 'प्रबन्धक' के हाथ सौंप दिया है। 'पेशकार' संचालन करते हैं। श्रृंगेरी में धर्मशाला व ट्रावलर बङ्गळो भी है जहां अथिति सत्कार होता है। नरसिंहपुरम में कृषिशाला भी है। सिंचाई का प्रबन्ध भी है। पूजा सेवादि कार्य में पुष्प, बिल्व, आदि के लिये बगीचे भी हैं।

सारे भारतवर्ष में करीब 46 शाखा मठ हैं—बङ्गलूर (2), मैसूर, श्रीनिवासपुर, नञ्जनगूड, हासन, गुग्गे सुब्रह्मणिय, गोकर्ण, कालटी, मदरास (दो), कांची, मदुरै, मानामदुरै, दिन्डुक्कल, पेरियकुळम्, रामनाथपुरम, रामेश्वर, तिरुनेलवेली, कोडगनल्लूर, वीरवनल्लूर, सत्यमङ्गलम्, गोबिचेट्टिपालयम्, भवानी, ईरोड, शेलम, कोयम्बतूर, करूर, श्रीरंगम्, तिरुपदी, तेनाली, बेजवाडा, गुन्टूर, कर्नूल, हैदराबाद, राजमहेन्द्रम्, नासिक, वाराणसी(2), हरिद्वार,

गया, आदि। बेलवाडीका श्री वीरनारायणस्वामी मन्दिर, हरकेरे का श्री रामेश्वर मन्दिर, गोकर्णका श्री शारदा मन्दिर, कोल्लूर का चन्द्रमौळीश्वर मन्दिर, रामनाड शिवगंगा के समीप शारदा मन्दिर, एवं कोलप्पालुर का शारदाम्बा अन्नछेत्र, आदि भी शृंगेरी मठ अधीन व संचालन में है। इसके अलावा अनेक नगरों में शङ्करमठ हैं जिनका संचालन वहां के व्यक्ति करते हैं और ये सब शङ्करमठ शृंगेरी मठ को अपना प्रधान मूल मठ स्वीकार किया है। शाखा मठों का निर्वाह मैनेजरों द्वारा होता है। इन शाखा मठों द्वारा धर्मप्रचार, पुराण प्रवचन, वेद पाठ, पूजासेवादि कार्य, उत्सव, अतिथि सत्कार आदि होता है। यात्रियों को ठहरने का प्रबन्ध भी किया गया है। 'जागीर' चले जाने के बाद बंगलूर एवं कालटी में मकानों का निर्माण कराकर किराये में दिया गया है। सुना जाता है कि करीब 60,000 वार्षिक आय है। शृंगेरी मठ कर्मचारियों का मासिक वेतन वार्षिक 1,20,000 रु० का है। नरसिंहवन में धर्मशाला व गोशाला है जहां करीब 100 गाय हैं।

काशी के प्रसिद्ध विद्वान एवं कई ग्रन्थों के रचयिता पण्डितप्रवर आचार्य बलदेव उपाध्याय जी 'शङ्कराचार्य' नामक पुस्तक में लिखते हैं—'दक्षिण में मैसूर रियासत में शृंगेरी मठ है जिसे आचार्य के द्वारा स्थापित पीठों में प्रथम पीठ होने का गौरव प्राप्त है। .... शृंगेरी मठ शङ्कराचार्य के द्वारा स्थापित केवल पीठ मात्र नहीं है प्रत्युत यह वैदिक संस्कृति का केन्द्र, वर्णाश्रम धर्म का निकेतन तथा अद्वैत वेदान्त का जीता जागता विद्यापीठ है। यहां के अध्यक्ष लोग अपनी विद्या, वैदिक सदाचार, वेदान्त निष्ठा के लिये सदा से सर्वत्र विख्यात हैं। यहां के शङ्कराचार्य का अधिकांश समय दक्षिण के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भ्रमण कर हिन्दु जनता के बीच वैदिक धर्म के प्रचार में बीतता है। .... यह स्थान पहाडी है अतः प्राचीन काल में यह अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये हुये था। .... जागीर की आय तथा दक्षिणा से मिलने वाला द्रव्य सब कुछ दीन, दुखियों के भोजन में खर्च कर दिया जाता है। इस मठ की ओर से अनेक संस्कृत पाठशालायें चलती हैं जिनमें संस्कृत व्याकरण तथा वेदान्त की शिक्षा दी जाती है।'

आचार्य शङ्कर बारह वर्ष शृंगेरी में वास करते हुए प्रकरण ग्रन्थ व अनेक स्तोत्रों की रचना की थी। अन्य शिष्यों ने भी शृङ्गेरी में टीका, वार्तिक आदि लिखे थे। आचार्य शङ्कर के पश्चात् श्री सुरेश्वराचार्य शृङ्गेरी मठाधीश भये। आपने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ एवं बृहदारण्य व तैत्तिरीय उपनिषद पर वार्तिक तथा दक्षिणामूर्तिस्तोत्र पर टीका 'मानसोल्लास' आदियों की रचना की थी। शृंगेरी मठाधीश श्री ज्ञानघनाचार्य (846—910 ई०) द्वारा रचित 'तत्त्वशुद्धि' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसे श्री अप्पयदीक्षित ने बडी प्रशंसा की है। आपके पश्चात् श्री ज्ञानोत्तमशिव आचार्य (905–953 ई०) शृङ्गेरी मठाधीश भये और आपने 'विद्या श्री' (ब्रह्मसूत्रभाष्य पर टीका) ग्रन्थ की रचना की थी। आपके शिष्यों में प्रकाण्ड विद्वान भी थे—विज्ञानात्मन ('तात्पर्यद्योतिनी' एवं नारायणोपनिषद पर वृत्ति ग्रन्थ के रचयिता) एवं चित्सुख (तत्त्वप्रदीपिका, विवरणतात्पर्य दीपिका, भावप्रकाशिका, अधिकरणमञ्जरी, प्रमाणमालाटीका, आदि ग्रन्थों के रचयिता)। चित्सुख के शिष्य शुकप्रकाश थे और आपके पास अमलानन्द ने विद्या प्राप्त की थी। ये सब शिष्यवर्ग शृंगेरी विद्यापरम्परा के हैं। यह समय था जब शृङ्गेरी में अनेक शिष्य कर्नाटक, चोळ, आन्ध्र, महराष्ट्र, गौडदेश से आकर विद्या प्राप्त करते थे। इतिहास पुस्तकों से प्रतीत होता है कि तिरुवनन्दपुरम् में शृङ्गेरी मठ के एक आचार्य एवं श्री मध्वाचार्य (1198-1275 ई०) के बीच में वादविवाद हुआ था। शृङ्गेरी मठाधीश श्री नृसिंहतीर्थ (1146-1228 ई०) या श्री विद्याशंकरतीर्थ (1228-1333 ई०) के साथ ही उक्त वादविवाद हुआ होगा। ग्यारहवीं शताब्दी में, सोमेश्वर II के राज्यकाल में कर्नाटक सीमा जहां शैव मठ का प्रभाव था अब वहीं अद्वैत मठ का प्रभाव पडने लगा और विज्ञ वेदान्त पढ़ने लगे। प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि इसी

समय में केरळ व चोळ देश में अनेक जगह 'विद्यास्थान' थे जहां वेदान्त पाठ पढ़ाया जाता था और इन जगहों में शृंगेरी मठ के प्रभाव से ही अद्वैत वेदान्त का प्रचार होने लगा। बंगाल राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित एक प्राचीन ग्रंथ 'गद्यवल्लरी' है जिसकी मूल प्रति सीतामढ़ी (विहार) से प्राप्त हुई थी: उसमें आचार्य शंकर का परम्परा दिया है। आचार्य शङ्कर से लेकर श्री विद्यारण्य तक का परम्परा नाम सब शृंगेरी मठ की वंशावली में दिये हुए आचार्यों का नाम ही हैं। दूर उत्तर में भी श्री विद्यारण्य का प्रभाव अधिक था। श्री विद्यारण्य के पश्चात आपका शिष्य (श्री मलयानन्द देवतीर्थ) जो श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त की थी उनका परम्परा उक्त ग्रंथ में दिया गया है।

तेरहवीं/चौदहवीं शताब्दी में शृंगेरी मठाधीश श्री विद्याशङ्करतीर्थ (1228–1333) श्री भारतीकृष्ण तीर्थ (1328–1380) एवं श्रीविद्यारण्य (1331–1386) थे। (श्री विद्यातीर्थ) श्री विद्याशङ्करतीर्थ की महिमा विजयनगर महाराज हरिहर II यों कहा है 'विद्यातीर्थयतीन्द्रोयमतिशेते दिवाकरम्। तमो हरति यत्पुंसामन्तर्वहिरहर्निशम्॥'श्री भारती तीर्थ द्वारा रचित ग्रंथ अधिकरणरत्नमाला (वैय्यासिकरत्नमाला) है। श्री विद्यारण्य एवं श्री भारतीतीर्थ दोनों द्वारा रचित ग्रन्थ पञ्चदशी है। पंचदशी ग्रन्थ रचना के बाद ही जीवनमुक्तविवेक (श्री विद्यारण्य कृत) ग्रंथ की रचना हुई थी। श्री विद्यारण्य द्वारा रचित ग्रन्थ—अनुभूति प्रकाश (कुछ उपनिषदों की पद्यात्मक व्याख्या), जीवनमुक्ति विवेक (सन्यास धर्म का निरूपण किया गया है), विवरणप्रमेयसंग्रह (पञ्चपादिका विवरण पर यह व्याख्या ग्रन्थ है), बृहदारण्य वार्तिकसार (श्रीसुरेश्वराचार्य के वार्तिक का संक्षेप ग्रन्थ), दृग्दृश्यविवेक (कहा जाता है कि श्री भारतीतीर्थ एवं श्रीविद्यारण्य दोनों द्वारा रचित है पर टीकाकार श्री ब्रह्मानन्द भारती का अभिप्राय है कि श्री भारतीकृष्णतीर्थ द्वारा रचित है और टीकाकार श्रीनिश्चलदास का अभिप्राय है कि श्रीविद्यारण्य द्वारा रचित है), ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं अपरोक्षानुभूति पर दीपिका। यह समय था जब अनेक शिष्य शृंगेरी में वासकरके विद्या प्राप्त की थी। इनमें कुछ प्रसिद्धि नाम—श्रीशंकरानन्द, श्री प्रत्यगप्रकाश, श्रीप्रत्यगस्वरूप, आदि थे। शिवाऽद्वैती श्रीकण्ठ एवं काशी विलास क्रियाशक्ति भी कुछ काल श्री विद्यारण्य के पास शिक्षा पायी थी। काशीविलास क्रियाशक्ति के शिष्य आंगिरस गोत्र मदरास उडयार नामधारी श्री माधव मंत्री थे। श्री क्रियाशक्ति ने सन्यास दीक्षा लेकर अपने परमगुरु श्री विद्याशंकर तीर्थ का नाम धारण किया। श्री माधव मंत्री से रचित सूतसंहिता की टीका 'तात्पर्यदीपिका' में अपने गुरु श्री क्रियाशक्ति जो श्री विद्याशङ्कर का नाम धारण किया था आपको वन्दना करते हैं। यह माधव मंत्री शृंगेरी शिष्य परम्परा के हैं। विजयनगर महाराजा श्री बुक्का के आज्ञा पर आप शृंगेरी पहुंचकर श्री भारतीकृष्ण तीर्थ को राजभेंट अर्पण करते हैं। महाराजा बुक्का II की आज्ञा पर 1406 ई० में गोवापुरवराधीश्वर भास्कर उडयार ने शृंगेरी मठाधीश श्री नरसिंह भारती I को भूमि दान दिया है। शृंगेरी मठ के शिष्य श्री माधव भारती ने गोकर्ण में शृंगेरी शाखा मठ की स्थापना की थी। देवराय के आज्ञापर महाप्रधान रामचन्द्र देव ने गोकर्ण मठ को दान दिया है और जिस शासन में उल्लेख है कि शृंगेरी मठाधीश श्री शङ्करानन्द भारती (1448–54 ई०) के आप प्रतिनिधि हैं। शृंगेरी मठाधीश श्री पुरुषोत्तम भारती II (1472–1517 ई०) ने तुलनाड प्रान्त में विजय यात्रा किया था।

भारद्वाज गोत्र श्री मायण के पुत्रों में श्री माधव व सायण एवं सायण के पुत्रों में एक माधव (मायण) सब प्रसिद्ध गृहस्थ शिष्य थे। इसी समय में शृंगेरी मठ को महाराजाओं से दिये हुए दान द्वारा शृंगेरी मठ संस्थान रूप में परिवर्तित हुआ था। ये सब गृहस्थ शिष्य श्री विद्यारण्य के कृपाभाजन थे। श्री भारती कृष्ण तीर्थ ने 120 विद्वानों को भू दान दिया था। इनमें श्री सायण श्रेष्ठ माने गये थे। नारायण वाजपेय, पांडुरङ्ग दीक्षित, नरहरि सोमयाजी आदियों ने वेदभाष्य रचना में सहयोग दिया था और आपलोगों को भी दान प्राप्त हुआ था। 1386 ई० के विद्यारण्यपुर शासन द्वारा प्रतीत होता है कि अनेक विद्वान श्री शृंगेरी मठ में वास करते हुए दान भी प्राप्त किये थे। महाराजा हरिहर II ने श्रीविद्यारण्य के दो शिष्यों को बेलुगुल गांव दान में दिया था। अनेक ग्रंथों की रचना इसी

काल में हुआ था। मायण के पुत्र माधवाचार्य ने पराशरस्मृतिव्याख्या (पराशर-माधव), व्यवहार माधवीय (कालनिर्णय), जैमिनीय न्यायमाला विस्तार, आदि ग्रंथो की रचना की थी। उपर्युक्त माधवाचार्य का भ्राता श्री सायणाचार्य ने शुभाषित सुधानिधि, प्रायश्चित सुधानिधि (कर्मविपाक), अलङ्कार सुधानिधि, धातुवृत्ति, वेद भाष्य, पुरुषार्थ सुधानिधि, यज्ञतंत्रसुधानिधि, आयुर्वेद सुधानिधि, आदि ग्रंथों की रचना की थी। मायण का पोता व सायण का पुत्र माधव (मायण) ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' ग्रंथ की रचना की है। शृंगेरी मठ में अब भी प्राचीन रिकार्ड उपलब्ध होते हैं जिससे सिद्ध होता है कि उत्तर व दक्षिण के अनेक विद्वान शृंगेरी पहुंचकर अपनी विद्याध्ययन की पूर्ति करके सन्मान व दान भी प्राप्त किया था। कई शाखा मठ के मठाधीशों का शिक्षा व भाष्य पाठ सब शृंगेरी में हुई थी। शृंगेरी मठ में अनेक ब्रह्मचारी विद्यार्थी भी थे और इन में से शाखा मठ के मठाधीश पदवी पर बैठने योग्य चुने गये थे। श्री विद्यारण्य ने शाखा मठों की स्थापना की थी और इन मठों द्वारा भी वेदान्त प्रचार प्रारम्भ हुआ। वर्तमान काल में पूर्वाम्नाय श्री गोवर्धन मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने शृंगेरी में शिक्षा प्राप्त की थी। शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु श्री चन्द्रशेखर भारती जी एवं श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी की शिक्षा बेङ्गलूर व शृंगेरी में दी गयी थी। शिवगङ्गा व नेलमाऊ मठ के अधीशों ने भी शृंगेरी में शिक्षा प्राप्त की थी।

शृंगेरी मठाधीश श्री अभिनव नृसिंह भारती I (1599–1622) ने शिवगीता पर टीका लिखी है। आप ही ने शिवगङ्गा मठ की स्थापना करके अपने शिष्य श्री शंकर भारती को वहां नियोजित किया था। श्री शंकर भारती एक प्रकान्ड विद्वान थे। श्री अभिनव नृसिंह भारती I अपने शिष्य श्री सच्चिदानन्द भारती I के साथ नायक के दर्बार इक्केरी में पहुंचे। यहां अनेक प्रकान्ड विद्वान जुटे थे और सबों ने आप मठाधीश महाराज की विद्वत्ता (तर्क, मीमांसा व वेदान्त में) को देख कर बडी प्रशंसा की थी। श्री सच्चिदानन्द भारती I (1622–1633) के सभापतित्व में विद्वतसभा हुई थी और इक्केरी के नायक राजा भी उपस्थित थे। यहीं श्री रङ्गो जी (काशी के प्रकान्ड विद्वान) ने एक मध्वसंप्रदाय पन्डित श्री विद्याधीश भट्ट को विवाद में पराजित किया था। श्री लक्ष्मीधर के पुत्र श्री रङ्गो जी एवं भट्टो जी थे और ये श्री अप्पयदीक्षित के शिष्य थे। श्री सच्चिदानन्द भारती I ने अनेक स्तोत्रों की रचना की थी जिनमें मुख्य हैं—रामचन्द्रोदय, गुरुशतक, मीनाक्षी शतक, कोविदाष्टक आदि। 1686 ई० के महा अकाल के समय शृंगेरी मठ ने कई हजारों को अन्नदान किया था। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती II (1705—41)द्वारा रचित मूकाम्बिका स्तोत्र एवं शारदा स्तोत्र हैं। शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द भारती III (1770—1814) के विषय में मैसूर रीजन्ट पूर्णय्या (मध्व संप्रदाय द्वैती) का अभिप्राय भेद था और एक समय आपने मठाधीश को प्रकान्ड विद्वानों से विवाद करने के लिये प्रार्थना की थी। आपका अभिप्राय था कि मठाधीश प्रकान्ड विद्वान नहीं हैं। बीच में पर्दा डालकर पन्डित वर्ग एवं मठाधीश के बीच विवाद शुरु हुआ। अन्त में विद्वान पराजित भये। श्री पूर्णय्या ने विवाद के बीच स्त्री की आवाज सुना था और आप आश्चर्य में स्वयं पर्दा हटाकर देखा तो आचार्य के स्थान में माता शारदा को देखा। श्री पूर्णय्या साष्टाङ्ग नमस्कार करके क्षमा मांगी थी। श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती (1879–1912) शृंगेरी मठाधीश, ने अनेक स्तोत्रों की रचना की थी, जो सब संग्रह कर पुस्तक रूप में 'भक्तिसुधातरङ्गिनी' नाम से प्रकाश हुआ है। आप गुरुदेवजी ने आद्यशंकराचार्य द्वारा रचित ग्रंथो का पुनः प्रकाशन कराया था। शृंगेरी मठाधीश श्री चन्द्रशेखर भारती III (1912–1954) ने विवेकचूडामणी पर टीका लिखी है जो अब प्रकाशित हुआ है। आपने अनेक स्तोत्रों की रचना भी की है।

शृंगेरी मठाधीश श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती जी ने 1895 ई० में 'सद्विद्या सञ्जीवनी' नामक एक संस्था स्थापना कर और स्वयं वेदान्त पाठ पढाते थे। तर्क, न्याय, ज्योतिष, व्याकरण, मीमांसा. वेदान्त, वेद, हिन्दी आदि का शिक्षा दी जाती हैं। इस विद्यालय में अब 102 विद्यार्थी हैं और इन को भोजन,

वस्त्र, पुस्तक, अन्य सुविधाओं का भी मुफ्त प्रवन्ध किया गया है। बारह अध्यापक हैं। यहां सात वर्ष की शिक्षा दी जाती है। शृंगेरी मठाधीश ने कल्याणपुरी (बङ्गलूर) में 1911 ई० में 'गीर्वाण प्रौढ़ विद्याभिवर्धिनी' संस्था खोली है। यहां म. म. ब्रह्म श्री वैद्यनाथ शास्त्री जी (मीमांसा) व म. म. ब्रह्म श्री सुब्रह्मणिय शास्त्री जी (वेदान्त) अध्यापक थे। उक्त प्रकान्ड विद्वान दोनों ने पूर्व में शृंगेरी मठाधीश के पास शिक्षा पायी थी। यहां अध्यापकों व छात्रों का निवास स्थल भी है और छात्रवृत्ति भी दिया जाता है। कालटी में 1910 ई० में वेद पाठशाला प्रारम्भ हुआ और 1927 ई० से यहां वेदान्त भी पढ़ाने की व्यवस्था की गयी है। अर्वाचीन काल में कालटी का शङ्कर कालेज शृंगेरी मठ के अधीन व संचालन में आगया है। 500 विद्यार्थियों से भी अधिक इस कालेज में शिक्षा पाते हैं। मैसूर में 'अभिनव शंकरालयम्' नामक संस्था खोली गयी है। यहां भी बालक विद्यार्थी व वृद्ध शिक्षा पाते हैं। गोविचेट्टिपालयम्, तिरुनेलवेली, नञ्जनगूड, में भी पाठशालायें खोली गयी हैं। मदरास, कोयम्वत्तूर, शेलम, करूर के शाखामठ द्वारा धर्मप्रचार कार्य भी हो रहा है। कालीकट, कोचिन, कडयनल्लूर, वाराणसी में कुछ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दिया जाता है। विश्वविद्यालय एवं पालिटेकनिक में पढनेवाले गरीव विद्यार्थियों को भी छात्रवृत्ति दिया जाता है। श्रीरङ्गम के अभिनव विद्यातीर्थ विद्यालय में बालक व बालिकाओं को संस्कृत पढाने का प्रवन्ध किया गया है और यहां काव्य व वेदान्त भी पढाया जाता है। अन्य अनेक स्थलों में धर्मप्रचारार्थ संस्थायें खोली गयी हैं और यहां वेद, शास्त्र पढाने का प्रवन्ध किया गया है—मदरास, हैदरावाद, विजयवाडा, गुन्टूर आदि। प्रतिवर्ष गणेश चतुर्थी, शङ्कर जयन्ती, नवरात्री महोत्सव के अवसर पर विद्वन् सभा भी होती है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वान इन विद्वत सदसों में भाग लेते हैं। इन्हें सन्मान व पुरस्कार दिया जाता है। 'शंकरकृपा' नामक मासिक पत्र तामिल व तेलगू भाषा में धर्मप्रचारार्थ प्रकाश हो रहा है। 'अखिल भारत शंकर सेवासमीति' नामक एक संस्था धर्म प्रचार कार्य कर रहा है। जगह जगह सम्मेलन होता है। श्री रङ्गम का वाणीविलास प्रेस शृंगेरी मठाधीश के आदेश पर 20 वेदान्त ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। पुनः संस्करण प्रतियां वारह पुस्तक रूप में अब छप रहा है। शृंगेरी मठ में पुराने रिकार्डों की खोज नहीं की गयी है और वहां के पुस्तकालय में प्राचीन हस्तलिपि प्रतियों का शोध भी नही हुआ है। उम्मेद किया जाता है कि यह शोध कार्य किया जाय तो कई प्राचीन ग्रंथों का मूल या पुनः लिखित प्रतियां भी मिल जांय। शृंगेरी मठाधीश श्री अभिनव नृसिंह भारती I (1599–1622) द्वारा रचित शिवगीता पर टीका शृंगेरी में अभी मिला है। शृंगेरी मठ के पूर्वाचार्यों द्वारा रचित अनेक स्तोत्र, टीका व अन्य ग्रंथ भी हैं जो सब अभी तक प्रकाश नही हुए हैं और वर्तमान मठाधीश महाराज ने उन सबों का शोध कर प्रकाश कराने वाले हैं। 'अखिल भारत शङ्करसेवासमीति' ने आचार्य शङ्कर द्वारा रचित प्रकरण ग्रंथ एवं स्तोत्रों का (मूल व अर्थ के साथ) 'जगद्गुरु ग्रन्थमाला सीरीज' के नाम से 40 पुस्तक प्रकाश करने का आयोजन किया है और अभी तक 10 पुस्तक प्रकाशित किये गये हैं। शृंगेरी, कालटी, मदरास मठों में पुस्तकालय हैं। अनेक शाखा मठों में भी पुस्तकालय हैं। मठ की तरफ से धर्म प्रचारक कई जिलों में नियोजित किये गये हैं जो वेतन भी पाते हैं। अनेक स्थलों में मठ के मुद्राधिकारी व धर्माधिकारी भी चुने गये हैं। पूर्वीय व पाश्चात्य विद्वान अपनी शंका निवारणार्थ या मठाधीश से भेंट कर आपका अभिप्राय जानने के लिये बरावर आते थे और अब भी आते हैं। आचार्य अपने विजय यात्रा में धर्मप्रचार करते हुए शिष्यों को सदाचार व वैदिक संस्कृती का भी बोध कराते हैं। धर्म विषयों में सलाह लेने के लिये अदालत शृंगेरी मठ को लिखते हैं। शिष्यों व विद्वानों द्वारा उठाये गये शङ्कायें या समस्याओं का—आचारविचार सम्बन्धी, प्रायश्चित, शास्त्र विधि, आदियों—हल भी किया जाता है।

संक्षेप में ऊपर दिये गये विवरण द्वारा सिद्ध होता है कि शृंगेरी मठाधीश सब अपनी प्रकाण्ड विद्वता, वैदिक सदाचार, तपोमूर्ति व वेदान्त निष्ठा के लिये सदासे सर्वत्र विख्यात हैं। आप आचार्यों ने जनता के बीच वैदिक धर्म का प्रचार कर लोगों का उद्धार किया है।

दक्षिणाम्नाय श्री शृङ्गगिरि शारदा मठ परम्परा

श्रीगुरुभ्यो नमः

1. श्री शंकरभगवत्पाद

(684–716 ई०) श्री गुरुदेव जी का जन्म कालटी में 684 ई० में हुआ। आपने आठवें वर्ष में कालटी में आतुर मानसिक सन्यास लेकर पश्चात् नर्मदा नदी तीर ओंकारनाथ में श्री गोविन्दभगवत्पाद से शास्त्रोक्त सन्यासदीक्षा व ब्रह्मविद्या शिक्षा प्राप्त की। बदरी सीमा व काशी में प्रस्थानत्रय भाष्य रचना समाप्त कर एवं श्री पद्मपादाचार्य को दीक्षा देकर अपने सत्तरहवें वयस में माहिष्मती में श्री मण्डन विश्वरूप मिश्र को विवाद में पराजित कर और आपको सन्यासदीक्षा देकर, यहां से भ्रमण करते हुए शृंगगिरि पहुंचे। शृंगगिरि में बारह वर्ष वास करते हुए प्रकरण ग्रन्थ और स्तोत्रों की रचना की। श्री वलिग्राम में श्री हस्तामलक को दीक्षादी और शृंगगिरि में श्री तोटकाचार्य को दीक्षा देकर अपना शिष्य स्वीकार किया। आपके प्रधान चार शिष्यों ने शृंगगिरि में भाष्य, वार्तिक, टीका व अन्य ग्रन्थो का प्रणयन किया था। आचार्य शंकर ने अपने निजाश्रम शृंगगिरि में माता शारदा की प्रतिष्ठा करके व्याख्यान सिंहासन पीठ की स्थापना भी की थी। पश्चात् अपने दिग्विजय यात्रा में पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय व उत्तराम्नाय के आम्नाय मठों की स्थापना की थी। काश्मीर के प्राचीन सर्वज्ञपीठ पर आरोहण करके यहां से हिमालय केदारनाथ मन्दिर सीमा पहुंचे। अपने बत्तीसवें वयस में 716 ई० में केदारनाथ मन्दिर समीप स्थल जिसे 'कैवल्यधाम' कहा जाता है यहीं से निजधाम को जा पहुंचे। अपने द्वारा प्रतिष्ठित चार आम्नाय मठों में चार प्रधान शिष्यों को नियोजित कर, आम्नाय मठों का पद्धति (मठाम्नाय या मठाम्नायसेतु) बनाकरके इन मठों को उन नियमें से बद्धकर अधिकार संपन्न आम्नाय मठ बनाया था। ये चार आम्नाय मठ बराबर हैं और इन चार आम्नाय मठों के अधीशों को 'जगद्गुरु शङ्कराचार्य' के नाम से संबोधित किया जाता है।

2. श्रीसुरेश्वराचार्य

(701/2—773 ई०) दक्षिणाम्नाय यजुर्वेद मठ के लिये यजुर्वेदी (शुक्ल) श्री सुरेश्वराचार्य को आचार्य शङ्कर ने नियोजित किया था। आपही का दूसरा व्यवहार नाम श्री विश्वरूपाचार्य भी था। आपको वार्तिककार भी कहते हैं। आचार्य शङ्कर ने 701/2 ई० में आपको सन्यासदीक्षा देकर लगभग 712/13 ई० में व्याख्यान सिंहासन पीठ पर अभिषिक्त किया। आपका निर्याण शृंगगिरि में प्रमातीच वर्ष, माघ, शु- 12 (773 ई०) के दिन हुआ। आचार्य शङ्कर के साथ आप 12 वर्ष शृंगेरी में वास किये थे और आपका मठ निर्वाह शासन काल करीब 60/61 वर्ष का था। आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ–नैष्कर्म्यसिद्धि, बृहदारण्य व तैत्तिरीय उपनिषदों पर वार्तिक, मानसोल्लास, आदि थे।

3. श्रीनित्यबोधघनाचार्य

(757—848 ई०) आपके शिष्य श्री ज्ञानघनाचार्य अपने द्वारा रचित ग्रन्थ 'तत्त्वशुद्धि' में आपके गुरु श्रीनित्यबोधघनाचार्य का बन्दना करते हुए लिखते हैं 'व्याख्या गर्जितनिर्जिता जडधियः कण्ठीरवाशङ्कया। तर्कारण्यनिषण्णवादिकरिणोनिःश्रेयसाद्रौस्थितिः। विद्यावृष्टिसुपक्वशिष्ययतिसस्यैः क्षमा क्षोभते। शश्वद्बोधघनस्य यस्य गुरवे तस्मै नमः श्रेयसे॥" आपने विळम्बी वर्ष, आश्वि. शु. 12 (757 ई०) के दिन सन्यासाश्रम ग्रहण किया था और आपका पीठाभिषेक 773 ई० में हुआ। आपका निर्याण विभव वर्ष भाद्र शु. 13 (848 ई०) में हुआ। मठशासन काल 75 वर्ष का था। गुरुवंशकाव्य (1730 ई०) में आपके बारे में कहा है 'सनातनं स्वानुभवं प्रकाशयन्' एवं 'निनाय सद्धर्मपथं'।

4. श्री ज्ञानघनाचार्य

(846—910) अक्षय वर्ष, कार्तिक, शु. 12 (846 ई०) के दिन सन्यासाश्रम दिया गया था और 848 ई० में मठाधीश भये। आपका रचित ग्रंथ 'तत्त्वशुद्धि' है जिसे श्री अप्पय दीक्षित ने बडी प्रशंसा की है। शृंगेरी का जनार्दन मन्दिर आपसे प्रतिष्ठित मूर्ति है। आपका निर्याण प्रमोदूत वर्ष, आषा. कृ. 5(910 ई०) के दिन था। मठ शासन काल 62 वर्ष का था।

5. श्री ज्ञानोत्तम शिव आचार्य

(905—953 ई०) आपने क्रोधन वर्ष, वैशाक शु. 7 (905 ई०), को सन्यासाश्रम लिया था। आपका पीठाभिषेक 910 ई० में हुआ। आपसे रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'विद्या श्री' (ब्रह्मसूत्रभाष्य पर टीका) है। आप गौड देशवासी थे। आपके शिष्य श्री चित्सुख ने अपने द्वारा रचित चित्सुखी (तत्त्वप्रदीपिका) में कहा है—' गौडेश्वराचार्य परमहंसपरिव्राजकाचार्य ज्ञानोत्तम पूज्यपाद'। 'विद्या श्री' में उल्लेख है—' ज्ञानघनाचार्य शिष्य ज्ञानोत्तम भट्टारकेण विरचिता'। दसवीं शताब्दी प्रारम्भ से ही उत्तर देश के कुछ गौड ब्राह्मण दक्षिण में आ बसे थे और प्राचीन शासन पत्र एवं इतिहास इसका पुष्टि करता है। तातपर्यद्योतिनी (विज्ञानात्मन) में लिखा है—' ज्ञानोत्तम त्रिभुवन गुरवे नित्यमस्तुप्रणामः।' आपके शिष्यों में प्रसिद्ध शिष्य विज्ञानात्मन (विज्ञानाश्रम) (तातपर्यद्योतिनी एवं नारायणोपनिषद पर वृत्ति ग्रंथों के रचयिता) एवं चित्सुख (तत्त्वप्रदीपिका, भावद्योतिका, भावप्रकाशिका, आदि के रचयिता) थे। चित्सुख अपने गुरु श्री ज्ञानोत्तम के बारे में लिखते हैं—' ज्योतिर्दक्षिणामूर्ति व्यासशङ्कर शब्दितं ज्ञानोत्तमाख्यं तं वन्दे।' आपका निर्याण प्रमादीच वर्ष, फाल. शु. 7 (953 ई०) में हुआ था। आपका मठ शासन काल 43 वर्ष का था।

6. श्री ज्ञानगिरि

(949—1038 ई०) आपने सौम्य वर्ष, पौष शु. 11, के दिन (949 ई०) सन्यासाश्रम ग्रहण किया और 953 ई० में मठाधीश भये। आपका निर्याण बहुधान्य वर्ष, श्रावण. कृ. 10, (1038 ई०) के दिन हुआ। आपका मठ शासन काल 85 वर्ष का था।

7. श्री सिंहगिरि

(1036—1098 ई०) आपने धातु वर्ष, आश्‍वि. कृ. 3 (1036 ई०) के दिन दीक्षा ली और 1038 ई० में मठाधीश भये। आपका निर्याण बहुधान्य वर्ष, वैशा. कृ. 8 (1098 ई०) के दिन हुआ था। मठ शासन काल 60 वर्ष का था। आपही के नाम से शृङ्गेरी में एक अग्रहार का नाम 'सिंहगिरि' दिया गया था।

8. श्री ईश्वरतीर्थ

(1097—1146) आपने ईश्वर वर्ष, चैत्र. कृ. 5 (1097 ई०) के दिन सन्यासाश्रम लेकर 1098 ई० में मठाधीश भये। आपका निर्याण अक्षय वर्ष, चैत्र, शु. 1. (1146 ई०) के दिन हुआ था। मठशासन काल 48 वर्ष का था।

9. श्री नरसिंह तीर्थ

(1146—1228 ई०) क्रोधन वर्ष, माघ, शु. 11 (1146 ई०) के दिन आश्रम लेकर, अक्षय वर्ष (1146 ई०) में मठाधीश भये। आपका निर्याण सर्वधारी वर्ष फाल. शु. 6, (1228 ई०) में हुआ था। मठ शासन काल 82 वर्ष का था। इतिहास पुस्तकों में उल्लेख है कि तिरुवनन्दपुरम में शृङ्गेरी आचार्य एवं श्री मध्वाचार्य (1198—1275 ई०) के बीच में विवाद हुआ था। संभवतः शृंगेरी आचार्य श्री नृसिंहतीर्थ या आपके शिष्य श्री विद्यातीर्थ इस विवाद में भाग लिये होंगे।

10. श्री विद्याशंकर तीर्थ

सर्वधारी, कार्तिक, शु. 11 (1228 ई०) सन्यासग्रहण, पश्चात् पीठाभिषेक, और निर्याण श्री मुख वर्ष, का. शु. 7 (1333 ई०)। मठशासन काल 105 वर्ष। विजयनगर महाराजा II ने शासन में कहा है 'विद्यातीर्थं यतीन्द्रोयमतिशेते दिवाकरम्। तमो हरति यत्पुंसामन्तर्बहिरहर्निशम्।' आप सिंहगिरि में तपस्या करते थे। लम्बिका योग में प्रवीण थे। एकशिलानगरी से आये हुए एक बालक को 1328 ई० में सन्यासाश्रम देकर भारती कृष्णतीर्थ नाम रक्खा। श्री भारती कृष्णतीर्थ के पूर्वाश्रम बडे भाई ने भी 1331 ई० में सन्यासाश्रम लेकर श्री विद्यारण्य नाम धारण किया था। श्री भारतीतीर्थ शृंगेरी में रह गये और श्री विद्यारण्य हम्पी चले गये। श्री विद्यातीर्थ लम्बिका योग निष्ठा में 12 वर्ष के लिये बैठ गये पर इस बीच काल में एक शिष्य के अडचन पर प्रतीत हुआ कि उस जगह एक लिङ्ग ही रह गया है। सिंहगिरि में चतुर्मूर्ति विद्येश्वर आपका स्मारक मूर्ति है। श्री भारती कृष्ण तीर्थ ने विजयनगर महाराजा की सहायता से विद्याशंकर मन्दिर का निर्माण कराया था। यह विश्वास किया जाता है कि आज भी आप ही के तपस्या प्रभाव से ही मठ का निर्वाह चल रहा है। शृंगेरी मठ की व्यवहारिक मुद्रा 'श्री विद्याशङ्कर' के नाम से ही है।

11. श्री भारती कृष्ण तीर्थ

(1328—1380 ई०) विभव, चैत्र, शु० 7 (1328 ई०) के दिन सन्यास ग्रहण; 1333 ई० में पीठाभिषिक्त; रौद्र वर्ष, भाद्र शु. 12 (1380 ई०) के दिन विदेह मुक्ति। मठ निर्वाह काल 47 वर्ष।

12. श्री विद्यारण्य

(1331—1386 ई०) प्रजोत्पत्ति वर्ष, कार्तिक, शु० 7 (1331 ई०) के दिन सन्यास ग्रहण; 1380 ई० में पीठाभिषिक्त; अक्षय, चैत्र, शु. 13 (1386 ई०) के दिन विदेह मुक्ति। मठ निर्वाह काल 6 वर्ष।

एक शिलानगरी (वारङ्गल) से दो व्यक्ति जो भाई थे शृंगेरी पहुंच कर श्री विद्यातीर्थ जी से दीक्षा लेकर शृंगेरी मठाधीश भये। छोटे भाई 1328 ई० में आश्रमलेने से आप ही अपने पूर्वाश्रम के बडे भाई जो 1331 ई० में आश्रम लिया था उनसे भी बडे थे। श्री भारती कृष्ण तीर्थ प्रथम मठाधीश भये। श्री विद्यारण्य काशी यात्रा समाप्त कर हम्पी विरुपाक्षी मन्दिर के समीप मतङ्ग पर्वत पर तपस्या में बैठ गये। इसी समय प्रतापरुद्र के मंत्री दो भाई श्री माधव व श्री सायण दोनों आपसे भेंट कर आशीष मांगी। आपने अपने से रचित वेद भाष्य एवं धातुवृत्ति ग्रंथ को देकर और आज्ञादी कि इस ग्रंथ को संपूर्ण कर माधवीय व सायनीय नाम से प्रकाशित कर दें।

इसी समय दो भाई श्री बुक्कराय व श्री हरिहर राय दोनो श्री विद्यारण्य से भेंट कर हिन्दूराज्य स्थापना करने की अपनी योजना आपको सुनाकर आपसे आशीष मांगी। श्री विद्यारण्य के अनुग्रह व आशीर्वाद से ये दोनो भाई विजय नगर राज्य नीवं डाली। आपका राज्य सीमा पूर्व समुद्रतट से पश्चिम समुद्रतटतक फैल गयी थी। श्री विद्यारण्य के

नाम से विद्यानगर का निर्माण किया था और इस नगर की नीवं 18–4–1336 ई० के दिन डाली गयी थी। श्री विद्यारण्य ने यहीं श्रीहरिहर का राज्याभिषेक करवाया था। शृंगेरी मठाधीशों को 'कर्नाट सिंहासन स्थापकाचार्य' पदवी से भी भूषित किया गया। श्री विद्यारण्य काशी यात्रा में चल पड़े। 1346 ई० में श्री हरिहर अपने कुटुम्ब व परिवार के साथ शृंगेरी पहुंचकर श्री भारती कृष्ण तीर्थ को भू दान एवं अन्य राजभेंट अर्पण किया था। श्री विद्याशङ्कर मन्दिर के कुम्भाभिषेक समय में बुक्कराय की आज्ञा पर श्री माधव मंत्री ने भेंट अर्पण किया था। श्रीबुक्क ने श्री विद्यारण्य को जो काशी में थे उनको आह्वान प्रार्थना पत्र श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी के श्री मुख सहित भेज कर प्रार्थना की कि विद्याशङ्कर मन्दिर बनकर तैय्यार हो चुका है और आप शृङ्गेरी शीघ्र लौट आयें। श्री विद्यारण्य काशी से लौट आये और श्री बुक्क के साथ शृंगेरी पहुंचे। महाराजा बुक्का ने इसी समय दोनों गुरुओं को अग्रहार का दान दिया था। 1380 ई० में श्री भारती कृष्ण तीर्थ का विदेह मुक्ति हुआ और श्री विद्यारण्य मठाधीश भये। इसी समय श्री विद्यारण्य को महाराजा श्री हरिहर II ने राजचिन्हों की भेंट चढायी जो सब आज भी शृंगेरी में देखा जा सकता है। श्री विद्यारण्य ने महाराजा से प्राप्त श्वेतछत्री, शङ्ख, तोरण, नगाडा, घंटा, वाद्य, पालकी, मुकुट, रसाल, कलश आदि को अपने गुरु श्री विद्यातीर्थ को भेंट में चढा दिया था। श्री विद्यारण्य का विदेह मुक्ति 1386 ई० में हुआ था। पश्चात् हरिहर शृंगेरी पहुंचकर विद्यारण्यपुर नाम का अग्रहार आपके स्मृति में स्थापना की थी और दोनों गुरुओं (श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ व श्रीविद्यारण्य) का समाधि व अधिष्ठान के लिये वृत्ति दिया था। भारद्वाज गोत्र मायण के पुत्र श्री माधव, श्री सायण व भोगनाथ एवं सायण का पुत्र माधव (मायण) तथा अंगीरस गोत्र माधव मंत्री सब श्री विद्यारण्य के शिष्य थे। सायण, माधव व भोगनाथ द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ हैं। माधव मंत्री द्वारा रचित 'तात्पर्यदीपिका' है। सायण के पुत्र माधव द्वारा रचित ग्रन्थ 'सर्वदर्शन संग्रह' है।

श्रीभारतीकृष्ण तीर्थ एवं श्रीविद्यारण्य द्वारा रचित ग्रन्थ अनेक हैं जिसका विवरण पाठकगण पूर्व में पढ चुके होंगे। श्री शङ्करानन्द ने एक श्री आनन्दात्म सरस्वती से दीक्षा लेकर श्री विद्यातीर्थ के पास शिक्षा प्राप्त की थी। श्री विद्यातीर्थ आपके विद्यागुरु थे। श्री विद्यारण्य ने भी कुछ समय श्री शङ्करानन्द के पास शिक्षा प्राप्त की थी और आप श्री विद्यारण्य के विद्यागुरु थे। शैवाचार्य श्रीकण्ठ के गुरु श्री परमात्मतीर्थ थे और आपको विद्यातीर्थ होने का प्रचार भ्रामक है। इसी प्रकार श्री क्रियाशक्ति को श्री विद्यारण्य होने का भ्रामक प्रचार होता है। श्री क्रियाशक्ति काश्मीर देश के शैव आगम के अनुयायी थे और आप पर श्री विद्यारण्य का प्रभाव अधिक था। आप श्री विद्यारण्य से शिक्षा प्राप्त की थी। आपने सन्यासाश्रम लेकर अपने परमगुरु श्री विद्याशङ्कर का नाम धारण किया था। आपका निर्याण 1388 ई० में हुआ। 1389 ई. में इम्मडि बुक्कराय (हरिहर I के पुत्र) ने 'विद्याशङ्करविग्रहाय गुरवे' को दान दिया था।

श्री भारती तीर्थ ने 120 विद्वानों को वृत्ति व भू दान दिया था। 1386 ई. का विद्यारण्यपुर शासन में 500 वृत्तियां दी गयी थी जिसमें कुछ विद्वान भी थे। हरिहर II ने बेलुगुल गांव विद्यारण्य के शिष्य को दिया था। श्री विद्यारण्य व भारतीकृष्णतीर्थ द्वारा स्थापित अनेक शाखा मठ थे। इन शाखा मठों को भी राजाओं से दान प्राप्त हुए हैं। श्री विद्यारण्य ने प्राचीन काष्ठ शारदा मूर्ति के जगह स्वर्ण शारदा मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। मन्दिर का पुनः निर्माण हुआ था। हरिहर I का प्रथम शासन शृंगेरी मठ को 1346 ई. का है। दूसरी शासन 1356 ई० का है। बुक्का ने तृतीय दान दिया था। 1380 ई. में श्री हरिहर II ने पूर्वदिये शासनों को पुष्टिकर अपने ओर से और दान भी दिया था। 1387 ई. का शासन हरिहर द्वारा दिया गया था। 1389/90 में 30 वृत्तियों का शासन भी दिया गया है। कुल दान 3003 पगोडा का था। 1375 ई. का दो शासन श्री बुक्क I का था और 1384 ई. का एक शासन श्री हरिहर II का था। ये सब दान शृंगेरी के बाहर था।

13. श्री चन्द्रशेखर भारती I

(1368—1389 ई०)—कीलक वर्ष, आषाढ़ शु. 5, (1368 ई०) के दिन सन्यासाश्रम धारण; 1386 ई० में पीठाभिषेक; शुक्ल वर्ष, वैशा. कृ० 10 (1389 ई०) के दिन निर्याण। मठ शासन काल 3 वर्ष।

14. श्री नरसिंह भारती I

(1387—1408 ई०)—प्रभव वर्ष, माघ शु० 2 (1387 ई०) में दीक्षा; 1389 ई० में पीठाभिषेक; सर्वधारी वर्ष, पौष शु० 8 (1408 ई०) के दिन निर्याण। मठ शासन काल 19 वर्ष का था। आप गोकर्ण का विजय यात्रा की थी। हेलाब्डि के नरसिंह मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी थी। महाराजा विरूपाक्ष को 1404 ई० में शृंगेरि में आशीष दिया। 1403 ई० का एक शासन 'प. प. नृसिंह भारती उडयार' जो 'शृंगेरी धर्म पीठ पर स्थित हैं' ऐसा उल्लेख करता है।

15. श्री पुरुषोत्तम भारती I

(1406—1448 ई०)—व्यय वर्ष, वैशा शु. 15 (1406 ई०) के दिन दीक्षा; 1408 ई० में पीठाभिषेक; विभव वर्ष, श्रावण शु. 11 (1448 ई०) के दिन निर्याण। आपका मठनिर्वाह काल 40 वर्ष का था।

16. श्री शङ्करानन्द भारती

(1428—1454 ई०)—कीलक वर्ष, माघ शु. 11 (1428 ई०) में सन्यास ग्रहण; 1448 ई० में पीठाभिषेक; भव वर्ष, माघ शु० 8 (1454 ई०) के दिन निर्याण। आपका मठनिर्वाह काल 6 वर्ष का था।

1428 ई० से श्री शङ्करानन्द भारती (श्री पुरुषोत्तम भारती I के प्रथम शिष्य) बीस वर्ष के लिये अपने गुरु के मठनिर्वाह में सहयोग दिये। 1406 ई० में महाराजा बुक्का II ने श्री चन्द्रशेखर भारती I एवं नृसिंह भारती I के समाधियों पर मन्दिर निर्माण कराया था। देवराय ने शृंगेरी आचार्य के शिष्य श्री पुरुषोत्तम अरण्य को एक गांव का दान दिया था। महाराजा देवराय द्वारा प्राप्त दान से शृंगेरी आचार्य के शिष्य श्री माधव भारती ने गोकर्ण में मठ की स्थापना की थी। महाप्रधान रामचन्द्रदेव उडयार ने महाराजा देवराय की आज्ञा पर महाबलेश्वर एवं अन्य मन्दिरों की पूजा के लिये दान दिया था जिसका संचालन शृंगेरी के माधव भारती करते थे।

श्री शङ्करानन्द भारती विजयनगर पहुंचे और आपको राजमर्य्यादा साथ स्वागत किया गया था। आपको महाराजा ने भूदान भी दिया था। कनिकट्टे में शङ्करनाथेश्वर मन्दिर का सन्ध्यामण्डप के एक खम्मे में आचार्य का नाम खुदा है और कहा जाता है कि श्री शङ्करानन्द भारती यहीं तपस्या करते थे।

17. श्री चन्द्रशेखर भारती II

(1449-1464 ई०) शुक्ल वर्ष, आषाढ शु. 6, 1449 ई०, के दिन सन्यासग्रहण; 1454 ई० में पीठाभिषेक; धारण वर्ष, मार्ग. कृ. 5 (1464 ई०) के दिन विदेह मुक्ति। आपका मठ निर्वाह काल 10 वर्ष का था।

18. श्री नृसिंह भारती II

(1464—1479 ई०) धारण वर्ष, मार्ग० शु० 11 (1464 ई०) के दिन सन्यासदीक्षा पश्चात् पीठाभिषेक; विकारी वर्ष, आश्व. कृ. 5 (1479 ई०) के दिन निर्याण। आपका मठनिर्वाह काल 15 वर्ष का था। पम्पापुर शासन से मालूम पडता है कि शृंगेरी आचार्य श्री नरसिंह भारती II के शिष्य श्री चिक्क दीक्षित को दान दिया गया है कि आप शृंगेरी आचार्य के नाम पर कावेरी नदी तट पर एक अन्नक्षेत्र चलायें।

19. श्री पुरुषोत्तम भारती II

(1472—1517 ई.) नन्दन वर्ष, फाल्गुण शु. 13, 1472 ई. के दिन सन्यासदीक्षा, 1479 ई. में पीठाभिषेक; ईश्वर वर्ष, ज्येष्ठ कृ. 13 (1517 ई.) के दिन निर्याण। आपका मठ निर्वाह काल 38 वर्ष का था। महाराजा कृष्णदेव राय ने (1515—16 ई. में कलिङ्ग पर चढाई करने के पूर्व) शृंगेरी आचार्य से आशीष की प्रार्थना की थी। आचार्य ने अपने एक शिष्य श्री विद्यारण्य को भेज कर आशीर्वाद का सन्देश भेजवाया था। महाराजा ने श्री विद्यारण्य कों सादर स्वागत कर आपको हम्पी में वास करने का प्रबन्ध कर दिया था। इसी समय महाराजा ने शृंगेरी मठ को हुय्युरु ग्राम का दान दिया था। अन्यों से स्वहस्थ किया गया शृंगेरी ग्रामों को फिर शृंगेरी को लौटा देने का प्रबन्ध भी किया था। महाराजा कृष्णदेव राय के अधीन में कलिङ्ग आ गया। इसी समय श्री विद्यारण्य ने हम्पी मठ का प्रबन्ध भी किया।

20. श्री रामचन्द्र भारती

(1508—1560 ई.) विभव वर्ष, वैशाख कृ. 10 (1508 ई.) के दिन सन्यास दीक्षा; 1517 ई. में पीठाभिषेक; रौद्री वर्ष, पौश कृ. 8 (1560 ई.) के दिन निर्याण। आपका मठ निर्वाह काल 43 वर्ष का था। महाराजा सदाशिव राय के सेनानि होण्णप्प नायक ने 1545 ई. में एक गांव बस्तिहल्ली का दान किया था।

21. श्री नृसिंह भारती III

(1557—1573 ई.) पिङ्गळ वर्ष, ज्येष्ठ कृ. 1 (1557 ई.) में सन्यास ग्रहण; 1560 ई. में पीठाभिषेक; श्री मुख वर्ष, आषाढ कृ. 5 (1573 ई.) के दिन निर्याण। मठशासन काल 13 वर्ष था।

22. श्री नृसिंह भारती IV

(1563—1576 ई.) रुदिरोत्कारी वर्ष, श्रावन कृ. 12 (1563 ई.) के दिन सन्यास ग्रहण; 1573 ई. में पीठाभिषेक; धातु वर्ष, चैत्र शु. 11 (1576ई.) के दिन निर्याण। मठशासन काल 3 वर्ष।

23. श्री नृसिंह भारती V

(1576—1599 ई.) धातु वर्ष, चैत्र शु. 11 (1576 ई.) में सन्यास दीक्षा व पीठाभिषेक; विकारी वर्ष, माघ कृ. 12 (1599 ई.) के दिन निर्याण। मठ शासन काल 23 वर्ष। आपको विद्यानरसिंह भारती के नाम से भी संबोधित किया जाता था। श्री रङ्गराय I जो पेनुकोन्डा से राज्य करते थे आपने 1573 ई. में एक दान शासन दिया है जिसमें स्पष्ठ उल्लेख है 'शृंगेरी धर्मपीठ के आचार्य' 'नरसिंह भारती' हैं।

24. श्री अभिनव नृसिंह भारती I

(1599—1622 ई०)—विकारी वर्ष, आशु. कृ. 7 (1599 ई०) के दिन सन्यासाश्रम ग्रहण और पश्चात् पीठाभिषेक; दुन्दुभि वर्ष, फाल्गुण कृ० 7 (1625 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 23 वर्ष। आप मन्त्रशास्त्र में प्रवीण थे। आपने 'शिवगीता' पर टीका की रचना की थी। 1602 ई० में आपने रामेश्वर लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके अपने गुरु के यादगारी में एक अग्रहार नरसिंहपुर का स्थापना की थी। आपने मलहानिकरेश्वर मन्दिर में एक खम्मे पर हल्दी से श्री गणेश की मूर्ति खींच कर उस मूर्ति की पूजा की थी जो मूर्ति अब खम्मे से आगे बढा हुआ मूर्ति मालूम होता है। मूर्ति के पीछे भाग पोल है और नीचे व ऊपर का भाग ठोस है। कुछ लोग इस घटना को श्री सच्चिदानन्द भारती (1705—41 ई०) के नाम से प्रचार करते हैं पर यह ठीक कथन नहीं है। 1685 ई० में शिवप्पनायक की पुत्री सिद्धमाणजी का दिया हुआ एक दान शासन पत्र है जो इस गणेश का उल्लेख करता है। अतएव यह घटना 1685 ई० के पूर्व ही घटी होगी।

शृंगेरी आचार्य ने शिवगङ्गा में एक शाखामठ की स्थापना करके अपने शिष्य श्रीशङ्करभारती को पीठाभिषिक्त किया। यह विश्वास किया जाता है कि शृंगेरी आचार्य ने आवनी में भी शाखा मठ की स्थापना की थी। श्री वेंकटप्प नायक I ने शृंगेरी आचार्य को इक्केरी दरबार में आह्वान किया था। नायक ने शृंगेरी मठ की मरम्मत करायी थी, एक अग्रहार का स्थापना की थी और मुक्करनाड्डु में भूदान किया था। 1622 ई० में आचार्य ने अपने शिष्य सहित पुनः इक्केरी पधारे थे। दरबार विद्वानों ने शिष्य स्वामी श्री सच्चिदानन्द भारती का तर्क, मीमांसा, वेदान्त शास्त्र का प्रकान्ड पान्डित्य देखकर प्रशंसा की थी।

25. श्री सच्चिदानन्द भारती I

(1622 – 1663 ई.) दुन्दुभी वर्ष, भाद्र कृ. 3 (1622 ई.) के दिन सन्यासाश्रम-ग्रहण किया पश्चात् पीठाभिषेक भी हुआ। शोभकृत वर्ष आषा. कृ. 6 (1663 ई.) के दिन आपका निर्याण हुआ। मठ निर्वाह काल 41 वर्ष का था। आपका पूर्वाश्रम जीवन कथा 'रामचन्द्रमहोदय' नामक पुस्तक में उपलब्ध होता है। वेंकटप्प नायक की प्रार्थना पर आप इक्केरी पहुंचे और वहां से नायक के साथ कोल्लूर पहुंचकर माता श्री मूकाम्बिका की पूजासेवन किया था। इक्केरी दरबार में नायक राजा के सामने एवं आपके सभापतित्व में श्री लक्ष्मीधर के पुत्र काशीवासी श्री रङ्गोजी ने मध्वसंप्रदाय का पन्डित श्री विद्याधीश को विवाद में पराजित किया था। आचार्य ने नायक राजा को 'वैदिक–अद्वैत–सिद्धान्त–प्रतिष्ठापक' पदवी से भूषित किया था। भैरव नाम का कलश देश का राजा ने चढाई की थी और शृंगेरी का कुछ जमीन भी स्वहस्थ कर लिया था। पश्चात् भैरव ने आचार्य को अपने दरबार में बुला भेजा पर आचार्य महाराज गये नहीं। भैरव अपने सेना साथ शृंगेरी पहुंच कर मठ की सम्पत्ति का लूट मार किया और नायक की सेना को भी हराया था। दूसरी बार भैरव ने चढाई की पर नायक के सेना ने रोक दिया था। तीसरे बार भैरव ने शृंगेरी पर चढ़ाई की पर अब भी उसे लौटना पडा चूंकि देव व तपस्या बल द्वारा अमानुषीक लीला ने भैरव के सेना को हराया था। . आपने इसी समय रामचन्द्रोदय, गुरु शतक, मीनाक्षी शतक, कोविदाष्टक, आदि की रचना की थी।

वीरभद्र नायक 1630 ई. में शृंगेरी पहुंचे और आचार्य को भूदान भी दिया था। इसी समय तीर्थहल्ली के शाखा मठाधीश ने शृंगेरी मठ के राजचिन्हों को धारण कर भ्रमण करते थे और वीरभद्र नायक ने इस अनधिकारी मठाधीश के क्रिया कलापों को रोका था। शृंगेरी मठ को पत्र लिखकर कहा कि शृंगेरी मठ को अधिकार है कि इन सब शाखा मठाधीशों पर संचालन करें और वे शृंगेरी मठ की आज्ञा पालन करें। इसी प्रकार कुडली शाखा मठाधीश ने शृंगेरी मठ के दो ग्रामों को स्वहस्थ कर लिया था और वीरभद्र नायक ने बीजापुर अफ्सरों को लिखकर कहा कि शृंगेरी मठ संपत्ति पर कोई अन्य हाथ न लगांय। शिवप्प नायक (1645—60 ई.) ने अन्यों से स्वहस्थ की गयी जमीन को पुन: शृंगेरी को लौटा दिया। विद्यारण्यपुर में सदाशिव मन्दिर का निर्माण कराया था। होलेहुन्नुर जमीन का दान भी दिया था। सङ्गम मठ नरसिंह योगी गुरु के प्रति अपचार करने के कारण उनकी भूमि छीन कर शृंगेरी मठ को दिया था। भद्रप्प नायक II (1662—64) ने दो गांव (करेहल्ली व गवतुर) जो भूल से राज्य में ले लिया गया था उसे लौटा दिया था। बीजापुर सेनापति रणदुल्ला खान ने 1640 ई. में मैसूर तक चढाई कर जीत लिया था। आचार्य के श्री मुख प्राप्त कर खान ने एक सनद मठ को दिया और फरमान निकाला कि शिमोगा सीमा में मठ का जमीन सब मठ को लौटा दिया जाय और शृंगेरी आचार्य के हुक्म का परिपालन किया जाय।

आचार्य ने मलहानिकरेश्वर मन्दिर में माता भवानी की प्रतिष्ठा की थी और रथोत्सव का प्रबन्ध भी किया था। श्री रङ्गराय III ने 1660 ई० में मुल्वयी मठ के श्री कृष्णानन्द सरस्वती को सुरपुर नामक गांव का दान दिया था। इस शासन में उल्लेख हैं श्री कृष्णानन्द सरस्वती जो सच्चिदानन्द महायोगीन्द्र के पाद कमलों का आराधक हैं। यह सिरपुर गांव पश्चात् शृंगेरी मठ को मिल गया।

26. श्री नृसिंह भारती VI

(1663—1705 ई०) शोभकृत वर्ष, ज्येष्ठ शु. 10 (1663 ई०) के दिन आश्रम ग्रहण करके मठाधीश भये। पार्थिव वर्ष, फाल्गुण कृ. 6 (1705 ई०) के दिन आपका निर्याण हुआ। मठनिर्वाह काल 42 वर्ष का था। सोमशेखर नायक (1664—75) ने इरेहल्ली गांव मठ को दान दिया था। मलहानिकरेश्वर मन्दिर का मरम्मत के लिये 100 पगोडा दिया था। आचार्य वेलूर पहुंचे और रानी चन्नमाजी ने किग्गा के श्री श्रृंगेश्वर मन्दिर के लिये एक उत्सव मूर्ति दी थी। उक्त रानी के पश्चात् बसवप्पा राज्य में आये और आपने 1697 ई० में एक हुक्म निकाला कि अपने राज्य सीमा में श्रृंगेरी मठ से किये जानेवाले आचार विचार सम्बन्धी जांच में एवं वराकुर सीमा में वसूल कार्य में राज्य कर्मचारी सहयोग दें। सोमशेखर II (1714—39 ई०) की माता ने मन्दिरों के लिये दिव्या का दान दी थी और कर वसूल करके मठ को पहुंचाया था। येलहंका के जागीरदार मुम्मडि दोड्ड वीरप्प गौड ने एक गांव दान में दिया था। 1686 ई. के अकाल में हजारों को अन्न दान मठ से दिया गया था। आचार्य ने अपने गुरु की यादगारी में एक अग्रहार सच्चिदानन्दपुर नाम का स्थापना करके एक लिङ्ग सच्चिदानन्देश्वर का प्रतिष्ठा किया था। आचार्य ने भ्रमण में कोल्लुर व गोकर्ण गये थे।

27. श्री सच्चिदानन्द भारती II

(1705—1741 ई०) पार्थिव वर्ष, फाल्गुण शु. 15 (1705 ई.) के दिन सन्यासग्रहण किया था और पीठाभिषेक भी हुआ। दुर्मति वर्ष, ज्येष्ठ शु. 10 (1741 ई.) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 36 वर्ष का था। आचार्य ने वसवप्पा के प्रार्थना पर उनके राज्य में पधारे थे। किग्गा व सुब्रह्मण्यक्षेत्र की यात्रा भी की। नायक के प्रार्थना पर वेलपुर भी पहुंचे। आपने अपने विजययात्रा में अनेक क्षेत्र व नगर भी पधारे। आपका विजय यात्रा विवरण गुरुवंशकाव्य में दिया गया है। सोमशेखर II ने मठ के कर्जों को देकर मठ को सहायता की। बसवप्पा II ने श्रृंगेरी आकर आचार्य को दर्शन किया था। आपके मंत्री एक वीर शैव था और इसने श्रृंगेरी में दो वीर शैव मठ की स्थापना कराकर श्रृंगेरी मठ को कष्ट पहुंचाया था। मध्व संप्रदाय के मठाधीशों ने आपको उडिपि में स्वागत किया था। पेशवा बाजी राव और अन्य जागीरदारों ने वसवप्पा से प्रार्थना की कि दो वीरशैव मठ को श्रृंगेरी से हठाया जाय। बसवप्पा ने मठों को वहां से उठा देने की आज्ञा दी और आचार्य श्रृंगेरी लौटे। हनुमप्पा नायक ने 1720 ई. में दो गावों को जो अन्यों ने स्वहस्थ कर लिया था उसे लौटा दिया।

मैसूर महाराजा श्री कृष्णराज वडयार II ने श्रीरङ्गपट्टनन् से हाथी, वस्त्र, अन्य सामग्री का भेंट चढाया था। शिवाजी II के पुत्र राजाराम ने मूल्य वस्तुओं का दान दिया था। कोल्हापुर राज वंश का शंभु छत्रपति ने 1738—39 में मठ को दान दिया था। बालाजी राव बल्लाल प्रधान ने 1739/40 ई० 'अग्रपूजा' का हुक्म जारी की। आचार्य से रचित अनेक स्तोत्रों में मूकाम्बिका स्तोत्र एवं शारदा स्तोत्र पठनीय व उत्तम है। रामनाथपुरम के सेतुपति राजा ने भेंट चढायी थी। आचार्य ने रामेश्वर में विद्याशङ्कर लिङ्ग प्रतिष्ठा की थी।

श्रृंगेरी आचार्य के प्रभाव से नायकों ने जो शैवमत अनुयायी थे वे भी अद्वैत को स्वीकार किये। श्रृंगेरी आचार्यों ने जो धन संग्रह किया सो सब यति, साधक, विद्वान, मन्दिर, अन्नक्षेत्र, विद्याशिक्षा आदि के लिये खर्च किया था।

28. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती I

(1741—1767 ई०) दुर्मति वर्ष, ज्येष्ठ शु० 3 (1741 ई०) के दिन सन्यास ग्रहण एवं पीठाभिषेक हुआ। सर्वजित वर्ष, मार्ग शु० 6 (1767 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 26 वर्ष। बेदनूर की रानी रानी वीरम्मा जी आचार्य को अपने यहां सादर स्वागत कर एक स्फटिक लिङ्ग एवं कृष्णमूर्ति तथा भूदान दी थी।

मैसूर राजा कृष्ण राज वडयार II (1734—66) ने बेलवडि ग्राम का दान दिया। आचार्य की यात्रा में सुविधाओं का प्रवन्ध किया। राज्य कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे मठ के कार्य में सहयोग दें। बेलूर के वेंकटाद्रि नायक ने भेंट चढ़ाई थी। कुर्ग का राजा वीरप्प उडयार ने एक गांव दान में दिया था जिसके आय से शृंगेरी में विजयदशमी के दिन खर्च किया जाय। पेशवा माधव राव वल्लाल प्रधान ने 'अग्रपूजा' का प्रवन्ध किया था। रघुनाथ राव की प्रार्थना पर आचार्य 1760-61 में पूना नगर पधारे। मैसूर का हैदर अली ने 1 हाथी, 5 घोड़ा, 1 पालकी, 5 ऊंट, स्वर्ण व चांदी, वस्त्र, शाल, 10,500 रूपया, आदि आचार्य को भेज कर पूना की यात्रा में खर्च करने की प्रार्थना की थी। आचार्य पूना से नासिक पहुंचे और आपका विदेह मुक्ति यहीं हुई।

29. श्री नृसिंह भारती VII

(1767—1770 ई०)—सर्वजित वर्ष, मार्ग० शु० 6 (1767) के दिन सन्यासग्रहण व पीठाभिषेक। विकृति वर्ष, भाद्र. शु० 12 (1770 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 3 वर्ष। यह समय था जब मैसूर युद्ध क्षेत्र वन गया था और 1770 ई० में शान्ति स्थापना हुई। आचार्य शृंगेरी आ न सके। हैदर ने पत्र लिखकर आचार्य को विश्वास दिलाया कि शृंगेरी मठ की हानी न होगी एवं नियमित पूजासेवा कार्य बराबर हो रहा है और मठ संपत्ति का रक्षा की जा रही है। आचार्य की विदेह मुक्ति नासिक में ही हुई। करीब 10 वर्ष के लिये शृंगेरी आचार्यों ने नासिक मठ को अपना धर्मकेन्द्र बनाया था और माधव राव ने 1761 ई० से 1772 ई० में अपना वार्षिक भेंट 200 रूपये से 1500 रूपये तक बढा दिया था।

30. श्री सच्चिदानन्द भारती III

(1770—1814 ई.) विकृति वर्ष, भाद्र शु. 12 (1770 ई.) के दिन सन्यासग्रहण व पीठाभिषेक हुआ। भव वर्ष, अतिभाद्र, शु. 14 (1814 ई.) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 44 वर्ष। हैदर अली ने 1780 ई० में हुक्म जारी की कि अपने राज्य कर्मचारी सब मठ के कार्य में सहयोग दें। टिपू के समय महराठा, निजाम व अंग्रेज इनके विरोधी थे। तृतीय मैसूर युद्ध (1790—92) के समय परशुराम भाऊ बेदनूर तक पहुंच गया था। इनके एक सेनानि पटवर्धन ने शृंगेरी मठ को लूटा एवं शारदा मन्दिर आभरणों को लूटा। कहा जाता है कि मठ को 60 लाख रुपये का नष्ट हुआ। ब्राह्मण विद्वान व पुजारियों को मार डाला गया था। टीपू ने पत्र लिखकर कहा कि जो व्यक्ति गुरु का अपचार करते हैं वे स्वयं नाश होकर अपने कुटुम्ब को भी नाश कर देंगे। मन्दिर मरम्मत एवं शारदा मूर्ति प्रोक्षग कार्य के लिये धन भेजा था। पालकी, हाथी, वस्त्र आदि भी भेजा था। टीपू ने सतचंडी, चहस्रचन्डी जप एवं होम भी आचार्य द्वारा कराया था। आचार्य पूना के लिये चल पडे और रास्ते में श्रीरङ्गपट्टनम् से होते हुए आगे बढे। पूना से आचार्य की खबर न मिलने पर टीपू ने धन व कर्मचारियों को भेज कर आचार्य को अपने राज्य लौट आने की प्रार्थना की थी। आचार्य शृंगेरी लौट आये और पुनः 1793 ई० में तिरुपती यात्रा में चल पडे। निजाम अली खान (हैदराबाद) ने 1791 ई० में सनद निकाला जिसमें निजाम से पूर्व काल में दिये हुए दान एवं अधिकारों की पुष्टि की। 1782/83 ई. में हिन्दू राव घोरपडे ने दान दिया था। 1786/7 ई. में दौलत राव हिन्दू राव घोरपडे ने तिम्मनहट्टि गांव का दान दिया था। 1793—4 ई. में महदजी सिन्डे ने पिंपलघाट ग्राम का दान दिया था। 1800 ई. में पेशवा बाजी राव II ने शृंगेरी मठ को 'अग्रपूजा' का प्रबन्ध किया था। अपने को मठ का शिष्य होने की घोषणा भी की थी। ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने 1805 ई. में श्री शृंगेरी आचार्य को पन्डित प्रधान पेशवा बहादुर का गुरु स्वीकार किया है। बसवप्प नायक ने 1785—6 ई. में ग्रामों का दान दिया है। शृंगेरी का सुब्रह्मणियेश्वर मन्दिर इसी समय निर्माण हुआ था। मैसूर राजा श्री चामराज वडयार ने हाथी व आभरण का भेंट चढाया था।

रीजन्ट पूर्णय्या ने आचार्य के बारे में भिन्न अभिप्राय रक्खा था और आचार्य के साथ कुछ विद्वानों को शास्त्र विवाद में भाग लेने का प्रबन्ध भी किया था। इन दोनों के बीच पर्दा डालकर विवाद प्रारम्भ हुआ। विवाद बीच में श्री पूर्णय्या ने स्त्री की वाणी सुनकर पर्दा हटाकर देखा तो मालूम हुआ कि आचार्य ही स्वयं शारदा रूप में थे। क्षमा मांगते हुए अपनी गल्ती को स्वीकार किया था। अब भी 38 पत्र उपलब्ध होते हैं जो पूर्णय्या ने आचार्य को लिखा था। 1803 ई० के अकाल में पूर्णय्या ने आचार्य से प्रार्थना की और आचार्य ने मलहानिकरेश्वर की पूजा प्रबन्ध किया था। अतिवृष्टि से अकाल दूर हुआ। 1805 ई. में आचार्य विजय यात्रा में चल पड़े और आप मदरास शहर तक पहुंचे। मदरास गवर्नर ने आपसे भेंट की थी। काञ्ची, कालहस्ती आदि स्थलों से होते हुये श्रृङ्गेरी पहुंचे। 1807 ई० में रीजन्ट ने हुक्म निकाला कि कोई अन्य स्वामी अड्डपालिका में जा नहीं सकता। यह अधिकार केवल श्रृङ्गेरी आचार्य को ही है। 1810 ई० में हुक्म जारी की कि मैसूर राज्य के श्रृङ्गेरी शाखा व चिल्लर मठ सब श्रृङ्गेरी का आज्ञा पालन करें। महाराजा कृष्णराज वडयार IIIने आचार्य को सादर स्वागत किया। आपके चातुर्मास्य खर्च के लिये एक सर्वमान्य ग्राम दान में दिया था।

31. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती II

(1814—1817 ई०) भव वर्ष, अतिभाद्र शु. 13 (1814 ई.) के दिन सन्यास ग्रहण एवं पीठाभिषेक। ईश्वर वर्ष, फाल्गुन कृ. 6 (1817 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 3 वर्ष। महाराजा मैसूर ने मठ निर्वाह कार्य में सहयोग देकर उन्नतम धर्मपीठ का संरक्षन किया था।

32. श्री नृसिंह भारती VIII

(1817—1879) ईश्वर वर्ष, फालगुन कृ. 1 (1817 ई०) के दिन सन्यासग्रहण। पश्चात् पीठाभिषेक। प्रमाति वर्ष, ज्येष्ठ शु. 2 (1879 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 62 वर्ष। आचार्य अपने बाल्यावस्था में ही पैदल भ्रमण कर काशी पहुंचे। आप काशी में प्रकान्ड विद्वानो द्वारा शिक्षा प्राप्त की थी जिनमें एक विद्वान श्री अहोबिल पन्डित के शिष्य श्री वाञ्चेश्वर शास्त्री भी थे। अपने पचास वयस में आपने अन्न आहार छोड दिया था। तपस्या व पूजा में दिन बिताते थे। बङ्गलूर के कमिश्नर बौरिङ्ग (1858 ई०) स्वयं आचार्य से भेंट कर आपकी महिमा अपने पत्रों में व्यक्त किया है। आपने उत्तर देश की यात्रा की थी। रामेश्वरम मन्दिर, मदुरै मन्दिर व नागपुर में अन्यों से किये गये अपचार पर आपने उन दुष्कर्मों को उनसे कबूलवाया था एवं ये सब व्यक्ति आचार्य के पास पुनः आकर क्षमा मांगी थी। मैसूर महाराजा श्री कृष्ण राज वडयार ने 1828 ई० में आचार्य को सादर स्वागत किया था। महाराजा से पूर्व में दिये गये दानों को शासन द्वारा पुष्टि करते हुए और कुछ भूदान भी दिया था। चन्दन काष्ठ काटने व विक्रय करने का अधिकार भी मठ को दिया था। महाराजा ने कुछ ऐसे अधिकार भी मठ को दिया था जो अन्यों को नहीं दिया गया था। स्वेतछत्र, मकरतोरण आदि केवल श्रृंगेरी मठ को ही है और अन्य शाखा मठ या चिल्लर मठ इसका उपयोग नहीं कर सकते। 1828 ई० में महाराजा ने एक हुक्म जारी की कि श्रृङ्गेरी मठ का शाखा मठ एवं हरिहरपुर मठ, तीर्थहल्ली मठ व मुळबागळ मठ एवं अन्य चिल्लर मठ श्रृंगेरी मठ की आज्ञा का पालन करें। शिवगङ्गा मठ के मठाधीश ने प्रार्थना की थी कि एक योग्य शिष्य को चुनकर शिवगङ्गा मठ को भेज दें। मैसूर महाराजा ने आभरण, स्वर्ण व चान्दी पूजा पात्र, श्री शारदा मन्दिर के लिये रथ, आदि का दान दिया था। 1830—31 ई० में जब संघर्ष राज्य के एक कोने में हुआ तब महाराजा ने अपने सेना को भेजकर मठ की रक्षा की थी। मैसूर के कमिश्नर ने एक हुक्म जारी किया (1837—38) कि मठ की आज्ञा पर सरकार के पास अपील करने का अधिकार किसी को भी नहीं है और श्रृङ्गेरी संस्थान सरकार को अपना हिसाब देने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। 1854 में ई० आचार्य मैसूर पधारे और मैसूर महाराजा को शिवगीता का उपदेश दिया था। इसी समय महाराजा ने मठ को वार्षिक 12, 000 रुपये देने का प्रबन्ध किया था। 1861 ई० में महाराजा श्रृंगेरी पहुंचे।

आचार्य की उत्तर भारत विजय यात्रा में अनेक जगह राजा, महाराजा, सरकार कर्मचारियों ने आपको सादर स्वागत किया था। हैदराबाद में प्रधान मंत्री चन्दू लाल ने आपका स्वागत कर हुक्म जारी की कि कोइ भी श्रृंगेरी मठ की धर्म आज्ञा की उल्लङ्घन न करें। वडोदा के गायकवाड ने रहादारी भेजी। जयाजी राव सिन्दे (ग्वालियर) तुकोजि राव होलकर (इन्दोर), जखन्त राव पवर व हैवत राव पवर (धार), शाहजी राजा भोसले (आकलकोट), भास्कर राव दादाजी सचिव (नरगुंड) और नरसिंह राव सितोले देशमुख, आदियों ने मठ को धन संपत्ति अर्पण कियाथा।

उत्तर भारत यात्रा से लौट आने के बाद आपने अपने शिष्य का चुनाव कर सन्यास दीक्षा दी। अपने शिष्य के साथ पुनः आचार्य विजय यात्रा में चल पडे और 12 वर्ष यात्रा में थे। आप श्रृंगेरी को 1877 ई० में यात्रा से लौट आये और आपका विदेह मुक्ति 1879 ई० में हुआ।

33. श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती

(1866—1912 ई॰)—अक्षय वर्ष, आषाढ शु॰ 6 (1866 ई॰) के दिन सन्यासग्रहण; 1879 ई॰ में पीठाभिषेक; परीतापि वर्ष, चैत्र शु॰ 2 (1912 ई॰) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 33 वर्ष। आचार्य ने अपने गुरु महाराज के साथ 12 वर्ष मैसूर व मदरास प्रान्त सीमा में भ्रमण कर 1877 ई० श्रृंगेरी लौटे। जागीरदार अण्णा साहब की प्रार्थना पर 1886 ई० में दक्कन देश यात्रा में चल पडे। श्री अण्णा साहब ने विद्याशङ्कर मन्दिर विमान के लिये स्वर्ण कलश का दान दिया था। गोकर्ण, जमखन्डी, कोल्हापुर, पूना, आदि सीमाओं में भ्रमण कर 1890 ई॰ में श्रृंगेरी लौटे। 1891 ई॰ में महाराज मैसूर के प्रार्थना पर आचार्य मैसूर पहुंचे। यहां गणपति पूजा उत्सव में आचार्य ने एक विद्वत् सभा कराया था। यहां से तीसरी बार आप यात्रा में चल पडे। कुर्ग, सत्यमङ्गळम्, गोबिचेट्टिपालयम्, अय्यमपालयम्, कडत्तूर, पलनी, मदुरै, रामेश्वरम्, आदि स्थलों में भ्रमण करते हुए धर्मप्रचार किया था। रामनाथपुरम में राजमहल की देवी उग्र होने से उस मूर्ति की उग्रता शान्त कर, वैदिक सम्प्रदाय पूजा प्रारम्भ कराकर श्री चक्र की स्थापना की थी। रामनाथपुरम राजा ने पांच गांव दान में दिया था। यहां से आप कोइल्लूर पहुंचे जहां अद्वैत मठ था। यहां के धनाढ्यों ने श्रृंगेरी शारदा मन्दिर मरम्मत के लिये 30,000 रूपया भेंट चढाई भी। तिरुनेलवेली सीमा की यात्रा भी समाप्त कर श्रृंगेरी को 1895 ई॰ में लौट आये। 1892 ई॰ में आचार्य के आशीष व आज्ञा पर श्री प. प. स्वामी महादेवेन्द्र सरस्वती ने श्री अप्पय दीक्षित वंशजों का सहायता प्राप्त कर विरिञ्चिपुरम श्री मार्गबन्धु मन्दिर का कुम्भाभिषेक कराया था। 1894-5 ई० में ग्वालियर के महाराजा सिन्दे के आज्ञा पर हुक्म किया गया कि संकेश्वर मठ के ऊपर श्रृंगेरी मठ का प्राधान्य है।

मैसूर दिवान सेशाद्रि अय्यर की सहायता से अन्यों से स्वहस्थ किये गये जमीन सब पुनः प्राप्त हुआ और जमीन का नाप व सर्वे कर पट्टा तैय्यार किया गया था। इससे मठ का आय वार्षिक 1,30,000 का हुआ जो पूर्व में 60,000 ही मिलता था। रामनाथपुरम राज्य से दिये गये जमीन की आय 8000 वार्षिक का था। आचार्य ने श्रृंगेरी में 'सद्विद्यासंञ्जीविनी' नाम का पाठशाला खोला और आप यहां वेदान्त पाठ पढाते थे। महामना मालवीय जी ने अपने मित्र श्री दामले को आचार्य के पास भेजकर प्रार्थना की कि आप आचार्य काशी पधार कर हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव डालें। आचार्य स्वयं जा न सके पर आपने गुरु पादुका भेज दिया था। मैसूर महाराजा ने 1898 एवं 1901 में श्रृंगेरी पहुंचकर आचार्य का दर्शन किया। आचार्य ने शङ्कर जयन्ती उत्सव मनाने का प्रथा प्रारम्भ किया था जो अब सारे देश में मनाया जाता है।

आचार्य ने कालटी ग्राम में वह जमीन व मन्दिर खरीदा जहां आचार्य शङ्कर का जन्म हुआ था, माता आर्याम्बा का दहन किया गया था। यहां मठ, मन्दिर, घाट बनवाने का प्रबन्ध भी किया गया। श्रृंगेरी शारदा मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य भी प्रारम्भ हुआ। महाराजा मैसूर अपने कुटुम्ब सहित श्रृंगेरी पहुंचकर आचार्य का दर्शन

किया। आचार्य दक्षिण भारत यात्रा में पुनः चल पडे। तिरुवाङ्कूर महाराजा ने 1909 ई० में एक हाथी एवं 10,000 रूपया भेंट चढाया। कालटी पहुंचकर 1910 ई० में कुम्भाभिषेक समाप्त किया। आद्यशङ्कराचार्य जी का प्राचीन जन्म स्थल अब यात्रियों के लिये एक क्षेत्र बन गया। यहां से दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए बङ्गलूर पहुंचकर यहां 'भारतीय गीर्वाण—प्रौढ—विद्या—अभिवर्धिनी' नामक एक शिक्षा संस्था की स्थापना की थी। आचार्य ने 1912 ई० में एक बालक श्री नरसिंह शास्त्री को अपना शिष्य होने का चुनाव कर महाराजा मैसूर को पत्र लिखकर खबर सुनाया था। आपका विदेह मुक्ति शृंगेरी में हुई।

आचार्य ने अनेक श्लोकों की रचना की थी जो सब संग्रह कर 'भक्तिसुधातरङ्गिनी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। आचार्य ने वाणी विलास मुद्रालय द्वारा आद्यशङ्कराचार्य कृत ग्रन्थों का प्रकाशन कराया था।

34. श्री चन्द्रशेखर भारती III

(1912—1954 ई०)—परीतापि वर्ष, चैत्र कृ० 6 (1912) के दिन सन्यासग्रहण व पीठाभिषेक। जय वर्ष, भाद्रपद कृष्ण 15 (1954 ई०) के दिन निर्याण। मठ निर्वाह काल 42 वर्ष। आचार्य ने 1916 ई० में शारदा मन्दिर एवं अपने गुरु की समाधि नरसिंहवन में, इन दोनों का कुम्भाभिषेक समाप्त किया। महाराजा मैसूर की प्रार्थना पर आचार्य 1924 ई० में दक्षिण भारत यात्रा में चल पडे। अपने गुरु का जन्मस्थल जो मैसूर में एक मकान था उसे खरीदकर मठ, मन्दिर व पाठशाला की स्थापना की थी। यात्रा करते हुए कालटी पहुंचकर 1927 ई० में कालटी में वेदान्त पाठशाला खोली थी। नञ्जनगूड में भी एक पाठशाला खोली। 1927 ई० में शृंगेरी लौटे। शारदा के आदेश पर आचार्य ने एक दिव्य तेजःपुञ्ज बालक श्री श्रीनिवासन् को अपना शिष्य होने एवं मठाधीश बनने के योग्य समझ करके आपको प्रजोत्पत्ति वर्ष, ज्येष्ठ. शु. 5 (May 22, 1931) के दिन सन्यासाश्रम दिया। आचार्य तपस्या में निष्ठ थे और मठ का निर्वाह मठ प्रबन्धक एवं छोटे आचार्य दोनों करते थे। 1938 ई० में आचार्य पुनः यात्रा में निकल पडे। 1940 ई० में शृंगेरी लौटे। आप तपस्या में पुनः निष्ठ हो गये। हजारों शिष्य व भक्त शृंगेरी पहुंचे पर आपका दर्शन मिलना कठिन था। आपकी तपोमहिमा, अमानुषीक लीला आदि के बारे में चरित्र पुस्तक प्रकाश हुए हैं। 24—8—1954 के दिन भारत राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद शृंगेरी पहुंचकर आचार्य का दर्शन किया। आपका निर्याण 1954 ई० में शृंगेरी में हुआ।

35. श्री अभिनव विद्यातीर्थ (वर्तमान जगद्गुरु)

वर्तमान जगद्गुरु आचार्य ने प्रजोत्पत्ति वर्ष, ज्येष्ठ शु. 5 (1931 ई०) के दिन सन्यास ग्रहण किया। आपकी शिक्षा शृंगेरी व बङ्गलूर में हुई। 1954 ई० में मठाधीश भये। अभी हाल ही में आचार्य ने सारे दक्षिण भारत सीमा में विजय यात्रा पूर्ति कर शृंगेरी को लौट आये हैं।

ऊपर दिये हुए अति संक्षेप विवरण व प्रमाण द्वारा सिद्ध होता है कि आचार्य शङ्कर का दक्षिणाम्नाय श्री शृंगेरी परम्परा आठवीं शताब्दी से आज तक अविच्छिन्न रूप में आया है। उक्त आचार्यों की कथा भी पुस्तकरूप में अन्यत्र मिलती है और शृंगेरी मठ में भी यह सब उपलब्ध होते हैं। पर यहां मैं ने केवल बाह्य व पुष्टि प्रमाण सामग्री का ही उल्लेख किया है जो सब दृढ प्रमाणों द्वारा सिद्ध किये जा सकते हैं। गुरुभक्तरत्न श्री के. आर. वेंकटरामय्यर, एम्. ए., भूतपूर्व डि. पि. ऐ. पुदुकोट्टै, को मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूं। आपसे रचित आङ्गल भाषा पुस्तक 'Transcendental Wisdom' (दक्षिणाम्नाय शृंगेरी मठ का इतिहास) उत्तम और पढने योग्य है और यहां दी गई चरित्र विषय कुछ भाग उक्त पुस्तक से लिया गया है।

ॐ शान्तिः। ॐ शान्तिः। ॐ शान्तिः।

श्री रामा प्रिन्टिङ्ग वर्क्स धर्मपुरी—1 (सेलम जिला) मदरास राज्य—1963